# Educational Management

## DEDU503

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

# शैक्षिक प्रबंधन

## EDUCATIONAL MANAGEMENT

Copyright © 2012
All rights reserved with publishers

Produced & Printed by
**USI PUBLICATIONS**
2/31, Nehru Enclave, Kalkaji Ext.,
New Delhi-110019
for
Lovely Professional University
Phagwara

# पाठ्यक्रम SYLLABUS

## शैक्षिक प्रबंधन

## (Educational Management)

**उद्देश्य:**

1. विद्यार्थियों को शिक्षण तथा शैक्षिक प्रशासन के प्रभावी प्रबंधक बनाने में।
2. शैक्षिक प्रशासन तथा प्रबंधन के लिए केन्द्रीय तथा राज्य कार्यप्रणाली से विद्यार्थियों को परिचित करवाना।
3. विद्यार्थियों को पर्यवेक्षण, निरीक्षण के विषय में अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने तथा विकास की नवीन प्रवृत्तियों की जानकारी उपलब्ध करवाना।

**Objectives:**

1. Become effective manager of teaching/administration of education.
2. Be acquainted with the central and state machinery for educational administration and management.
3. To enable the students to get some insight into supervision, inspection and know trends of development.

| Sr. No. | Description |
|---|---|
| 1 | Educational management: concept, nature and scope, difference between administration and management, Characteristics of good management, Process of Educational management, Management at different levels-elementary, secondary, higher education. |
| 2 | SWOT analysis: concept and process, Application of SWOT analysis at various levels of education. |
| 3 | Managerial process and its importance, Planning: process and means, Organizing: process and means, Controlling and staffing: process, means and new practices, group dynamics and motivation. |
| 4 | Implementing and decision making: process and means, Leadership style and theories of leadership, Job accountability, management training: needs and means. |
| 5 | Concept of PERT and CPM, Cost-benefit and cost-efficiency analysis in education, Participation of stakeholders in educational management, Promoting need based educational programmes. |
| 6 | Educational supervision: meaning, nature and types, Qualities of an effective supervisor, Planning and organizing supervisory activity. |
| 7 | School inspection, Application of educational management in academic areas, Application of educational management in administrative areas. |
| 8 | Quality management in education: Challenges, Total quality management, Time management, Quality improvement issues in higher education. |
| 9 | IQAC in higher education institutions, Professional Learning Community (PLC) in Education, IIEP as an Apex body in Educational planning and management. |
| 10 | NUEPA as an Apex body in Educational planning and management, SIEMAT as an Apex body in Educational planning and Management, UGC-NAAC as an Apex body in Educational planning and management. |

# विषय-सूची


| इकाई (Units) | (CONTENTS) | पृष्ठ संख्या (Page No.) |
|---|---|---|
| 1. | शिक्षा प्रबंधन : अवधारणा, प्रकृति एवं क्षेत्र (Eucational Management: Concept, Nature and Scope) | 1 |
| 2. | शैक्षिक प्रबंधन की प्रक्रिया (Process of Educational Management) | 12 |
| 3. | विभिन्न स्तरों पर प्रबंधन (Management at Different Levels) | 31 |
| 4. | सॉट विश्लेषण: अवधारणा तथा प्रक्रिया (SWOT Analysis: Concept and Process) | 62 |
| 5. | शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सॉट विश्लेषण का उपयोग (Application of SWOT Analysis at Various Levels of Education) | 74 |
| 6. | प्रबंधन प्रक्रिया और उसका महत्व (Managerial Process and its Importance) | 80 |
| 7. | नियोजन : प्रक्रिया तथा अर्थ (Planning : Process and Means) | 87 |
| 8. | संगठन : अर्थ एवं प्रक्रिया (Organizing : Process and means) | 95 |
| 9. | नियंत्रण और नियुक्ति (Controlling and Staffing) | 102 |
| 10. | निर्णय निर्धारण और क्रियान्वयन (Implementing and Decision Making) | 131 |
| 11. | नेतृत्व शैली और नेतृत्व के सिद्धांत (Leadership Style and Theory of Leadership) | 147 |
| 12. | जवाबदेही, प्रबंधन प्रशिक्षण : अर्थ और आवश्यकता (Job Accountability, Mangament Training: Needs and Means) | 170 |
| 13. | पीईआरटी तथा सीपीएम की अवधारणा (Concept of PERT and CPM) | 187 |
| 14. | शिक्षा में लागत लाभ तथा लागत प्रभाविता विश्लेषण (Cost-benefit and Cost-efficiency Analysis in Education) | 193 |
| 15. | शैक्षिक प्रबंधन में पणधारियों (दबाव समूहों) की सहभागिता (Participation of Stakeholder in Educational management) | 200 |
| 16. | जरूरतमंदों के लिए शैक्षिक कार्यक्रम का प्रोत्साहन (Promoting Need Based Educational Programmes) | 209 |

| | | |
|---|---|---|
| **17.** | शैक्षिक पर्यवेक्षण : अर्थ, प्रकृति तथा प्रकार (Educational Supervision : Meaning, Nature and Types) | 224 |
| **18.** | प्रभावी पर्यवेक्षक के गुण (Qualities of an effective Supervisor) | 236 |
| **19.** | विद्यालय निरीक्षण (School Inspection) | 242 |
| **20.** | अकादमिक क्षेत्र में शैक्षिक प्रबंधन की उपयोगिता (Application of Educational Management in Academic Areas) | 251 |
| **21.** | प्रशासनिक क्षेत्र में शिक्षण प्रबंधन का उपयोग (Application of Educational Management in Administrative Areas) | 261 |
| **22.** | शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन : चुनौतियाँ (Quality Management in Education : Challenges) | 271 |
| **23.** | समय-प्रबंधन (Time-Management) | 277 |
| **24.** | उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुधार की समस्या (Quality Improvement Issue in Higher Education) | 289 |
| **25.** | उच्च शिक्षण संस्थान में आईक्यूएसी (IQAC in Higher Education Institute) | 298 |
| **26.** | शिक्षा में व्यावसायिक अधिगम समुदाय (Professional Learning Community (PLC) in Education) | 303 |
| **27.** | शैक्षिक नियोजन और प्रबंधन में आईआईईपी एक शीर्षस्थ निकाय (IIEP as an Apex Body in Educational Planning) | 310 |
| **28.** | शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन में न्यूपा एक शीर्षस्थ निकाय (NUEPA as an Apex body in Educational Planning and Management) | 315 |
| **29.** | शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन में सीमैट एक शीर्षस्थ निकाय (SIEMAT as an Apex Body in Educational Planning and Management) | 320 |
| **30.** | शैक्षिक नियोजन और प्रबंधन में यूजीसी-नॉक एक शीर्षस्थ निकाय (UGC-NAAC as an Apex body in Educational Planning and Management) | 325 |

नोट

# इकाई–1: शिक्षा प्रबंधन : अवधारणा, प्रकृति एवं क्षेत्र (Educational Management: Concept, Nature and Scope)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 शिक्षा प्रबंधन की प्रकृति, अर्थ एवं परिभाषा (Nature, Meaning and Definition of Educational Management)

1.2 कुशल प्रबंधन की विशेषताएँ (Characteristics of good Management)

1.3 शिक्षा प्रशासन का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएँ (Meaning, Definition and Characteristics of Educational Administration)

1.4 प्रबंध एवं प्रशासन में अन्तर (Difference between Management and Administration)

1.5 सारांश (Summary)

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा प्रबंधन की प्रकृति, अर्थ एवं परिभाषा को समझने में।
- शिक्षा प्रशासन के अर्थ, परिभाषा एवं कुशल प्रबंधन की विशेषताओं का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

मानव जीवन के विकास से पूर्व मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित थी, उनकी पूर्ति व्यक्ति स्वयं अपने प्रयास से कर लेता था, परन्तु मानवीय विकास के साथ आवश्यकताओं में भी वृद्धि हुई जिससे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना कठिन हो गया और उसे अपने कार्यों को पूरा करने के लिये दूसरों की सहायता की आवश्यकता होती है। आज हमारे चारों ओर विविध प्रकार के संगठन हैं। यह संगठन औपचारिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक, प्रशासनिक, राजनैतिक आदि हैं। संगठन व्यक्तियों का एक समूह होता है जिसके निश्चित उद्देश्य होते हैं उन्हें प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इन संगठनों को निर्देशित, समन्वित तथा एकीकृत करने के लिए 'प्रबन्धन' की आवश्यकता होती है। प्रबन्धन का सरल शब्दों में 'अर्थ' संगठन में व्यक्तियों से कार्य कराना है। अंग्रेजी शब्द 'मैनेज-मैन-टेक्टफुली' को मैनजमेन्ट कहते हैं। प्रबन्धन का अर्थ 'व्यक्तियों से कार्य लेना' है।

नोट

## 1.1 शिक्षा प्रबंधन की प्रकृति, अर्थ एवं परिभाषा (Nature, Meaning and Definition of Educational Management)

प्रबन्धन की प्रकृति बदलती रहती है। पहले **'प्रबन्धन'** तथा 'स्वामित्व' को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते थे परन्तु आज तकनीकी एवं औद्योगिक युग में इनके अर्थ एवं प्रकृति भिन्न हैं। प्रबन्धन की प्रकृति इस प्रकार है–

(1) प्रबन्धन एक कला तथा विज्ञान है और एक अध्ययन का क्षेत्र भी है

(2) प्रबन्धन एक विकास का साधन तथा अधिकतर तंत्र भी है।

(3) प्रबन्धन व्यक्तियों से कार्य कराने की सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

(4) प्रबन्धन व्यक्तियों के संगठित समूह से कार्य कराने का एक तंत्र है।

(5) प्रबन्धन एक पेशा है इसकी अपनी आचार-संहिता है।

(6) प्रबन्धन पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखने का कार्य है

### प्रबन्धन एवं प्रणाली (Management and System)

मानवीय क्रियाओं के संचालन हेतु प्रबंधन की आवश्यकता होती है। प्रबन्धन का सम्बन्ध प्रणाली से होता है। मनुष्य प्रणाली तथा उप-प्रणालियों का विकास किया है। प्रबन्धन की प्रभावशीलता एवं कार्यक्षमता प्रणाली पर आधारित होती है। मानव द्वारा जिन प्रणालियों का विकास किया गया है उनमें कोई प्रणाली पूर्ण नहीं है प्रत्येक में सुधार एवं विकास की आवश्यकता होती है।

प्रबन्धन की प्रणाली का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। इसमें पृष्ठ-पोषण प्रविधि का प्रयोग किया जाता है और प्रणाली के स्वरूप का विश्लेषण भी किया जाता है जिसे 'अनुदेशनात्मक-अभिकल्प' (Instructional design) की संज्ञा दी जाती है। यह शिक्षा तकनीकी की प्रमुख पाठ्यवस्तु है।

टी. आर. रिओरडन (1971) के अनुसार–"प्रबन्धन का सम्बन्ध विविध प्रकार के वैकल्पिक नियोजनों तथा प्रस्तावों में से प्रभावी नियोजन का चयन करना, जिसमें अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके और निहित अपेक्षाओं की पूर्ति की जा सके। प्रबन्धन में उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आव्यूहों का भी चयन किया जाता है।"

"Management refers to concious preference from variety of alternative plans and proposals and further the more that such choice involve purposeful commitment to recognize and desired objectives. Management employs strategies to realize the objectives"

*-T. R. Rioran (1971)*

शिक्षण के अन्तर्गत व्यापक रूप के अनुदेशन की रूपरेखा (Istructional design) को सम्मिलित किया जाता है। शैक्षिक तकनीकी की यह धारणा है कि शिक्षण एक कला नहीं है अपितु एक विज्ञान है। शिक्षक जन्मजात ही नहीं होते अपितु प्रशिक्षण संस्थाएँ प्रभावशाली शिक्षकों को तैयार करती हैं।

ग्लेसर (1968) का कथन है कि शैक्षिक तकनीकी की यह विशेषता है कि अनुदेशन के प्रारूप की सहायता से व्यावसायिक क्षमताओं का विकास किया जा सकता है। इतना ही नहीं, विशेषज्ञ इस क्षेत्र में शोध कार्य कर रहे हैं कि किस स्तर तक व्यावसायिक क्षमताओं का विकास किया जा सकता है। एल. कारटर (1966) ने शोध कार्यों के निष्कर्षों में यह पाया कि अनुदेशन के प्रारूप का प्रयोग एक व्यक्ति की अपेक्षा समूह की व्यावसायिक क्षमताओं के विकास के लिये अधिक प्रभावशाली होता है। ग्लेसर ने अनुदेशन के प्रारूप के कार्यों का उल्लेख किया है–

*क्या आप जानते हैं* शैक्षिक अभियन्त्रण (Educational Engineering) के विकास ने अनुदेशन-प्रणाली को वैज्ञानिक रूप दिया और शिक्षण को कला की अपेक्षा अधिक माना है।

नोट

## शिक्षा प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitation of Educational Management)

मनुष्य द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रिया किसी न किसी प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है। इसी प्रकार शिक्षा की अवधारणा में दो प्रकार के परिवर्तन हुये हैं। (1) शिक्षा, मानव विकास की सशक्त प्रक्रिया के साथ-साथ राष्ट्र विकास एवं जनशक्ति नियोजन का आधार बन गई है। (2) यह एक मानवीय व्यवसाय के रूप में विकसित हो रही है। यह व्यवसाय, अन्य व्यवसायों से भिन्न है। इसमें शिक्षक, शिक्षा के द्वारा मानव विकास के लिये किये गये श्रम का मूल्य लेता है। यह व्यवसाय एक मिशन (सेवा कार्य) के रूप में है जिसका सम्पूर्ण लाभ समाज तथा राष्ट्र को मिलता है। अन्य व्यवसायों में लाभ व्यक्ति या संस्था को मिलता है और कर्मचारियों को केवल सेवा मूल्य प्राप्त होता है।

शिक्षण-व्यवसाय (Teaching Profession) में प्रबन्धन का विशेष महत्व है। शैक्षिक प्रबन्धन की अवधारणा को हम इस प्रकार समझ सकते हैं–

**1. शिक्षण एक व्यवसाय है–हैनी (Heney)** के शब्दों में–'व्यवसाय वस्तुओं तथा सेवाओं के उस नियमित रूप क्रय-विक्रय, हस्तान्तरण अथवा विनिमय को कहते हैं जो लाभ कमाने के लिये किया जाता है।

इस परिभाषा के अनुसार शिक्षा एक व्यवसाय है इसमें शिक्षक अपने ज्ञान तथा कौशल की सेवाएँ, धन के बदले, छात्रों को देता है। छात्र, शिक्षण द्वारा प्रदान किये गये ज्ञान तथा कौशल उपयोग करके अपनी क्षमताओं का विकास करते हैं। व्यवसाय में क्रय-विक्रय, विनिमय, सेवाओं का लेन-देन, लाभ, प्रयोजन तथा प्रतिफल की अनिश्चितता, जोखिम एवं विनिमय में निरन्तरता के लक्षण पाये जाते हैं। उद्योग तथा व्यवसाय में लाभ उत्पादक को मिलता है। शिक्षा में उक्त सभी लक्षण पाये जाते हैं किन्तु इसमें जोखिम कम है। इसका लाभ व्यक्ति तथा समाज को मिलता है।

**2. शिक्षा एक प्रबन्धन** (Management) **है–**शिक्षा, यद्यपि जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की सफलता उत्तम प्रबन्धन पर निर्भर करती है। यदि प्रबन्धन निरंकुश है तो शिक्षा की प्रक्रिया में अवरोध आएँगे। यदि वह अधिनायकवादी है तो एक व्यक्ति या संस्था का वर्चस्व रहेगा। यदि मुक्त है तो अराजकता की संभावना बढ़ेगी। इसलिये शिक्षा-उद्योग अर्थात् शिक्षा संस्थाओं की सफलता उसके प्रबन्धन पर निर्भर करती है। ओलीवर शैल्डेन के शब्दों में–'प्रबन्धन, उद्योग (विद्यालय तथा शिक्षा) की वह जीवनदायिनी शक्ति है जो संगठन को शक्ति देता है, संचालित करता है एवं नियंत्रित करता है।' इसी प्रकार थियोहेमेन ने लिखा है–प्रबन्धन एक विज्ञान के रूप में, प्रबन्धन एक उच्च स्तरीय प्रबन्धन समूह के रूप में तथा प्रबन्धन एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में व्यक्त किया जाता है।' दूसरे शब्दों में प्रबन्धन एक कार्यकारी समूह है, यह समूह कार्य का संचालन, निर्देशन, नियन्त्रण एवं समन्वय करता है। इसलिये वह (प्रबन्धक) प्रशासक कहलाता है। प्रबन्धक या प्रशासक छः' तत्वों (1) मानव (2) मशीन (3) माल (4) मुद्रा बाजार (5) प्रबन्धन (6) तथा संगठन का समन्वय करता है। पीटर ड्रकर के अनुसार–'प्रबन्धक, प्रत्येक व्यवसाय का गत्यात्मक तथा जीवनदायी अवयव है। इसके नेतृत्व के अभाव में उत्पादन के साधन, केवल साधन मात्र ही रह जाते हैं, कभी उत्पादन नहीं बन पाते हैं।

विद्यालयी प्रबन्धन में मानव (शिक्षक, छात्र), मशीन (विद्यालयी उपकरण) माल (शैक्षिक प्रक्रिया) तथा निष्पत्ति, मुद्रा बाजार (शुल्क, अर्थ व्यवस्था तथा मानव शक्ति नियोजन), प्रबन्धन (समन्वय) तथा संगठन (प्रबन्धक, प्रधानाचार्य, शिक्षक, कर्मचारी, छात्र, अभिभावक, साधन) आदि निहित हैं। इन सबको गतिशील बनाये रखने में प्रबन्धक की भूमिका महत्वपूर्ण है।

शैक्षिक प्रबन्धन एक विशेष क्रिया है। मानव समूह तथा संस्थाओं के संचालन के लिये अर्थात् विद्यालय के कर्मियों तथा विद्यालयी संस्था के संचालन के लिये शैक्षिक प्रबन्धन का होना अत्यन्त आवश्यक है। उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्र में व्यवस्था की यह प्रक्रिया प्रबन्धन कहलाती है तो शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रक्रिया प्रशासन कहलाती है। प्रशासन की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने मद के अनुसार भूमिका का निर्वाह करता है। इसलिये प्रबन्धन तथा प्रशासन को समानार्थी कहा जाता है। प्रचलित अवस्था में 'प्रबन्ध' शब्द उद्योग तथा व्यवसाय के क्षेत्र में उपयोग किया जाता है।

शिक्षा-प्रबन्धन की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

नोट

1. **किम्बाल एवं किम्बाल**–प्रबन्धन उस कला को कहते हैं जिसके द्वारा किसी उद्योग में मनुष्यों और माल को नियन्त्रित करने के लिये लागू आर्थिक सिद्धान्त को प्रयोग में लाया जाता है।
2. **कुन्ट्ज**–औपचारिक समूहों में संगठित लोगों से काम कराने की कला का नाम ही प्रबन्धन है।
3. **स्टेन्लेवेन्स**–प्रबन्धन सामान्य रूप से निर्णय लेने एवं मानवीय क्रियाओं पर नियन्त्रण रखने की विधि है जिससे पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके।
4. **पीटरसन तथा प्लोमैन**–प्रबन्धन से आशय उस तकनीक से है जिसके द्वारा एक विशेष मानवीय समूह के उद्देश्यों का निर्धारण, स्पष्टीकरण तथा क्रियान्वयन किया जाता है।

*नोट्स* प्रबंधन यह जानने की कला है कि आप व्यक्तियों से वास्तव में क्या काम लेना चाहते हैं? और फिर यह देखना कि वे उसको सबसे मितव्ययी तथा उत्तम ढंग से पूरा करते हैं।

## शिक्षा प्रबन्धन की सामान्य विशेषताएँ (General Features of Educational Management)

1970 से शिक्षा प्रबन्धन तथा प्रशासन के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात हुआ। यह सूत्रपात इस प्रकार है–

1. शिक्षा प्रबन्धन के सिद्धान्त तथा व्यवहार में परिवर्तन आ रहा है।
2. सैद्धान्तिक स्तर नवीन शब्दावली का निर्माण हो रहा है।
3. शैक्षिक प्रशासन के लिए शैक्षिक प्रबन्धन, शैक्षिक संगठन जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है।
4. शैक्षिक प्रबन्धन ज्ञान की नवीन शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।
5. वाणिज्य तथा उद्योग के क्षेत्र में जिसे प्रबन्धन कहते हैं, शिक्षा के क्षेत्र में उसे प्रशासन कहते हैं।

इस दृष्टि से थिया हेमेन ने प्रबन्धन की अवधारणा इस परिभाषा से स्पष्ट की है–'प्रबन्धन के तीन अर्थ है: प्रबन्धन उच्चस्तरीय प्रबन्धकों का एक समूह है, प्रबन्धन एक विज्ञान है, प्रबन्धन एक सामाजिक क्रिया है, शिक्षा प्रबन्धन की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

1. **प्रबन्धन उत्पादन का एक आर्थिक संसाधन है**–आर्थिक क्रियाओं में भूमि, श्रम, पूँजी, साहस तथा विनिमय प्रमुख घटक हैं। ये सभी घटक स्वतन्त्र होते हुए भी प्रबन्धन के अधीन हैं। प्रबन्धन के साधनों के अभाव में उत्पत्ति के सभी साधन अपूर्ण एवं निष्क्रिय हैं।
2. **प्रबन्धन एक अधिकार व्यवस्था है**–किसी भी क्षेत्र में प्रबन्धन, अधिकार के रूप में प्रयुक्त होता है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रबन्धक तथा प्रबंधित, दो वर्ग होते हैं। प्रबन्धक वर्ग के अधिकार अधिक होते हैं और वे अपने अधीनस्थों से कार्य लेते हैं। प्रबन्धक भी उच्च, माध्यम एवं पर्यवेक्षीय स्तर के होते हैं। सभी के अपने पदों के अनुरूप अधिकार होते हैं तथा भूमिकाएँ होती हैं ये अपने अधीनस्थों का मार्ग दर्शन करते हैं। नियंत्रण, समन्वय तथा नेतृत्व करते हैं।
3. **प्रबन्धन एक लोक समूह है**–प्रबन्धन की अवधारणाओं में यह है कि यह एक लोक समूह है। विद्यालय में प्रबन्धक, प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्र, अन्य कर्मचारी होते हैं। ये सभी अपने-अपने क्षेत्रों में प्रबन्धन करते हैं। आधुनिक प्रबन्धन शास्त्र में तीन व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं। (1) पैत्रिक अथवा पारिवारिक (2) राजनीतिक (3) पेशेवर।

   पैत्रिक प्रबन्धन वंशानुक्रम तथा परिवार की परम्पराओं के अनुसार चलता है। औद्योगिक घरानों में इसी प्रकार का प्रबन्धन पाया जाता है। राजनीतिक प्रबन्धन, सरकारी उपक्रमों **(Government undertakings)** में पाया जाता है। इनमें सत्तारूढ़ दल अपने हितैषियों की नियुक्तियाँ करते हैं। पेशेवर प्रबन्धन में, प्रबन्धन का प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति संस्थाओं का प्रबन्धन करते हैं

नोट

4. **शैक्षिक प्रबन्धन एक समन्वयकारी संसाधन है**–शैक्षिक प्रबन्धन, शिक्षा के विभिन्न साधनों में समन्वय करता है तथा एकीकरण के द्वारा वह शिक्षा की प्रक्रिया को सफल बनाता है। एच. एल, सिस्क के शब्दों में–'प्रबन्धन, नियोजन प्रक्रिया, संगठन प्रक्रिया, निर्देशन तथा नियंत्रण के द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने का संसाधन संयोजन है।
5. **शैक्षिक प्रबन्धन एक समूह वाचक संज्ञा है**–शैक्षिक प्रबन्धन में एक व्यक्ति या संस्था निहित नहीं होते, शैक्षिक प्रबन्ध में समूह निहित होते हैं जो अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। प्रबन्धन एक जटिल अर्थ वाली प्रक्रिया है इसका संबन्ध अधिकारियों से है, यह एक विज्ञान है और साथ ही यह एक प्रक्रिया भी है। प्रबन्धन में अधीनस्थों से काम कराया जाता है।
6. **प्रबन्धन मूल रूप से क्रिया है**–शैक्षिक प्रबन्धन मूल रूप से वह क्रिया है जो कार्य का सम्पादन करती है इसका सम्बन्ध मानवीय भौतिक संसाधन तथा निष्पत्ति से होता है।
7. **प्रबन्धन एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है**–प्रबन्धन किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये किया जाता है। बच्चों को शिक्षा देने के उद्देश्य से स्थान, सामान, कर्मचारियों, उपकरणों की व्यवस्था की जाती है, इन सबका उद्देश्य, लक्ष्य प्राप्त करना है।
8. **प्रबन्धन एक सामाजिक क्रिया है**–लारेन्स एप्पले के अनुसार–प्रबन्धन, व्यक्तियों का विकास है न कि वस्तुओं का निर्देशन, प्रबन्धन वास्तव में कर्मचारी प्रशासन है, विद्यालयों में इसीलिये अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार के कार्य करते हैं जो विद्यालय में शैक्षिक वातावरण का सृजन करते हैं।
9. **प्रबन्धन का दायित्व काम कराना है**–शैक्षिक प्रबन्धक स्वयं कार्य न करके, कार्य कराता है प्रधानाचार्य स्वयं बहुत कम पढ़ाते हैं किन्तु शिक्षक से कार्य लेते हैं और गैर शैक्षिक कर्मचारियों द्वारा शिक्षक सुविधाएँ जुटाने एवं वातावरण का निर्माण कराने में सहयोग लेते हैं।
10. **शैक्षिक प्रबन्धन एक अदृश्य कौशल है**–शैक्षिक प्रबन्धन कोई दिखाई देने वाला तत्व नहीं है। यह तो कौशल है जिसे उसके परिणाम से जाना जाता है। किसी विद्यालय में लोग अपने बच्चों को प्रवेश दिलाने के लिये इसलिये लालायित रहते हैं कि वहाँ का परिणाम उत्तम रहता है। परिणाम का उत्तम रहना, उत्तम प्रबन्धन कौशल पर निर्भर करता है।
11. **प्रबन्धन तथा स्वामित्व, दो पृथक धारणाएँ हैं**–प्रबन्धन तथा स्वामित्व, दोनों पृथक धारणाएँ हैं। आजकल बड़ी-बड़ी औद्याोगिक इकाइयाँ, विद्यालयों की स्थापना कर रही हैं वे इन विद्यालयों की स्वामिनी हैं। विद्यालय से होने वाले हानि-लाभ के प्रति वे जोखिम उठाती हैं, परन्तु ये विद्यालय भली प्रकार से तभी उत्तम प्रकार कार्य करते हैं जब इनके प्रबन्धन अच्छे होते हैं प्रबन्धन की उत्तमता ही विद्यालयों को गतिशीलता प्रदान करती है।
12. **प्रबन्धन एक सार्वभौमिक क्रिया है**–प्रबन्धन किसी भी कार्य को समुचित दिशा देने में सदा सहयोगी रहा है और यह सार्वभौम (Universal) है। नियोजन, संगठन नियन्त्रण तथा निर्देशन आदि सभी सार्वभौमिक प्रकृति के कार्य हैं। सभी प्रकार की संस्थाओं में ये कार्यशील हैं।

## 1.2 कुशल प्रबंधन की विशेषताएँ (Characteristics of Good Management)

ब्रीच (Breech) के शब्दों में–'प्रबन्धन, उपक्रम के कार्यों के प्रभावपूर्ण ढंग से नियोजित व नियमित करने के उत्तरदायित्व में (अ) योजनानुसार चलते रहने के लिये उपयुक्त कार्य विधि तैयार करना, उसे बनाये रखना, (ब) और उपक्रम की संरचना करने वाले तथा उसके कार्यक्रमों को सम्पन्न करने वाले कर्मचारियों का मार्ग निर्देशन, संगठन, तथा निरीक्षण निहित हैं।' अत: स्पष्ट है कि प्रशासन तथा प्रबन्धन निष्पादन तथा उत्तरदायित्व सम्बन्धी कार्यो में अन्तर पाया जाता है।

नोट

शिक्षा प्रबन्धन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

1. **प्रबन्धन एक जन्मजात प्रतिभा है**–प्रबन्धक, नेतृत्व प्रदान करता है। नेता पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। उनके वंशगत प्रभाव उनकी कार्य-प्रणाली को प्रभावित करते हैं।
2. **प्रबन्धन एक सामाजिक विज्ञान है**–प्रबन्धन, केवल प्रक्रिया नहीं है, यह सामाजिक विज्ञान के रूप में उभरा है। यह कार्य-कारण सम्बन्धों का विवेचन करता है।
3. **प्रबन्धन एक कला है**–प्रबन्धक प्रबन्धन को व्यवसाय के रूप में लिया जाता है। प्रबन्धन विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का उपयोग प्रतिष्ठित संस्थानों में करता है। प्रत्येक व्यवसाय में इन तथ्यों का होना आवश्यक है–
   (*i*) प्रत्येक व्यवसाय में संगठित ज्ञान तथा विशेषज्ञ ज्ञान का अस्तित्व होता है।
   (*ii*) सिद्धान्तों के औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है।
   (*iii*) प्रबन्धन व्यवसाय में प्रतिनिधि संस्था विद्यमान होती है।
   (*iv*) व्यवसाय के सदस्यों की सामान्य आचार संहिता होती है।
   (*v*) व्यवसाय में सेवा की प्रकृति तथा मात्रा के अनुसार पारिश्रमिक की व्यवस्था होती है।
4. **प्रबन्धन एक सामाजिक दायित्व है**–एच. ए. साइमन के शब्दों में–प्रबन्धन, अर्थव्यवस्था का केवल एक सामान्य अंग मात्र ही नहीं है अपितु उसका निर्माता भी है। जिस सीमा तक वह आर्थिक परिस्थितियों को नियंत्रित करता है और सतत् प्रयत्नों से उन परिस्थितियों को बदलता है उसी सीमा तक वह अच्छा प्रबन्ध करता है।'
5. **प्रबन्धन एक सार्वभौमिक क्रिया है**–जीवन तथा समाज का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें प्रबन्धन की आवश्यकता न हो। सामाजिक कुशलता के निर्माण में प्रबन्धन एक सार्वभौम प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है।

## शिक्षा प्रबन्धन का क्षेत्र (Scope of Educational Management)

शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यापक प्रक्रिया है इसमें देश की आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति नियोजन आदि निहित होते हैं। प्रबन्धन के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए हेनरी फेयोल ने कहा है–'प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध, या जनकल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।' टेलर के शब्दों में–'वैज्ञानिक प्रबन्धन के आधारभूत सिद्धान्त हमारे साधारण से साधारण व्यक्तिगत कार्यों को लेकर हमारे विशाल निगमों के कर्मो तक लागू होते हैं।' इस दृष्टि से शैक्षिक प्रबन्धन के नौ क्षेत्र हैं।

1. **उत्पादक प्रबन्धन**–इसके अन्तर्गत उत्तम शैक्षिक उपलब्धि को दृष्टिगत रखा जाता है।
2. **वित्तीय प्रबन्धन**–शिक्षा संस्थाओं के संचालन के लिये वित्तीय प्रबन्धन किया जाता है।
3. **विकास प्रबन्धन**–विद्यालयों को प्रोन्नत करने के लिये विकास की व्यवस्था की जाती है।
4. **वितरण प्रबन्धन**–विद्यालयी संसाधनों का वितरण किया जाता है।
5. **क्रय प्रबन्धन**–विद्यालयों में सामान्य क्रय करने का प्रबन्ध किया जाता है।
6. **परिवहन प्रबन्धन**–विद्यालय में सामान, छात्रों, स्टाफ के लाने-ले जाने की व्यवस्था की जाती है।
7. **संस्थापन प्रबन्धन**–संस्था के भवन, उपकरण, अन्य साधनों का प्रबन्धन किया जाता है।
8. **सेवी वर्गीय प्रबन्धन**–शिक्षक, कर्मचारी आदि की व्यवस्था, पद एवं भूमिका का निर्धारण किया जाता है।
9. **कार्यालय प्रबन्धन**–प्रत्येक विद्यालय में रिकार्ड की व्यवस्था करने के लिये कार्यलय होता है जिसके प्रबन्ध की आवश्यकता होती है।

नोट

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं का व्यावसायिक विकास ..... में होता है।
2. सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन ..... है।
3. एक प्रबन्धक जो कुछ कर्ता है उसे ..... कहते हैं।
4. शिक्षा के विविध विकल्पों में से उत्तम विकल्प का चयन ..... में किया जाता है।
5. शिक्षा पर्यवेक्षण का आधुनिक स्वरूप ..... है।
6. शिक्षा निरीक्षण का आयोजन ..... द्वारा किया जाता है।

## 1.3 शिक्षा प्रशासन का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएँ (Meaning, Definition and Characteristics of Educational Administration)

### शिक्षा प्रशासन का अर्थ (Meaning of Educational Administration)

शैक्षिक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यत: शिक्षा से ही होता है। अतएव शिक्षा के क्षेत्र में संगठन (Organization) जिस ढाँचे या तन्त्र को खड़ा करता है, शैक्षिक प्रशासन उसे कार्यान्वित करने में सहायक होता है जिससे शैक्षिक उद्देश्यों की अधिकाधिक प्राप्ति सम्भव होती है। शैक्षिक प्रशासन को आज केवल शिक्षा की व्यवस्था करना ही नहीं समझा जाता अपितु शिक्षा के सम्बन्ध में योजना बनाना, संगठन पर ध्यान देना, निर्देशन तथा पर्यवेक्षण आदि अनेक कार्यों से इसका गहरा सम्बन्ध है। शिक्षा के क्षेत्रों में अनेक व्यक्ति अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। कक्षाभवन, पुस्तकालय, क्रीड़ा-स्थल, कार्यालय, पाठ्येत्तर क्रियाओं का सफलतापूर्वक संयोजन करना और निरन्तर प्रगति के लिये प्रयत्न करना शैक्षिक प्रशासन का ही कार्य होता है। शिक्षा के सम्पूर्ण ढाँचे में कौन व्यक्ति कितनी लगन से कार्य कर रहा है इसका ठीक प्रकार से पर्यवेक्षण करना भी शैक्षिक प्रशासन का कार्य है। सभी व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर बनाना तथा उनकी कार्यक्षमता को उचित प्रोत्साहन देना, सहयोगपूर्ण ढंग से कार्य करने, प्रशासन के कार्यों में ही सम्मिलित है। विद्यालयों के प्रधानाचार्य, प्रबन्धक, शिक्षा, विद्यार्थी, अन्य कर्मचारी, जिला विद्यालय निरीक्षक, निर्देशक, उपनिदेशक आदि सभी मिलकर शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करते हैं। इन सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को ठीक प्रकार से समझने तथा उन्हें कार्यान्वित करना प्रशासन का ही कार्य है।

### शिक्षा प्रशासन की परिभाषा (Definitions of Educational Administration)

शिक्षा प्रशासन की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

**1. ब्रुक एडम्स के अनुसार–**"शैक्षिक प्रशासन में अनेक को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता होती है। शैक्षिक प्रशासन प्राय: परस्पर विरोधियों तथा सामाजिक शक्तियों को एक ही संगठन में इतनी चतुराई से जोड़ता है कि वे सब मिलकर एक इकाई के समान कार्य करते हैं।"

**2. डा. एस. एन. मुखर्जी के अनुसार–**"शैक्षिक प्रशासन वस्तुओं के साथ-साथ मानवीय साधनों की व्यवस्था से सम्बन्धित है अर्थात् व्यक्तियों के मिलजुलकर और अच्छा कार्य करने से सम्बन्धित है। वास्तव में, इसका सम्बन्ध मानवीय सजीवों से अपेक्षाकृत अधिक है तथा अमानवीय वस्तुओं से कम।"

**3. फाक्स, बिश तथा रफनर के अनुसार–**"शैक्षिक प्रशासन एक ऐसी सेवा करने वाली गतिविधि है जिसके माध्यम से शैक्षिक प्रक्रिया के लक्ष्य प्रभावशाली ढंग से प्राप्त किये जाते हैं।

**4. Encyclopaedia of Educational Research के अनुसार–**"शैक्षिक प्रशासन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रयासों का एकीकरण तथा उचित सामग्री का उपयोग इस प्रकार किया जाता है जिससे मानवीय गुणों का समुचित विकास हो सके।

नोट

**5. जे. बी. सीयर्स के अनुसार–**"शिक्षा के क्षेत्र में प्रशासन का आशय 'सरकार' शब्द से है जिसका निकटतम सम्बन्ध विशेष सन्दर्भ में इन शब्दों से होता है जैसे–अधीक्षण पर्यवेक्षण योजना, त्रुटि, निर्देशन, संगठन, नियन्त्रण, समायोजन, नियम आदि।

**6. हेनरी फेयॉल** (Henry Fayol) ने 'प्रशासन प्रक्रिया' को पिता कहकर पुकारा जाता है उसके शब्दों में–
"अन्य प्रशासन की भाँति शैक्षिक प्रशासन पाँच तत्वों–नियोजन, संगठन आदेश, समन्वय तथा नियन्त्रण की एक प्रक्रिया है।"

**7. मोर्ट तथा रौस के अनुसार–**"शैक्षिक प्रशासन का अर्थ है–छात्रों के विकास को निर्धारित उद्देश्यों की ओर मोड़ना, अध्यापकों को साधन के रूप में प्रयुक्त करना तथा सम्बन्धित जनसमुदाय को उद्देश्यों तथा उनकी प्राप्ति के साधनों की ओर मोड़ना, अध्यापकों को साधन के रूप में प्रयुक्त करना तथा सम्बन्धित जनसमुदाय को उद्देश्यों तथा उनकी प्राप्ति के साधनों की ओर प्रेरित करना।"

**8. लूथर गुलिक** (Luther Gulick) ने शैक्षिक प्रशासन प्रक्रिया का विश्लेषण व्यापक अर्थ में "पोस्डकोर्ब" (Posdcorb) फार्मूलें द्वारा प्रस्तुत किया। इसकी संरचना में निम्नलिखित सात तत्वों का समावेश है जो इसके अर्थ को इन सात प्रशासकीय कार्यों के रूप में विवेचन करते हैं–

**पोस्डकोर्ब की सरंचना**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| P | – | P (नियोजन बनाना) | O | – | Organization (संगठन करना) |
| S | – | Staffing (नियुक्त करना) | D | – | Directing (निर्देशन देना) |
| Co | – | Co-ordinating (समन्वय करना) | R | – | Reporting (रिपोर्ट तैयार करना) |
| B | – | Budgeting (बजट बनाना) | | | |

**9. ग्राहम वैल्फोर के अनुसार–**"शैक्षिक प्रशासन का उद्देश्य उत्तम छात्रों को योग्य शिक्षकों से समुचित शिक्षा प्राप्त करने हेतु समक्ष या योग्य बनाना है ताकि वे अपने राज्य के अन्तर्गत सीमित साधनों द्वारा प्रशिक्षित होकर अधिकाधिक लाभान्वित हो सके।"

*टास्क* पोस्डकोर्ब (POSDCORB) फॉर्मूला क्या है?

## 1.4 प्रबंध एवं प्रशासन में अन्तर (Difference between Management and Administration)

प्रबंध और प्रशासन को लेकर अनेक मतभेद हैं। इनको लेकर तीन प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं–

**( 1 ) प्रशासन शब्द प्रबंधन की तुलना में अधिक व्यापक है–**इसके अनुसार प्रशासन तथा प्रबंध दो पृथक–पृथक क्रियाएँ हैं। इनमें प्रशासन की सत्ता, प्रबंध से ऊपर है।

**( 2 ) प्रशासन प्रबंध का अंग है–**इस विचार के प्रतिपादक ई. एल. एफ ब्रेच है। इनके अनुसार प्रबंध का कार्य उपक्रम की नीतियाँ तय करना, लक्ष्य निर्धारण करना है, प्रशासन उनको क्रियान्वित करता है। इस तरह प्रशासन, प्रबंधन प्रक्रिया का ही एक अंग है।

प्रशासन की प्रबंधन से श्रेष्ठता के समर्थक विद्वानों में स्प्रिंगल, जे. एन. शुल्ज तथा आलीवर शेल्डन है जो प्रशासन को प्रबंध से ऊपर मानते हैं। प्रशासन नीतियाँ व उद्देश्य तय करता है प्रबंध उनको क्रियान्वित करता है।

नोट

ऑलीवर शेल्डन के अनुसार–प्रबंध का कार्य प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत नीतियों को क्रियान्वित करना है तथा निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन का कार्य नियोजित करना है।

**( 3 ) प्रबंधन की प्रशासन से श्रेष्ठता के समर्थक**–ई. एफ. एल. बेच के अनुसार प्रबंध शब्द, प्रशासन से कहीं अधिक व्यापक है। वे प्रशासन को प्रबंध का ही अंग मानते हैं। इसी तरह जे. एल. लुंडी भी प्रबंधन को प्रशासन से व्यापक मानते हैं। उनके अनुसार प्रबंधन क्षेत्र के अन्तर्गत प्रशासन तथा क्रियान्वयन दोनों समाविष्ट हैं।

अमरीकी विचारधारा के समर्थक विचारक प्रशासन को नीति निर्धारक एजेन्सी तथा प्रबंध को नीतियों को क्रियांवित करने वाली एजेंसी मानते हैं। इस प्रकार प्रबंध एवं प्रशासन में कुछ स्पष्ट अंतर दिखायी पड़ते हैं–

(1) प्रशासन वह शक्ति है जो व्यापक नीतियाँ निर्धारित करता है जिन्हें प्रबंध संगठन के माध्यम से पूरा करने का प्रयास करती है जब कि प्रबंध वह शक्ति जो पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु संगठन का पथ प्रदर्शन, निर्देशन व नेतृत्व करती है।

(2) प्रशासन निर्धारणात्मक भूमिका निभाता है तो वहीं प्रबंध क्रियात्मक भूमिका का निर्वहन करता है।

(3) प्रशासन नीति निर्धारण, वित्त उत्पादन तथा वितरण में समन्वय, संगठन के क्षेत्र का निर्धारण एवं अधिकृतियों के अंतिम निर्णय से सम्बंध रखता है, वहीं प्रबंध के अंतर्गत नीतियों को कार्य रूप देना, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संगठन का नियोजन करना सम्मिलित है।

(4) प्रशासन वह अभिकरण है जो संगठन के लक्ष्यों, उद्देश्यों के निर्धारण की क्रिया को निश्चित करता है और प्रबंध वह अभिकरण है जो नीतियों के क्रियान्वयन का नियोजक एवं पर्यवेक्षण करती है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct Option)–**

1. प्रबन्धन की मुख्य प्रक्रिया है
   (अ) नियोजन करना (ब) व्यवस्था करना
   (स) प्रशासन करना (द) उपरोक्त सभी
2. नियंत्रण तथा नियुक्तियाँ करना क्षेत्र है
   (अ) प्रशासन का (ब) व्यवस्था का
   (स) नियोजन का (द) प्रबन्धन का
3. सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है
   (अ) शिक्षा प्रबन्धन (ब) शिक्षा नियोजन
   (स) शिक्षा संगठन (द) शिक्षा प्रशासन
4. विद्यालय संगठन का मुख्य कार्य है
   (अ) समय सारणी बनाना (ब) शिक्षा नियोजन
   (स) प्रवेश परीक्षा देना (द) उपरोक्त सभी
5. शिक्षा प्रशासन की मुख्य प्रक्रिया है
   (अ) निर्देशन देना (ब) बजट बनाना
   (स) नियुक्तियाँ करना (द) उपरोक्त सभी
6. शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का क्षेत्र है
   (अ) प्रबन्धन का (ब) विद्यालय संगठन
   (स) नियोजन का (द) शिक्षा प्रशासन

नोट

7. शैक्षिक कार्य प्रणाली में सुधार का क्षेत्र है

(अ) पर्यवेक्षण का (ब) प्रबन्धन का

(स) प्रशासन का (द) विद्यालय संगठन का

8. अनेक आयामों में से उत्तम विकल्प चयन का क्षेत्र है

(अ) शिक्षा प्रशासन (ब) शिक्षा नियोजन

(स) शिक्षा पर्यवेक्षण (द) उपरोक्त सभी का

## 1.5 सारांश (Summary)

- प्रबन्धन की प्रकृति बदलती रहती है। पहले **'प्रबन्धन'** तथा 'स्वामित्व' को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते थे परन्तु आज तकनीकी एवं औद्योगिक युग में इनके अर्थ एवं प्रकृति भिन्न हैं।
- मानवीय क्रियाओं के संचालन हेतु प्रबंधन की आवश्यकता होती है। प्रबन्धन का सम्बन्ध प्रणाली से होता है। मनुष्य प्रणाली तथा उप-प्रणालियों का विकास किया है। प्रबन्धन की प्रभावशीलता एवं कार्यक्षमता प्रणाली पर आधारित होती है। मानव द्वारा जिन प्रणालियों का विकास किया गया है उनमें कोई प्रणाली पूर्ण नहीं है प्रत्येक में सुधार एवं विकास की आवश्यकता होती है।
- प्रबन्धन की प्रणाली का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। इसमें पृष्ठ-पोषण प्रविधि का प्रयोग किया जाता है और प्रणाली के स्वरूप का विश्लेषण भी किया जाता है जिसमें 'अनुदेशनात्मक-अभिकल्प' (Instructional design) की संज्ञा दी जाती है। यह शिक्षा तकनीकी की प्रमुख पाठ्यवस्तु है।
- शैक्षिक तकनीकी की यह धारणा है कि शिक्षण एक कला नहीं है अपितु एक विज्ञान है। शिक्षक जन्मजात ही नहीं होते अपितु प्रशिक्षण संस्थाएँ प्रभावशाली शिक्षकों को तैयार करती हैं।
- मनुष्य द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रिया किसी न किसी प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है। यह प्रक्रिया इतनी व्यवस्थित होती है कि यदि इसमें किसी प्रकार शिक्षा की अवधारणा में दो प्रकार के परिवर्तन हुये हैं। (1) शिक्षा, मानव विकास की सशक्त प्रक्रिया के साथ-साथ राष्ट्र विकास एवं जनशक्ति नियोजन का आधार बन गई है। (2) यह एक मानवीय व्यवसाय के रूप में विकसित हो रही है।
- शिक्षा, यद्यपि जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की सफलता उत्तम प्रबन्धन पर निर्भर करती है। यदि प्रबन्धन निरंकुश है तो शिक्षा की प्रक्रिया में अवरोध आएँगे। यदि वह अधिनायकवादी है तो एक व्यक्ति या संस्था का वर्चस्व रहेगा। यदि मुक्त है तो अराजकता की संभावना बढ़ेगी। इसलिये शिक्षा-उद्योग अर्थात् शिक्षा संस्थाओं की सफलता उसके प्रबन्धन पर निर्भर करती है।
- शैक्षिक प्रबन्धन एक विशेष क्रिया है। मानव समूह तथा संस्थाओं के संचालन के लिये अर्थात् विद्यालय के कर्मियों तथा विद्यालयी संस्था के संचालन के लिये शैक्षिक प्रबन्धन का होना अत्यन्त आवश्यक है।
- शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यापक प्रक्रिया है इसमें देश की आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति नियोजन आदि निहित होते हैं। प्रबन्धन के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए हेनरी फेयोल ने कहा है-'प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध, या जनकल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।'
- शैक्षिक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यत: शिक्षा से ही होता है। अतएव शिक्षा के क्षेत्र में संगठन (Organization) जिस ढाँचे या तन्त्र को खड़ा करता है, शैक्षिक प्रशासन उसे कार्यान्वित करने में सहायक होता है जिससे शैक्षिक उद्देश्यों की अधिकाधिक प्राप्ति सम्भव होती है। शैक्षिक प्रशासन को आज केवल शिक्षा की व्यवस्था करना ही नहीं समझा जाता अपितु शिक्षा के सम्बन्ध में योजना बनाना, संगठन पर ध्यान देना, निर्देशन तथा पर्यवेक्षण आदि अनेक कार्यों से इसका गहरा सम्बन्ध है।

नोट

- प्रशासन वह शक्ति है जो व्यापक नीतियाँ निर्धारित करता है जिन्हें प्रबंध संगठन के माध्यम से पूरा करने का प्रयास करती है जब कि प्रबंध वह शक्ति है जो पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु संगठन का पथ प्रदर्शन, निर्देशन व नेतृत्व करती है।

## 1.6 शब्दकोश (Keywords)

- **अधीक्षण**–निर्देशन करना।
- **त्रुटि**–कमी।

## 1.7 अभ्यास-प्रश्न ( Review Questions)

1. शिक्षा प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए। इसकी विशेषताओं एवं क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए।
2. शिक्षा संगठन का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए। विद्यालय संगठन की विशेषताओं एवं क्षेत्र बताइए।
3. शिक्षा प्रशासन का अर्थ बताइए। शिक्षा प्रबन्धन तथा शिक्षा प्रशासन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. शिक्षा प्रशासन की परिभाषा दीजिए, इसकी विशेषताओं एवं क्षेत्र का उल्लेख कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

**1.** 1. प्रबन्धन, 2. विद्यालय संगठन, 3. प्रबन्धन, 4. शिक्षा नियोजन, 5. प्रजातांत्रिक 6. शिक्षा विभाग।

**2.** 1. (द) 2. (द) 3. (स) 4. (द) 5. (द) 6. (ब) 7. (अ) 8. (ब)।

## 1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–2: शैक्षिक प्रबंधन की प्रक्रिया (Process of Educational Management)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 विद्यालय प्रबंध, अर्थ एवं सकल्पना (School Management, Meaning and Assumptions)

2.2 प्रबंध, प्रशासन और संगठन में अन्तर (Defferences between Management,Administration and Organization)

2.3 प्रबंध प्रक्रिया के सिद्धांत (Theory of Management Process)

2.4 सारांश (Summary)

2.5 शब्दकोश (Keywords)

2.6 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शैक्षिक प्रबंधन प्रक्रिया, विद्यालय प्रबंध, अर्थ एवं संकल्पना को समझने में।
- प्रबंध, प्रशासन और संगठन में अंतर का विवेचन करने में।
- प्रबंध प्रक्रिया सिद्धांत की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

अनादिकाल से शिक्षा सभी समाजों और देशों में दी जाती रही है। भारत में गुरुकुलों व आश्रमों द्वारा शिक्षा को दिए जाने का उल्लेख है। परन्तु, विद्यालय द्वारा शिक्षा का दिया जाना अधिक प्राचीन नहीं है। यथार्थ यह है कि ज्ञान के विस्तार के साथ-साथ जब परिवार या समुदाय द्वारा नियुक्त अभिकरण भावी समाज के लिए अपेक्षित ज्ञान देने में समर्थ नहीं रहे और शिक्षा के सामाजिक कार्यों यथा संस्कृति का संरक्षण व हस्तांतरण नहीं कर सके और न ही वे दूसरी पीढ़ी को भविष्य की अपेक्षाओं के नवीन सृजन के लिए (विद्यार्थी को) तैयार कर सके, तब विद्यालयों का आविर्भाव हुआ। प्रारम्भ में विद्यालय भाषा पढ़ने, लिखने व गणित तथा चारित्रिक निर्माण के लिए खोले गए। चीन, भारत, मिस्र, ग्रीस व रोम आदि देशों के नाम इस प्रयास के लिए उल्लेखनीय हैं।

आज ज्ञान और विज्ञान की निरन्तर अभिवृद्धि ने विद्यालयों के स्वरूप और सामाजिक अपेक्षाओं को बहुत बढ़ा दिया है। छात्र संख्या में अभिवृद्धि, ज्ञान और ज्ञान के हस्तांतरण की तकनीकों के विस्तार में विद्यालय प्रबन्धन के महत्व को और बढ़ा दिया है। आज विद्यालय एकल शिक्षक विद्यालय न रहकर विशेषज्ञ शिक्षकों के केन्द्र बन गए हैं। जो किसी विशेषज्ञ प्रबन्धक (आचार्य) के अधीन कार्य करते हैं। वस्तुतः अब विद्यालय

नोट

एक संगठन है जो समाज के शैक्षिक, सांस्कृतिक लक्ष्यों के अनुरूप भावी पीढ़ी को भविष्य की चुनौतियों के लिये तैयार करता है।

माध्यमिक विद्यालयों में बढ़ती छात्रों की संख्या को देखते हुए अब इन विद्यालयों में विभिन्न अभिवृत्तियों, योग्यताओं तथा समाज के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक स्तरों से विद्यार्थी प्रवेश लेने आते हैं। अत: विद्यालयों के सामने एक चुनौती है कि कैसे विभिन्न क्षमताओं, विभिन्न वर्गों व भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तरों के छात्रों की शैक्षिक आवश्यकता की पूर्ति की जाये।

## 2.1 विद्यालय प्रबंध, अर्थ एवं संकल्पना (School Management, Meaning and Assumptions)

यूनेस्को द्वारा प्रकाशित डेलर शिक्षा आयोग (1996) ने मात्र ज्ञान देना ही विद्यालय या विश्वविद्यालयों का काम नहीं माना है, वरन रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा चार आधारों का विकास करता है। ये आधार हैं–1. ज्ञान को सीखना, 2. कार्य को सीखना 3. जीवन जीने को सीखना तथा 4. स्वयं को जानना। अत: आज विद्यालय प्रबन्धन का कार्य मात्र 'ज्ञान' या सूचनाओं का प्रबन्ध मात्र नहीं है, वरन् उसे भावी उपयोगी नागरिक निर्माण के लिए जीवन जीने के लिए, कौशलों का विकास, सामाजिक सहयोगपूर्ण जीवन जीने के लिए सामुदायिक जीवन का अभ्यास तथा स्वयं की अन्तर्निहित शक्तियों की पहिचान कराने से भी है। अन्तिम कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि व्यक्ति अपने को पहचाने क्योंकि खजाना स्वयं उसके अन्दर है। आज शिक्षक का कार्य मात्र कक्षा के अन्तर्गत भाषण देना न रह कर, अधिगम की संस्थितियाँ तैयार करना है जिससे छात्र स्वयं अधिगम करे और एक अधिगम सम्पन्न समाज की संरचना हो। यह कार्य एक कुशल प्रबन्ध के द्वारा ही सम्पादित किया जा सकता है।

शैक्षिक प्रबन्धन के विविध घटकों में विद्यालय का प्रबन्धन अत्यंत महत्वपूर्ण है। विद्यालय ही वे स्थान हैं जहां राष्ट्र के भावी नागरिकों का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में समाज के लिए अपेक्षित व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यही वे स्थल हैं जहाँ विद्यार्थी की स्वस्थ आदतों का विकास होकर परिष्कृत व्यवहार, मूल्यों का पोषण तथा भावी आजीविका के लिए अपेक्षित कौशलों का विकास किया जाता है। सच तो यह है कि किसी भी राष्ट्रीय विकास का आधार विद्यालय हैं। यदि प्रबन्धक द्वारा राष्ट्रीय या सामाजिक अपेक्षित नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन हो तो निश्चय ही कोई राष्ट्र विकास की अग्रणी पंक्ति में खड़ा हो सकता है।

भारत में जहाँ 8 लाख से अधिक विद्यालय हैं तथा 18 करोड़ से अधिक विद्यार्थी हैं, उनका प्रबन्धन आसान नहीं है। छात्रों और शिक्षकों की विद्यालयों में निरन्तर बढ़ती समस्या ने तथा अभिभावकों और समाज द्वारा बढ़ती अपेक्षाओं ने प्रभावी विद्यालय प्रबन्धन के महत्व को और भी बढ़ा दिया है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षक मात्र पाठ्यक्रम को पूरा करने तक सीमित है। छात्रों में प्रेरणा, मानवीय मूल्यों, राष्ट्रीय भावना जैसे महत्वपूर्ण लक्ष्य उपेक्षित हैं। एक योग्य समर्पित व प्रेरक प्रधानाध्यापक के बिना कदाचित ही इन लक्ष्यों की पूर्ति हो सकती है।

विद्यालय वस्तुत: एक ऐसी सामाजिक प्रणाली है जिसमें शिक्षकों एवं संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है। इसके लिए कुशल तकनीकों का प्रयोग व प्रभावी पर्यवेक्षण आवश्यक है तभी समाज, छात्र शिक्षक स्वयं के विकास को गति मिलती है। प्रबन्धन दक्षता को लेकर अनेक प्रयोग व परीक्षण हुए हैं। संक्षेप में यहां उन प्रयोगों व परीक्षणों का उल्लेख किया जा रहा है ताकि इनके निष्कर्षों का लाभ भावी शिक्षकों और प्रबन्धकों को मिल सके।

प्रभावी प्रबन्धन के क्षेत्र में 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में टेलर द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबन्ध संप्रत्यय ने विद्यालयी दक्षता प्राप्ति के लिए शिक्षक और विद्यार्थियों के सम्बन्धों तथा शिक्षक और प्रधानाध्यापक के सम्बन्धों को निश्चित करने में योग दिया। फ्रेडरिक टेलर का प्रबधन सिद्धान्त चार स्तंभों पर आधारिक था–1. प्रदत्त कार्य की सफलता, 2. समय के साथ वेतन का संबंध, 3. व्यक्तियों के कार्यों में प्रतिद्वंद्विता तथा 4. सम्मानजनित व्यवहार।

नोट

इस प्रक्रिया को 'कार्य-प्रबंधन' का नाम दिया गया। व्यक्ति के प्रभावी या अप्रभावी कार्य को पारितोषिक या दंड से जोड़ा गया। प्रधानाध्यापक द्वारा निश्चित विद्यालयी उद्देश्यों की पूर्ति में शिक्षकों द्वारा प्रभावी ढंग से योग लिया जा सकता है और विद्यालयी दक्षता बढ़ाई जा सकती है।

इसी क्रम में लेविन (1958) ने संगठन की कार्यकारी दशाओं के सम्बन्ध में संगठित कार्य समूहों पर कार्य किया तथा उनकी भावनाओं का पता लगाया। यह भी विचार-विमर्श में स्पष्ट हुआ कि संगठन में कार्य संतोष होने पर कार्यकर्त्ता अपने निर्धारित कार्य के अतिरिक्त भी योगदान देना चाहते हैं। वे कार्य-अनुभव की अन्तर्दृष्टि के कारण संगठन की निष्पत्ति में संख्यात्मक व गुणात्मक दोनों में अभिवृद्धि कर सकते हैं। यह प्रभाव विद्यालय संगठन की निष्पत्ति पर भी देखा जा सकता है।

मेकग्रेगर (1960) के अध्ययनों ने दो और प्रमुख सिद्धान्तों को जन्म दिया, जिसे सिद्धान्त एक्स $x$ तथा $y$ के नाम से जाना जाता है। सिद्धान्त $x$ के अनुसार मान्यता यह है कि व्यक्ति मूलत: कार्य करना नहीं चाहते, अत: यह बताया जाना आवश्यक है कि उन्हें क्या करना है? इसके विपरीत, सिद्धान्त $y$ की मान्यता है कि व्यक्ति अपने कार्य में आनन्द लेते हैं अत: कार्य सम्बन्धी निर्णयों में उनकी सहभागिता अवश्य होनी चाहिए। इसमे कार्य दक्षता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

कर्मियों की उत्प्रेरणा व संगठन की प्रभाविता तथा कार्यकर्ताओं की कार्य संतुष्टि व प्रभाविता को लेकर मेस्लों (1962) तथा हर्जवर्ग (1959) ने कतिपय मनोवैज्ञानिक कारकों का पता लगाया जो संगठन के उत्पादन को प्रभावित करते हैं। इनमें आवश्यकताओं के 5 स्तरों को ज्ञात किया, जिनका कार्य तुष्टि से सम्बन्ध है। हर्जवर्ग ने कहा कि प्रेरक कार्य की विषयगतता से पूरी तरह सम्बन्धित होते हैं अत: उत्पादन बढ़ाने में योग देते हैं। अत: शैक्षिक निहितार्थों की दृष्टि से शैक्षिक कार्यों को परिणामों के सकारात्मक रूप से जोड़ने में उत्प्रेरणा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

इसी अवधि में ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय में नेतृत्व की प्रभावशीलता को लेकर हेंफिल तथा कून (1957) कार्य कर रहे थे। उनके अनुसंधान से एक नया निष्कर्ष उभरकर आया की प्रभावी नेतृत्व का सम्बन्ध नए कार्य की पहल कर कार्य सम्पादित करने की अपेक्षा मानवीय सम्बन्धों के प्रति अधिक रुझान रखने से है। इस निष्कर्ष का प्रभाव संगठनों द्वारा मानवीय सम्बन्धों पर अधिक बल देने में परिणित हुआ। अत: औद्योगिक संगठनों में उत्पादन दक्षता के लिए मानवीय सम्बन्धों पर बल देने की प्राथमिकता मिली।

इसी क्रम में संगठनों में प्रभावकारी कार्यकारी दशाओं के सम्बन्ध में कार्य की दशाओं के प्रभाव का भी अध्ययन किया गया। इनमें एल्टन मेयो का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसके निष्कर्ष थे कि कामगार केवल आदेशों से कार्य नहीं करते वरन् उन कार्यकारी दशाओं से भी प्रभावित होते हैं जिनमें वे कार्य करते हैं। उनके निष्कर्ष थे–

1. मनुष्य मूलत: सामाजिक आवश्यकताओं से प्रभावित होता है तथा दूसरे के साथ पहचान को महत्व देता है।
2. वह प्रबन्धन नियन्त्रणों की अपेक्षा सामाजिक शक्तियों से अधिक प्रभावित होता है।
3. जब तक अधीनस्थों की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तभी तक अधिकारी के आदेश को स्वीकार करता है।

मानवीय सम्बन्धों पर अधिक बल देने के दुष्परिणामों के फलस्वरूप उद्योगों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव देखा गया।

मेक्स वेबर के नौकरशाही प्रतिमान के अनुसार संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में निर्वैयक्तिक ढंग से प्रशासनिक स्तरों पर लिए गए निर्णयों, स्पष्ट अधिकृति के अधिकार व कर्त्तव्यों का स्पष्ट निर्धारण व तकनीकी विशेषज्ञता, कार्य का सही मूल्याँकन, प्रमुख आधार हैं। इस संप्रत्यय ने बड़े-बड़े विद्यालय संगठनों में निश्चित स्तरों पर अधिकृतियों के स्पष्ट अधिकार और कर्त्तव्यों (कार्य) का निर्धारण किया तथा परस्पर सम्बन्धों के लिए नियमों के आधार व निर्वैयक्तिक ढंग से मूल्याँकन करने के सिद्धान्त पर बल दिया। ब्यूरोक्रेसी के इस सिद्धान्त ने विश्वभर के प्रबन्ध प्रशासन प्रभावित किया, विद्यालयों को प्रभावी बनाने में योग दिया। तदनुसार विद्यालय संगठन के स्पष्ट लक्ष्य निर्धारण हों तथा संगठन के विविध स्तरों का निर्माण कर प्रत्येक स्तर पर अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित किए जाने चाहिए तथा निर्वैयक्तिक आधार पर प्रबन्ध कर संगठन के लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जाना चाहिए। इसमें शिक्षक

नोट

तकनीकी विशेषज्ञता के आधार पर वेतन व भत्ते निश्चित किए जाने चाहिए। प्रशासनिक अधिकृतियों के मध्य सम्बन्धों के लिए भी निश्चित कायदे, कानून आवश्यक हैं। मैक्स वेबर के सिद्धान्त ने वृहद विद्यालय संगठनों को तकनीकी विशेषज्ञता बढ़ाने को प्रेरित किया। इसमें प्रत्येक व्यक्ति की स्पष्ट भूमिका, सम्बन्ध पद शृंखला व कार्य निश्चित किए गए ताकि जटिल संगठन प्रणाली को प्रभावी ढंग से प्रबन्धित किया जा सके। यद्यपि प्रबन्धन अधिकृतियों के अधिकार और उनके कार्य निश्चित कर दिए गए। अधिकृति पद सोपान सृजित हो गए और प्रत्येक पद सोपान के मध्य सम्बन्ध भी, परन्तु ये सम्प्रत्यय आज के परिवेश में अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। अधिकृति व कार्यकर्त्ताओं के सम्बन्ध, अधिकृति-अधिकृति के सम्बन्धों में शोधन की आवश्यकता है ताकि बदलते नए सामाजिक परिवेश के लिए ये उपयुक्त हों। 'समूह को अधिकार' तथा निर्णय में सहभागिता आज की आवश्यकता है जिसे विद्यालय संगठन में अपनाने की आवश्यकता है ताकि विद्यालय, संगठन सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तथा समाज की शैक्षिक सेवा में सहभागी हों।

प्रबन्ध की संकल्पना में आज हम एक महत्त्वपूर्ण बदलाव यह देखते हैं कि प्रबन्धक संगठन के प्रभावी संचालन के लिए जवाबदेह होता है। रीसमिंट्ज वर्ग ठीक ही लिखते हैं कि "प्रबन्ध एक सेवा है। यदि वह स्वयं की सेवा करता है तो किसी की सेवा नहीं करता है। वस्तुत: प्रबन्धक अंशधारियों, कर्मचारियों, पूर्तिकर्त्ताओं, ग्राहकों आदि को प्रभावित करते हैं और उनके प्रति जवाबदेह हैं।"

इस परिभाषा के विद्यालय प्रबन्धन में निहितार्थों को देखा जाये तो अर्थ होगा कि विद्यालय प्रबन्धक (प्रधानाध्यापक) समुदाय, विद्यालय में कार्य करने वाली कर्मचारियों, शिक्षा विभाग, विद्यार्थी जो विद्यालय से सम्बन्धित हैं उनके प्रति, उनके लक्ष्यों के प्रति उत्तरदायी है।

परन्तु यह प्रबन्धन एक कला है साथ ही विज्ञान भी जिसके ज्ञान के बिना प्रभावी प्रबन्धन संभव नहीं है, यह ज्ञान एक प्रशिक्षण से ही सम्भव है। अमेरिकन सोसायटी ऑफ मैकेनिकल इंजीनियर्स के अनुसार प्रबन्ध मनुष्य के लाभार्थ प्राकृतिक साधनों के उपयोग एवं मानवीय प्रयासों के संगठन व निर्देशन की कला का विज्ञान है। अर्थात् यह निर्देशन कला, वैज्ञानिक पद्धति पर विकसित है जिसके आधार पर ही उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को सुचिंतित योजनाबद्ध तरीके से मानवीय प्रयास के द्वारा निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नियोजित किया जा सकता है।

इसका अर्थ यह भी है कि विद्यालय कुशल प्रबन्धन के लिए प्रबन्ध विज्ञान का ज्ञान किसी भी प्रधानाध्यापक के लिए आवश्यक है। परन्तु यह क्षेत्र अभी तक एक नवीन व विकासमान विज्ञान है अत: इसके सिद्धान्तों का पूर्णतया विकास नहीं हो सका है। मानवीय व्यवहार से जुड़े होने के कारण भौतिक विज्ञान की तरह इसके सिद्धान्त उतने विश्वसनीय नहीं हो सकते, फिर भी, जहां अनेक प्रबन्धकीय सिद्धान्त विकसित होकर संस्थापित सिद्धान्त बन गए हैं, अनेक सिद्धान्त विकास प्रक्रिया में हैं, इनका प्रयोग विद्यालयी संगठन दक्षता में करना चाहिए।

प्रबन्धन के क्षेत्र में जो भी सिद्धान्त आज उपलब्ध हैं, वे व्यापक प्रयोगों, परीक्षणों अवलोकनों व व्यावहारिक अनुभवों की देन हैं। ये सिद्धान्त सार्वभौमिक प्रयुक्ति के गुणों से युक्त हैं। स्पष्ट है कि प्रबन्ध अब एक विज्ञान के रूप में अपने नियमों, सिद्धान्तों, विधियों तकनीकों आदि के साथ नवीन आयाम के साथ विकसित हो रहा है, एक जागरूक प्रबन्धक (प्रधानाध्यापक) को इन सिद्धान्तों, विधियों व तकनीकी से न केवल परिचित होना चाहिए वरन् इनका प्रयोग विद्यालय प्रबन्ध में कुशलता से करना चाहिए।

## 2.2 प्रबन्ध, प्रशासन व संगठन में अन्तर (Difference between Management, Administration and Organization)

प्रबन्ध एवं प्रशासन दोनों शब्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है। प्रारम्भिक युग में 1923 ई. तक दोनों शब्दों का पर्याय या समान अर्थों में प्रयोग मिलता है। प्रबन्ध व प्रशासन इन दोनों शब्दों को लेकर अनेक भ्रांतियाँ हैं, अत: आवश्यकता है कि इनको लेकर जो धारणाएँ हैं यहां स्पष्ट किया जाए। प्रबन्ध व प्रशासन को लेकर तीन प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं–

नोट

**प्रशासन शब्द प्रबन्ध की तुलना में अधिक व्यापक है**–इसके अनुसार प्रशासन तथा प्रबन्ध दो पृथक-पृथक क्रियाएँ हैं। इनमें प्रशासनकी सत्ता, प्रबन्ध से ऊपर है। ऑलीवर शेल्डन के अनुसार प्रबन्ध, प्रशासन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों, लक्ष्यों और नीतियों को क्रियान्वित करता है। इसी विचार को शुल्जे, स्प्रिंगल, लेंसवर्ग, मिलवर्ड शेल्डन आदि समर्थन करते हैं।

**प्रशासन प्रबन्ध का अंग है**–इस विचार के प्रतिपादक ई. एफ एल ब्रेच हैं। इनके अनुसार प्रबन्ध का कार्य उपक्रम की नीतियाँ तय करना, लक्ष्य निधारण करना है, प्रशासन उनकी क्रियान्विति करता है। इस प्रकार प्रशासन, प्रबन्धन प्रक्रिया का ही एक अंग है।

प्रशासन की प्रबन्धन से श्रेष्ठता के समर्थक विद्वानों में स्प्रिंगल, जे. एन. शुल्ज तथा ऑलीवर शेलडन हैं जो प्रशासन को प्रबन्ध से ऊपर मानते हैं। प्रशासन नीतियाँ व उद्देश्य तय करता है, प्रबन्ध उसकी क्रियान्विति करता है।

स्प्रिंगल के अनुसार–प्रशासन किसी भी संगठन के उद्देश्य व नीतियाँ तक करता है। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विस्तृत क्षेत्र भी तय करता है जबकि प्रबन्ध क्रियान्वयन सम्बन्धी कार्य है जो प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों को क्रियान्वित करता है।

जे. एन. शुल्ज की भी यही धारणा है कि प्रशासन वह शक्ति है जो उद्देश्य निर्धारित करती है, जिसके अन्तर्गत संगठन एवं प्रबन्ध प्रयत्न करते हैं। प्रबन्ध वह शक्ति है जो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संगठन की स्थापना एवं उनका मार्गदर्शन व निर्देशन करती है।

ऑलीवर शेल्डन के अनुसार–प्रबन्ध का कार्य प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत नीतियों को क्रियान्वित करना है तथा निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन का कार्य नियोजित करना है।

### प्रबन्धन की प्रशासन से श्रेष्ठता के समर्थक

ई. एफ. एल. ब्रेच के अनुसार प्रबन्ध शब्द, प्रशासन से कहीं अधिक व्यापक है। वे प्रशासन को प्रबन्ध का अंग मानते हैं। इनके अनुसार प्रबन्ध का कार्य उपक्रम की नीतियाँ, उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को तय करना है। प्रबन्धन का कार्य क्रियान्वयन का है।

इसी प्रकार जे. एल. लुंडी भी प्रबन्धन को प्रशासन से व्यापक मानते हैं। उनके अनुसार प्रबन्धन क्षेत्र के अन्तर्गत प्रशासन तथा क्रियान्वयन दोनों समाविष्ट हैं।

अमेरिकन विचारधारा के समर्थक जिसमें शुल्जे, शेल्डन व स्प्रिंगल तथा मिलवर्ड हैं। प्रशासन को नीति निर्धारक एजेन्सी तथा प्रबन्ध को नीतियों को क्रियान्वित एजेन्सी मानते हैं। जबकि ब्रिटिश विचारक प्रबन्धन को नीति निर्धारक व प्रशासन को क्रियान्वित एजेन्सी मानते हैं। इसमें ई. एफ. एल. ब्रेच, एल, हाल, जेसी डेनियर प्रमुख हैं।

वास्तव में दोनों ही संप्रत्यय एक-दूसरे के पर्याप्त प्रतीत होते हैं। फेयोल इसी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। राजकीय क्षेत्र में या सार्वजनिक मामलों में उच्च स्तरीय कार्यकारिणी के कार्यों के लिए जो व्यवस्था मुख्यतया नीति निर्धारण का कार्य करती है तथा दिशा-निर्देश तय करती है, प्रशासन कहलाती है। व्यावसायिक क्षेत्रों (कम्पनी, कारखानें आदि) में प्रबन्धन शब्द लोकप्रिय है। कूट्ज ओ डोनेल, टैरी, किम्बेल एवं किम्बेल, विलियम न्यूमेन इसी दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो नीति निर्धारण व क्रियान्वित करने वाले अलग-अलग नहीं होते अत: अन्तर करना निरर्थक है। उदाहरणार्थ राज्य सचिवालय व राज्य निदेशालय नीतियाँ भी तय करते हैं तथा क्रियान्वित भी करते हैं। किसी भी संगठन में अधिकारी नीतियाँ भी तय करते हैं तथा उन्हें लागू भी करते हैं।

### संगठन एवं प्रबन्ध/प्रशासन

संगठन निश्चित रूप से प्रबन्ध अर्थात् प्रशासन का ही यंत्र है और रहेगा। किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों के समूह को लगाया जाता है। अत: संगठन मूलत: उन व्यक्तियों का समूह है जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते हैं। यह वह तंत्र है जो प्रबन्ध व प्रशासन की क्रियात्मक भूमिका का निर्वाह करता है। प्रबन्ध तथा प्रशासन इस संगठन के संचालन के लिए निर्देष्टा, नियंता व नियामक हैं।

नोट

## प्रशासन, प्रबन्ध तथा संगठन में अन्तर

निम्नलिखित रेखाचित्र प्रशासन, प्रबंध तथा संगठन के अंतर को स्पष्ट करता है।

| अधिकृति | प्रशासन | प्रबन्ध | संगठन |
|---|---|---|---|
| शूल्जे | वह शक्ति है जो व्यापक नीतियाँ निर्धारित करता है, जिन्हें 'प्रबन्ध', संगठन के माध्यम से पूरा करने का प्रयास करती है। | वह शक्ति है जो पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु संगठन का पथ प्रदर्शन, निर्देशन व नेतृत्व करती है। | संगठन के अन्तर्गत आवश्यक भौतिक व मानवीय संसाधनों को अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लगाया जाता है। |
| स्प्रिंगल | निर्धारणात्मक भूमिका | क्रियात्मक भूमिका | वह तंत्र जो प्रबन्ध एवं प्रशासन में समन्वय स्थापित करता है। |
| शेल्डन | नीति निर्धारण, वित्त, उत्पादन तथा वितरण में समन्वय, संगठन के क्षेत्र का निर्धारण एवं अधिकृतियों के अंतिम नियंत्रण से सम्बन्ध रखता है। | प्रबन्ध के अन्तर्गत नीतियों को कार्य रूप देना, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संगठन का नियोजन करना सम्मिलित है। | व्यक्तियों या विभागों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के संयोजन की प्रक्रिया जो उपलब्ध प्रयासों को सु-व्यवस्थित व समन्वित करती है। |
| मिलवर्ड | वह अभिकरण है जो संगठन के लक्ष्यों, उद्देश्यों के निर्धारण की क्रिया निश्चित करता है। | वह अभिकरण है जो नीतियों के क्रियान्वयन का नियोजक एवं पर्यवेक्षण करती है। | कर्त्तव्य को विमुक्त करने वाली, कर्त्तव्यों को सामूही-करण करने वाली अभिकरण एवं प्रक्रिया है। |

*क्या आप जानते हैं* सर्वप्रथम आलीवर शैल्डन ने प्रशासन को निर्णयात्मक कार्य तथा प्रबन्ध को निष्पादन सम्बन्धी कार्य के रूप में परिभाषित किया।

## विद्यालय एक संगठन के रूप में

विद्यालय एक संगठन है। प्रबन्धक अथवा प्रशासक की आवश्यकता किसी भी संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक होती है। संगठन मूल रूप से सभी प्रकार के प्रशासनिक एवं प्रबन्ध कार्यों का आधार होता है। अत: प्रभावी विद्यालय प्रबन्धन के लिए संगठन के प्रत्यय को विस्तार से जानने की आवश्यकता है।

संगठन की परिभाषा जानने से पूर्व निम्नलिखित अवधारणाओं को हृदयंगम कर लेना आवश्यक है–

1. संगठन एक अनौपचारिक संरचना है, जिसमें संगठन में लगे व्यक्ति सहयोगपूर्वक कार्य करते हैं।
2. संगठन चाहे शैक्षिक हो या औद्योगिक, इसके अपने लक्ष्य होते हैं।
3. संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रवृत्तियों का आयोजन आवश्यक है तथा इन प्रवृत्तियों में परस्पर समन्वय भी आवश्यक है।
4. विभिन्न प्रवृत्तियों के संचालन के लिए संगठन की संरचना आवश्यक है ताकि प्रवृत्तियों का समन्वय हर स्तर पर किया जा सके।

नोट

अस्तु एक संगठन का अस्तित्व तब होता है, जब उसकी स्थापना के पीछे कोई न कोई लक्ष्य होता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए व्यक्ति संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति में सम्मिलित होकर अपना योगदान देने को तैयार होता है।

ग्रेग ने संगठन की परिभाषा निम्नानुसार दी है–

संगठन का अभिप्रेत है किसी सर्वसम्मत लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यक्ति-समूह द्वारा आयोज्य समन्वित कार्यकलाप।

बर्नाड ने दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा सुचिंतित प्रवृत्तियों के समन्वय की प्रणाली को संगठन कहा है।

बाल्टन (1951) भी लगभग इसी प्रकार से संगठन को परिभाषित करते हैं। वे मानते हैं कि संगठन कार्यरत व्यक्तियों का वह समूह है, जो आम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करता है। मुकर्जी (1970) भी लगभग इसी प्रकार संगठन को परिभाषित करते हैं। बर्नार्ड ने परिभाषा को व्यापक बनाते हुए लिखा है।

संगठन में चाहे वह जटिल हो अथवा साधारण, हमेशा मानवीय समन्वित यत्नों की अवैयक्तिक प्रणाली होती है। संगठन का सदैव कोई उद्देश्य होता है तथा इसमें व्यक्तियों के समन्वय एवं एकजुट करने के नियम होते हैं। इसमें सदैव संप्रेषण की प्रभावी योग्यता होती है तथा इसमें कार्य करने वाले व्यक्ति संगठन के प्रति निष्ठावान रहते हुए निरन्तर संगठन को योगदान करते रहते हैं।

बांको (1982) संगठन की व्याख्या करने में कहीं अधिक स्पष्ट हैं। वे लिखते हैं कि किसी भी संगठन में तीन बातें प्रमुख होती हैं–

1. संगठन के निश्चित उद्देश्य होते हैं जिनके लिए सभी लोग मिलकर कार्य करते हैं।
2. कार्यरत व्यक्तियों तथा संगठन की प्रवृत्तियों के मध्य परस्पर सम्बन्ध होता है जिसमें व्यक्तियों की प्रस्थिति, अधिकार तथा भूमिकाएँ निश्चित होती हैं।
3. प्रशासनिक प्रक्रिया इस प्रकार निश्चित की जाती है कि जिसमें संगठन के संसाधनों, अधिकृतियों व प्रवृत्तियों का समन्वय हो सके और संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

वस्तुत: संगठन एक प्रकार से सामाजिक प्रणाली है जो सामाजिक नियमों से नियंत्रित होती है। जिस प्रकार से व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ होती हैं, ठीक उसी प्रकार, इनकी भी सामाजिक भूमिका तथा प्रस्थिति होती है।

इस प्रकार किसी संगठन में निश्चित उद्देश्य, सामूहिक पहचान, उद्देश्यों के अनुरूप प्रवृत्तियाँ तथा संगठन में उपलब्ध भौतिक व मानवीय संसाधनों के माध्यम से प्रवृत्तियों का समन्वय एवं नियन्त्रण समाहित होते हैं।

संगठन के सम्बन्ध में रुचिपूर्वक अध्ययन मेक्स वेबर से प्रारम्भ होता है। वस्तुत: वेबर ने ही संगठन को एक वैज्ञानिक निष्पक्ष रूप प्रदान किया।

वेबर के अतिरिक्त बर्नार्ड, पार्सन, मार्च व साइमन, वेकी होपकिंस तथा एटजोनी ने आधुनिक संगठनों के अध्ययन द्वारा इस क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रकाश डाला है।

*नोट्स* संगठन ही वह साधन है जिससे प्रबन्ध व प्रशासन में समन्वय स्थापित किया जाता है। इसी के द्वारा संयोजन प्रक्रिया, लक्ष्यों की पूर्ति में योग देती है। यह वह शक्ति है जो अधिकृतियों के दायित्वों को पूरा करती है तथा कर्त्तव्यों का सामूहीकरण करती है।

विद्यालय एक संगठन प्रणाली के रूप में 1950 ई. से स्पष्ट रूप में देखा जाने लगा। सामाजिक प्रणाली के मानने वाले, विद्यालय को एक मुक्त प्रणाली मानते हैं, क्योंकि यह अपने बाह्य पर्यावरण से प्रभावित होता है। संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के व्यवहार भी उसे प्रभावित करने में काफी योग देते हैं।

गेटजेल तथा गूवा ने संगठन को एक सामाजिक प्रणाली माना है, जिसमें उच्च से निम्न पद सोपान तथा उनकी भूमिकाएँ निश्चित होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति से उसकी भूमिकाओं के अनुरूप भूमिका निष्पादित करने की अपेक्षा

नोट

होती है। इनका मानना है कि कोई भी व्यक्ति उतना ही अपनी भूमिका निष्पादन में सफल होगा, जितना अपेक्षित भूमिका के अनुरूप उसकी वास्तविक व्यवहृत भूमिका होगी।

उदाहरणार्थ–एक प्रधानाध्यापक से शिक्षा विभाग, शिक्षक, अभिभावक तथा समाज अनेक प्रकार की भूमिकाओं की अपेक्षा करते हैं। वह जितना इन अपेक्षाओं के निकट व्यवहार करेगा, उतना ही वह भूमिका निष्पादन में सफल होगा। संगठन में यह बात संगठन के प्रबन्धकों तथा कामगारों पर समान रूप से लागू होती है। जब अपेक्षाओं में अन्तर आता है, तब असंतोष, तनाव तथा संघर्ष की स्थिति बनती है। संगठन में व्यक्तियों की अपेक्षित और वास्तविक भूमिका में जितना अधिक अन्तर होगा संगठन में उतनी ही अधिक संघर्ष और तनाव की स्थिति होगी। इसकी और स्पष्ट व्याख्या गेटजेल ने अपने मॉडल के आधार पर देने का प्रयास किया है। जिसे 'गेटजेल-गुबा मॉडल' के नाम से जाना जाता है।

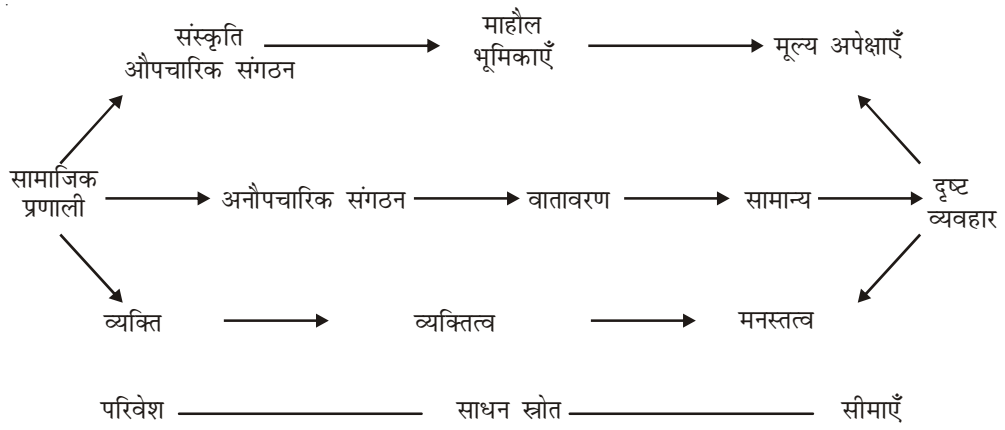


**चित्र – 1**

**संगठन एक सामाजिक प्रणाली**

**गेट्जेल तथा गुवा प्रतिपादित संगठन का सामाजिक प्रणाली के रूप में प्रतिमान**

उपर्युक्त मॉडल यह प्रदर्शित करता है कि संगठन में दो महत्वपूर्ण अंग हैं जो संगठन को प्रभावित करते हैं–

1. वैयक्तिक आयाम
2. संगठनात्मक आयाम

सिस्टम सिद्धान्त का प्रयोग विद्यालय संगठन के मूल्याँकन के लिए हो सकता है। इससे यह पता लगाया जाता है कि विद्यालय के उद्देश्यों को किस सीमा तक पूरा किया गया है। व्यवहार में संगठन के मूल्याँकन में दो परिसीमाएँ आती हैं–(1) कार्य निष्पत्ति (परीक्षा परिणाम, प्रवृत्ति में उपलब्धियाँ आदि) (2) मानवीय कारकों पर प्रभाव (अभिवृत्ति, मनोबल उत्प्रेरणा, समूह के परस्पर सम्बन्ध) परन्तु थ्योरी के मूल्याँकन का आधार संगठन की दशाओं पर केन्द्रित होता है। लाइबर्ट ने इस सन्दर्भ में कुछ उन क्षेत्रों का भी सुझाव दिया है, जिनका मूल्याँकन में समावेश होना चाहिए। ये क्षेत्र हैं–

1. संगठन व उसके उद्देश्यों के प्रति समर्पण
2. संप्रेषण का मुक्त प्रवाह
3. सामूहिक कार्य की भावना व उसके उदाहरण तथा
4. कर्मियों का मनोबल आदि।

नोट

### आधुनिक-संश्लिष्ट युग प्रबंधकीय उपागम

आधुनिक युग में प्रारम्भ से लेकर अब तक संगठन के प्रभावी संचालन के लिए जो प्रयोग हुए हैं, उनके अनुभवों का लाभ लेते हुए संगठन संचालन पर बल दिया जाता है। इसमें वैज्ञानिक दक्षता सिद्धान्तों, मानवीय सम्बन्ध के आधारभूत सिद्धान्तों तथा व्यवहारवादी चिन्तन व प्रयोग के अनुभवों को कार्य में लेने पर बल दिया जाता है।

प्रबन्ध एवं प्रशासन के क्षेत्र में प्रबन्धन को प्रभावी बनाने की दृष्टि से विकसित विभिन्न विचारधाराओं में प्रशासन प्रक्रिया सिद्धान्त तथा नौकरशाही सिद्धान्त ने आधुनिक प्रबन्धन को काफी प्रभावित किया है। इन सिद्धान्तों को विद्यालय प्रबन्धन में भी उपयोग किया जा सकता है। अत: इन सिद्धान्तों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है ताकि भावी विद्यालयी प्रबन्धक इनका प्रयोग कर सके।

## 2.3 प्रबन्ध प्रक्रिया सिद्धान्त (Theory of Management Process)

प्रबन्ध एक प्रक्रिया है, इस सिद्धान्त के मूल प्रणेता हेनरी फेयोल तथा जे.वी. सीयर्स (1950), आर्डव टीड (1995) रसेल ग्रेग (1957) आदि ने क्रमश: विकसित किया।

लूथर गुलिक ने प्रबन्धक को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया। उसने प्रबन्धन प्रक्रिया के अन्तर्गत सात अंगों का प्रतिपादन किया। इन सात प्रबन्धन प्रक्रिया के अंगों के लिए एक सूत्र दिया। जिसे पोस्डकोर्ब से जाना जाता है। पोस्डकोर्ब POSDCORB का प्रत्येक अक्षर प्रशासन/प्रबन्धन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग का द्योतक है, जो निम्नानुसार है–

1. योजना निर्माण करना
2. संगठन करना
3. स्टाफ नियुक्त करना
4. निर्देशन देना
5. समन्वय करना
6. प्रतिवेदन तैयार करना तथा
7. वित्त व्यवस्था करना

गुलिक की भांति हेनरी फेयोल ने भी प्रबन्धन का एक सूत्र दिया जिसे (POCCC) कहा गया अर्थात 1. योजना बनाना, 2. संगठन करना, 3. निर्देश देना, 4. समन्वय स्थापित करना, तथा 5. नियंत्रण रखना।

परन्तु साथ ही फेयोल ने इस सिद्धान्त का विस्तार करते हुए 14 सिद्धान्त दिए। ये सिद्धान्त हैं– 1. कार्य वितरण, 2. अधिकृति, 3. अनुशासन, 4. निर्देशों में एकरूपता, 5. निर्देशन में एकता, 6. सार्वजनिक हित में व्यक्तिगत हित का त्याग, 7. वेतन, 8. केन्द्रीकरण, 9. अधिकृत पद सोपान, 10. आदेश, 11. समानता, 12. सेवा का स्थायीपन, 13. पहल, 14. बंधुता का भाव।

प्रभावी प्रबन्धन के लिए फेयोल ने इन सिद्धान्तों का अनुशीलन आवश्यक माना। फेयोल का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को संगठन में योगदान करना चाहिये। परन्तु अधिकाधिक दायित्व उच्च अधिकारियों (प्रबन्धकों) का है। यदि गुलिक और फेयोल के सूत्रों की तुलना करें तो लगता है फेयोल ने स्टाफ चयन को प्रक्रिया के 'संगठन' में तथा 'वित्त-व्यवस्था' व 'प्रतिवेदन लिखने' को 'नियन्त्रण' के अन्तर्गत रखा है।

प्रबन्धन का मुख्य दायित्व अधिकृतियों का ही होना चाहिए। प्रबन्धन को ही मुख्य रूप से निर्णय लेना चाहिए। निर्णय प्रक्रिया ऊपर से नीचे आनी चाहिए। कामगार को कार्य के चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं। अधिक कार्य के लिए अधिक वेतन देना, कर्मियों के लिए उत्प्रेरणा थी। यह अपेक्षा थी कि इससे व्यक्ति अधिकाधिक कार्य करेगा। परन्तु इस सोच की आलोचना यह कह कर की गई कि व्यक्ति मशीन नहीं है। उम्र के साथ कार्य शक्ति क्षीण होती है और आवश्यकताएँ अधिक बढ़ जाती हैं। अत: यह सिद्धान्त, प्रबन्धकों के पक्ष का अधिक माना गया।

इस सिद्धान्त के दो प्रमुख लाभ हुए–1. प्रबन्धन को छोटे-छोटे अंगों में विभक्त कर प्रत्येक अंग के प्रभाव को देखने

नोट

का आधार प्रदान किया। 2. प्रशिक्षण के क्षेत्र में सफलता के लिए मानक तय किए गए।

फेयोल तथा गुलिक के अलावा जे. वी. पी. सीवर्स ने भी प्रबन्धन को पांच अंगों 1. योजना बनाना, 2. संगठन करना, 3. निर्देशन करना 4. समन्वय करना तथा 5. मूल्याँकन करना के रूप में देखा।

प्रबन्धन प्रक्रिया के रूप में सर्वमान्य सूत्र केम्पबेल तथा ग्रेग का माना जाता है जिसमें प्रक्रिया के सात अंग माने गए हैं–

1. निर्णय करना
2. आयोजन करना
3. संगठन करना
4. सम्प्रेषण करना
5. प्रभाव डालना
6. समन्वय करना
7. मूल्याँकन करना

## निर्णय करना

निर्णय को प्रबन्धन प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु माना जाता है। प्रबंधन निर्णय से ही प्रारम्भ होता है और निर्णय से ही समाप्त होता है। अत: समस्त प्रबन्धन के कार्यकलापों को यह नियंत्रित करता है। जो विद्वान इसकी केन्द्रीय स्थिति को स्वीकार नहीं करते, वे भी इसके महत्व को अवश्य स्वीकार करते हैं।

नीति निर्धारण व निर्णय प्रक्रिया में समस्या समाधान के अनेक विकल्प होते हैं। प्रबन्धक/प्रशासक को उनमें से कोई एक विकल्प चुनना होता है। निर्णय भी एक प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया में साइमन ने छ: कदमों का उल्लेख किया है–

1. संगठन के उद्देश्यों पर ध्यान
2. समस्या के सम्बन्ध में सूचनाएँ व तथ्य एकत्रित करना
3. समस्या के सम्बन्ध में सम्बन्धित व्यक्तियों से परामर्श
4. प्राप्त सूचनाओं तथा तथ्यों का विश्लेषण
5. समस्या समाधान के लिए संभावित विकल्पों का मूल्याँकन
6. सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का चुनाव करना

जबकि ब्रिजेज ने निर्णय प्रक्रिया में चार कदमों का उल्लेख किया है–

1. समस्या का परिभाषीकरण
2. समस्या समाधान के संभावित विकल्प
3. तर्क संगत विकल्पों पर विचार
4. सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव

## निर्णय के प्रकार

समस्या की भिन्न प्रकृति के अनुरूप चार प्रकार के निर्णय होते हैं–

1. दैनिक सामान्य निर्णय
2. नीतिगत निर्णय
3. वैयक्तिक निर्णय
4. सामूहिक निर्णय

नोट

### दैनिक/सामान्य निर्णय

वे निर्णय हैं जो आम तौर पर विहित नियमों के अधीन प्रबन्धक/प्रशासक लेता हैं इसमें नियमान्तर्गत अवकाश देना, क्रय की स्वीकृति देना, आदेश देना आदि आते हैं।

### नीतिगत निर्णय

वे निर्णय हैं जिनका व्यापक असर व्यक्तियों व प्रबन्धन पर पड़ता है। अतः ये निर्णय सक्षम अधिकृतियों द्वारा लिये जाते हैं यथा विधान सभा, शिक्षा सचिव, निदेशक, उपनिदेशक, शिक्षा अधिकारी आदि। ऐसे निर्णयों में व्यापक प्रभाव का आकलन करने के लिए सम्बन्धित व्यक्तियों जिन पर प्रभाव पड़ रहा है या पड़ना है, को भी सम्मिलित किया जाता है। उदाहरणार्थ–नवीन वेतनमान का किसी प्रबन्धक मंडल द्वारा बोनस दिया जाना।

### वैयक्तिक निर्णय

व्यक्ति अपने विवेक से लेता है तथा प्रभाव व्यक्ति पर ही पड़ता है। उदाहरणार्थ–शिक्षक द्वारा कक्षा में लिए गए निर्णय।

### सामूहिक निर्णय

समूह के साथ लिए जाने वाले निर्णय वे हैं जो समूह की आम राय से लिए जाते हैं या सक्षम अधिकारी के साथ प्रतिनिधियों की राय से समूह के लिए किये जाते हैं।

**निर्णय प्रतिमान**–प्रभावी निर्णय के लिए, विशेषकर नीतिगत निर्णयों के लिए निर्णय प्रक्रिया के अनुरूप प्रबन्धक को कदम उठाने होते हैं। भावी प्रबन्धकों को समझने के लिए जिराल्ड यू वैन तथा लारी हुक्स का प्रतिमान इस संदर्भ में उपयोगी है।

### आयोजन करना

यह भी प्रबन्धन प्रक्रिया का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। सच तो यह है कि कोई भी प्रबन्धन कार्य बिना योजना बनाए संपादित नहीं किया जा सकता। योजना, जॉन मिलेट के अनुसार योजनाधिकारी द्वारा कार्य करने की बुद्धिमत्तापूर्ण तैयारी है। अर्थात् किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसकी समुचित पूर्ण तैयारी आवश्यक है। योजना वस्तुतः कार्यपूर्ति उसकी प्राप्ति का एक मार्ग है, यह मार्ग जितना सुविचारिक होगा, लक्ष्य उतना ही आसान होगा और बिना असुविधा के प्राप्त होगा। शैक्षिक नियोजन एक प्रगतिशील प्रक्रिया है जिसमें वर्तमान तथ्यों के आधार पर भावी शैक्षिक विकास की योजनाएँ तैयार की जाती हैं।

अमेरिकन विद्यालय प्रशासक संगठन ने योजना निर्माण में आने वाली परिस्थितियों को चार भागों में विभक्त किया है–

1. **संगठन के लक्ष्यों का सही निर्धारण**–लक्ष्यों का सही निर्धारण, किसी भी योजना निर्माण का प्रथम आधार है। जितना लक्ष्य सुस्पष्ट होगा, योजना उतनी ही उपयुक्त बनेगी।
2. **लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का पूर्व अनुमान**–प्रशासनिक अनुभव के आधार पर योजना की क्रियान्विति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का पूर्वानुमान अपेक्षित है। साथ ही उन बाधाओं के निराकरण का समाधान भी होना चाहिए।
3. **योजना सम्बन्धी विश्वसनीय तथ्यों का ज्ञान**–किसी भी योजना की तैयारी के लिए विश्वसनीय तथ्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि तथ्य सही नहीं हैं योजना भी विश्वसनीय व व्यावहारिक नहीं होगी। जहाँ तक हो, तथ्य प्रथम स्रोत से प्राप्त हो। तथ्यों की वैधता व मूल्याँकन भी होना चाहिए।
4. **योजना प्रक्रिया के संपादन के सम्बन्ध में नीति निर्धारण**–अर्थात् यह तय किया जाना कि योजना की क्रियान्विति में किस व्यक्ति की क्या भूमिका होगी?

नोट

5. इलियट तथा मेसियर ने–योजना निर्माण प्रक्रिया को सात अंगों में बांटा है–
   1. उद्देश्य विवरण
   2. शिक्षा की वर्तमान स्थिति का विवरण-शैक्षिक आवश्यकता व संसाधनों का वर्णन
   3. उद्देश्यानुरूप निश्चित कार्यक्रम तय करना
   4. कार्य प्रणाली तय करना
   5. योजना की क्रियान्विति
   6. योजना की क्रियान्विति तथा प्रभावशीलता का नियमित मूल्याँकन तथा
   7. मूल्याँकन के आधार पर आवश्यक संशोधन

एक प्रभावी योजना के लिए स्पष्ट लक्ष्य, उपयुक्त संसाधन क्रियान्विति करने वाले व्यक्तियों का स्पष्ट कार्य निर्धारण, नियमित प्रगति की जांच, सुनिश्चित कार्य प्रणाली आवश्यक है।

योजना एक गतिशील व निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, साथ ही विकासोन्मुखी भी। अत: भावी विकास के लिए नियमित मूल्याँकन आवश्यक है। जनतन्त्रीय समाज में विद्यालय समुदाय के लिए होते हैं,अत: शैक्षिक योजनाओं में समुदाय की शैक्षिक आवश्यकता व अपेक्षाओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। जनतन्त्रीय समाज की एक और विशेषता यह है कि यह गतिशील होता है। अत: निरंतर बदलती परिस्थितियों के अनुरूप योजना बनाना आवश्यक है।

योजनाएँ तात्कालिक समस्याओं के समाधान व दूरगामी समस्याओं के समाधान के लिए भी निर्मित होती है। एक अच्छे विद्यालय में दोनों प्रकार की योजनाएँ बनाई जानी चाहिये। विद्यालय विकास की योजनाएँ जहाँ दीर्घकालीन हो सकती हैं, वहीं शैक्षिक योजनाएँ अल्पावधि की भी हो सकती हैं।

### संगठन करना

संगठन की प्रभावशीलता के लिए संगठन के सभी व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। यही बात एस. एन. मुखर्जी ने भी कही है कि–'संगठन में कार्य करने वाले सभी व्यक्ति आम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संगठन में एक-दूसरे को सहयोग करते हैं।' अत: एक कुशल प्रबन्धक को आवश्यक दायित्वों के माध्यम से संगठन के सभी व्यक्तियों की शक्ति को समन्वित कर संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में लगाना चाहिए।

चेस्टर बर्नार्ड ने संगठन की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है–

(1) यह सदैव माननीय प्रयत्नों की निर्वेयक्तिक प्रणाली है अर्थात इसमें संगठन के लक्ष्य प्रमुख होते हैं अत: निर्वेयक्तिक होकर व्यक्ति कार्यरत रहते हैं।

(2) इसमें सदैव उद्देश्य, समन्वय व एकता के नियम रहते हैं, अर्थात् संगठन के व्यक्ति लक्ष्य को तभी प्राप्त कर सकते हैं जब इनके सामने स्पष्ट लक्ष्य हों और उनकी शक्तियों/योग्यताओं को प्रबन्धक ने समन्वित कर लक्ष्य प्राप्ति में लगाया हो।

(3) इसमें प्रभावी सम्प्रेषण की योग्यता होती है–व्यक्तियों के समन्वय के लिए सम्प्रेषण, संवाद आवश्यक है। इसी के आधार पर शक्ति जुटाई जा सकती है।

(4) इसमें सभी व्यक्तियों की संगठन में कार्य करने की इच्छा होती है। संगठन के व्यक्तियों की संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कार्य करने की इच्छा एक महत्त्वपूर्ण कारक है। बिना सभी सदस्यों के संगठन के प्रति समर्पण के ये प्राप्त नहीं किए जा सकते।

अत: निम्न तथ्यों पर प्रबन्धक/प्रशासक का ध्यान केन्द्रित करना चाहिए–

(1) संगठन के लक्ष्य सभी कर्मियों को स्पष्ट हों।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को उसके सम्बन्ध में कार्य स्पष्ट हो।

(3) प्रत्येक संगठन के व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा हो।

नोट

(4) संगठन के विविध स्तरों पर स्पष्ट अधिकृतियाँ व उनके अधिकार स्पष्ट हों।

(5) प्रबन्धक द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं व योग्यताओं के आधार पर समन्वय हो।

(6) संगठन में प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था हो अर्थात् ऊपर, नीचे और क्षैतिज सभी चैनल संदेश सम्प्रेषण के लिए खुले हों, निर्देश स्पष्ट हो।

### संगठन के प्रकार

संगठन के दो प्रकार होते हैं–1. औपचारिक व 2. अनौपचारिक संगठन।

1. **औपचारिक संगठन–**औपचारिक संगठनों की स्थापना, पंजीयन व निश्चित उद्देश्यों के लिए होती है तथा हर अधिकृति व व्यक्ति की उसकी भूमिका होती है। ऊपर वर्णित बातें, औपचारिक संगठनों की ही हैं। इसमें विविध स्तर होते हैं और प्रत्येक स्तर पर अधिकृतियाँ/इनके अधिकार सुस्पष्ट होते हैं। इनमें जैसे-जैसे संगठन का आकार बढ़ता है, समस्याएँ भी उसी अनुपात में बढ़ती हैं।
2. **अनौपचारिक संगठन–**परस्पर सम्बन्धों से विकसित होते हैं। सम्बन्ध व्यक्तियों के परस्पर मिलने से अधिक सुदृढ़ होते हैं। जब व्यक्तियों को औपचारिक संगठनों में पुष्टि नहीं मिलती, अनौपचारिक संगठन में यह प्राप्त होती है। औपचारिक संगठन को भी सहयोग मिलने में, अनौपचारिक संगठनों की भूमिका होती है। यदि औपचारिक संगठन व अनौपचारिक संगठन में सामंजस्य है, तब संगठन में और शक्ति आ जाती है।

   अनौपचारिक संगठन में व्यक्तिगत निष्ठा, आत्मसम्मान की भावना छिपी होती है। अत: कुशल प्रबन्धक को ये तथ्य प्रभावी प्रबन्धन की दृष्टि से ध्यान में रखना चाहिए तथा परस्पर व्यवहार में नियमित रूप से इन्हें लाना चाहिए।

### सम्प्रेषण

यह भी प्रबन्धन प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है। बिना संदेश सम्प्रेषण के कोई प्रबन्धक या प्रशासनिक कार्य सम्भव नहीं है। इस प्रक्रिया में परस्पर समूहों में सूचनाएँ, अधिकृतियों से अधीनस्थों को सूचनाएँ, विचार, स्पष्टीकरण सम्प्रेषित किए जाते हैं। यही व्यक्तियों के मध्य परस्पर सम्पर्क का साधन है। किसी भी संगठन में बिना सम्प्रेषण के सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सकता।

संदेश सम्प्रेषण क्रिया में 5 अंग होते हैं–

1. संदेश सम्प्रेषण के उद्देश्य
2. संदेश भेजने वाला
3. संदेश का माध्यम
4. संदेश का विषय
5. संदेश पाने वाला

बिना किसी उद्देश्य के संदेश सम्प्रेषित नहीं होता। संदेश भेजने वाला होता है, जो संदेश को किसी न किसी माध्यम–टेलीफोन, पत्र, तार, सूचना-पट्ट से भेजता है, जो वांछित स्थान पर पहुँचती है। संदेश की अपनी भाषा या कोड होता है जो पाने वाले की समझ में आना चाहिए। उदाहरणार्थ–प्रधानाध्यापक शिक्षकों को किसी निर्णय की सूचना भेजता है, तो चपरासी पुस्तक व चपरासी माध्यम हुआ।

संदेश सम्प्रेषण के 5 चैनल होते हैं–

1. **ऊपर की तरफ का चैनल–**जब अधीनस्थों की ओर से (स्टाफ या छात्रों द्वारा कोई प्रधानाचार्य से मांग) अधिकृतियों को संदेश भेजा जाता है, यह ऊपरी तरफ भेजा जाने वाला चैनल कहा जाता है।

नोट

2. **नीचे की तरफ का चैनल**–जब संदेश अधिकृति की ओर से अधीनस्थों को भेजा जाता है, नीचे की ओर का चैनल कहलाता है। प्राय: अधिकृतियाँ आये दिन आदेश व सूचनाएँ भेजती हैं, वह यही सम्प्रेषण चैनल होता है।
3. **क्षैतिज चैनल**–जब संदेश समान स्तर पर भेजा जाता है तथा शिक्षक द्वारा शिक्षक को कोई संदेश भेजना, क्षैतिज चैनल कहलाएगा।
4. **प्रत्यक्ष**–जब संदेश आमने-सामने दिया जाये, प्रत्यक्ष संदेश सम्प्रेषण कहलायेगा।
5. **अप्रत्यक्ष**–जब किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संदेश पहुँचाया जाये तब यह अप्रत्यक्ष संदेश सम्प्रेषण होगा।

संदेश दो प्रकार के होते हैं–1. औपचारिक, 2. अनौपचारिक।

1. **औपचारिक संदेश**–अधिकृतियाँ प्राय: औपचारिक संदेश भेजती हैं यथा स्टाफ के सदस्य को कार्य सौंपना, नियुक्ति करना, विमुक्ति करना, पारितोषिक देना आदि।
2. **अनौपचारिक संदेश**–अनौपचारिक संदेश व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। ये सम्बन्ध अनौपचारिक सम्प्रेषण को जन्म देते हैं जिसकी भाषा आत्मीयता या व्यक्तिगत लगाव लिए होती है प्रभावी प्रबन्धन के लिए अनौपचारिक सम्बन्ध भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

## संदेश में सम्प्रेषण व्यवधान

अनौपचारिक सम्बन्धों में कभी-कभी व्यवधान पैदा हो जाता है। हैगमैन व स्वार्टज ने संदेश व्यवधान के निम्नलिखित सात कारण बताए हैं–

1. प्रबन्धक/प्रशासक की समस्या के महत्व को न समझने पर,
2. प्रबन्धक/प्रशासक द्वारा सदस्यों के मनोवैज्ञानिक पक्ष को न समझने पर,
3. यह भ्रांति होने पर कि अधिकृति के आदेश मात्र से कार्य हो जाएगा,
4. अधिकृति को अपनी आलोचना सुनने के लिए तैयार न होने पर,
5. जनतंत्रीय परिणामों को तानाशाही तरीके से प्राप्त करने पर,
6. परस्पर अविश्वास होने पर एवं
7. स्वयं के स्वार्थ के लिए संगठन की सुविधाओं को कार्य में लेने पर।

## प्रभावित करना

अधिकार और कर्त्तव्य साथ-साथ चलते हैं। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संगठन संरचना के हर स्तर पर अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित करना प्रबन्धन के लिए आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो अधिकारों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। साथ ही संगठन के विकास के लिए प्रेरक तत्व भी, जिससे प्रेरित होकर लोग अधिकाधिक कार्य करें संगठन के प्रति समर्पण व निष्ठा बढ़े।

संगठन में प्रभाव का आकलन इस आधार पर होता है कि उसके सदस्य संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में कितना योग देते हैं? इसके लिए निम्नलिखित दशाएँ आवश्यक हैं–

(1) संगठन के वे लक्ष्य निश्चित हों, जो सभी को स्वीकार्य हों।
(2) संगठन के सभी व्यक्तियों को नेतृत्व करने के अवसर प्रदान करना।
(3) यह विश्वास अर्जित करना कि संगठन में रहने से व्यक्तिगत विकास संभव है।
(4) सदस्यों के लाभ की सूचनाएँ समय-समय पर प्रसारित करना।
(5) संगठन के प्रति निष्ठा पैदा करना।
(6) समय-समय पर सहकर्मियों को सलाह/मदद देना।

नोट

(7) संगठन के विकासार्थ अन्त: सेवा कार्यक्रम संचालित करना एवं

(8) प्रबन्ध/प्रशासक के अधिकारों को संगठन की भलाई में लगाना।

यथार्थ यह है कि अधिकारी का व्यवहार, कार्यकुशलता, सहृदयता, सहयोग ऐसे गुण हैं जिनसे अधीनस्थ प्रेरणा लेते हैं तथा प्रभावित होते हैं और तब संगठन में परस्पर विश्वास के साथ कार्य करते हैं और लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं।

**मूल्याँकन–** मूल्याँकन संगठन व व्यक्ति दोनों के लिए आवश्यक है। जहां तक व्यक्ति का सम्बन्ध है, उसके कार्य के मूल्याँकन से, उसे अन्य व्यक्तियों की तुलना में कार्यदक्षता का अहसास होता है। संगठन के लिए उसकी श्रेष्ठताओं, विकास तथा उसकी कमियों को दूर कर, संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति में योग लिया जा सकता है।

भारत में संयुक्त राज्य शैक्षिक फाउण्डेशन संघ ने मूल्याँकन के अधोलिखित आधार सुझाए हैं–

(1) किसी भी शैक्षिक संगठन का वर्ष के अन्त में उसकी कार्य-प्रणाली का मूल्याँकन किया जाए।

(2) संगठन के नवीन उद्देश्यों का निरूपण किया जाए तथा पूर्ण उद्देश्यों की समीक्षा की जाए।

(3) यह ज्ञात किया जाए कि संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में भिन्न-भिन्न समूहों ने तथा अलग वैयक्तिक रूप से किसने सहयोग किया है?

(4) उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में नवीन प्रशासनिक प्रक्रिया तय की जाए।

(5) संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों के व्यावसायिक विकास को प्रोत्साहन दिया जाए।

(6) स्वस्थ मनोबल व जनतंत्रीय मूल्यों का विकास किया जाए।

स्टीफन एम.कोरी के अनुसार–मूल्याँकन, संगठन के लिए ही नहीं वैयक्तिक विकास के लिए भी आवश्यक है।

मूल्याँकन के सम्बन्ध में एस. एन. मुखर्जी ने अधोलिखित सिद्धान्त सुझाए हैं–

(1) मूल्याँकन की प्रकृति स्पष्ट तथा व्यापक होनी चाहिये जिससे समग्र संगठन की स्थिति स्पष्ट हो सके।

(2) मूल्याँकन स्पष्ट शैक्षिक उद्देश्यों पर आधारित हो।

(3) मूल्याँकन नियमित व निरन्तरता लिए हो।

(4) मूल्याँकन सहयोगी हो।

(5) मूल्याँकन वैध व विश्वसनीय हो। मूल्याँकन के उद्देश्य स्पष्ट हों। विश्वसनीय विधि से दत्तों का विश्वसनीय विश्लेषण हो।

(6) मूल्याँकन किसी मानक पर हो।

अत: संगठन का तथा उसमें लगे व्यक्तियों का वस्तुपरक मूल्याँकन अपेक्षित है।

*टास्क* संप्रेषण से आप क्या समझते हैं?

## स्व-मूल्याँकन (Self Assessment)

**1. निम्नलिखित कथनों में 'सही' तथा 'गलत' का चुनाव कीजिए (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**

1. मूल्याँकन व्यक्ति एवं संगठन दोनों के लिए आवश्यक होता है।
2. अधिकार एवं कर्त्तव्य दोनों एक साथ नहीं चल सकते।
3. औपचारिक संबंध व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों पर आधारित होते हैं।
4. जब संदेश आमने-सामने दिया जाये, तब यह प्रत्यक्ष संदेश सम्प्रेषण कहलायेगा।
5. निर्णय को प्रबंधन प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु माना जाता है।

नोट

## जनतंत्रीय विद्यालय प्रबन्ध के सिद्धान्त

शिक्षा मंत्रालय की ओर से प्रकाशित माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) की रिपोर्ट के अनुसार जनतंत्र का उद्देश्य समाज को इस प्रकार से संचालित करना है जिसमें विभिन्न प्रवृत्तियों के माध्यम से समाज के प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का तथा साथ-साथ सहयोगियों का विकास हो सके। शिक्षा प्रशासन का उद्देश्य इस लक्ष्य को प्राप्त करना है। इसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का उसकी क्षमताओं के आधार पर विकास होना चाहिए ताकि व्यक्तियों के आधार पर समाज का भी स्वाभाविक विकास हो सके।

जनतंत्र केवल सरकार या सत्ता तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, वरन् अच्छे जनतंत्रीय देश में जीवन पद्धति ही जनतंत्रीय होनी चाहिए, जिसमें सर्वत्र जनतंत्रीय मूल्यों की व्याप्ति हो। जनतंत्र में व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बल दिया जाता है। उसे बोलने, लिखने की स्वतन्त्रता होती है। राष्ट्र के किसी भी भाग में जाने व बसने का अधिकार होता है। सहयोग, सहकार, परस्पर विश्वास इसके मूल स्तम्भ होते हैं। शासन में न्याय, निष्पक्षता, व्यक्तिगत भावनाओं का आदर होता है तथा राज्य जन कल्याणकारी होता है। हर स्तर पर व्यक्ति की आकांक्षाओं का ध्यान रखने का प्रयास किया जाता है। इस प्रबन्ध/प्रशासन में वर्ग-भेद, जाति-भेद तथा लिंग-भेद का कोई स्थान नहीं होता। सभी को समान सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। ये जनतांत्रिक सिद्धान्त विद्यालय प्रबन्धन में भी परिलक्षित होने चाहिए।

शैक्षिक प्रबन्धन के क्षेत्र में सभी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होता है। यही कारण है कि संविधान में भारत के प्रत्येक भावी नागरिक को अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया गया है। प्रबन्धन का दायित्व है कि शिक्षा की सुविधाएँ सभी क्षेत्रों को व सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध हों। तभी सब क्षेत्रों के व्यक्तियों का अधिकाधिक विकास संभव है। अत: स्थानीय समुदाय के सभी वर्गों के बालकों का प्रवेश बिना भेदभाव के विद्यालय में किया जाना चाहिए।

सभी अभिकरणों को शिक्षा के विकास में योग देना चाहिए। यह मात्र सरकार का ही कार्य नहीं है। हर स्तर पर आवश्यकतानुसार तथा क्षमतानुसार शैक्षिक अभिकरणों यथा नगरपालिका, पंचायत, निजी क्षेत्र की संस्थाओं को शैक्षिक विकास में योगदान देना चाहिए।

बालक का सम्मान जनतंत्र की मूल आवश्यकता है। अत: प्रबन्धन का यह दायित्व है कि वह विद्यालय के प्रत्येक बालक की रुचि, क्षमता के अनुरूप शैक्षिक कार्यक्रम उपलब्ध कराये। अधिनायकवादी प्रबन्ध/प्रशासन की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है कि वह केवल समाज या राष्ट्रहित को प्रमुख गिनता है और व्यक्ति को उसके हित की पूर्ति का साधन मानता है जनतंत्रीय शासन पद्धति इसे स्वीकार नहीं करती। वह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में ही समाज और राष्ट्र का विकास देखती है। अत: शिक्षा प्रशासन, प्रत्येक बालक के बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक व संवेगात्मक आदि सभी प्रकार के विकास में विश्वास करता है परन्तु शिक्षा प्रशासक बालक के वैयक्तिक व सामाजिक विकास में समन्वय पर भी ध्यान देता है।

जनतंत्रीय प्रबन्ध प्रशासन की एक मुख्य विशेषता यह भी होती है कि यह स्थानीय आवश्यकता और आकांक्षाओं पर भी ध्यान देता है। वहाँ की संस्कृति संरक्षण व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरण पर भी ध्यान देता है। यही कारण है कि अमेरिका में सामुदायिक शिक्षा तथा सामुदायिक विद्यालयों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाता है। यहाँ तक कि पाठ्यक्रम व पाठन विधियाँ भी स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर विकसित की जाती हैं।

जनतंत्रीय प्रशासन की एक अन्य विशेषता यह भी है कि सत्ता विकेन्द्रित होती है। केवल केन्द्रीय नीतियाँ ही लागू नहीं होती वरन् निचले स्तर पर भी नीतियाँ तय होती हैं तथा क्रियान्वित होती हैं। शिक्षा में विकेन्द्रीकरण का एक ज्वलंत उदाहरण प्राथमिक और उच्च प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं को पंचायती राज्य को सौंपने का निर्णय है। यही कारण है कि जनतंत्रीय प्रबन्ध आधुनिक युग की सबसे प्रशंसित प्रकार की प्रबन्धन प्रणाली है। इस देश के लिए यह शासन पद्धति इसलिए और अनिवार्य हो जाती है क्योंकि यहाँ राष्ट्र की जनता ने जनतंत्रीय शासन पद्धति को स्वीकार किया है। मोर्ट, पाल तथा रोस ने इस प्रशासन की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि–इस

नोट

प्रशासन में सत्ता परिस्थितिजन्य होती है। नेतृत्व समूह की अपेक्षाओं के अनुरूप आचरण करता है। समूह अथवा राष्ट्र के समग्र संसाधनों को उसके विकास में नियोजित करता है। प्रशासन सहकर्मी के रूप में कार्य करता है। इस प्रशासन की अन्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) प्रशासन उन व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है जो पद की उच्च प्रस्थिति में हैं, वरन् इसमें सभी की सहभागिता होती है।

(2) नेतृत्व परिवर्तनशील है तथा परिस्थितिजन्य होती है।

(3) इस प्रशासन के लिए समूह के मध्य अच्छे मानवीय सम्बन्ध आवश्यक हैं।

(4) इस प्रशासन में अधिकार और कर्त्तव्य दोनों का विकेन्द्रीकरण होता है।

(5) प्रशासन की नीतियाँ जनप्रतिनिधियों या उन व्यक्तियों के सहयोग से तय की जाती हैं जिन पर उन नीतियों का प्रभाव पड़ता हो।

(6) इस प्रशासन की मान्यता है कि व्यक्ति सहभागिता व दायित्वपूर्ण प्रशासन सबसे अच्छा होता है। इससे एक दूसरे को समझ कर समानता के आधार पर कार्य करने का अवसर मिलता है।

(7) इस प्रशासन में परस्पर विश्वास और सहयोग का वातावरण होता है जो भय मुक्त होता है।

(8) इसकी मान्यता है कि लक्ष्य आम सहमति और निष्ठा से प्राप्त किए जा सकते हैं।

(9) केवल विशेष परिस्थिति में प्रशासन अधिकार का प्रयोग करता है।

(10) व्यक्ति संगठन के लिए महत्त्वपूर्ण है।

(11) इस प्रशासन में मूल्याँकन समूह का दायित्व है।

इस प्रकार जनतांत्रिक प्रबन्धन पद्धति में व्यक्तिगत सम्मान, स्वतन्त्रता, परस्पर सहयोग व समानता के आधार पर शासन करने पर बल दिया जाता है। सभी के परस्पर सहयोग व सद्भाव से ही व्यक्ति और संगठन के विकास की अपेक्षा की जाती है। इस प्रबन्धन की कसौटी यह है कि प्रबन्धन और प्रबन्धित के मध्य कितने मधुर सम्बन्ध हैं? अधिकारी कार्यकर्त्ताओं की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को किस सीमा तक पूरा करने में योग देता है और बदले में कार्यकर्ता अपनी पूर्ण निष्ठा के साथ संगठन से जुड़कर संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कितना योग देता है? जनतांत्रिक प्रबन्धन के उपर्युक्त वर्णित सिद्धान्त विद्यालय के प्रवेश से लेकर सभी कार्यकलापों, शिक्षक विद्यार्थी सम्बन्धों, विद्यालय और समुदाय सम्बन्धों पर पड़ने चाहिए।

प्रवृत्तियाँ परस्पर सहयोग, सहकार, समानता के आदर्शों पर संचालित होनी चाहिए। प्रशासनिक अधिकृतियों व शिक्षकों, शिक्षकों व छात्रों, विद्यालय व समुदाय के मध्य परस्पर सहयोग, सद्भाव का पर्यावरण निश्चय ही भविष्य के लिए श्रेष्ठ नागरिक निर्माण करेगा।

## स्व-मूल्याँकन (Self Assessment)

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. प्रबंधन का मुख्य दायित्व ..... का ही होना चाहिए।
2. केम्पबेल तथा ग्रेग के सर्वमान्य सूत्र में प्रक्रिया के ..... माने गये हैं।
3. समस्या की प्रकृति के अनुसार ..... चार प्रकार के होते हैं।
4. संगठन में प्रभाव का आकलन इस आधार पर होता है कि उसके सदस्य ..... के लक्ष्यों की प्राप्ति में कितना योग देते हैं।
5. प्रबंधक/प्रशासक द्वारा समस्या के महत्व को न समझने पर संदेश में ..... व्यवधान पैदा हो जाता है।

नोट

## 2.4 सारांश (Summary)

- सामाजिक व राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से शिक्षा सभी समाजों और देशों के लिए अपरिहार्य है। निरन्तर ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी व सूचना प्रौद्योगिकी विकास ने इसके महत्व को और बढ़ा दिया है। अब किसी व्यक्ति या परिवार द्वारा भावी नागरिक के शिक्षा के दायित्व का निर्वाह सम्भव नहीं है, इसके लिए शैक्षिक संगठनों की आवश्यकता है, जो समाज और राष्ट्र के लक्ष्यों की पूर्ति कर सकें। इसके लिए 'शैक्षिक प्रबन्ध' की विशेष आवश्यकता है। शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ है कि संगठन में उपलब्ध भौतिक व मानवीय सम्बन्धों को इस प्रकार नियोजित करना जिससे संगठन व वैयक्तिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।
- आज का प्रबन्ध कल के प्रबन्ध इतिहास की परिणति है। आधुनिक प्रबन्ध 20वीं सदी के प्रारम्भ से शुरू होता है जब औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ प्रबन्ध के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए गए जिनसे अनेक प्रबन्ध सिद्धान्तों को जन्म मिला। इन सिद्धान्तों में टेलर का प्रबन्ध दक्षता सिद्धान्त, एल्टनमेयो का मानवीय-सम्बन्ध सिद्धान्त, मेक्स वेबर का ब्यूरोक्रेसी सिद्धान्त, गुलिक व फेयोल का प्रशासनिक प्रक्रिया सिद्धान्त अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्होंने प्रबन्ध के क्षेत्र को प्रभावित किया है।
- प्रबन्ध और प्रशासन के अर्थ के संदर्भ में अनेक प्रश्न किए जाते हैं। प्रबन्ध व प्रशासन में क्या अंतर है? प्रबन्ध श्रेष्ठ है या प्रशासन? वस्तुतः दोनों ही संप्रत्यय एक दूसरे के पर्याय है। परन्तु शासकीय कार्यों के नीति निर्धारण व उनकी क्रियान्विति को प्रशासन के अन्तर्गत लेते हैं जबकि व्यावसायिक क्षेत्रों में इसे प्रबंध के अंतर्गत लिया जाता है।
- संगठन औपचारिक होता है जिसमें भौतिक व मानवीय संसाधनों को लक्ष्य प्राप्ति के लिए लगाया जाता है। आज, संगठन के लक्ष्यों के साथ-साथ संगठन में लगे व्यक्तियों का विकास भी सन्निहित माना जाता है। इसे एक सामाजिक प्रणाली माना जाता है, जिसमें वैयक्तिक व संगठनात्मक आयामों में सामंजस्य रखना आवश्यक समझा जाता है।
- आज पाँच दशक बाद भी प्रभावी प्रबन्धन के लिए 'प्रबन्धन-प्रक्रिया' सिद्धान्त को प्रभावी प्रबन्धन का मुख्य आधार माना जाता है। प्रबन्धन प्रक्रिया के भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न सूत्र (अंग) प्रतिपादित किए हैं। इन विद्वानों ने प्रक्रिया सूत्रों का समाहार करते हुए एल. टी. ग्रेग ने प्रबन्धन प्रक्रिया के सूत्र में मुख्य सात अंग स्वीकार किए हैं। ये अंग हैं–

  1. निर्णय करना,
  2. आयोजन करना,
  3. संगठन करना,
  4. सम्प्रेषण करना,
  5. प्रभाव डालना,
  6. समन्वय करना,
  7. मूल्याँकन करना।

भारत एक जनतंत्रीय देश है, अतः विद्यालयी प्रबन्ध में जनतंत्रीय पद्धति और मूल्यों का अनुसरण आवश्यक है। प्रबन्ध/प्रशासन को सत्ता तक ही सीमित नहीं होना चाहिए वरन् संगठन की व्यवहार पद्धति में भी जनतंत्र परिलक्षित होना चाहिए, फिर चाहे वह नीतिगत निर्णय का क्षेत्र हो, योजना निर्माण की बात हो या विद्यालयी पर्यवेक्षण का हो। अधिकार विकेन्द्रित होने चाहिए, विद्यालय में बालक को उसकी रुचि, क्षमता और योग्यता के आधार पर विषय अध्ययन की सुविधा हो। शिक्षक विद्यार्थी, शिक्षक-प्रशासक और शिक्षक-शिक्षक के मध्य परस्पर विश्वास व सहयोग का पर्यावरण होना चाहिए।

नोट

- प्रबन्ध की संकल्पना में आज हम एक महत्त्वपूर्ण बदलाव यह देखते हैं कि प्रबन्धक संगठन के प्रभावी संचालन के लिए जवाबदेह होता है। रीसमिंट्जवर्ग ठीक ही लिखते हैं कि "प्रबन्ध एक सेवा है। यदि वह स्वयं की सेवा करता है तो किसी की सेवा नहीं करता है। वस्तुत: प्रबन्धक अंशधारियों, कर्मचारियों, पूर्तिकर्त्ताओं, ग्राहकों आदि को प्रभावित करते हैं और उनके प्रति जवाबदेह हैं।"
- प्रबन्धन के क्षेत्र में जो भी सिद्धान्त आज उपलब्ध हैं, वे व्यापक प्रयोगों, परीक्षणों अवलोकनों व व्यावहारिक अनुभवों की देन हैं। ये सिद्धान्त सार्वभौमिक प्रयुक्ति के गुणों से युक्त हैं। स्पष्ट है कि प्रबन्ध अब एक विज्ञान के रूप में अपने नियमों, सिद्धान्तों, विधियों तकनीकों आदि के साथ नवीन आयाम के साथ विकसित हो रहा है, एक जागरूक प्रबन्धक (प्रधानाध्यापक) को इन सिद्धान्तों, विधियों व तकनीकी से न केवल परिचित होना चाहिए वरन् इनका प्रयोग विद्यालय प्रबन्ध में कुशलता से करना चाहिए।

## 2.5 शब्दकोश (Keywords)

- **अपरिहार्य**–निश्चित अथवा विशेषकारण।
- **निर्वैयक्तिक**–जो व्यक्तिगत न हो।

## 2.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शैक्षिक प्रबन्ध का क्या संप्रत्यय है?
2. प्रबन्ध संप्रत्यय, प्रशासन संप्रत्यय से किस प्रकार भिन्न है?
3. संगठन किसे कहते हैं? प्रबन्ध व प्रशासन से इसका क्या सम्बन्ध है?
4. प्रभावी संगठन के लिए गेट्जेल-गूवा सिद्धान्त किस प्रकार उपयोगी है?
5. प्रबन्ध प्रक्रिया सिद्धान्त क्या है? इस सिद्धान्त का प्रभावी प्रबन्ध से क्या सम्बन्ध है?

### उत्तर : स्व-मूल्याँकन (Answer: Self Assessment)

| | | | |
|---|---|---|---|
| **1.** | 1. सत्य | 2. असत्य | 3. सत्य |
| | 4. सत्य | 5. सत्य | |
| **2.** | 1. अधिकृतियों | 2. 7 अंग | 3. निर्णय |
| | 4. संगठन | 5. संम्प्रेषण। | |

## 2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–3: विभिन्न स्तरों पर प्रबंधन (Management at Different Levels)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 संस्थागत नियोजन का अर्थ, परिभाषा और विशेषताएँ (Meaning, Definition and Characteristics of Institutional planning)

3.2 प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबंधन (Educational management at Elementory and secondary Levels)

3.3 उच्च स्तर पर शैक्षिक प्रबंधन (Educational management at higher levels)

3.4 विद्यालय आलेखों के प्रकार (Types of school Records)

3.5 सारांश (Summary)

3.6 शब्दकोश (Keywords)

3.7 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

3.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विभिन्न स्तरों–प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च–शिक्षा में प्रबंधन का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

औपचारिक शिक्षा में विद्यालयों का प्रमुख स्थान है। विद्यालयी–शिक्षा पूर्व–प्राथमिक स्तर से स्नातक स्तर तक की जाती है। इन विद्यालयों का संगठन तथा प्रबन्ध व्यक्तिगत व राजकीय स्तर पर किया जाता है। व्यक्तिगत संस्थाएँ प्रबन्धकारिणी समितियों द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं। एक निर्वाचित कार्य–कारिणी सभा होती है। विद्यालय के प्रबन्ध के लिये विषयावली पहले से तैयार की जाती है और उसी के अनुसार विद्यालय के समस्त कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। विद्यालय का प्रधानाचार्य आन्तरिक प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी होता है। अनुदान के रूप में सरकार आर्थिक सहायता देती है।

प्रभावी अध्ययन अध्यापन के लिए विद्यालय का भौतिक पर्यावरण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इस दृष्टि से सुरम्य विद्यालय भवन का शैक्षिक पर्यावरण निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। श्रेष्ठ वास्तुशिल्प पर आधारित भवन, आवश्यक नहीं महंगे हों, उचित प्रकाश, साज–सज्जा, हरितमा लिए, आरामदायक बैठक व्यवस्था तथा उपयोगी सेवाओं–कक्षाकक्ष, पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशालाएँ, खेल के मैदान स्वत: ही आगन्तुओं का जहाँ ध्यान आकर्षित करते हैं, छात्रों व शिक्षकों को भी इस प्रकार के विद्यालय के वातावरण से सन्तोष की अनुभूति होती है। यह अनुभूति छात्रों व शिक्षकों के विद्यालय से लगाव को जन्म देती है जो प्रभावी विद्यालय निष्पत्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

नोट

विद्यालय भवन (स्कूल प्लान्ट) का आधुनिक अर्थ काफी व्यापक रूप में लिया जाता है। इस शब्द के अन्तर्गत न केवल विद्यालय के कक्षा-कक्ष आते हैं वरन् खेल के मैदान, फर्नीचर, उपकरण तथा अन्य वह सहायक सामग्री आ जाती हैं, जो विद्यालय के कार्यों में उपयुक्त होती हैं।

## 3.1 संस्थागत नियोजन का अर्थ, परिभाषा और विशेषताएँ (Meaning, Definition and Characteristics of Institutional planning)

विद्यालय संगठन में नियोजन का विशेष महत्त्व होता है। प्रत्येक विद्यालय की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की व्यापक रूपरेखा को सामने रखते हुए अपने विकास एवं प्रगति के लिये नियोजन करना चाहिये।

अत: शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापक को स्वयं की संस्था के स्तर पर स्वयं के विकास के लिये तथा उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये एक कार्यकारी रूपरेखा तैयार करने में दक्ष होना पड़ेगा। इस प्रकार के चिन्तन के सुनिश्चित स्वरूप को ही संस्थागत योजना कह सकते हैं।

**संस्थागत नियोजन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Institutional Planning)**

विद्यालय कार्य भली प्रकार चले तथा प्रगति पथ पर अग्रसर हो, इसके लिये आवश्यक है कि विद्यालयों में योजनाएँ बनाई जाएँ जो आगे चलकर राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की योजनाओं का आधार बन सकें। इस प्रकार की योजनाओं में दो बातों पर ध्यान दिया जाता है–(1) हम किस दिशा में प्रगति चाहते हैं। अर्थात् हमारे लक्ष्य क्या हैं? (2) हमारे पास क्या-क्या साधन उपलब्ध हैं?

संस्थागत योजना को डॉ. एम. बी. बुच ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

**"एक शैक्षिक संस्था द्वारा अपने अनुभव में आई आवश्यकताओं, प्राप्त अथवा प्राप्त हो सकने वाले साधनों के आधार पर निर्मित अपने विकास के लिये बनाया गया कार्यक्रम उस संस्था की संस्थागत योजना कहलाती है। यह दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन हो सकती है। यह विद्यालय एवं समाज के सभी साधनों में चरम उपयोग पर आधारित होती है।"**

**डॉ. बुच** का विचार है कि अत्यन्त लाभप्रद योजना है और इसके द्वारा देश के लाखों शिक्षकों को शिक्षा की सामान्य योजना तथा विशेषत: सुधारात्मक योजना की ओर तत्पर किया जा सकता है।

उपर्युक्त आधार पर संक्षेप में संस्थागत योजना को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं–

"संस्थागत योजना, शिक्षण संस्था द्वारा अपने विकास एवं प्रगति के लिये, अपने उद्देश्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं तथा प्राप्य साधनों के अन्तर्गत किये जाने वाले उपस्थित प्रयासों की रूपरेखा है।"

**संस्थागत नियोजन के उद्देश्य (Objectives of Institutional Planning)**

संस्थागत नियोजन के प्रमुख उद्देश्य अधोलिखित हैं–

1. प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण में उत्तम परिणामों की उपलब्धि।
2. संस्था बहुमुखी विकास एवं प्रगति।
3. राष्ट्रीय योजनाओं को उचित आधार प्रदान करना।
4. विद्यालयी साधनों को अधिकतम सम्भव उपयोग–
   (विद्यार्थियों, शिक्षकों की प्रतिभा एवं भवन, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालएँ आदि का पूर्णरूप में लाभ उठाना)।
5. संस्थागत एवं राष्ट्रीय उद्देश्यों में समन्वय।
6. योजनाओं का प्रजातान्त्रिक स्वरूप में विकसित करना।
7. अध्यापकों एवं विद्यार्थियों में सृजनात्मक विकास हेतु उत्तम वातावरण का निर्माण करना।
8. विचार एवं कार्य की स्वतन्त्रता के साथ पारस्परिक सहयोग विकसित करना।

नोट

9. आन्तरिक शक्ति की पहचान, उपयोग, प्रयास, प्रोत्साहन तथा नेतृत्व करना।
10. स्वयं सेवा तथा आत्म उपलब्धि का अभ्यास करना।

**संस्थागत नियोजन का कार्य-क्षेत्र (Scope of Institutional Planning)**

संस्थागत योजना के अन्तर्गत सभी कार्यक्रम आते हैं जो संस्था के विकास एवं राष्ट्रीय एवं संस्थागत उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं। अब विद्यालय के शैक्षणिक, प्रशासनिक, सह-शैक्षणिक आदि सभी प्रकार के कार्य संस्थागत योजना के अंग बन सकते हैं। उदाहरण के लिये कुछ कार्य अधोलिखित हैं–

1. विद्यालय के प्रजातन्त्रात्मक प्रशासन हेतु योजना निर्माण।
2. प्रवेश नीति एवं उसके क्रियान्वयन की योजना का निर्माण।
3. आन्तरिक मूल्याँकन सुधार योजना कार्यक्रम निर्धारण।
4. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संगठन एवं संचालन की योजना का निर्माण।
5. समुदाय-विद्यालय सम्बन्ध सुधार एवं समाज सेवा कार्यक्रम की योजना का निर्माण।
6. अनुशासनात्मक सुधार कार्यक्रम की योजना का निर्माण।
7. क्रीड़ा व्यवस्था सुधार योजना निर्माण।
8. विद्यालय प्रांगण के सौन्दर्यीकरण की योजना का निर्माण।
9. छात्रावास, सभाकक्ष, मंच एवं अल्पाहार गृह के निर्माण एवं विकास की योजनाओं का निर्माण।
10. पुस्तकालय एवं वाचनालय विस्तार योजना निर्माण।
11. अनुरंजनात्मक प्रवृतियों के विकास हेतु योजना निर्माण।
12. कक्षा-शिक्षण सुधार योजना निर्माण।
13. छात्रों में विविध प्रकार के कौशलों की विकास योजना का निर्माण।
14. व्यावसायिक पाठ्यक्रम के संगठन की योजना का निर्माण।

**संस्थागत योजना की विशेषताएँ (Characteristics of Institutional Planning)**

संस्थागत योजना की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. **लक्ष्य निर्देशित** (Goal Directed)–संस्थागत योजना लक्ष्य निर्देशित प्रक्रिया है। इसमें राष्ट्रीय एवं संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।
2. **उपयोगिता** (Utility)–संस्थागत योजना के अन्तर्गत वे ही कार्य लिये जाते हैं जिनकी उपयोगिता विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा समुदाय के लिये होती है। संस्थागत योजना के क्रियान्वयन से विद्यालय की उपयोगिता में वृद्धि होती है। विद्यालय द्वारा अधिक समाज सेवा एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं नैतिक विकास पर विशेष बल दिया जाता है।
3. **आवश्यकता आधारित** (Necessity Based)–संस्थागत योजना में कोई भी ऐसा कार्य नहीं लिया जाता जिसकी तत्कालीन आवश्यकता न हो अर्थात् विद्यालय के संगठन, प्रबन्ध, शिक्षण तथा अन्य क्षेत्रों में आवश्यकता पता करने के बाद संस्थागत योजना बनाई जाती है।
4. **विशिष्ट** (Specificity)–प्रत्येक विद्यालय की संस्थागत योजना, किसी भी अन्य विद्यालय की योजना से भिन्न होती है। संस्थागत योजना, संस्था विशेष के साधनों, आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों के अनुरूप होती है।
5. **साधनों का दोहन**–विद्यालय के पास उपलब्ध तथा उपलब्ध हो सकने वाले साधनों के अधिकतम सम्भव प्रयोग का यत्न, संस्थागत योजना में किया जाता है।
6. **सुधार एवं विकास आधारित** (Basis for Improvement and Modification)–प्रत्येक संस्थागत योजना में विद्यालयी कार्यक्रमों में सुधार एवं विकास तथा प्रगति मुख्य तत्व होते हैं।

नोट

7. **समुदाय-समर्थित** (According to Community)–संस्थागत योजना चूँकि स्थानीय स्तर पर बनाई जाती हैं, इसमें समुदाय की सहायता सुगमता से की जाती है।
8. **प्रजातन्त्रात्मक** (Democratic)–संस्थागत योजना निर्माण में प्रधानाध्यापक शिक्षक एवं विद्यार्थियों को उचित प्रतिनिधित्व मिलने के कारण प्रजातन्त्रात्मक मूल्यो के विकास में अत्यन्त सहायक होती है।
9. **सहयोग आधारित** (Based on Co-operation)–संस्थागत योजना में विद्यालयी तथा समुदाय सभी को पर्याप्त सहयोग प्राप्त किया जाता है।
10. **प्रेरणादायक** (Inspiring)–संस्थागत योजना की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता निहित होती है। सभी के सहयोग पर आधारित होने के कारण सभी लोग इसकी सफलता में रुचि लेने लगते हैं।
11. **समय नियन्त्रित** (Time Bond)–संस्थागत योजनाएँ अल्पकालीन (जैसे एक सप्ताह, एक सत्र अथवा एक वर्ष के लिए) तथा दीर्घकालीन (जैसे 2 वर्ष, 5 वर्ष या 10 वर्ष के लिए) बनाई जाती हैं। इसके अनुसार निश्चित समय में परिणाम प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है।
12. **वास्तविक** (Realistic)–संस्थागत योजना वास्तविक एवं व्यावहारिक होती हैं क्योंकि अनुभूत आवश्यकताओं के आधार पर स्थानीय व्यक्तियों द्वारा बनाई जाती है।
13. **लचीला** (Flexible)–संस्थागत में समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाना सम्भव है।

**संस्थागत नियोजन की समस्याएँ (Problem of Institutional Planning)**

अनेक विशेषताओं के होते हुए भी संस्थागत योजना की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

1. संस्थागत योजनाओं को कभी-कभी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर परिणामत: अपेक्षित सफलता प्राप्त न होने पर निराशा ही हाथ लगती है।
2. योजना के अन्तर्गत शिक्षकों का कार्यभार बढ़ जाता है तथा अवधान अन्य दिशाओं में केन्द्रित होने से शिक्षण कार्य पिछड़ जाता है।
3. शिक्षण अतिरिक्त कार्य हेतु, सम्यक् आर्थिक लाभ की अपेक्षा करते हैं तथा उसके अभाव में अरुचि उत्पन्न करके योजना कार्यक्रमों से पलायन करने लगते हैं और योजना की सफलता संदिग्ध हो जाती है।
4. संस्थागत योजना में रुचिपूर्वक कार्य करने वाले शिक्षक, उच्च अधिकारियों के प्रशंसा-पात्र बन जाते हैं तथा दूसरे लोग इनकी निकटता से ईर्ष्या करके योजना को असफल बनाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार संस्थागत योजना कभी-कभी क्षुद्र राजनीति का कारण बी बन जाती है।
5. संस्थागत योजना में प्रस्तावित आर्थिक सहायता न मिल पाने पर भी योजना लड़खड़ा जाती है।

**संस्थागत नियोजन के सिद्धान्त (Principles of Institutional Planning)**

संस्थागत योजना निर्माण के कोई सार्वभौम नियम नहीं हैं क्योंकि जो नियम एक प्रकार के विद्यालय के लिए उपयोगी होती है, वह दूसरे विद्यालय के लिये सर्वथा अनुपयुक्त हो सकते हैं। फिर भी कुछ सामान्य सिद्धान्त संस्थागत योजना की विशेषताओं के आधार पर निर्मित किये जा सकते हैं। कुछ सामान्य अधोलिखित हैं–

1. आवश्यकताओं के निर्धारण का सिद्धान्त।
2. साधनों के स्पष्ट आकलन का सिद्धान्त।
3. लक्ष्यों के उचित निर्णय का सिद्धान्त।
4. उपयोगिता का सिद्धान्त।
5. प्रजातन्त्रात्मक मूल्यों के विकास का सिद्धान्त।
6. उचित समय विभाजन का सिद्धान्त।
7. सहयोग का सिद्धान्त।

नोट

8. लचीलेपन का सिद्धान्त।
9. वास्तविक एवं व्यावहारिकता का सिद्धान्त।

उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर संस्थागत योजना के निर्माण के कुछ पद सुनिश्चित किये जा सकते हैं जो निम्नवत् हैं–

**संस्थागत नियोजन के स्तर (Levels of Instituitional Planning)**

संस्थागत योजना निर्माण में विद्यालय स्तर के अतिरिक्त तीन स्तर और हो सकते हैं–(1) जिला स्तर (2) राज्य स्तर तथा (3) राष्ट्रीय स्तर।

(1) **जिला स्तरीय योजनाएँ** (District Level)–जिले की योजना, विकास एवं प्रशासन की मूल इकाई मानकर इस स्तर की योजना का निर्माण किया जाता है। यह योजना-निर्माण का बहुत ही उपयुक्त स्तर है। जिले की संस्थागत योजना का संचालन जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए तथा जिला-स्तर पर एक शिक्षा योजना बोर्ड गठित किया जाना चाहिये जिसमें विद्यालय शिक्षकों, प्रधानाध्यापकों तथा प्रबन्धकों के प्रतिनिधि तथा समाज-सेवा संस्थाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित किये जाने चाहिएँ।

(2) **राज्य स्तर की संस्थागत योजनाएँ** (State Level)–संस्थागत योजना-निर्माण के लिये राज्य-स्तर काफी बड़ा हो जाता है परन्तु राज्य-स्तर पर एक सशक्त योजना इकाई, जिला एवं राष्ट्रीय-स्तर की योजना-निर्माण के मध्य कड़ी का काम कर सकती है। इस स्तर पर दीर्घकालीन योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। इस स्तर की योजनाओं का आधार विद्यालय एवं जिला-स्तर पर होना चाहिये तथा नीति-निर्देश राष्ट्रीय स्तर से लिये जा सकते हैं।

(3) **राष्ट्रीय स्तर की संस्थागत योजनाएँ** (National Level)–राष्ट्रीय-स्तर की पूरे देश के सर्वेक्षण के आधार पर प्राथमिकताएँ निश्चित की जा सकती हैं। इस स्तर की सभी राज्यो की योजनाओं को समय रूप में लेकर राष्ट्रीय योजना तैयार की जा सकती है। केन्द्र एवं राज्यों के समन्वित-कार्यक्रम लेकर संवैधानिक प्रावधानों की पूर्ति हेतु राज्यों के साथ तालमेल करके दीर्घकालीन कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। इस स्तर की योजनाओं का उद्देश्य प्रादेशिक असमानताओं को दूर करके राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम का सफल संचालन होगा।

**कुछ सुझाव** (Suggestions)–संस्थागत योजना-निर्माण के प्रारम्भ में प्राधानाध्यापक, शिक्षक एवं अन्य अधिकारी पूर्णत: दक्ष नहीं होगे। अत: यह आवश्यक है कि क्षेत्र में अपनी संस्थाओं के विशेषज्ञों के अनुभवों का लाभ उठाया जाना चाहिये। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, इसके अधीन क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, राज्य शिक्षा संस्थान, प्रादेशिक शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदें राज्य शिक्षा विभाग आदि की सहायता योजना के प्रारूप निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्याँकन की जा सकती है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि यथार्थ योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिये। यह देखा गया है कि कभी-कभी अनुदान प्राप्त करने के दृष्टिकोण से बढ़ा-चढ़ाकर योजनाएँ बनाई जाती हैं। उन्हें हम प्लान न कहकर स्कीम कहें तो शायद अधिक उपयुक्त रहेगा। यह स्कीमें कभी पूरी नहीं हो सकतीं। योजनाएँ साधनों को दृष्टिगत रखकर बनानी चाहिएँ तथा इन्हें माँगों के प्रपत्र का स्वरूप नहीं दे देना चाहिये। जे. पी. नायक के अनुसार निम्न स्तर का लक्ष्य नहीं, वरन् असफलता जुर्म है। योजना के अन्तर्गत केवल वास्तविक एवं प्रयोजनशील कार्यक्रम होने चाहिए, जिनमें उपलब्ध साधनों एवं मानसिक प्रयासों के श्रेष्ठतम सम्भव उपयोग पर बल दिया जाना चाहिए। योजना निर्माण में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना बहुत जरूरी है। अच्छी प्रकार बनाई गई योजनाओं का विशेष महत्त्व है। ई. डब्ल्यू. फ्रेंकलिन के मतानुसार, 'संस्थागत योजना, शिक्षा सुधार की यात्रा में एक मील का पत्थर है। किसी भी शैक्षिक प्रयास का केन्द्रबिंदु अध्यापक होता है। इस प्रकार की योजना द्वारा, पहली बार अध्यापक समुदाय को शैक्षिक सुधार का नियोजक एवं संचालक बनने का अवसर दिया जा रहा है।

नोट

## 3.2 प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबंधन (Educational management of Elementary and Secondary Levels)

### प्राथमिक स्तर (Elementary Levels)

आज देश के सामने शिक्षा की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयुक्त भवनों की बड़ी ही विकट समस्या है। स्वतन्त्रता के बाद हम शिक्षकों की तो जैसे-तैसे व्यवस्था कर सके, परन्तु भवनों की व्यवस्था देश की अन्य समस्याओं और विशेष रूप से वित्तीय कठिनाइयों से सम्भव न हो सकी। यही कारण है कि प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालय स्तर के अनेक विद्यालय दो पारियों में चल रहे हैं। माध्यमिक स्तर पर भी इस प्रकार के विद्यालय हैं और इनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। जिसके कारण छात्रों की पाठ्य एवं पाठ्येतर दोनों प्रकार की उपलब्धियों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

शाला भवन की उपादेयता के सम्बन्ध में आज किसी को भी सन्देह नहीं है। वस्तुतः शाला, बालकों के लिए 'स्कूल के समय का घर' है। जिस प्रकार घर के उपयुक्त वातावरण का प्रभाव बालकों के विकास पर पड़ता है, ठीक उसी प्रकार एक आदर्श विद्यालय भवन व उसके पर्यावरण का प्रभाव भी बालक पर पड़े बिना नहीं रह सकता। सही माने में विद्यालय बालकों एवं समुदाय की प्रेरणा के स्रोत होते हैं। वह समुदाय कभी भी विकासोन्मुख नहीं होते, जहाँ पर विद्यालय का पर्यावरण एवं प्रेरक नहीं होता। इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि शाला भवन की बनावट व साज-सज्जा का शाला की प्रवृतियों की उपलिब्धयों पर प्रभाव पड़ता है। अतः शाला भवन एवं इसकी साज-सज्जा पर ध्यान देना नितांत प्रतीत होता है।

शाला प्रशासन एवं संगठन पर भी विद्यालय भवन का प्रभाव देखने को मिलता है। यह विद्यालय भवनों के अभाव का ही परिणाम है जिसकी वजह से दो पारी वाले या तीन पारी वाले विद्यालय चलाए जाते हैं, और जिनके कारण अनेक प्रशासनिक समस्याओं को जन्म होता है। भारत के अधिकांश शहरी विद्यालय धीरे-धीरे इन्हीं प्रशासनिक समस्याओं में उलझते चले जा रहे हैं।

**शाला भवन–**शाला भवन में निम्नलिखित भवन होना आवश्यक है–

1. मुख्य शाला भवन एवं इसके अन्य विभिन्न विषयों के विभागीय कक्ष।
2. पुस्तकालय एवं वाचनालय।
3. छात्रावास।
4. खेल के मैदान–
   (अ) हॉकी (ब) वालीबाल (स) फुटबाल
   (द) क्रिकेट (य) बास्केटबाल (र) टेनिस आदि।
5. शाला उद्यान-बगीचे लॉन
6. कृषि फर्म
7. स्टाफ क्वार्टर्स–
   (अ) प्रधानाध्यापक के लिए (ब) शिक्षकों के लिए
   (स) कार्यालय कर्मचारियों के लिए (द) सहायक कर्मचारियों के लिए
8. अन्य–
   (अ) रंगशाला (ब) तैरने के लिए जलाशय
   (स) गैस प्लान्ट आदि।

नोट

## मुख्य शाला भवन

मुख्य शाला भवन के अन्तर्गत भी अनेक कक्षों की आवश्यकता होती है। कतिपय आवश्यक कक्ष अधोलिखित प्रकार हो सकते हैं–

(1) आचार्य कक्ष (2) कार्यालय (3) आगन्तुक अतिथि कक्ष
(4) अध्यापक कक्ष (5) रिकार्ड स्टोर कक्ष (6) निर्देशन तथा परामर्श कक्ष
(7) परीक्षा कक्ष
(8) विश्राम कक्ष–
(1) लड़कियों के लिए (2) लड़कों के लिए
(9) शौचालय एवं मूत्रालय–
(अ) लड़कियों के लिए (ब) लड़कों के लिए (स) अध्यापकों के लिए
(10) खेल कक्ष
(11) संगीत कक्ष
(12) स्काउटिंग, गर्ल गाइड, एन. सी.सी कक्ष
(13) क्राफ्ट वर्कशॉप
(14) कला भवन
(15) व्याख्यान कक्षा
(16) विज्ञान प्रयोगशालाएँ
(17) संग्रहालय
(18) विभिन्न विषयों के विशिष्ट कक्ष
(अ) इतिहास कक्ष (ब) भूगोल कक्ष (स) विज्ञान कक्ष
(द) कम्प्यूटर कक्ष (य) एस. यू. पी. डब्ल्यू कक्ष आदि
(19) प्रार्थना सभा तथा एसेम्बली हॉल
(20) स्टोर कक्ष

## शाला भवन निर्माण के समय ध्यान योग्य तथ्य

**1. भवन योजना**–भवन योजना किसी भी प्रकार के भवन के निर्माण के लिए आवश्यक है। वस्तुत: विद्यालय भवन का मास्टर प्लान योग्य अभियन्ता के द्वारा स्वीकृत होना चाहिए। इस योजना में निम्नलिखित तथ्यों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए–

(अ) वर्तमान छात्र संख्या
(ब) भावी वर्षों के लिए बढ़ती विद्यार्थी जनसंख्या के लिए कक्ष
(स) शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए कक्ष
(द) शिक्षेतर प्रवृत्तियों के लिए कक्ष
(य) विशेष कक्ष

उपरोक्त तथ्यों को विशेष रूप से भावी छात्रों की संख्या को ध्यान में रखते हुए योजना निर्मित की जानी चाहिए। जहाँ तक हो दो पारी एवं तीन पारी व्यवस्था से बचा जाए। पुनश्च: इकाई लागत (युनिट कोस्ट) का अनुमान भी योजना में लगा लेनी चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महंगाई निरन्तर बढ़ रही है, अत: संभवत: एक साथ ही भवन निर्माण किया जाए। ऐसी सामग्री का प्रयोग किया जाये जो मूल्य में कम परन्तु अधिक स्थायी हो। जहाँ तक सादगी हो वही श्रेयस्कर है। मिथ्या आडंबर से बचा जाये। हमें अमेरिका की नकल न करके भारतीय गृह–निर्माण कला को भी ध्यान में रखना चाहिए।

नोट

## विद्यालय की स्थिति

यूँ तो विद्यालय की स्थिति भी विद्यालय योजना के अन्तर्गत ही आ जाती है परन्तु इसके महत्व को देखते हुए इसे अलग से ही स्पष्ट किया जा रहा है। विद्यालय की स्थिति, नगर में नगरीय सघन आबादी से थोड़ा दूर हो तो श्रेयस्कर है परन्तु प्राय: ऐसा होता नहीं है। उपनगरीय बस्ती एवं देहात में इस सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं होती। इससे छात्रों को स्वच्छ वायु, शोरगुल से दूर, खेलकूद के लिए उपयुक्त क्षेत्र आदि मिल सकेगा। जहाँ आवागमन की सुविधा हो, वहाँ वृक्षों के झुरमुट के बीच स्वस्थ वातावरण में शहर से दूर भी विद्यालय की स्थापना हो सकती है। हमारे प्राचीन विद्यालय प्राय: हरे-भरे वन्य क्षेत्र में ही स्थापित थे। इनकी कल्पना ही सहज रूप से मन को मोह लेती है।

विद्यालय की अच्छी स्थिति के लिए निम्न कारकों पर विचार किया जाना आवश्यक है–

(1) विद्यालय की स्थिति नगर/कस्बे से बाहर हो जो नगरीय प्रदूषण धुंआ, विषाक्त हवा, उद्योगों से मुक्त क्षेत्र हो।

(2) अच्छी स्थिति-भवन निर्माण के स्थल के चुनाव के लिए निर्णायक कारण होना चाहिए। इसके चुनाव के समय विद्यार्थियों के आवागमन, जल निकासी, जलस्रोत, पर्याप्त खेल के मैदान का स्थान, भावी विस्तार आदि कारकों पर विचार किया जाना आवश्यक है।

(3) नगर के भावी विस्तार व विकास को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। नगरीय कचरा संग्रह स्थल की निकटता, भारी वाहनों का आवागमन, शैक्षिक पर्यावरण के विपरीत होता है।

(4) विद्यालय के निकट पार्क की उपस्थिति, स्वास्थ्य केन्द्र व नगरीय पुस्तकालय की स्थिति उपयोगी होती है।

(5) नगर, उपनगर की भावी जनसंख्या वृद्धि का विद्यालय सेवा का ध्यान दिया जाना चाहिए।

(6) प्राकृतिक सौन्दर्य में अवस्थित विद्यालय जो आखों व मन को अच्छा लगे श्रेष्ठ स्थिति कहीं जा सकती है।

(7) ऊँचाई पर भवन की स्थिति अच्छी होती है।

(8) निचले स्थानों जहाँ पानी जमा हो जाता हो, उन स्थानों को छोड़ देना चाहिए।

### विद्यालय भवन की नींव का धरातल

धरातल सतह जहाँ हो ऊंची हो, उपयुक्त है। वर्षा के दिनों में पानी आसपास नहीं भरना चाहिए, अन्यथा मच्छर पैदा होने का भय बना रहेगा।

### दिशा

विद्यालय भवन दक्षिण-पूर्व दिशा में हो तो श्रेष्ठ है। इसका लाभ यह होगा कि जहाँ शीतकाल में धूप सीधी छात्रों को उपलब्ध होगी, वहाँ ग्रीष्मकाल में सूर्य प्रकाश सीधा भवन में प्रवेश नहीं करेगा। पुनश्च: कक्ष तेज हवाओं के रुख में नहीं होने चाहिए।

### विद्यालय सेवाएँ

यथासंभव विद्यालय भवन का निर्माण ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ आवागमन, बिजली, पानी आदि की व्यवस्था सुगमता से उपलब्ध हो, अन्यथा छात्रों एवं शिक्षकों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

### भविष्य के विस्तार की संभावनाएँ

जहाँ तक हो भवन में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ विस्तार की सुविधा रहनी चाहिए। अन्यथा दो मंजिले भवन निर्माण की आवश्यकता होगी, या दो पारी विद्यालय में विद्यालय को बदलना होगा, जो उपयुक्त नहीं है।

### विद्यालय भवन का क्षेत्रफल

विद्यालय भवन का क्षेत्रफल मुख्यत: छात्रों की संख्या पर निर्भर करता है। पुनश्च छात्र संख्या के अनुसार ही अतिरिक्त क्षेत्र पाठ्येतर प्रवृतियों के लिए चाहिए। अमेरिकन नेशनल कौन्सिल ने एक छोटे से विद्यालय भवन के क्षेत्र के बारे

नोट

में कहा है कि "किसी माध्यमिक शाला भवन के लिए, जिसमें 1000 विद्यार्थी हों, 20 एकड़ भूमि का प्रति 50 विद्यार्थियों के लिए एक एकड़ अतिरिक्त भूमि उपलब्ध होनी चाहिए।"

केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा परिषद (CABE) ने इसी संदर्भ में निम्न प्रकार की संस्तुति की हैं–

| छात्रों की संख्या | भवन का क्षेत्र | खेल आदि का क्षेत्र |
|---|---|---|
| 160 | 2/3 एकड़ | 2–3 एकड़ |
| 320 | 1 एकड़ | 4–5 एकड़ |
| 480 | 1 एकड़ | 6–7 एकड़ |

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने 750 विद्यार्थियों से अधिक जुड़े विद्यालय के लिए विद्यालय भवन की संस्तुति नहीं करता। इससे अधिक संख्या वाले विद्यालय प्रशासनिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते। इनसे अनेक प्रशासनिक समस्याओं को जन्म मिलता है।

जहाँ तक हो एक मंजिल का भवन ही उपयुक्त है। पहाड़ी क्षेत्र में यह तथ्य लागू नहीं होता क्योंकि इन क्षेत्रों में समतल मैदान मिलना प्राय: कठिन होता है।

### भवन कक्ष

विद्यालय भवन के कमरे जहाँ तक हो सके 40 विद्यार्थियों के हिसाब से बनाए जाने चाहिए। इनका आकार 22 × 23 या 20 × 25 हो तो ठीक आकार है। शिक्षण क्षेत्र तथा मध्य में गेलरी छोड़ने पर 25 × 30 सर्वथा उपयुक्त है। ऊंचाई 16 से 17 फीट हो तथा उपयुक्त प्रकाश एवं हवा की सुविधा भी हो।

### (1) अन्य विचारणीय तथ्य

**1. नमी एवं तापमान**–यह देखा जाना चाहिए कि कमरों में सील या अधिक गर्मी तो नहीं रहती। अत: ऊँची छत वाले कमरे उपयुक्त रहते हैं।

**2. समय पर देखभाल**–विद्यालय भवन से सम्बन्धित निम्नलिखित पक्षों की नियमित रूप से देखभाल होनी चाहिए–

(1) भवन कक्षों की नियमित सफाई, पुताई, रंग, रोगन आदि।

(2) शौचालय, मूत्रालयों की दैनिक रूप से सफाई।

(3) शाला उद्यान के लॉन, बगीचे की नियमित रूप से देख-रेख।

(4) खेल के मैदान की नियमित रूप से सफाई एवं आवश्यक सुधार।

(5) भवन के फर्नीचर की समय-समय पर गिनती, मरम्मत तथा रंग आदि।

(6) भवन की साज-सज्जा तथा सरुक्षा।

**3. विद्यालय भवन एवं सौन्दर्य**–विद्यालय वस्तुत: एक आदर्श घर होता है। यह जितना अधिक सुन्दर होगा, उतना ही बालक इसके पर्यावरण में रहने के लिए उत्सुक होंगे। प्राकृतिक सुन्दर वातावरण सबसे अधिक उपयुक्त होता है। एक अच्छे विद्यालय भवन के लिए निम्नलिखित तथ्यों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए–

(1) विद्यालय भवन मे एवं इसके आसपास वृक्षारोपण।

(2) विद्यालय भवन के परिक्षेत्र में समतल क्षेत्र का बनाना।

(3) विद्यालय भवन के उद्यान की उपयुक्त देखभाल, सामयिक फूलों का रोपण, घास की समय-समय पर कटाई।

(4) मार्ग के दोनों ओर ईटों की पंक्तियाँ तथा इनकी सफेद रंग से ढुलाई।

(5) दीवालों की सफेद अथवा ऐसे रंगों से पुताई, जो सादगी का प्रतीक हो।

(6) भवन के कमरों को सुन्दर चार्ट एवं चित्रों से अलंकृत करना।

(7) उपर्युक्त स्थानों पर श्यामपट्ट, बुलेटिन बोर्ड, सूचना-पट्ट आदि लगाना।

नोट

## विद्यालय भवनों के निर्माण के प्रकार

आज हमें अनेक प्रकार के भवनों की योजनाएं प्राप्त हैं। कुछ निम्नलिखित हैं–

(1) ई प्रकार का भवन

(2) एच प्रकार का भवन

(3) यू प्रकार का भवन

(4) टी प्रकार का भवन

(5) एल प्रकार का भवन

(6) आई प्रकार का भवन

(7) वाई प्रकार का भवन

विद्यालय भवन के निर्माण करते समय किस प्रकार के भवन की योजना को चयन किया जाये, यह निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए–

(1) छात्रों की संख्या

(2) भवन निर्माण क्षेत्र का धरातल

(3) स्थिति

(4) भावी विस्तार की संभावनाएँ

(5) विद्यालय भवन के उद्देश्य–विद्यालय के प्रकार के आधार पर आदि।

यह तथ्य यहाँ ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त तथ्य केवल सुझाव मात्र हैं, अन्तिम और पूर्ण नहीं है। इस सम्बन्ध में यह श्रेयस्कर रहेगा कि किसी इन्जीनियर या भवन डिजाइनर से परामर्श कर लिया जाये तथा भवन निर्माण में उसकी विशिष्ट सेवाओं का उपयोग किया जाए।

भवनों में प्राय: अनेक दोष रह जाते हैं। इस सम्बन्ध में श्री जसवन्त सिंह ने ठीक ही लिखा है "भवन के कक्ष या तो अत्यन्त विशाल, अत्यधिक प्रकाशयुक्त अथवा प्रकाश रहित, छतें अत्यधिक ऊंची या अत्यधिक नीची होती हैं।"

नोट्स "आदर्श रूप से भवन निर्माण की योजना उपलब्ध स्थान, कार्य प्रायोजना तथा रुचिप्रद निर्माण कला की दृष्टि से बननी चाहिए। गांव में उसकी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि जिस पर स्थानीय समुदाय गर्व कर सके। वस्तुत: कुछ उन्नत तथा धनाढ्य देशों में विद्यालय अत्यन्त सुरम्य भवनों में चलते हैं, जो न केवल बालकों की शिक्षा के प्रेरणास्पद केन्द्र होते हैं, अपितु सामुदायिक जीवन के भी केन्द्र होते हैं"

## विद्यालय भवन की कतिपय योजनाएँ

भारत की आर्थिक सीमाओं में जहाँ शिक्षा पर सकल आय का केवल 4 प्रतिशत से कम व्यय हो, वहाँ विद्यालय भवन निर्माण से पहले अनेक प्रश्न उठते हैं। नयी शिक्षा नीति (1986) के सन्दर्भ में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार लगभग आधे से अधिक विद्यालय बिना भवनों के चलते हैं। जहाँ भवन हैं, वहाँ प्राथमिक आवश्यकताओं, यथा–शिक्षक के बैठने की व्यवस्था नहीं है, टाट-पट्टियाँ नहीं हैं, श्यामपट्ट नहीं है और यहाँ तक कि छात्रों के लिए पीने के पानी की सुविधा भी न हो, तब आलीशान भवन की बात कल्पना मात्र प्रतीत होती है।

नोट

विद्यालय भवनों के सन्दर्भ में दो विचार हैं–

प्रथम विचार के अनुसार विद्यालय के भवन आलीशान व विभिन्न उपकरणों से पूर्णतया सुसज्जित हों। इसके विपरीत दूसरी विचारधारा के अनुसार 'एक वृक्ष, एक विद्यालय' ही हमारे यहाँ दशाओं में उपयुक्त है। इस सन्दर्भ में ऐसा लगता है कि दोनों ही स्थितियाँ अतिवादी है। हमारी आर्थिक सीमाओं में साधारण परन्तु हमारी समग्र आवश्यकताओं को पूरा करने वाला विद्यालय भवन सर्वथा उपयुक्त है।

विद्यालय भवनों के भिन्न-भिन्न प्रकार हो सकते हैं, 'खुली हवा में विद्यालय' संकल्पना से लेकर, पूर्ण सज्जित भवनों की योजनाएँ हमें उपलब्ध हैं। अत: यहाँ हम खुली हवा का विद्यालय से विद्यालय भवनों पर विचार करते हैं।

## खुली हवा में विद्यालय

इस प्रकार के विद्यालयों की कल्पना की पृष्ठभूमि में आर्थिक सीमाओं के साथ-साथ यह विचार भी रहा है कि अधिगम मात्र भवनों में ही नहीं होता, बाह्य पर्यावरण में यह सहजता से होता है, क्योंकि खुली हवा में इन्द्रियों को अधिक सक्रिय पर उनसे ज्ञानार्जन कराया जा सकता है। प्रकृति स्वयं शिक्षक है, फिर यदि प्राकृतिक पर्यावरण मिले तो कहना ही क्या है? हमारे प्राचीन गुरूकुलों की शिक्षा, वृक्षों के नीचे ही होती थी। रवीन्द्रनाथ टेगौर का शान्ति निकेतन भी वृक्षों की तले कक्षा-कक्ष वाला विश्वविद्यालय है।

परन्तु इस प्रकार के विद्यालय में शिक्षण का कार्य आसान नहीं है। यह ठीक है कि विज्ञान, सामाजिक ज्ञान, गणित, भूगोल आदि का ज्ञान प्रकृति में सहज ही दिया जा सकता है, शिक्षक द्वारा अधिगम पर्यावरण निर्माण इस दिशा में अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। समग्र प्रवृत्तियों और उनका आयोजन करने के लिए पूर्व योजना, शिक्षण कौशल आदि आवश्यक होंगे। परन्तु कुछ विषय ऐसे भी हैं जिनका शिक्षण उचित कमरों के बिना संभव नहीं है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) रिपोर्ट में इस सम्बन्ध में लिखा है–"खुली हवा की शिक्षा पद्धति के लिए विद्यार्थियों के छोटे-छोटे वर्ग होने चाहिए और सन्तोष–जनक शिक्षण के लिए काफी छायादार जगह की आवश्यकता होती है। कुछ विषयों का सैद्धान्तिक शिक्षण तो खुली हवा की कक्षाओं में दिया जा सकता है, परन्तु कुछ विषय ऐसे भी हैं जिनका शिक्षण उचित कमरों के बिना संभव नहीं है। अत: भवनों में प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों, कार्यशालाओं का उचित रूप से निर्माण किया जाना चाहिए।"

The open air system leads it self to small groups of students being taught there and it also requires good shade and large area for carrying instructions satisfactorily; while much theorititical instruction in certain subjects may be given in open air classes, it is impossible to teach certain other subject unless suitable accommodation is provided for them. Thus the laboratories, libraries and workshops should be located in buildings suitably constructed.

अस्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि बिना भवनों के विद्यालय चल सकते हैं। अधिकाधिक प्राथमिक स्तर पर तथा कुछ विषयों में माध्यमिक स्तर पर इस प्रकार का शिक्षण हो सकता है परन्तु हर विषय में नहीं। उच्च स्तरीय कक्षाओं के लिए विद्यालय भवनों की आवश्यकता होती है।

अत: कुछ विद्यालय भवनों की योजनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं–

चार शिक्षकों के लिए नाभिकीय विद्यालय भवन की योजना निम्नानुसार होगी–

(अ) न्यूक्लियस-स्टोर, कार्य बेंच, दरवाजे के पृष्ठ भाग में प्रदर्शन स्थल।

(ब) कक्षों और केन्द्रीय भाग को टिन, खपरैल से ढका जा सकता है जो कक्षा-कक्ष के कार्य में लिए जा सकते हैं।

(स) स्थलों में विभिन्न प्रवृतियों के लिए स्थानों का प्रयोग हो सकता है।

नोट

नाभिकीय विद्यालय भवन

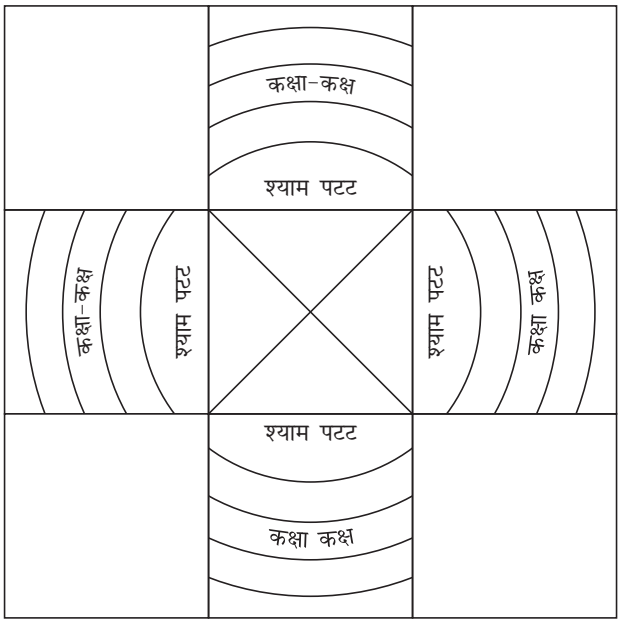


चित्र–1

## इस योजना के लाभ

(1) इस योजना के आधार पर निर्मित विद्यालय भवन बहुत कम लागत पर बनता है। साथ ही अधिकाधिक कार्य स्थान उपलब्ध हो जाता है।

(2) प्रत्येक संस्था या समुदाय की आर्थिक सीमा में रहकर निर्माण संभव है।

(3) शिक्षक के लिए श्यामपट्ट प्रदर्शन स्थल, उपकरण के लिए स्थान उपलब्ध रहता है। कम से कम स्थान पर अधिकाधिक कक्षाएँ तथा प्रवृतियों का संचालन संभव है।

प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के लिए यह भवन योजना सर्वथा अनुकूल है और यदि छात्र संख्या बढ़ती है तो तदनुसार नाभिकीय विद्यालय भवन बनाए जा सकते हैं। स्थानीय सहयोग से ये भवन आसानी से बनाए जा सकते हैं।

भवन बनाने से पूर्व भवन के स्थान का चुनाव सावधानी से किया जाना चाहिए। इसमें भविष्य की आवश्यकताओं का भी प्रावधान किया जाना आवश्यक है।

यदि पूर्व में मास्टर प्लान बना लिया जाये तो श्रेयस्कर है। भवन आकर्षक बने, इसके लिए उचित निर्माण शैली, निर्माण-सामग्री उपयुक्त रंगों का चुनना आदि पर ध्यान देना भी आवश्यक है।

## माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबंधन (Educational management at Secondary Levels)

मिडिल तथा माध्यमिक विद्यालयों में सर्वाधिक प्रचलित भवन योजनाएँ देखी जाती हैं वे हैं E, U तथा L प्रकार की। वस्तुतः हम प्रांरभ E टाइप से कर सकते हैं। भवन के लिए वित्तीय व्यवस्था होते ही 5, 6 कमरे एक सीधी पंक्ति में निर्माण कर देते हैं। तब यह भवन का प्रकार अंग्रेजी के वर्ण 'E' जैसा हो जाता है। जब हम और वित्तीय सहायता मिलने पर इसके एक छोर पर कुछ कमरे और बना लेते हैं तब हमारा विद्यालय भवन 'L' प्रकार की आकृति ले लेता है। और जब दोनों छोरों पर कमरे बन जाते हैं, तब 'U' आकृति का विद्यालय भवन हो जाता है और बीच में भी कोई हॉल या कमरे बन जाते हैं तब यह भवनाकृति E आकृति की हो जाती है।

नोट

वस्तुत: इन भवनों की आकृति की शैली बिना किसी शिल्पी या वास्तुकार के सहयोग के तैयार कर ली जाती है। जैसे-जैसे आर्थिक स्त्रोत्र प्राप्त होते जाते हैं E से E तक आकृति बन जाती है। परन्तु इसमें भी यदि पहले मास्टर प्लान बना लें तो यथास्थान प्रार्थना हॉल, प्रयोगशालाएँ, कार्यालय, स्टोर आदि का प्रावधान किया जा सकता है। इन प्रकारों की एक विशेषता यह है कि सभी कमरों में प्रकाश और हवा आसानी से सुलभ हो जाती है।

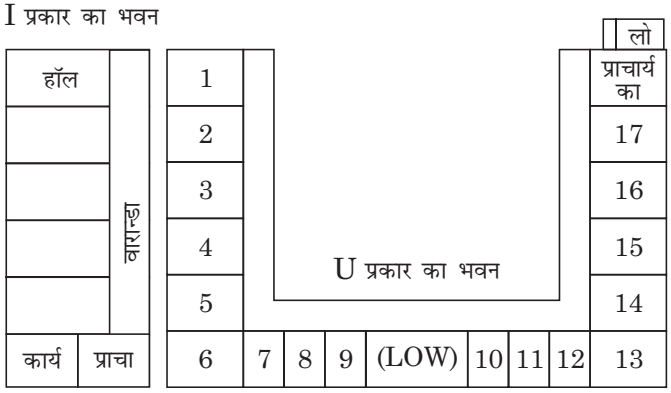


**चित्र संख्या–2**

ऊपर प्रदर्शित II तथा U प्रकार के विद्यालय भवन की योजना में जब केन्द्र में कुछ कक्ष और बना लिए जाते हैं तो यह E की आकृति हो जाती है। देखें चित्र नं. 3

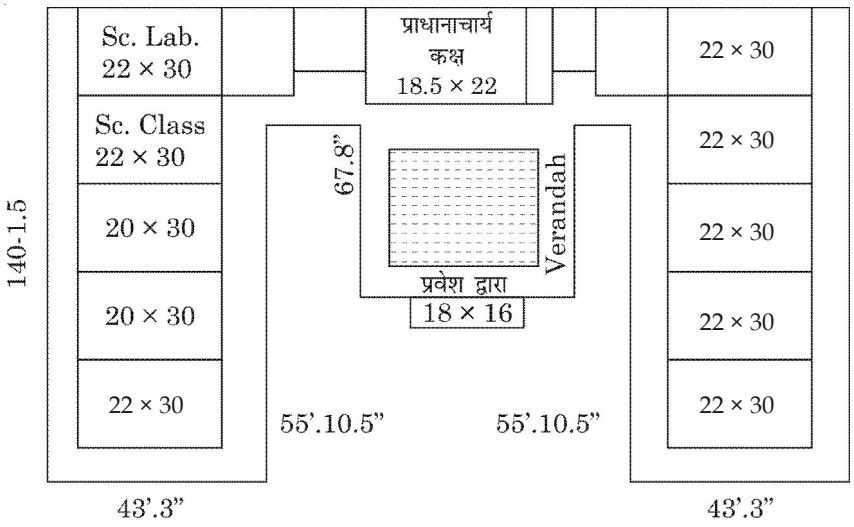


**चित्र संख्या–3**

**E आकृति विद्यालय भवन का प्रारूप**

इन भवनों के प्रकार के अलावा और भी अनेक प्रकार हो सकते हैं। विकसित भवन तकनीकी ज्ञान के कारण अनेक प्रकार के विद्यालय भवनों की डिजाइन हमें देखने को मिलती है।

यह विद्यालय मैनेजमेंट की योजना, आर्थिक स्थिति विद्यालय की आवश्यकता, भवन सामग्री के प्रकार की उपलब्धता, भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। आसाम, बंगाल में बांस के स्ट्रक्चर के भवन हो सकते हैं।

नोट

## अन्दर खुलने वाला बन्द प्रकार का विद्यालय भवन

निरन्तर बढ़ती असुरक्षा तथा स्थानाभाव की कमी के कारण बड़े नगरों में ऐसे विद्यालय भवन भी निर्मित कर दिए जाते हैं, जिनमें चारों और कक्षा-कक्ष होते हैं और बीच में खुला स्थान होता है। इस खुले स्थान को लॉन, खेलकूद आदि के कार्यों के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है।

अन्दर खुलने वाला विद्यालय भवन

Type design for a secondary school

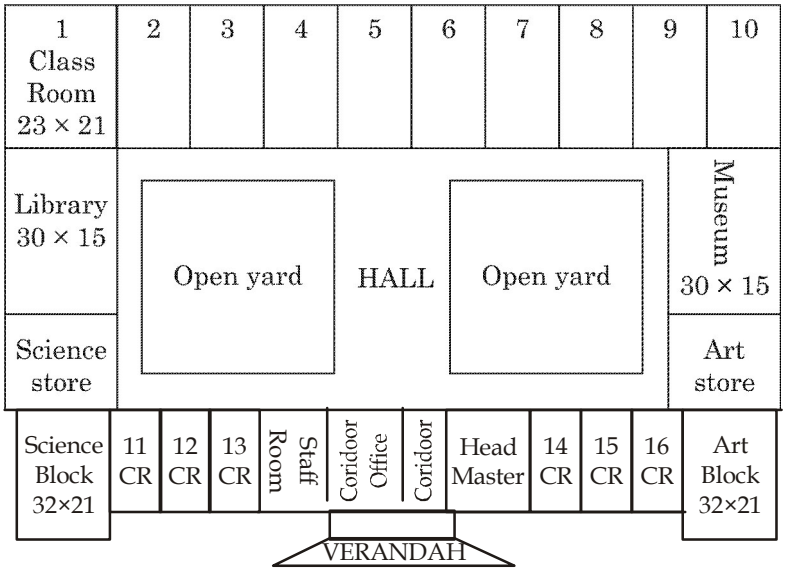


**चित्र संख्या – 46**

उपर्युक्त वर्णित विद्यालय भवनों के रेखा चित्र मात्र मार्गदर्शन के लिए हैं। वास्तुशिल्पी और नए आकार-प्रकार के आकर्षक विद्यालय भवनों की डिजाइन दे सकते हैं। परन्तु प्रभावी शिक्षा के लिए विद्यालय भवनों के अभाव को पूरा करना आवश्यक है।

## विद्यालयी भवनों की आम तौर पर स्थिति

नगरीय क्षेत्र के पब्लिक विद्यालयों को छोड़कर आम तौर पर विद्यालय भवनों की स्थिति ठीक नहीं है। राज पोषित विद्यालयों के भवनों की स्थिति कहीं और अधिक शोचनीय है। अधिकांश पुराने भवन हैं जिनकी स्थिति जर्जर है या विद्यालय भवन किराए पर है या कुछ विद्यालय भवन जनसहयोग से बने हैं। यथा संभव विद्यालयों के अपने भवन हों। जर्जर विद्यालयों की मरम्मत हो। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) इस सन्दर्भ में लिखता है–

(1) विद्यालय भवनों की वर्तमान असन्तोषजनक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि जिन विद्यालयों के स्वयं के भवन नहीं हैं उनके निर्माण के लिए आवश्यक कदम उठाएँ जाएं तथा नवीन भवनों में भावी नामांकन को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त भवन प्रदान किए जाऐ।

(2) विद्यालय भवनों के निर्माणार्थ केन्द्रीय तथा राज्य बजट में प्रावधान बढ़ाए जाएं और समान रूप से समुदाय के हिस्से के आधार पर समुदाय का सहयोग प्राप्त किया जाएं। भवन निर्माण के लिए अनुदान व कर्ज उदारता से दिए जाएं।

(3) केन्द्र व राज्य स्तर पर गठित विभिन्न समितियों की रिपोर्ट, केन्द्रीय शिक्षा विभाग, निर्माण मंत्रालय व योजना आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, केन्द्रीय भवन अनुसंधान रुड़की द्वारा कम लागत में भवन निर्माण के लिए मार्गदर्शन दी जाएं।

नोट

(4) ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय भवन सामग्री तथा स्थानीय पहल को प्रोत्साहित किया जाएं।

देश में बढ़ती शिक्षा की मांग को देखते हुए भवनों की उपलब्धता के लिए उपर्युक्त कदम उठाए जाने आवश्यक हैं।

### छात्रावास

छात्रावास विद्यालय की तब अनिवार्य आवश्यकता है, जब उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थी दूरस्थ स्थानों के हों। प्राय: प्राथमिक स्तर तथा मिडिल स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में इनकी आवश्यकता नहीं होती। यदि विद्यालय की शैक्षिक उपलब्धियाँ प्रशंसनीय हैं तो स्वाभाविक है कि बाहर से भी अभिभावक ऐसे विद्यालय में अपने बालकों को पढ़ने के लिए भेजना चाहेंगे। अत: हर अच्छे कार्य करने वाले विद्यालय के लिए छात्रावास की आवश्यकता है। यह आज ही नहीं, अपितु हमारी प्राचीन परम्पराओं में भी था। गुरूकूल में छात्रावास की आवश्यकता होती थी। अत: यह सर्वथा उपयुक्त होगा कि छात्रावास निर्माण योजना पर भी विचार किया जाए।

छात्रावास के साथ उपयुक्त खेल के मैदान, व इन्डोर गेम्स की व्यवस्था होने से छात्रों का समुचित शारीरिक विकास भी होता है तथा जीवन में खेल की भावना का विकास होता है और उसमें समुचित प्रवृत्तियाँ आयोजित होती हैं, तब छात्रों में नैतिक एवं मानसिक विकास के अवसर भी बढ़ जाते हैं।

किसी विद्यालय में छात्रावास की व्यवस्था करने से पूर्व निम्नलिखित तथ्य भी विचारणीय हैं–

(1) छात्रावास कितने विद्यार्थियों के लिए हो? जिससे उनके रहन-सहन में कठिनाई न हो।

(2) छात्रावास के साथ भोजन के लिए अन्नपूर्णा की व्यवस्था हो या मेस की व्यवस्था हो।

(3) छात्रावास भवन, मुख्य विद्यालय भवन के न बहुत पास हो और न दूर हो।

(4) छात्रावास के आसपास का पर्यावरण सुरम्य हो। उपयुक्त पेड़-पौधों, लॉन की व्यवस्था हो।

(5) छात्रावास में इन्डोर खेलों की समुचित व्यवस्था हो।

(6) इनमें उपयुक्त सांस्कृतिक प्रदर्शनियाँ आयोजित होती रहनी चाहिएं।

(7) यह ध्यान रहे कि छात्र घर से दूर हैं तथा विद्यालय संरक्षण में हैं, अत: वार्डन का व्यवहार, स्नेहयुक्त, सहयोगपूर्ण व अभिभावक तुल्य हो, जिससे उन्हें घर का अभाव महसूस न हो।

(8) प्राचार्य जी की अध्यक्षता में शिक्षक, विद्यार्थी तथा संभव हो तो अभिभावकों के साथ बैठकर छात्रावास के दैनिक कार्यक्रम तय किये जाने चाहिएं ताकि आवासीय छात्रों का नियमित जीवन हो सके।

### छात्रावास जीवन

छात्रावास का जीवन वस्तुत: सहयोग व साहचर्य का जीवन है। सामान्यत: छात्रावासों में तीन प्रकार की पद्धति अपनाई जाती हैं–

(1) डॉरमेन्ट्री पद्धति (2) कॉटेज पद्धति एवं (3) हाउस पद्धति।

जहाँ बड़े-बड़े हॉल हैं और छात्र संख्या अधिक है, वहाँ डॉरमेन्ट्री शैली पर छात्रों को आवासीय सुविधा प्रदान की जाती है। इस शैली में छात्रों को वैयक्तिक ढंग से अध्ययन करने में असुविधा होती है।

कॉटेज पद्धति में 2, 3 विद्यार्थी एक साथ रहते हैं। प्राय: प्रत्येक कक्ष ही कॉटेज हो जाता है। समान रूचि व पसंद के छात्रों के अनुरूप प्रत्येक कॉटेज में छात्रों को आवास की सुविधा दी जाती है।

'हाउस' पद्धति वस्तुत: निवास की पद्धति नहीं है, वरन् विभिन्न छात्रावासों के छात्रों के मध्य प्रतिस्पर्धा पूर्ण कार्यक्रम संचालित करने की पद्धति है। यह पद्धति वहीं सक्रिय रूप से लागू की जा सकती है जहाँ एक से अधिक छात्रावास हों। बड़े-बड़े महाविद्यालयों, प्रादेशिक विद्यालयों में जहाँ विभिन्न राज्यों, जिलों से छात्र आते हैं, वहाँ राज्यों के नाम से और जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ महापुरुषों के नाम से छात्रावासों के नाम रख दिए जाते हैं।

नोट

छात्रावास जीवन में सहजता, परस्पर स्नेह, सहयोग व साहचर्य तभी आ पाता है, जब छात्रावास प्रबन्ध स्पष्ट नियमों पर आधारित होता है, जहाँ प्रबन्ध और छात्रों के मध्य अच्छी समझ होती है और कार्यक्रम परस्पर साझेदारी से बनाए व लागू किए जाते हैं।

### छात्रावास प्रबन्ध

छात्रावास प्रबन्धन वस्तुतः उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि विद्यालय प्रबन्धन। इस सन्दर्भ में रायबर्न लिखते हैं कि "छात्रावास प्रबन्धक का कार्य अत्यन्त कठिन है, जिसके लिए धैर्य, कौशल, वैज्ञानिक दृष्टिकोण व चतुराई की आवश्यकता है।"

छात्रावास व्यवस्था सुचारू रूप से चले, इसके लिए होस्टल वार्डन को पूर्ण विवेक के साथ योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना होता है। इसके लिए छात्रावास व्यवस्थापक (वाडन) को हर समय चौकस रहना होता है।

एक अच्छा छात्रावास वार्डन, दृढ़ चरित्र एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार वाला होना चाहिए। नियमित व संयमी वार्डन ही विद्यार्थियों की प्रशंसा अर्जित कर सकता। उसे सभी व्यसनों से मुक्त होना चाहिए। अन्यथा होस्टल भी बिना व्यसनों के नहीं रह पाएगा। कुशल प्रबन्धक, शन्ति व धैर्य से छात्रों की बात सुनने वाला, निष्पक्ष, दूरदर्शी व्यवस्थापक ही अच्छे छात्रावास व्यवस्थापक के रूप में छात्रों पर नियन्त्रण रखते हुए छात्रावास की कुशल व्यवस्था प्रदान कर पाने में सक्षम होते हैं।

छात्रावास सम्बन्धी कतिपय कार्य निम्नानुसार हैं–

(1) छात्रों के आवास की व्यवस्था सम्बन्धी
(2) भोजन व्यवस्था
(3) जल व्यवस्था
(4) छात्रावास सफाई
(5) प्रकाश व्यवस्था
(6) छात्रावास, खेलकूद तथा अन्तः छात्रावास कार्यक्रम
(7) छात्रावास सुरक्षा
(8) छात्रावास पर्यवेक्षण
(9) अनुशासन व नियंत्रण

### छात्रावास सम्बन्धी सामान्य समस्याएँ

छात्रावास के सम्बन्ध में आये दिन कुछ न कुछ समस्याएँ आती रहती हैं। इनमें से कतिपय निम्नानुसार हैं–

(1) छात्रों का बिना अनुमति के बाहर रहना या चले जाना,
(2) छोटे छात्रों के साथ अस्वाभाविक सम्बन्ध,
(3) परस्पर साथी छात्रों, चौकीदार व सहायकों के साथ दुर्व्यवहार,
(4) कमरों के सामान की चोरी,
(5) बाहर के व्यक्तियों का छात्र-अभिभावक या सम्बन्धी बनकर ठहरना,
(6) परस्पर छात्रों का लेन-देन, बाद में विवाद का कारण,
(7) विभिन्न छात्रावास समितियों के चुनावों को लेकर परस्पर मन-मुटाव,
(8) छात्रावास-गैस समिति के लेखे-जोखे की समस्या। एवं
(9) महिला छात्रावासों में बाहर से मिलने वाले, पुरुष छात्रों के पत्रों का सहायकों या अन्य माध्यमों से आदान-प्रदान।

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त अन्य समस्याएँ भी हो सकती हैं जिन्हें वार्डन अपने विवेक तथा नियमानुसार अधिकार क्षेत्र से सम्बन्धित व्यक्तियों के परामर्श, निर्णय आदि लेकर हल कर सकता है।

नोट

*क्या आप जानते हैं* छात्रावास छात्रों में सामूहिक जीवन जीने की कला विकसित करने का उपयुक्त स्थल है। ये ऐसे स्थान हैं, जहाँ विद्यार्थी भावी जीवन के लिए सहयोग, साहचर्य और आत्मनिर्भरता का जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण लेते हैं। इससे उनमें स्वशासन, आत्मनिर्भरता, परस्पर सहयोग, स्व निर्णय आदि गुणों का विकास होता है जो किसी भी जनतन्त्रीय शासन व्यवस्था के नागरिकों के विकास के लिए आवश्यक है।

## विद्यालय प्रयोगशाला

विज्ञान और तकनीकी विकास ने आज हर विषय का इतना विकास किया है कि समग्र जीवन किसी एक विषय की शाखा पर अध्ययन के लिए लगाया जाये, तब भी जीवन की अवधि कम पड़ेगी। इस स्थिति ने लगभग प्रत्येक विषय में शोध-खोज, प्रयोग के द्वारा शोध निष्कर्ष निकालने के लिए तथा छात्रों को भावी जीवन में प्रयोग व शोध करने के लिए प्रशिक्षित करते हुए स्वयं द्वारा निष्कर्ष निकालने हेतु अवसर प्राप्त करने के लिए प्रयोगशालाओं की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। प्रयोगशाला वस्तुत: इस सिद्धान्त को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए आवश्यक है, जिसमें छात्र स्वयं करके सीखते हैं।

आज शिक्षा के स्वरूप और शिक्षण पद्धतियों के सम्बन्ध में यह तथ्य स्वीकार किया गया है कि बजाय ज्ञान देने के, ज्ञान कैसे अर्जित किया जाये, यह जानना अधिक आवश्यक है। एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए यह और भी आवश्यक है जो ज्ञानोत्सुक हैं, सीखना चाहता है। उसे ऐसी परिस्थिति प्रदान करना जिसमें ज्ञानार्जन किया जा सकता है, यही आज शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है और इसमें हमारी विद्यालय की प्रयोगशालाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान अदा कर सकती है।

सामान्यतया जब हम प्रयोगशाला की बात करते हैं तब हमारा ध्यान केवल विज्ञान प्रयोगशालाओं पर जाता है। परन्तु आधुनिक युग में अच्छे विद्यालयों में विज्ञान विषयों के अतिरिक्त भूगोल, अथवा भाषाओं की भी प्रयोगशालाएँ हो सकती हैं, मनोविज्ञानशाला, निर्देशन कक्ष भी आज तनावग्रस्त समाज के लिए आवश्यक प्रयोगशालाएँ बन गई हैं। कम्प्यूटर के प्रयोग ने कम्प्यूटर प्रयोगशाला की अनिवार्यता स्वत: सिद्ध कर दी है।

### महत्व

स्वयं करके सीखने हेतु विषय के अनुरूप उचित पर्यावरण प्रदान करने के लिए, एक ही स्थान पर विषय की अधिगम सामग्री की उपलब्धता के लिए, विषय में अधिकाधिक रुचि के लिए व प्रेरणा के लिए प्रयोगशालाओं की परमावश्यकता है। कार्य और कारण के सम्बन्धों को जोड़ने, तर्कपूर्ण विचार कर निर्णय लेने, छात्रो में रचनात्मक शन्ति के विकास के लिए भी प्रयोगशालाओं की आवश्यकता है। सिद्धान्तों को परखने व पुष्ट करने के लिए सिद्धान्त निर्माण हेतु आवश्यक प्रक्रिया जानने के लिए समालोचनात्मक दृष्टिकोण पौषित करने के लिए भी प्रयोगशालाओं की नितान्त आवश्यकता है।

वस्तुत: विद्यालय की ये प्रयोगशालाएँ जीवन की प्रयोगशालाओं की पूरक है। तर्कपूर्ण ढंग से विवेचना के बाद, किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रशिक्षण, व्यावहारिक जीवन में उतना ही आवश्यक है, जितना की प्रयोग आधारित निष्कर्ष निकालने में। सामाजिक जीवन में भी आए दिन अनेक सामाजिक समस्याएँ आती हैं, जिनका हल छात्र प्रयोगशाला पद्धति से निकाल सकते हैं। इस तरह के निर्णय लेने से उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। सामूहिक रूप से परस्पर सहयोग के साथ कार्य करने में सामाजिक भावना का भी विकास होता है।

## प्रयोगशाला संगठन के आधार

सामान्यतया विद्यालयों में भौतिक, रासायनिक, जीव विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा विज्ञान, भूगोल कक्ष की व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था के लिए निम्न तथ्यों पर भी ध्यान देना समीचीन है–

नोट

विषय की आवश्यकतानुसार प्रयोगशाला का चुनाव किया जाये। उदाहरणार्थ रासायनिक प्रयोगशाला भवन एक तरफ ऐसे स्थान पर हो जहाँ से गैसों के निकलने से, समीपस्थ कक्षाओं के विद्यार्थियों पर प्रभाव न पड़े। भूगोल विषय की प्रयोगशाला भी ऐसे स्थान पर हो, जहाँ से मौसम निरीक्षण की सुविधा हो और वायु तथा वर्षा के प्रभाव का स्थानीय परिवेश में निरीक्षण किया जा सके। जहाँ तक हो प्रत्येक विषय की अलग-अलग प्रयोगशालाएँ हों तो श्रेयस्कर है।

प्रयोगशाला के कक्ष के चुनाव के समय तत्सम्बन्धी सामग्री के भण्डारण के लिए भी स्थान होना चाहिए अथवा संलग्न स्टोर होना चाहिए। हवा निकलना, जल-व्यवस्था व प्रकाश-व्यवस्था पर भी समुचित ध्यान देना आवश्यक है। जहाँ प्रयोगशालाओं में विद्युत उपकरणों का प्रयोग हो, उपयुक्त बिजली की फिटिंग की भी व्यवस्था होना आवश्यक है। आवश्यकतानुसार प्रयोग करने से पूर्व पहिनने के एप्रिन भी होनी उचित है। अन्यथा प्रायः कपड़ों पर रसायन आदि गिरने से वे खराब हो जाते हैं।

विषय के अनुसार उपयुक्त साज-सज्जा/फर्नीचर प्रयोगशाला को आकर्षक बना देते हैं। इससे छात्रों को प्रयोगशाला में अधिकाधिक बैठने के लिए प्रेरणा मिलती है।

प्रयोगशाला की आवश्यकतानुसार स्टूल, प्रदर्शन मेजें, उपकरणों, प्रयोग करने वाले छात्रों के अनुपात में सामग्री तथा उपकरण होने आवश्यक हैं। कभी-कभी रसायन गिरने से दुर्घटना भी हो जाती है। इस स्थिति में प्राथमिक चिकित्सा की भी व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही प्रयोशाला में हर वस्तु का स्थान निश्चित कर देना चाहिए जिससे कभी भी किसी को भी आवश्यक सामग्री मिल सके।

प्रयोगशाला प्रभारी के साथ-साथ प्रयोगशाला सहायक की भी अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि प्रयोग उक्त प्रभारी के ही मार्गदर्शन में होने चाहिए।

प्रत्येक प्रयोगशाला में सम्बन्धित प्रयोगों के सम्बन्ध में आवश्यकता पड़ने पर सम्बन्धित साहित्य भी यदि उपलब्ध हो तो श्रेयस्कर है।

प्रयोग से पूर्व छात्रों को उपकरणों की जानकारी तथा प्रयोग प्रक्रिया का प्रदर्शन करना चाहिए तथा विद्यार्थियों को प्रदर्शन के बाद जिज्ञासा से उठे प्रश्नों का समाधान किया जाना चाहिए। सभी प्रयोगों में जहाँ कठिनाई हो या शंका हो, आवश्यकतानुसार छात्रों की सहायता करनी चाहिए।

प्रयोगशाला की प्रत्येक वस्तु कर विशेषकर रसायनों और अवयवों की बोतलों पर सुस्पष्ट भाषा में वस्तु का नाम लिखा जाना चाहिए, अन्यथा जरा सी भूल से दुर्घटनाएँ हो सकती हैं।

प्रत्येक प्रयोगशाला में कतिपय आवश्यक निर्देश लिखकर टांगने से प्रयोगशाला में प्रयोग करते समय छात्र सावधान रखते हैं। आधुनिक कम्प्यूटर प्रयोगशाला में प्रवेश के लिए जिस प्रकार धूल, पर्यावरण आदि के प्रभाव से बचाव किया जाता है उसी प्रकार सभी प्रयोगशालाओं की अपनी मर्यादाएँ हैं, जिन्हें मानना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक होना चाहिए।

## विद्यालयों में प्रयोगशालाओं की वर्तमान स्थिति

कुछ आर्थिक विषमताओं ने तो कुछ हमारे वैज्ञानिक अभिवृत्ति के अभाव ने विद्यालयों की प्रयोगशालाओं की वर्तमान स्थिति को अत्यन्त चिन्तनीय बना दिया है। पहले तो विद्यालयों में प्रयोगशालाएँ हैं ही नहीं, और जो हैं भी तो परीक्षा बोर्ड की औपचारिकता पूरी करने के लिए होती हैं। खेल है कि इन प्रयोगशालाओं के कपाट विद्यार्थियों के लिए कभी-कभी ही खुलते हैं, तथा उपलब्ध उपकरण तथा साज-सज्जा की धूल कभी-कभी झाड़ी जाती है और वह भी जबकि निरीक्षण होना हो अथवा वार्षिक बोर्ड की परीक्षा के लिए कुछ प्रयोग करने अनिवार्य हों। इसमें भी कुछ माध्यमिक शिक्षा बोर्डस ने कुछ वर्षों से 10वीं कक्षा तक विज्ञान जैसे विषयों में प्रयोग ही समाप्त कर दिए हैं, अब केवल सैद्धान्तिक शिक्षण मात्र होता है।

नोट

## सुझाव

प्रयोगशालाएँ भावी शैक्षिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। विज्ञान अथवा इससे मिलते-जुलते विषयों के लिए निम्नलिखित निर्देशन दिए जाने आवश्यक हैं–

(1) नवीन निर्मित प्रयोगशाला में 24 से 30 विद्यार्थियों को एक साथ बैठने की व्यवस्था के आधार पर योजना बननी चाहिए। इसके लिए 1000 वर्ग फीट स्थान आवश्यक है।

(2) प्रयोगशाला में मेज तथा उनके बीच सिंक की व्यवस्था हो, जिसमें निरन्तर जलापूर्ति की व्यवस्था भी हो।

(3) प्रयोगशाला में आवश्यक सामान रखने हेतु अलमारियाँ बनाई जाएँ।

(4) प्रत्येक वस्तु पर उसका स्पष्ट नाम अंकित किया जाये।

(5) गैस पाइप, विद्युत आपूर्ति तथा इसका फिटिंग समुचित हो।

(6) हवा निकलने के लिए रोशनदान हों। साथ-साथ बड़ी खिड़कियाँ जाली व कांच से युक्त हों।

(7) कमरे में अंधेरा बनाने के लिए काले पर्दे भी लगे हों।

(8) अध्यापक के प्रदर्शन मेज के पीछे श्यामपट्ट हो।

(9) सामान रखने के लिए स्टोर अथवा पर्याप्त अलमारियाँ होनी चाहिएं।

(10) प्रयोगशाला कक्ष को आकर्षक बनाने के लिए वैज्ञानिकों के चित्र प्रेरणास्पद हो सकते हैं।

## पुस्तकालय

पुस्तकों के सन्दर्भ में कहा गया है "पुस्तकें मात्र कागज और स्याही या कपड़े नहीं हैं वे व्यक्ति हैं। अधिकतर वे अमरों की साथी हैं जिन्होंने सदियों से ऋतुओं के प्रभाव को सहा है और वे अनन्त की और अग्रसर हो रही हैं।

पुस्तकालय विद्यालय का हृदय है जहाँ शिक्षकों और छात्रों के ज्ञान का स्पंदन सुनाई देता है। यह बौद्धिक प्रयोगशालाएँ जहाँ बौद्धिक क्रियाओं पर विभिन्न विद्वानों के ज्ञान का पठन व मनन द्वारा परीक्षण होता है।

अकादमिक जीवन के लिए पुस्तकालय भवन एक महत्वपूर्ण स्थान है शैक्षिक क्रियाकलापों के लिए यह केन्द्र का स्थान रखती है। जहाँ से शिक्षक व विद्यार्थी निरन्तर ज्ञानार्जन करते हैं। अधिगम कैसे किया जाये? का प्रारंभ पुस्तकालय से होता है। सभी शिक्षण विधियों तथा विषयों पर श्रेष्ठ पुस्तकें, पुस्तकालयों में होती हैं, जहाँ शिक्षक इनके आधार पर अपनी शिक्षण विधियों में सुधार लाता है। यहीं से नवीन ज्ञान की अभिवृद्धि करता है। पुस्तकालयों से ही पाठ्यक्रम समृद्ध होता है। ये वे स्थान हैं जहाँ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें विद्यार्थियों तक पहुँचाया जाता है। ये वे स्थान है जहाँ से शिक्षक व विद्यार्थियों की ज्ञान पिपासा शांत होती है और प्रेरणा प्राप्त होती है।

**पुस्तकालय के कार्य–**पुस्तकालय के निम्नलिखित कार्य हैं–

(1) पुस्तकें शिक्षकों के अनुदेशन कार्यों में योग देती हैं, यहीं विभिन्न विषयों पर पुस्तकें तथा सन्दर्भ पुस्तकें ज्ञान में वृद्धि करती हैं।

(2) विद्यार्थियों के स्वाध्याय को बढ़ावा देती है।

(3) पढ़ने की आदतों को पुस्तकालय के माध्यम से डाला जा सकता है।

(4) पुस्तकालय अच्छे साथी के रूप में पुस्तकों को पढ़ने को प्रोत्साहित करता है।

(5) पाठ्यक्रम को समृद्धि बनाने का कार्य करता है।

(6) सद्साहित्य पढ़ने को प्रोत्साहित करता है।

(7) बालकों में शब्दकोष, सन्दर्भ, ग्रन्थों आदि के उचित प्रयोग की कुशलता विकसित करता है।

## विद्यालय पुस्तकालयों की स्थिति

हमारे देश में विद्यालयी पुस्तकालयों की स्थिति शोचनीय है। अधिकांश विद्यालयों के पुस्तकालयों में पुरानी पुस्तकें

नोट

हैं जो छात्रों की रुचियों, आवश्यकता को ध्यान में रखकर नहीं खरीदी गई हैं। ये पुस्तकें भी अलमारियों में बंद रहती हैं और कदाचित ही इन्हें बाहर निकाला जाता है। जिन व्यक्तियों के संरक्षण में ये पुस्तकें हैं, वे या तो क्लर्क हैं अथवा शिक्षक जो अंशकालिक आधार पर कार्य करते हैं। इनको न तो पुस्तकों से प्रेम है और न ही पुस्तको में रुचि है और न ही पुस्तकालय विज्ञान का ज्ञान है। यहाँ पुस्तकालय सेवा व्यवस्था का कोई नाम नहीं है जो बालकों को अध्ययन करने तथा उनमें पुस्तकों के प्रति प्रेम जाग्रत कर सकें। माध्यमिक शिक्षा आयोग की इस सम्बन्ध में टिप्पणी उल्लेखनीय हैं।

The books are generally old, out dated, unsuitable usually selected with out reference to the students testes and interests. They are stocked in a few book selves, which are housed in an in adequate and unattractive room. The person inchange is often a clerk or an indifferent teacher who does this on part-time basis an has neither love for books nor knowledge of library techniques, naturally, therefore, there is nothing like an imaginative and well planned library service which could inspire students to read and cultivate in them a sincere love of books.

### पुस्तकालय कक्ष/भवन

पुस्तकालय सेवा के प्रभावी संचालन के लिए, पुस्तकालय भवन या अलग से कक्षा होना चाहिए। यह भवन केवल वर्तमान छात्र संख्या के आधार पर होना चाहिए। अत: पुस्तकालय भवन का क्षेत्रफल 20 ञ 30 के कक्षा कक्ष से प्रारंभ होकर 22 ञ 90 के हॉल या 30 ञ 90 के हॉल तथा एक स्टोर 15 ञ 20 का हो सकता है। इसकी स्थिति केन्द्रीय होना चाहिए ताकि शिक्षकों शोर विद्यार्थियों को पुस्तकालय की सुविधा आसानी से सुलभ हो। साथ ही उस स्थान से दूर हो जहाँ और शराबा होता हो। अत: जहाँ तक हो, खेल के मैदान, आवागमन मार्ग जिस पर भारी वाहन आते-जाते हैं, से दूर अवस्थित होना चाहिए।

पुस्तकालय में प्राकृतिक प्रकाश व हवा आनी चाहिए साथ ही विद्युत प्रकाश की आवश्यक व्यवस्था हो। भवन का फर्श आवाज़ नहीं करे ताकि गंभीर अध्ययन करने वाले छात्रों पर प्रभाव नहीं पड़े तथा संभव हो तो दरी या जूट का फर्श इस पर बिछाया जाना चाहिए।

पुस्तकालय भवन के साथ, स्टोर कक्ष हो जहाँ नयी आने वाली पुस्तकों तथा जिल्द चढ़ने वाली या ठीक की जाने वाली पुस्तकें, पुराने अखबार तथा पत्रिकाएँ रखी जा सकें।

**फर्नीचर**–पुस्तकालय का फर्नीचर आकर्षक होना चाहिए।

1. **मेजें**–इसमें पढ़ने वाली मेज़ व्यवस्था तथा कुर्सियाँ हों। इनका आकार 3 × 5 होना चाहिए।
2. **कुर्सियाँ**–कुर्सियाँ हल्की हों तथा मजबूत हो और बिना हत्थों की होनी चाहिए जिन्हें आसानी से उठाया जा सके तथा मेजों की ऊंचाई के अनुरूप हों।
3. **पत्रिका स्टैण्ड**–पत्र-पत्रिकाओं के लिए मेग्जीनस्टैण्ड हो जहाँ उन्हें प्रदर्शित किया जा सके।
4. **डिस्प्ले बोर्ड**–2-4 डिस्प्लेबोर्ड होने चाहिए जिन पर पुस्तकालय नियम, नवीन पुस्तकों का प्रदर्शन, सूचना प्रदर्शन किया जा सके।
5. **पुस्तकालय की मेज/काउण्टर**–लाइब्रेरियन के लिये काउण्टर या मेज हो जहाँ से पुस्तकें छात्रों को अवदान की जा सके।
6. **कार्ड तालिका बॉक्स**–पुस्तकों की तलाश में कार्ड तालिका बॉक्स बहुत उपयोगी होता है।
7. **पुस्तकों की अलमारियाँ**–पुस्तकालय के लिए अलग से अलमारियाँ बनती हैं, इन्हें ही मंगाना चाहिए।
8. उपर्युक्त के अतिरिक्त सफाई, उपयुक्त सादा परन्तु आकर्षक साजसज्जा पुस्तकालय के लिए आवश्यक है।

### पुस्तकालय सामग्री का चयन

पुस्तकालय सामग्री के चयन–

(1) पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं के चयन के समय बालकों की रूचि व स्तर को ध्यान रखना चाहिए। इसमे सम्बन्धित

नोट

पुस्तकें, कहानी संग्रह, मानवीय गुणों के विकासार्थ सद-साहित्य हो सकता है।

(2) इस सामग्री के चयन में शिक्षकों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

(3) पुस्तकों के चयन में निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान आवश्यक है–

1. पुस्तकों की जिल्द-पुस्तक के अधिकाधिक उपयोग के कारण, सजिल्द पुस्तकें ही लाइब्रेरी के लिए क्रय की जानी चाहिए।
2. पुस्तक का बाह्य स्वरूप आकर्षक होना चाहिए।
3. कागज अच्छा हो, तो जल्दी फटे नहीं।
4. छपाई स्पष्ट हो। आजकल ऑफसेट तथा कम्प्यूटरीकृत प्रिंटिंग की सुविधा है। अत: इन्हीं के द्वारा प्रिंटेड पुस्तकें अब क्रय की जानी चाहिए।

## पुस्तक चयन व क्रय के लिए समितियाँ

पुस्तकों के चयन तथा क्रय के लिए अलग-अलग समिति होनी चाहिए। पुस्तकालय प्रभारी व 2 वरिष्ठ अध्यापक पुस्तक चयन समिति में होने चाहिए। पुस्तक चयन समिति, स्टाफ से छात्र व उनकी आवश्यकता के आधार पर पुस्तकों, संदर्भ, ग्रन्थों तथा पत्र पत्रिकाओं के क्रय के लिए लिखित मांग तथा राय आमंत्रित करे। तदनुसार ही जांच के बाद, पुस्तकालय-पुस्तक चयन समिति की अनुसंशा पर पुस्तकें क्रय की जाये।

पुस्तक क्रय समिति, सरकार द्वारा निश्चित अथवा सम्पर्क के आधार पर उचित कमीशन लेकर पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ क्रय कर सकती है।

## पुस्तकालयाध्यक्ष के कार्य

(1) पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं का वर्गीकरण करना।

(2) पुस्तकें अवदान के नियम तैयार कराकर पुस्तकालय समिति से लागू कराना।

(3) पुस्तकों का निर्धारित संख्या में अवदान करना।

(4) उत्तम, आवश्यक पुस्तकों की सूची तैयार करना।

(5) पुस्तकों की संख्या व सुरक्षा रखना।

(6) अधिकाधिक पुस्तकों के क्रय को प्रोत्साहित करना।

(7) सूचना-पट्ट पर उपयोगी पुस्तकों का प्रदर्शन करना।

(8) पुस्तक इन्डेक्स पूरा करना तथा नवीन पुस्तकों को यथाशीघ्र इसमें सम्मिलित करना।

## प्रधानाध्यापक की भूमिका

प्रधानाध्यापक, पुस्तकालय का संरक्षक है। क्योंकि पुस्तकालय विद्यालय अकादमिक गतिविधियों से सम्बन्धित है अत: इनके विस्तार के लिए पुस्तकालय समिति गठित करे। समिति के माध्यम से ही पुस्तकें पत्र-पत्रिकाएँ क्रय हों तथा उचित संरक्षा, पुस्तकों के अवदान की रिपोर्ट त्रैमासिक मांगी जाये। स्वयं भी यदा-कदा पुस्तकालय व्यवस्था का निरीक्षण करे तथा पुस्तकालय समृद्धि के लिए आवश्यक बजट उपलब्ध कराए। स्थानीय समुदाय से भी इस सम्बन्ध में सहयोग लिया जा सकता है तथा समुदाय के लिए भी वाचनालय उपलब्ध कराया जा सकता है।

## छात्रावास

छात्रावास विद्यालय की अनिवार्य आवश्यकता है। यह सामूहिक जीवन जीने का स्थान है जो आत्मनिर्भरता का विकास करता है। छात्रावास का जीवन ही सहयोग, साहचर्य का जीवन है। छात्रावास की तीन प्रमुख पद्धतियाँ होती हैं–(1) डॉरमेंट्री पद्धति (2) कॉटेज पद्धति (3) हाउस पद्धति। छात्रावास प्रबन्ध अपने में अत्यन्त जटिल व कठिन है। इसमें धैर्य, कौशल, सकारात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। सर्वोपरि वार्डन की आत्मीय व्यवहार है। छात्रावास की

नोट

अनेक समस्याएँ होती हैं, जिन्हें उचित योजना, प्रधानाध्यापक, शिक्षकों व विद्यार्थियों के सहयोग से, विवेक व नियमों से हल कर सकता है।

विद्यालय प्रयोगशालाओं का विशेषकर विज्ञान व पर्यावरण विषयों के लिए अत्यन्त महत्व है। इनका उचित रख-रखाव, साज सज्जा, फर्नीचर प्रयोगशाला को आकर्षित बनाते हैं। प्रयोगशाला प्रभारी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें वह सहायकों व छात्रों के सहयोग से व्यवस्था प्रदान कर सकता है। प्रयोगशालाएँ, प्रयोग के लिए हैं, यह सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए। प्रयोगशालाओं के रख-रखाव व प्रयोग की स्थिति चिन्तनीय है। हाल ही में माध्यमिक कक्षाओं के प्रयोग ही समाप्त कर दिए है, यह एक चिन्ता की बात है।

### स्व-मूल्याँकन (Self Assessment)

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए** (Fill in the blanks)–

1. विश्वविद्यालय की स्थिति ..... से बाहर होनी चाहिए।
2. भारी वाहनों का आवागमन, नगरीय कचरा संग्रह स्थल ..... के विपरीत होता है।
3. विद्यालय के निकट पार्क की उपस्थिति, स्वास्थ्य केन्द्र एवं ..... की स्थिति उपयोगी होती है।
4. ..... में अवस्थित विद्यालय जो आँखों व मन को अच्छा लगे, होना चाहिए।

## 3.3 उच्च स्तर पर शैक्षिक प्रबंधन (Educational management at higher Levels)

### विद्यालय कार्यालय की आवश्यकता

विद्यालय प्रबन्ध/प्रशासन के लिए कार्यालय माध्यम होता है जहाँ से प्रबन्ध नीति सम्बन्धी आदेश प्रसारित होते हैं, आदेश प्रसारित होते हैं, आदेशों की क्रियान्विति की पहल होती है व मूल्याँकन होता है। यह वह स्थान है जिसकी स्थापना, संगठन की स्थापना के साथ होती है। संगठन की स्थापना से लेकर अन्त तक विविध अभिलेख, प्रतिवेदन, रजिस्टर संधारित किए जाते हैं। प्रधानाध्यापक के लिए तो कार्यालय वह आधार है जहाँ से सम्पूर्ण विद्यालय के कार्याकलाप नियंत्रित होते हैं। मुखर्जी ने कार्यालय को विद्यालय तन्त्र का केन्द्र कहा है, क्योंकि यही वह स्थान है जहाँ विद्यालय की महत्वपूर्ण नीतियों पर चर्चा होती है स्टाफ के साथ बैठकें होती हैं, अभिभावकों एवं अतिथियों का स्वागत होता है। मुखर्जी इसके महत्व के सन्दर्भ में लिखते हैं–यह (कार्यालय) प्रधानाध्यापक के लिए घर का आधार (Home Base) शिक्षकों के लिए व्यावसायिक केन्द्र तथा समग्र विद्यालय के लिए सेवाकेन्द्र हैं।

It serves as a home-base for the principal, Professional Centre for the Teachers and the Service Centre for the entire School.

### कार्यालय कक्ष

कार्यालय कक्ष वस्तुत: विद्यालय की गतिविधियों का केन्द्र व समन्वयक है, अत: इसकी स्थिति विद्यालय भवन में केन्द्रीय होनी चाहिए। यह इसलिए भी आवश्यक है कि विद्यालय के कार्य से सम्पर्क हेतु आने वाले आगन्तुकों की पहुँच में यह आसान हो।

आधुनिक माध्यमिक विद्यालय कार्यालय के लिए निम्नानुसार कक्ष अपेक्षित हैं–(1) प्राचार्य कक्ष, (2) प्राचार्य विश्राम के लिए छोटा कक्ष, (3) आगन्तुओं के लिए प्रतीक्षा कक्ष, (4) लिपिक वर्ग के कार्य करने का अलग कक्ष, (5) स्टोर कक्ष, कार्यालय रिकार्ड व विद्यार्थियों के लिए विभिन्न अध्ययन-अध्ययन सामग्री के लिए। यह भी अपेक्षा की जाती है कि जहाँ तक सम्भव हो, कार्यालय आकर्षक, हवादार, आधुनिक युग की मांग के अनुसार सुसज्जित (कम्प्यूटर, दूरभाष सहित) हो। स्टाफ रूप भी पास में हो जहाँ से शिक्षकों को आवश्यकता पड़ने पर बुलाया जा सके। प्राचार्य कक्ष तथा आगन्तुक प्रतीक्षा कक्ष ऐसा हो जिससे प्रवेश के साथ ही आगन्तुक पर आकर्षक प्रभाव पड़े। दीवालों पर आकर्षक रंग पेंटिग्स हों तथा आकर्षक फर्नीचर हो। क्योंकि आकर्षक फर्नीचर प्रभाव को और बढ़ा देता है।

नोट

## विद्यालय क्लर्क

प्राचार्य के कार्यों में सहायता के लिए कम से कम एक लिपिक आवश्यक है। सच तो यह है कि विद्यालय की रुटीन आवश्यकताएं, बिना उसके पूरी नहीं की जा सकती। उसे अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं यथा–

(1) कार्यालय कार्य (2) पत्र-व्यवहार (3) विद्यार्थी, शिक्षक कार्यालय सम्बन्धी रिकार्ड का रख-रखाव (4) टंकण कार्य व प्रतिलिपि निकालने का कार्य (5) बैंक लेखे-जोखे (6) स्टोर रिकार्ड संधारण (7) आगंतुकों का स्वागत आदि।

आधुनिक कार्यालय, आधुनिक उपकरणों से सज्जित होना चाहिए। आज कम्प्यूटर, फोटोस्टेट मशीन, इलेक्ट्रोनिक उपकरण, सामान्य टंकण मशीन, डुप्लीकेटिंग मशीन, दूरभाष सुविधा तथा अन्य दैनिक कार्य में आने वाले उपकरण (पंचिंग मशीन, स्टेप्लर, रबर स्टाम्प आदि) फाइल केबिनेट आदि कार्यालय के आवश्यक उपकरण हैं।

## विद्यालय अभिलेख संधारण

**अभिलेख संधारण की उपादेयता–**किसी भी शैक्षिक संस्थान या संगठन में मुख्य रूप से दो प्रकार के संसाधन होते हैं, (2) मानवीय एवं (2) भौतिक। इन संसाधनों में नियमित रूप से परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है। पुराने संसाधन होते हैं, नए संसाधनों की वृद्धि होती है। मानवीय संसाधनों में शिक्षक तथा अन्य स्टाफ व विद्यार्थी होते हैं तथा भौतिक संसाधनों में जमीन, वित्त, भवन, उपकरण आदि आते हैं।

विद्यालय समाज द्वारा संस्थापित एक स्थायी संस्था है और स्थायी संस्था के लिए आवश्यक है कि उसका कोई अपना इतिहास भी हो परम्पराएँ हो। इनका बना रहना तब सम्भव है जबकि उसका लेखा नियमित रखा जाये।

भौतिक व मानवीय संसाधनों को विद्यालय में शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में लगाया जाता है। जिस संसाधन का विकास किया जाना है, वह विद्यार्थी होता है। अत: विद्यालय अभिलेख प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं से सम्बन्धित होते हैं।

क्योंकि विद्यालय एक सामाजिक संस्था होती है, अत: विद्यालय संगठन के सभी संसाधनों का विद्यार्थी, शिक्षक, अभिभावक, अन्य कर्मचारी, प्रधानाध्यापक व उनसे सम्बन्धित कार्यों पर तथा भौतिक संसाधनों व विद्यालय प्रगति का लेखा-जोखा रखना होता है। इसके लिए विभिन्न अभिलेखों (Records) की आवश्यकता होती है। प्रधानाध्यापक, इन अभिलेखों के संधारण, शिक्षकों, लिपिक वर्ग व अन्य कर्मचारियों के माध्यम से करवाता है।

जैसा कि पूर्व में लिखा गया है, विद्यालय अभिलेखों में मुख्यत: छात्र सम्बन्धी अभिलेख होते हैं। इनके अलावा शिक्षकों, प्रधानाध्यापक व भौतिक संसाधनों के रख रखाव में सम्बन्धित अभिलेख भी होते हैं जिनका साधारण किया जाना आवश्यक है।

सामाजिक संस्था होने के कारण, समाज और सरकार का भी इनके विकास में योगदान होता है। अत: समाज व सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग न हो, संसाधनों को जिस उद्देश्य के लिए संस्था को प्रदान किया गया है, उसी में उपयोग हो, इसके लिए इनका लेखा-जोखा रखा जाना आवश्यक है।

अधिकांश शैक्षिक संस्थाएं पंजीकृत होती हैं, स्थायी होती हैं तथा इन्हें अनुदान मिलता है, अत: इनकी दीर्घकालीन प्रगति को संरक्षित रखना आवश्यक है। इस संदर्भ में किशनचन्द्र जैन लिखते हैं–

"विद्यालय एक सामाजिक संस्था है जो अभिभावकों, छात्रों, सरकार तथा समाज के प्रति उत्तरदायी होती है। इसलिए प्रत्येक सरकारी एवं मान्यता प्राप्त विद्यालय के लिए कुछ अभिलेख, प्रतिवेदन तथा रजिस्टर रखने आवश्यक होते हैं, जिससे उसके विकास, उसकी भूतकालीन तथा वर्तमान दशा उसके उद्देश्यों, उसकी आकांक्षाओं एवं उपलब्धियाँ तथा उसकी कार्यक्षमता एवं उपयोगिता का स्पष्ट ज्ञान हो सके।"

विद्यालय अभिलेखों के संधारण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं–

(1) राज्य सरकार के नियमों के अनुकूल कार्य करने का प्रमाणीकरण होता है।

(2) विद्यालय की वित्तीय व सम्पत्ति का लेखा-जोखा होता है। अनुदानित संस्था होने पर अनुदान के उपयोग का संधारण होता है। अधिकृतियों के बदलने पर भी संसाधनों का ज्ञान रहता है।

नोट

(3) यह शैक्षिक नियोजन का आधार बनता है। संसाधनों के आधार पर भावी शैक्षिक योजनाएँ बनाई जा सकती हैं।

(4) विद्यालय के सभी कर्मचारियों की योग्यता, कार्य, सेवा, प्रगति का विवरण रखने से उनके कार्य व योग्यता की उचित मूल्याँकन होता है।

(5) विद्यालय संसाधनों का प्रभावी संगठन कर लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है।

(6) समय उच्च अधिकारियों द्वारा सत्यापन की आधार होते हैं।

(7) विद्यार्थियों की प्रगति से उन्हें अभिभावकों तथा अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों को अवगत कराया जा सकता है।

(8) अभिलेख विद्यार्थियों का मूल्याँकन व क्रमोन्नति का आधार होते हैं।

(9) विद्यार्थी या शिक्षकों के विद्यालय से चले जाने पर भी रिकार्ड रहता है।

(10) विद्यालय समाज की स्थायी संस्था होने के कारण उसकी स्थापना, विस्तार, क्रमिक विकास, उत्थान व पतन का लेखा जोखा संधारण आवश्यक है।

## विद्यालय आलेख की व्यवस्था (Maintenance of School Records)

विद्यालय संगठन एवं प्रशासन के तीन मुख्य कार्य होते हैं–विद्यालय का नियोजन (Institutional Planning) विद्यालय का संचालन (School Organization) तथा विद्यालय का मूल्याँकन (Evaluation of School)। इन तीनों कार्यों के लिए विद्यालय आलेख (School's Records) का विशेष महत्त्व होता है जबकि संस्थाओं की स्थापना व्यक्ति द्वारा की जाती है। इसलिये शिक्षा संस्थाओं के आलेख का विशेष महत्त्व होता है। यह समाज की एक महत्त्वपूर्ण एवं स्थायी संस्था है। अत: इसके आविर्भाव, विकास, उद्देश्य तथा उपलब्धियों आदि के सम्बन्ध में नियमित तथा स्थायी आलेख रखने की अत्यन्त आवश्यकता होती है। प्रधानाचार्य की विद्यालय के प्रभावी संचालन के लिये विभिन्न प्रकार के आलेखों की आवश्यकता होती है। आलेखों में विभिन्न प्रकार के रजिस्टरों का प्रयोग होता है। प्राधानाचार्य को इन आलेखों से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में सहायता मिलती है। विद्यालय निरीक्षक तथा प्रबन्ध समितियों को कार्य-प्रणाली के मूल्याँकन में इन्हीं आलेखों को आधार माना जाता है।

**विद्यालय आलेख की व्यवस्था का उद्देश्य** (Objectives for Maintaining School Records)

विद्यालय आलेखों की व्यवस्था करने से अधोलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है–

- प्रधानाचार्य को विद्यालय के संचालन में सहायता मिलती है। जैसे–विद्यालय समय-तालिका, अध्यापकों का रजिस्टर : प्रगति रजिस्टर तथा पंजीकृत रजिस्टर आदि।
- शिक्षकों तथा अभिभावकों को छात्रों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ देने तथा शिक्षण में सुधार करना।
- विद्यालय निरीक्षक, प्रबन्ध समिति अथवा कार्यकारिणी समिति के विद्यालय सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करने के आधार बनाना।
- पर्यवेक्षण तथा निर्देशन में सहायता देना। जैसे–छात्रों के वर्गीकरण, प्रगति के सम्बन्ध में जानकारी देने में सहायक होते हैं।
- विद्यालय के शैक्षिक कार्यक्रम के मूल्याँकन में सहायता करना।
- विद्यालय के विकास के लिये योजना तैयार करने में सहायता प्रदान करना।

## स्व-मूल्याँकन (Self Assessment)

**2. निम्नलिखित कथनों में से 'सत्य' अथवा 'असत्य' का चुनाव कीजिए।** (State whether the following statements are 'True' or 'False')–

1. मुखर्जी ने कार्यालय को विद्यालय तंत्र का केन्द्र कहा है।
2. प्राचार्य के कार्यों में सहायता के लिए लिपिक का होना आवश्यक है।
3. विद्यालय आलेखों की व्याख्या करने से प्रधानाचार्य को विद्यालय के संचालन में सहायता मिलती है।

नोट

## 3.4 विद्यालय आलेखों के प्रकार (Types of School Records)

विद्यालय आलेखों तथा रजिस्टरों को निम्नलिखित मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) सामान्य (General records),

(2) वित्तीय (Financial),

(3) शैक्षिक (Educational)

(4) साज-सज्जा सम्बन्धी (Equipments), तथा

(5) पत्र-व्यवहार सम्बन्धी (Correspondence)।

**(1) सामान्य** (General records)–इस वर्ग के अन्तर्गत अधोलिखित लेख एवं रजिस्टर आते हैं–

(*i*) विद्यालय कलैण्डर, (*ii*) लॉग बुक (Log Book), (*iii*) दर्शकों के विवरण की पुस्तिका (Visitor's Book), (*iv*) सर्विस बुक (Service Book), (*v*) भवन-सम्बन्धी ऋणों का रजिस्टर (Order and Circulars of the Educational Authority), (*vii*) अवकाश रजिस्टर (Leave Register), (*viii*) पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं का रजिस्टर।

**(2) वित्तीय** (Financial Records)–इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्नलिखित लेख एवं रजिस्टर आते हैं–

(*i*) कण्टिनजेन्ट ऑर्डर बुक (Contingent Order Book), (*ii*) कन्टिजेन्सी रजिस्टर (Contingency Register), (*iii*) फीस रजिस्टर (Register of Collections), (*iv*) बिल रजिस्टर (Bill Register), (*v*) दान रजिस्टर (Register of Donations), (*vi*) केश बुक (Cash Book), (*vii*) छात्रवृत्ति रजिस्टर, (*vii*) वेतन सम्बन्धी रजिस्टर, (*ix*) जनरल लेजर या वर्गीकृत माहवारी लोगों का सारांश (General Ledger or Classified Abstract of the Authly Total), (*x*) प्रॉविडेन्ट फण्ड रजिस्टर (Provident Fund Register) आदि।

**(3) शैक्षिक** (Educational Records)–इस वर्ग के अन्तर्गत अधोलिखित रजिस्टरों को रखा जाता है–

(*i*) छात्रों की उपस्थिति का रजिस्टर, (*ii*) शिक्षक उपस्थिति रजिस्टर, (*iii*) समय-तालिका सम्बन्धी फाइल (कक्षा-समय-तालिका, शिक्षकों की समय-तालिका, सामान्य तालिका), (*iv*) छात्रों के प्रगति-अभिलेख, (*v*) प्रधानाचार्य के निरीक्षण का रजिस्टर, (*vi*) दण्ड सम्बन्धी रजिस्टर, (*vii*) ट्यूशन रजिस्टर, (*viii*) प्रवेश रजिस्टर, (*ix*) स्थानान्तर सर्टीफिकेट पुस्तिका, (Transfer Certificate Book), (*x*) आन्तरिक परीक्षा सम्बन्धी फाइल तथा अंक रजिस्टर (Marks Register), (*xi*) शिक्षक डायरी।

**(4) साज-सज्जा सम्बन्धी** (Equipment)–इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्नलिखित रजिस्टरों एवं लेखों को रखा जाता है–

(*i*) विद्यालय-सम्पत्ति रजिस्टर, (*ii*) छात्रावास-सम्पत्ति रजिस्टर, (*iii*) खेल-कूद सम्बन्धी सम्पत्ति का रजिस्टर, (*iv*) पुस्तकालय सम्बन्धी सम्पत्ति का रजिस्टर, (*v*) बिना मूल्य दिये प्राप्त की जाने वाली वस्तुओं का रजिस्टर, (*vi*) विभिन्न विभागों (जीव-विज्ञान, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र कृषि आदि) से सम्बन्धित सम्पत्ति का रजिस्टर।

**(4) पत्र-व्यवहार सम्बन्धी** (Correspondence)–इस वर्ग के अन्तर्गत अधोलिखित रजिस्टरों व फाइलों को रखा जाता है–

(*i*) पत्र-प्राप्ति एवं पत्र भेजने का रजिस्टर ('From' and To 'Register), (*ii*) चपरासी पुस्तिका, (*iii*) शिक्षा-विभाग, शिक्षा-परिषद् आदि से पत्र-व्यवहार सम्बन्धी फाइलें आदि।

नीचे हम उपर्युक्त रजिस्टरों में से कुछ प्रमुख रजिस्टरों का विवेचन संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं, यथा–

**(1) विद्यालय कैलेण्ड** (School Calendar)–यह विद्यालय सत्र के प्रारम्भ से पूर्व तैयार किया जाता है। इसमें सामान्य तथा स्थानीय छुट्टियों, मासिक, सत्रीय, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने की तिथियाँ बाह्य परीक्षाओं के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने की तिथि, विद्यालय समितियों, शिक्षक-अभिभावक समुदाय तथा अन्य समुदायों के सम्मेलनों की तिथियाँ, विद्यालय टूर्नामेंट एवं शिक्षक भ्रमणों से सम्बन्धित तिथियाँ, सामाजिक परीक्षा की तिथियों का विवरण दिया जाता है।

नोट

(2) **लॉग बुक** (Log Book)—यह विभिन्न घटनाओं का लेखा है और इसके द्वारा विद्यालय-इतिहास के लिये सामग्री प्रदान की जाती है। इसमें विशेष घटनाओं, नवीन पाठ्य-पुस्तकों, यन्त्रों, कोर्स आदि का प्रस्ताव, निरीक्षण अधिकारियों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा विद्यालय निरीक्षण, विद्यालय कार्य में घण्टों, विद्यालय को प्रभावित करने वाली विशेष परिस्थितियों का विवरण दिया जाता है। वस्तुत: यह विद्यालय डायरी है। इसमें केवल तथ्य का विवरण होता है, न कि कार्य के सम्बन्ध में समितियों की अभिव्यक्ति।

(3) **पंजीकरण रजिस्टर** (Enrolment Register)—यह विद्यालय लेखों में एक महत्त्वपूर्ण आलेख है। इसमें जो प्रविष्टियाँ की जाती हैं, उनके लिये प्रधानाध्यापक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। इसमें विद्यालय के प्रत्येक बालक का पूरा विवरण उस दिन लेखबद्ध कर दिया जाता है, जिस दिन वह विद्यालय में प्रवेश पाता है। शिक्षा-विभागीय नियमों के अनुसार प्रवेश रजिस्टर स्थायी रूप से स्थापित किया जाता है।

(4) **छात्र-उपस्थिति रजिस्टर** (Class Register)—प्रत्येक कक्षा के लिये एक उपस्थिति रजिस्टर होता है जिसमें विद्यालय प्रारम्भ होते समय तथा अवकाश के पश्चात् छात्रों की दैनिक उपस्थिति अंकित की जाती है। प्रतिदिन की उपस्थिति की संख्या अन्त में लिख देनी चाहिये।

(5) **शिक्षक उपस्थिति रजिस्टर** (Teacher Register)—यह भी विद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण अभिलेख है। यह रजिस्टर प्रधानाचार्य के कक्ष में रखा जाना चाहिये। शिक्षक विद्यालय में आते ही इसमें अपने हस्ताक्षर करें तथा अपने पहुँचने के समय को भी लिखे। प्रधानाध्यापक को इस रजिस्टर का प्रतिदिन निरीक्षण करना चाहिये और यह देखना चाहिये। कि कौन शिक्षक कब आता है और यदि शिक्षक नहीं आता है तो उसके विषय में मालूम करे कि उसकी छुट्टी हेतु प्रार्थना-पत्र आया है या नहीं। वह उसके नाम के आगे जिस प्रकार की छुट्टी दी जा रही है, वैसी छुट्टी के संकेत अंकित कर दे।

(6) **वित्तीय आलेख** (Cash Book)—रोकड़ का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अभिलेख है। इसमें विद्यालय के प्रतिदिन के समस्त वित्तीय लेन-देनों की प्रविष्टि की जाती है। इसमें बालकों से प्राप्त शुल्क, सरकार या अन्य स्रोतों से प्राप्त अनुदानों आदि का विवरण होता है।

(7) **सर्विस बुक**—यह प्रत्येक अधिकारी, शिक्षक तथा कर्मचारी की सेवा का आलेख है। इसकी प्रत्येक प्रविष्टि को प्रधानाध्यापक द्वारा प्रभावित किया जाना चाहिये। इनको बड़ी सतर्कता एवं शुद्धता के साथ स्थापित किया जाये। प्रधानाचार्य इनके लिये उत्तरदायी है। उसे चाहिये कि इन्हें सुरक्षित रखे तथा प्रतिवर्ष उनकी प्रविष्टयाँ शुद्धता के साथ भरें। इनके भरने में उसे सदैव निष्पक्षता से काम लेना चाहिये। सर्विस बुक के स्थापन में अधोलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है—

1. इनकी प्रविष्टयों का अन्य दूसरे अभिलेखों की प्रविष्टयों से मेल खाना चाहिये।
2. इसमें नियुक्ति की तिथि, वेतन वृद्धि, स्थायीकरण, आचरण, कार्य की गुणात्मकता आदि को लेखबद्ध किया जाये।
3. इसमें दण्ड, उन्नति एवं अवनति आदि सभी विषयों का पूरा विवरण दिया जाना चाहिये।
4. इसमें स्थानान्तरण का भी विवरण हो।

(8) **सम्पत्ति-रजिस्टर** (Property Register)—यह अभिलेख बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यह विद्यालय में समस्त चल सम्पत्ति का अभिलेख है। प्रधानाचार्य विद्यालय की समस्त साज-सज्जा का संरक्षक है। अत: उसका परम कर्त्तव्य है कि वह विद्यालय में एक स्टॉक रजिस्टर की स्थापना कराये जिसमें फर्नीचर, शिक्षण-यन्त्र तथा अन्य सामग्री को लेखबद्ध किया जाये। इसके अतिरिक्त जब कोई सामग्री विद्यालय के लिये खरीदी जाये तो उसका उल्लेख कराये। पुस्तकालय की सम्पत्ति की सम्पत्ति का भी एक पृथक् रजिस्टर स्थापित होना चाहिये।

अन्त में, यह कहा जा सकता है कि यद्यपि समस्त अभिलेखों के उचित स्थापन का सम्पूर्ण दायित्व, अन्तत: प्राधानाचार्य पर ही है परन्तु यह इस दायित्व के निर्वाह में अपने सहयोगियों तथा कार्यालय से सहायता ले सकता है। छात्र उपस्थिति रजिस्टर, फीस रजिस्टर, पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं सम्बन्धी रजिस्टर, प्रगति अभिलेख आदि को शिक्षक भली प्रकार स्थापित कर सकते हैं।

नोट

## शिक्षक से सम्बन्धित आलेख (Records Related to Teacher)

एक शिक्षक को कक्षा रजिस्टर तथा शिक्षक करनी होती है। कक्षा रजिस्टर में दो प्रकार के आलेखों को भरना होता है। प्रथम छात्रों की उपस्थिति का संचयी आलेख तैयार किया है। पिछले माह की उपस्थिति अगले माह की उपस्थिति में जोड़ी जाती है। इस प्रकार सब के अन्त में अमुक कुल कितनी उपस्थिति रही है इसकी जानकारी हो जाती है। उपस्थिति पूरी न होने पर परीक्षा में बैठने से रोक दिया जाता है।

दूसरे प्रकार का आलेख इसी रजिस्टर में छात्र की शुल्क के सम्बन्ध में होता है। छात्रों से जो शुल्क किया जाता है उसे भी इसे रजिस्टर में अंकित किया जाता है। माह की अन्तिम तिथि को शिक्षकों को रजिस्टर पूरा करना पड़ता है और अगले माह में छात्रों के नाम लिखने होते हैं। छात्रों की उपस्थिति तथा शुल्क का ब्यौरा दिया जाता है तथा पूरे कक्षा के विभिन्न प्रकार के शुल्कों का योग भी करना होता है।

जब किसी छात्र की प्रशिक्षण के बाद किसी विद्यालय में नियुक्ति की जाती है तब उसे किसी एक कक्षा के विभाग का कक्षा–शिक्षक का भार दिया जाता है। इस कार्य में उसे अधिक कठिनाई होती है और अनुभवी शिक्षक से सहायता लेनी होती है। अत: प्रशिक्षण में कक्षा–रजिस्टर को तैयार करने का अभ्यास करना भी नितान्त आवश्यक है। प्रशिक्षण संस्थाओं को इसका भी आभास कराना चाहिये।

इसके अतिरिक्त शिक्षक–डायरी भी तैयारी करनी होती है। प्रत्येक शिक्षक को प्रत्येक सप्ताह के शिक्षण कार्य का ब्यौरा तैयार करना होता है तथा कितना कार्य पूरा कर लिया तथा कितना शेष रह गया, इसको अगले सप्ताह में किया जाता है। प्रधानाचार्य को अपनी डायरी दिखलानी होती है। प्रशिक्षण में शिक्षक डायरी का भी अभ्यास करना चाहिये।

## विद्यालय-आलेखों की व्यवस्था के लिये सुझाव (Suggestions for Maintaining School Records)

विद्यालय के आलेखों तथा रजिस्टरों की व्यवस्था तथा रखने के ढंग के सम्बन्ध में अधोलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये–

1. विद्यालय में जितने भी आलेख एवं रजिस्टर हों, उन सबकी एक सूची तैयार करनी चाहिये। उनके नामों से समझ, उनका नम्बर तथा उनके विवरण का संक्षिप्त लेखा होना चाहिये। इनके साथ ही उस शिक्षक या क्लर्क का नाम भी होना चाहिये जिनके द्वारा उनको स्थापित करना है।
2. यदि इनको वास्तविक महत्त्व का बनाना है तो वे पूर्ण एवं शुद्ध होने चाहिएँ, परन्तु उनकी शुद्धता इनकी तत्परता के साथ पूर्ति करने तथा नियमित रूप से निरीक्षण करने पर निर्भर है। विद्यालय एवं अन्य अधिकारियों द्वारा समय–समय पर उनका नियमित रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिये।
3. इन आलेखों एवं रजिस्टरों का विधिपूर्वक एवं स्वच्छता से तैयार किया जाना चाहिए। इसकी पूर्ति करने में यदि कोई अशुद्धि हो जाये तो उसको काटकर निर्माणकर्त्ता को अपने हस्ताक्षर कर देने चाहिएँ। उसे इनके किसी भी पृष्ठ को फाड़ना नहीं चाहिये।
4. इन आलेखों एवं रजिस्टरों को विद्यालय में इस प्रकार रखा जाना चाहिये जिससे आवश्यकता पड़ने पर उनका शीघ्रता एवं सरलता से उपयोग किया जा सके। इसके अतिरिक्त, इनके रखने का स्थान बड़ा सुरक्षित होना चाहिये। विभिन्न फाइलों को सुरक्षित एवं ढंग से रखने के लिये आधुनिक फाइल केबिनेट का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें फाइलों को नामांकन के लोबिल लगाकर रखना चाहिये, जिससे आवश्यकता पड़ने पर उनको शीघ्रता से निकाल कर आवश्यक तथ्यों की प्राप्ति की जा सके। पुराने तथा भरे हुए रजिस्टरों को भी सुरक्षित एवं विधिवत् ढंग से अलग रखा जाना चाहिये।
5. प्रतिवर्ष नये रजिस्टर एवं आलेख न रखे जाएँ वरन् पुराने रजिस्टरों ने जो खाली पृष्ठ रहें, उनको पहले प्रयोग में लाया जाये, उनके पूरा हो जाने पर नया रजिस्टर बनाया जाये।

नोट

6. प्रशिक्षण संस्थाओं में विभिन्न प्रकार के आलेखों के रजिस्टरों तथा प्रतिपत्रों के नमूने रखने चाहिएँ और छात्रों को दिखलाये जाने चाहिएँ।
7. जो रजिस्टर तथा प्रतिपत्र शिक्षकों से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित हैं अथवा उन्हें तैयार करने हों उनकी जानकारी लेनी चाहिये तथा अभ्यास करने का भी अवसर देना चाहिये।

*टास्क* विद्यालय आलेख का क्या अर्थ है?

## 3.5 सारांश (Summary)

- विद्यालय संगठन में नियोजन का विशेष महत्त्व होता है। प्रत्येक विद्यालय की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की व्यापक रूपरेखा को सामने रखते हुए अपने विकास एवं प्रगति के लिये नियोजन करना चाहिये।
- अत: शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापक को स्वयं की संस्था के स्तर पर स्वयं के विकास के लिये तथा उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये एक कार्यकारी रूपरेखा तैयार करने में दक्ष होना पड़ेगा। इस प्रकार के चिन्तन के सुनिश्चित स्वरूप को ही संस्थागत योजना कह सकते हैं।
- संस्थागत योजना को डॉ. एम. बी. बुच ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है–"एक शैक्षिक संस्था द्वारा अपने अनुभव में आई आवश्यकताओं, प्राप्त अथवा प्राप्त हो सकने वाले साधनों के आधार पर निर्मित अपने विकास के लिये बनाया गया कार्यक्रम उस संस्था की संस्थागत योजना कहलाती है। यह दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन हो सकती है। यह विद्यालय एवं समाज के सभी साधनों में चरम उपयोग पर आधारित होती है।"
- संस्थागत योजना के अन्तर्गत सभी कार्यक्रम आते हैं जो संस्था के विकास एवं राष्ट्रीय एवं संस्थागत उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं। अब विद्यालय के शैक्षणिक, प्रशासनिक, सह-शैक्षणिक आदि सभी प्रकार के कार्य संस्थागत योजना के अंग बन सकते हैं।
- संस्थागत योजना के अन्तर्गत वे ही कार्य लिये जाते हैं जिनकी उपयोगिता विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा समुदाय के लिये होती है। संस्थागत योजना के क्रियान्वयन से विद्यालय की उपयोगिता में वृद्धि होती है। विद्यालय द्वारा अधिक समाज सेवा एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं नैतिक विकास पर विशेष बल दिया जाता है।
- आज देश के सामने शिक्षा की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयुक्त भवनों की बड़ी ही विकट समस्या है। स्वतन्त्रता के बाद हम शिक्षकों की तो जैसे-तैसे व्यवस्था कर सके, परन्तु भवनों की व्यवस्था देश की अन्य समस्याओं और विशेष रूप से वित्तीय कठिनाइयों के सम्भव न हो सकी। यही कारण है कि प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालय स्तर के अनेक विद्यालय दो पारियों में चल रहे हैं। माध्यमिक स्तर पर भी इस प्रकार के विद्यालय हैं और इनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। जिसके कारण छात्रों की पाठ्य एवं पाठ्येतर दोनों प्रकार की उपलब्धियों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।
- शाला प्रशासन एवं संगठन पर भी विद्यालय भवन का प्रभाव देखने को मिलता है। यह विद्यालय भवनों के अभाव का ही परिणाम है जिसकी वजह से दो पारी वाले या तीन पारी वाले विद्यालय चलाए जाते हैं, और जिनके कारण अनेक प्रशासनिक समस्याओं को जन्म होता है।
- विद्यालय की स्थिति, नगर में नगरीय सधन आबादी से थोड़ा दूर हो तो श्रेयस्कर है परन्तु प्राय: ऐसा होता नहीं है। उपनगरीय बस्ती एवं देहात में इस सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं होती। इससे छात्रों को स्वच्छ वायु, शोरगुल से दूर, खेलकूद के लिए उपयुक्त क्षेत्र आदि मिल सकेगा।
- मिडिल तथा माध्यमिक विद्यालयों में सर्वाधिक प्रचलित भवन योजनाएँ देखी जाती हैं वे हैं E, U तथा L प्रकार की। वस्तुत: हम प्रारंभ E टाइप से कर सकते हैं। भवन के लिए वित्तीय व्यवस्था होते ही 5, 6 कमरे एक सीधी

नोट

पंक्ति में निर्माण कर देते हैं। तब यह भवन का प्रकार अंग्रेजी के वर्ण 'E' जैसा हो जाता है। जब हम और वित्तीय सहायता मिलने पर इसके एक छोर पर कुछ कमरे और बना लेते हैं तब हमारा विद्यालय भवन 'L' प्रकार की आकृति ले लेता है। और जब दोनों छोरों पर कमरे बन जाते हैं, तब 'U' आकृति का विद्यालय भवन हो जाता है और बीच में भी कोई हॉल या कमरे बन जाते हैं तब यह भवनाकृति E आकृति की हो जाती है।

- नगरीय क्षेत्र के पब्लिक विद्यालयों को छोड़कर आम तौर पर विद्यालय भवनों की स्थिति ठीक नहीं है। राज पोषित विद्यालयों के भवनों की स्थिति कहीं और अधिक शोचनीय है। अधिकांश पुराने भवन हैं जिनकी स्थिति जर्जर है या विद्यालय भवन किराए पर है या कुछ विद्यालय भवन जनसहयोग से बने हैं।
- छात्रावास विद्यालय की तब अनिवार्य आवश्यकता है, जब उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थी दूरस्थ स्थानों के हों। प्राय: प्राथमिक स्तर तथा मिडिल स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में इनकी आवश्यकता नहीं होती। यदि विद्यालय की शैक्षिक उपलब्धियाँ प्रशंसनीय हैं तो स्वाभाविक है कि बाहर से भी अभिभावक ऐसे विद्यालय में अपने बालकों को पढ़ने के लिए भेजना चाहेंगे। अत: हर अच्छे कार्य करने वाले विद्यालय के लिए छात्रावास की आवश्यकता है। यह आज ही नहीं, अपितु हमारी प्राचीन परम्पराओं में भी था। गुरूकूल में छात्रावास की आवश्यकता होती थी। अत: यह सर्वथा उपयुक्त होगा कि छात्रावास निर्माण योजना पर भी विचार किया जाए।
- छात्रावास के साथ उपयुक्त खेल के मैदान, व इन्डोर गेम्स की व्यवस्था होने से छात्रों का समुचित शारीरिक विकास भी होता है तथा जीवन में खेल की भावना का विकास होता है और उसमें समुचित प्रवृत्तियाँ आयोजित होती हैं, तब छात्रों में नैतिक एवं मानसिक विकास के अवसर भी बढ़ जाते हैं।
- छात्रावास का जीवन वस्तुत: सहयोग व साहचर्य का जीवन है। सामान्यत: छात्रावासों में तीन प्रकार की पद्धति अपनाई जाती हैं–(1) डॉरमेन्ट्री पद्धति (2) कॉटेज पद्धति एवं (3) हाउस पद्धति।
- छात्रावास प्रबन्धन वस्तुत: उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि विद्यालय प्रबन्धन। इस सन्दर्भ में रायबर्न लिखते हैं कि "छात्रावास प्रबन्धक का कार्य अत्यन्त कठिन है, जिसके लिए धैर्य, कौशल, वैज्ञानिक दृष्टिकोण व चतुराई की आवश्यकता है।"
- छात्रावास व्यवस्था सुचारू रूप से चले, इसके लिए होस्टल वार्डन को पूर्ण विवेक के साथ योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना होता है। इसके लिए छात्रावास व्यवस्थापक (वाडन) को हर समय चौकस रहना होता है।
- विज्ञान और तकनीकी विकास ने आज हर विषय का इतना विकास किया है कि समग्र जीवन किसी एक विषय की शाखा पर अध्ययन के लिए लगाया जाये, तब भी जीवन की अवधि कम पड़ेगी। इस स्थिति ने लगभग प्रत्येक विषय में शोध-खोज, प्रयोग के द्वारा शोध निष्कर्ष निकालने के लिए तथा छात्रों को भावी जीवन में प्रयोग व शोध करने के लिए प्रशिक्षित करते हुए स्वयं द्वारा निष्कर्ष निकालने हेतु अवसर प्राप्त करने के लिए प्रयोगशालाओं की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है।
- पुस्तकों के सन्दर्भ में कहा गया है "पुस्तकें मात्र कागज और स्याही या कपड़े नहीं हैं वे व्यक्ति हैं। अधिकतर वे अमरों की साथी हैं जिन्होंने सदियों से ऋतुओं के प्रभाव को सहा है और वे अनन्त की और अग्रसर हो रही हैं।
- पुस्तकालय विद्यालय का हृदय है जहाँ शिक्षकों और छात्रों के ज्ञान का स्पंदन सुनाई देता है। यह बौद्धिक प्रयोगशालाएँ जहाँ बौद्धिक क्रियाओं पर विभिन्न विद्वानों के ज्ञान का पठन व मनन द्वारा परीक्षण होता है।
- अकादमिक जीवन के लिए पुस्तकालय भवन एक महत्वपूर्ण स्थान हैं जहाँ से शिक्षक व विद्यार्थी निरन्तर ज्ञानार्जन करते हैं।
- पुस्तकालय के निम्नलिखित कार्य हैं–
  (1) पुस्तकें शिक्षकों के अनुदेशन कार्यों में योग देती हैं, यहीं विभिन्न विषयों पर पुस्तकें तथा सन्दर्भ पुस्तकें ज्ञान में वृद्धि करती हैं।
  (2) विद्यार्थियों के स्वाध्याय को बढ़ावा देती है।
  (3) पढ़ने की आदतों को पुस्तकालय के माध्यम से डाला जा सकता है।

नोट

(4) पुस्तकालय अच्छे साथी के रूप में पुस्तकों को पढ़ने को प्रोत्साहित करता है।

(5) बालकों में शब्दकोष, सन्दर्भ, ग्रन्थों आदि के उचित प्रयोग की कुशलता विकसित करता है।

- पुस्तकालय सेवा के प्रभावी संचालन के लिए, पुस्तकालय भवन या अलग से कक्षा होना चाहिए। यह भवन केवल वर्तमान छात्र संख्या के आधार पर होना चाहिए। अत: पुस्तकालय भवन का क्षेत्रफल $20 \times 30$ के कक्षा कक्ष से प्रारंभ होकर $22 \times 90$ के हॉल या $30 \times 90$ के हॉल तथा एक स्टोर $15 \times 20$ का हो सकता है। इसकी स्थिति केन्द्रीय होना चाहिए ताकि शिक्षकों विद्यार्थियों को पुस्तकालय की सुविधा आसानी से सुलभ हो। साथ ही उस स्थान से दूर हो जहाँ और शोर शराबा होता हो। अत: जहाँ तक हो, खेल के मैदान, आवागमन मार्ग जिस पर भारी वाहन आते-जाते हैं, से दूर अवस्थित होना चाहिए।
- प्रधानाध्यापक, पुस्तकालय का संरक्षक है। क्योंकि पुस्तकालय विद्यालय अकादमिक गतिविधियों से सम्बन्धित है अत: इनके विस्तार के लिए पुस्तकालय समिति गठित करे। समिति के माध्यम से ही पुस्तकें पत्र-पत्रिकाएँ क्रय हों तथा उचित संरक्षा, पुस्तकों के अवदान की रिपोर्ट त्रैमासिक मांगी जाये। स्वयं भी यदा-कदा पुस्तकालय व्यवस्था का निरीक्षण करे तथा पुस्तकालय समृद्धि के लिए आवश्यक बजट उपलब्ध कराए। स्थानीय समुदाय से भी इस सम्बन्ध में सहयोग लिया जा सकता है तथा समुदाय के लिए भी वाचनालय उपलब्ध कराया जा सकता है।
- प्रधानाध्यापक, पुस्तकालय का संरक्षक है। क्योंकि पुस्तकालय विद्यालय अकादमिक गतिविधियों से सम्बन्धित है अत: इनके विस्तार के लिए पुस्तकालय समिति गठित करे। समिति के माध्यम से ही पुस्तकें पत्र-पत्रिकाएँ क्रय हों तथा उचित संरक्षा, पुस्तकों के अवदान की रिपोर्ट त्रैमासिक मांगी जाये। स्वयं भी यदा-कदा पुस्तकालय व्यवस्था का निरीक्षण करे तथा पुस्तकालय समृद्धि के लिए आवश्यक बजट उपलब्ध कराए। स्थानीय समुदाय से भी इस सम्बन्ध में सहयोग लिया जा सकता है तथा समुदाय के लिए भी वाचनालय उपलब्ध कराया जा सकता है।
- प्रभावी विद्यालय के लिए प्रभावी भौतिक पर्यावरण भी अपेक्षित है। इस पर्यावरण में सुरम्य विद्यालय भवन का विशेष स्थान है। विद्यालय भवन में अनेक कक्षा-कक्ष, कार्यालय, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ आदि होती हैं, अत: इनका निर्माण समुचित वास्तुकला के आधार पर किया जाना चाहिए। यही नहीं, विद्यालय की स्थिति पर भी विचार किया जाना चाहिए जिसमें आबादी से दूर, रमणीय स्थान, भविष्य के विकास, खेलकूद की सुविधा, ऊंचाई पर होना आदि बिन्दुओं ध्यान दिया जाना चाहिए। छात्रों की संख्या के आधार पर भवन का क्षेत्रफल होना चाहिए। भवनों के अनेक प्रकार होते हैं। इनमें I E H U T L Y प्रकार प्रमुख हैं।
- प्राचार्य के कार्यों में सहायता के लिए कम से कम एक लिपिक आवश्यक है। सच तो यह है कि विद्यालय की रुटीन आवश्यकताएं, बिना उसके पूरी नहीं की जा सकती। उसे अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं यथा–(1) कार्यालय कार्य (2) पत्र-व्यवहार (3) विद्यार्थी, शिक्षक कार्यालय सम्बन्धी रिकार्ड का रख-रखाव (4) टंकण कार्य व प्रतिलिपि निकालने का कार्य (5) बैंक लेखे-जोखे (6) स्टोर रिकार्ड संधारण (7) आगंतुकों का स्वागत आदि।
- आधुनिक कार्यालय, आधुनिक उपकरणों से सज्जित होना चाहिए। आज कम्प्यूटर, फोटोस्टेट मशीन, इलेक्ट्रोनिक उपकरण, सामान्य टंकण मशीन, डुप्लीकेटिंग मशीन, दूरभाष सुविधा तथा अन्य दैनिक कार्य में आने वाले उपकरण (पंचिंग मशीन, स्टेप्लर, रबर स्टाम्प आदि) फाइल केबिनेट आदि कार्यालय के आवश्यक उपकरण हैं।
- किसी भी शैक्षिक संस्थान या संगठन में मुख्य रूप से दो प्रकार के संसाधन होते हैं, (2) मानवीय एवं (2) भौतिक। इन संसाधनों में नियमित रूप से परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है। पुराने संसाधन होते हैं, नए संसाधनों की वृद्धि होती है। मानवीय संसाधनों में शिक्षक तथा अन्य स्टाफ व विद्यार्थी होते हैं तथा भौतिक संसाधनों में जमीन, वित्त, भवन, उपकरण आदि आते हैं।
- विद्यालय समाज द्वारा संस्थापित एक स्थायी संस्था है और स्थायी संस्था के लिए आवश्यक है कि उसका कोई अपना इतिहास भी हो परम्पराएँ हो। इनका बना रहना तब सम्भव है जबकि उसका लेखा नियमित रखा जाये।
- विद्यालय संगठन एवं प्रशासन के तीन मुख्य कार्य होते हैं–विद्यालय का नियोजन (Institutional Planning) विद्यालय का संचालन (School Organization) तथा विद्यालय का मूल्याँकन (Evaluation of School)। इन

नोट

तीनों कार्यों के लिए विद्यालय आलेख (School's Records) का विशेष महत्त्व होता है जबकि संस्थाओं की स्थापना व्यक्ति द्वारा की जाती है। इसलिये शिक्षा संस्थाओं के आलेख का विशेष महत्त्व होता है।

- यह प्रत्येक अधिकारी, शिक्षक तथा कर्मचारी की सेवा का आलेख है। इसकी प्रत्येक प्रविष्टि को प्रधानाध्यापक द्वारा प्रभावित किया जाना चाहिये। इनको बड़ी सतर्कता एवं शुद्धता के साथ स्थापित किया जाये। प्रधानाचार्य इनके लिये उत्तरदायी है। उसे चाहिये कि इन्हें सुरक्षित रखे तथा प्रतिवर्ष उनकी प्रविष्टयाँ शुद्धता के साथ भरें।
- यह अभिलेख बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यह विद्यालय में समस्त चल सम्पत्ति का अभिलेख है। प्रधानाचार्य विद्यालय की समस्त साज-सज्जा का संरक्षक है। अत: उसका परम कर्त्तव्य है कि वह विद्यालय में एक स्टॉक रजिस्टर की स्थापना कराये जिसमें फर्नीचर, शिक्षण-यन्त्र तथा अन्य सामग्री को लेखबद्ध किया जाये।
- एक शिक्षक को कक्षा रजिस्टर तथा शिक्षक करनी होती है। कक्षा रजिस्टर में दो प्रकार के आलेखों को भरना होता है। प्रथम छात्रों की उपस्थिति का संचयी आलेख तैयार किया है। पिछले माह की उपस्थिति अगले माह की उपस्थिति में जोड़ी जाती है। इस प्रकार सब के अन्त में अमुक कुल कितनी उपस्थिति रही है इसकी जानकारी हो जाती है। उपस्थिति पूरी न होने पर परीक्षा में बैठने से रोक दिया जाता है।
- दूसरे प्रकार का आलेख इसी रजिस्टर में छात्र की शुल्क के सम्बन्ध में होता है। छात्रों से जो शुल्क किया जाता है उसे भी इसे रजिस्टर में अंकित किया जाता है।

## 3.6 शब्दकोश (Keywords)

- **अवदान**–पराक्रम, सफलता, अंशदान।
- **सुरम्य**–मनमोहक, सुंदर।

## 3.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा के विभिन्न स्तरों (प्राथमिक, माध्यमिक, एवं उच्च) पर प्रबंधन की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
2. संस्थागत नियोजन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी परिभाषा एवं विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
3. प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तरीय शैक्षिक प्रबंधन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. विद्यालय आलेख कितने प्रकार का होता है? वर्णन कीजिए।

### उत्तर : स्व-मूल्याँकन (Answers: Self Assessment)

**1.** 1. नगर अथवा कस्बे 2. शैक्षिक पर्यावरण 3. नगरीय पुस्तकालय 4. प्राकृतिक सौन्दर्य

**2.** 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

## 3.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–4: सॉट विश्लेषण: अवधारणा तथा प्रक्रिया (SWOT Analysis: Concept and Process)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 सॉट विश्लेषण का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of SWOT Analysis)

4.2 सॉट विश्लेषण की प्रक्रिया (Process of SWOT Analysis )

4.3 सॉट प्रणाली विश्लेषण (SWOT System Analysis)

4.4 सारांश (Summary)

4.5 शब्दकोश (Keywords)

4.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

4.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सॉट विश्लेषण के अर्थ, प्रक्रिया और विशेषताओं का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

20वीं शताब्दी में शैक्षिक विकास के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक जटिलताएँ आई हैं, जिन्होंने समस्याओं और विवादों को जन्म दिया है। इस संदर्भ में टीड की मान्यता है कि "यदि प्रशासन का विस्तार गणितीय आधार पर होता है, तो प्रशासनिक समस्याएँ ज्यामितिक आधार पर बढ़ती जाती हैं" इन समस्याओं को सुलझान के लिए संसार में अनेक अनुसंधान व प्रयोग हुए हैं। इन प्रयागों की पृष्ठभूमि में अनेक उपागमों या विचारधाराओं का भी जन्म हुआ है। इनमें से सॉट विश्लेषण भी एक प्रबंधकीय प्रविधि है, जिसमें किसी स्थिति अथवा संगठन की शक्ति कमजोरी, अवसरों तथा चुनौतियों का विश्लेषण कर शैक्षिक समस्याओं को हल किया जाता है तथा आशातीत लक्ष्य प्राप्त करने में सहयोग लिया जाता है। इस इकाई में हम सॉट विश्लेषण का अर्थ तथा प्रक्रिया के विषय में अध्ययन करेंगे।

## 4.1 सॉट विश्लेषण का अर्थ (Meaning of SWOT Analysis)

सॉट (SWOT) विश्लेषण किसी विशेष परिस्थिति को मूल्यांकित करने की विश्लेषणात्मक प्रविधि है। सॉट (SWOT) चार शब्दों का संक्षिप्त रूप है। S से तात्पर्य Strength अर्थात् शक्तियाँ, W से Weakness कमजोरियाँ, O से Opportunities अवसर तथा T से Threats चुनौतियाँ। किसी भी परिस्थिति के ये चार पक्ष होते हैं जो उसका

नोट

समग्र विश्लेषण करने के लिए आवश्यक हैं। विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक प्रबंधन के साथ-साथ शैक्षिक प्रबंधन में भी इसका महत्त्व बढ़ गया है। सॉट (SWOT) के चार पक्षों में से दो पक्ष, अवसर तथा चुनौतियाँ बाह्य कारक हैं, जबकि शक्तियाँ तथा कमजोरियाँ आन्तरिक कारक हैं। शैक्षिक प्रबंधन तथा नियोजन की रणनीतियों में SWOT विश्लेषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

*नोट्स* किसी भी संगठन के समुचित विकास के लिए नियमित मूल्यांकन (continuous evaluation) आवश्यक है। वस्तुत: मूल्यांकन समग्र प्रबंधन प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है। समुचित, वैध एवं विश्वसनीय मूल्यांकन किसी भी संगठन का सुदृढ़ आधार है, जिस पर किसी भी संगठन का भावी विकास निर्भर करता है।

## सॉट (SWOT) विश्लेषण की विशेषताएँ

1. इसके आधार पर विद्यालयों में प्रशासनिक सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है।
2. इसके आधार पर प्रशासक सहज ही अनुमान लगा लेते हैं कि विद्यालय प्रणाली की उप-प्रणालियों में कहाँ क्या कमी है व इसे कैसे दूर किया जा सकता है।
3. जो प्रबंधक, प्रणाली के दृष्टिकोण से संगठन में आने वाली समस्याओं को देखता है, वह आसानी से समस्या-समाधान के विकल्पों का पता लगा लेता है।
4. प्रबंधक समस्या या विद्यालय पर डालने वाले प्रभावों (यथा संस्थागत, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक) का विश्लेषण कर पाता है।
5. यह एक ऐसा ढांचा है जिसके आधार पर शिक्षा जैसे जटिल संगठनों की समस्याओं को नियंत्रित किया जा सकता है तथा भविष्य में संबंध में निर्णय लिया जा सकता है।
6. यह एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है कि "प्रबंधक एक समग्र प्रणाली" के कार्य कर रहा है।
7. यह पूर्व प्रबंध-नौकरशाही मान्यताओं के विपरीत, विद्यालय संगठन को एक गतिमान, परस्पर क्रियापूर्ण व तर्कसंगत व्यापक प्रणाली मान कर चलता है।
8. इसके आधार पर शैक्षिक समस्याओं की पहचान कर उनका समाधान ढूँढा जा सकता है, चाहे ये समस्याएँ गिरते शैक्षिक स्तर, अनुशासन या अन्य किसी भी प्रकार की क्यों न हों।

यही कारण है कि अनेक विद्वानों, यथा–

| | |
|---|---|
| कूंट्ज तथा ओ'डोनेल | (Koontz and O'Donnel, 1976) |
| ह्यूज तथा बोडिच | (Huse and Bowdetch, 1977) |
| एवं वुड निकल्सन तथा फिन्डले | (Wood Nicholson and Findley, 1979) |

इन्होंने मत व्यक्त किये हैं कि आज वर्तमान जटिल संगठन होने की स्थिति में कोई भी प्रबंधन सिद्धांत या अभिगम की उपेक्षा नहीं कर सकता है।

इस सिद्धांत के व्यापक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए टजेल्स तथा गुवा लिखते हैं–यह अभिगम किसी संगठन में कार्यरत व्यक्तियों या उनके व्यवहार का विश्लेषण करने का आधान-प्रदान करती है। इसके आधार पर विद्यालय प्रणाली के प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार को चाहे वह प्रिंसीपल, शिक्षक या विद्यार्थी हो समझा जा सकता है कुछ अपेक्षित व्यवहार होते हैं, उनके यह व्यवहार, उनके निजी दृष्टिकोण पर आधारित होते हैं। व्यक्तियों के व्यवहार के मध्य अंत:क्रिया चलती रहती है। टकराव की स्थिति तब होती है, जब अपेक्षित व्यवहार तथा व्यवहार करने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण में अंतर होता है। इस अभिगम के आधार पर कुशल प्रशासक तनाव व संघर्षों को कम करता हुआ विद्यालय प्रणाली के विकास के लिए अग्रसर हो सकता है।

नोट

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. सॉट (SWOT) विश्लेषण के आधार पर विद्यालयों में ..... सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है।
2. सॉट (SWOT) विश्लेषण एक नया ..... प्रदान करता है।
3. इसके आधार पर शैक्षिक समस्याओं की पहचान कर उनका ..... ढूँढा जा सकता है।

## 4.2 सॉट विश्लेषण की प्रक्रिया (Process of SWOT Analysis)

किसी भी शैक्षिक संस्था अथवा प्रक्रिया की सम्पूर्ण स्थिति का मूल्यांकन करने का सर्वाधिक उपयुक्त और प्रभावकारी प्रविधि SWOT है। इस प्रक्रिया में SWOT को दो वर्गों में विभाजित किया गया है।

**आन्तरिक कारक–**आन्तरिक कारक वे कारक हैं जो हमारे अपने नियंत्रण में हैं, (शक्तियाँ तथा कमजोरियाँ) उदाहरण के लिए प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर स्तर पर शिक्षण प्रक्रिया। इन्हें कुछ प्रश्नों द्वारा पहचाना जा सकता है, जैसे शैक्षिक शक्तियों को पहचानने के लिए निम्न प्रश्नों का सहयोग लिया जा सकता है।

- शिक्षण प्रक्रिया किस स्तर पर कितनी प्रभावकारी है?
- छात्रों की अधिगम क्षमता क्या है?
- शिक्षकों द्वारा पढ़ाई गई अध्ययन सामग्री कितनी उपयोगी है?
- विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण किस प्रकार है?
- विद्यालयों में छात्र-शिक्षक संबंध कैसे हैं?
- शक्तियों के साथ-साथ कमजोरियाँ भी आन्तरिक कारक हैं, इन्हें पहचानने के लिए प्रश्नों का सहयोग लिया जाता है।
- विद्यालयों में शैक्षिक प्रबंधन की क्या व्यवस्था है?
- शिक्षा का आशातीत विकास नहीं हो पा रहा है?
- विद्यालयों तथा उच्च शिक्षण संस्थानों में कौन-सी मूलभूत सुविधाओं का अभाव है?
- शैक्षिक प्रबंधन की असफलताएँ क्या हैं?
- कौन-से पर्यावरणीय, राजनैतिक तथा सामाजिक कारक हैं जो शिक्षण प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव डालते हैं?

अवसर बाह्य कारक हैं, शैक्षिक प्रबंधन की प्रक्रिया में अवसर तथा चुनौतियाँ भी पहचानी जाती हैं–

अगले चरण में इन्हीं चार कारकों को दो-दो के जोड़े के रूप में संगठित करके चार प्रकार की रणनीतियाँ तैयार की जाती हैं–

(*i*) SO रणनीति (शक्ति तथा अवसर रणनीति)
(*ii*) ST रणनीति (शक्ति तथा चुनौती रणनीति)
(*iii*) WO रणनीति (कमजोरी तथा अवसर रणनीति)
(*iv*) WT रणनीति (कमजोरी तथा चुनौती रणनीति)

इसके बाद इन रणनीतियों तथा उनके उपयोग से पड़ने वाले प्रभावों को मूल्यांकित किया जाता है, फिर देखा जाता है कि ये रणनीतियाँ हमारे लक्ष्य को प्राप्त करने में कितनी और कहाँ तक प्रभावी हैं, यदि किसी रणनीति द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती है तो उस रणनीति का प्रयोग नहीं किया जाता है।

इन रणनीतियों की एक सूची उपलब्ध होने के कारण उनका विश्लेषण किया जाता है, जो रणनीतियाँ प्रयोजित नहीं हैं उनको निरस्त कर दिया जाता है, किन्तु कम से कम तीन रणनीतियों का प्रयोग इस विश्लेषण में किया जाता है।

नोट

किसी भी विद्यालय प्रणाली का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके विकास में नवीन निवेश ने जोड़े जाएँ अन्यथा प्रणाली की यथास्थिति बनी रहती है। ये नवीन निवेश विद्यालय प्रणाली में परिवर्तन लाते हैं। ये निवेश नए कार्यक्रम यथा: विद्यालय योजना, नवीन पाठन विधियाँ व समदाय सहयोग के नए कार्यक्रम आदि हो सकते हैं, जिनके फलस्वरूप विद्यालय अन्य विद्यालयों से अपनी पूर्व परम्परित स्थिति से भिन्न हो जाता है। यह नवीन स्थिति विद्यालय की आवश्यकतानुरूप होनी चाहिए। इस स्थिति को प्रणाली नवीनीकरण (system renewal) कहा जा सकता है। बिना नवीनीकरण के विद्यालय के अस्तित्व का प्रयोजन भी सफल नहीं होता है। यदि परिवर्तन परिवेश में विद्यालय प्रणाली में परिवर्तन न हो तो विद्यालय का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

जो विद्यालय अपनी पूर्व स्थिति बनाए रखते हैं वे समुदाय या शिक्षा प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं रह पाते। उनके प्रशासक विद्यालय की जैसी भी स्थिति हो, वैसी की वैसी ही बनाए रखने के लिए पूर्व-निर्धारित कार्यक्रमों के संबंध में ही नियोजन, कार्य संपादन एवं मूल्यांकन करते रहते हैं। इस प्रकार वे केवल प्रणाली को कायम रखते हैं, नई दिशा नहीं दे पाते। विद्यालय के प्रभावी विकास के लिए क्षेत्र की आवश्यकतानुसार यथासमय अपेक्षित परिवर्तन अवश्य कर लेना चाहिए। इससे कार्यकर्ता, प्रभारी व प्रशासक यांत्रिक रट में नहीं पड़ते और उनका स्वयं का भी विकास होता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि परिवर्तन मात्र परिवर्तन के लिए न हो।

एक अच्छे प्रबंधक के लिए किसी भी संगठन में दोनों ही पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक होता है, यथा स्थिति बनाए रखना तथा प्रणाली को नई दिशा देना। प्रत्येक विद्यालय प्रणाली की अधोलिखित विशेषताएँ होती हैं–

1. विद्यालय प्रणाली में सतत् विकास हो सकता है। कभी भी विकास की अन्तिम स्थिति नहीं होती। वस्तुत: विकास विश्व की अनवरत व अविच्छिन्न प्रक्रिया है।
2. विद्यालय प्रणाली वह प्रक्रिया है, जहाँ व्यक्ति निरंतर परस्पर व्यवहार करते रहते हैं। यथा–प्रधानाध्यापक–शिक्षक एवं अभिभावक आदि।
3. यह परस्पर क्रिया संप्रेषण के माध्यम से होती है जिसमें प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक शब्दों तथा संकेतों से संप्रेषण करते हैं। इससे एक विशेष पर्यावरण का जन्म होता है इसे संगठनात्मक पर्यावरण के नाम से पुकारा जाता है। यह प्रधानाध्यापक व शिक्षकों का परस्पर व्यवहार ही होता है, जिसके कारण किसी विद्यालय में बंद प्रकार का तो किसी में मुक्त और किसी में नियंत्रित प्रकार का पर्यावरण बन जाता है। वस्तुत: प्रत्येक विद्यालय का अपना विशेष प्रकार का पर्यावरण होता है। एक कुशल प्रधानाध्यापक बंद पर्यावरण से मुक्त पर्यावरण का निर्माण करने के लिए यत्न कर सकता है।
4. विद्यालय वृहत् महा–समाज प्रणाली की उप–प्रणाली है जिसमें उसे अपना स्थान परस्पर क्रिया के अनुरूप बनाना होता है।
5. प्रत्येक विद्यालय प्रणाली की सही कसौटी उसका निष्पक्ष मूल्यांकन पर खरा उतरना है। मूल्यांकन के आधार पर ही विद्यालय की श्रेष्ठता या कमियों का ज्ञान हो सकता है।
6. एक श्रेष्ठ विद्यालय प्रणाली को समाज में उचित दिशा में परिवर्तन के लिए पहल करनी चाहिए, जिससे समाज विकास कर सके क्योंकि भावी पीढ़ी का निर्माण उसी के हाथों में है।

(अ) विद्यालय नवीनीकरण पर समय अधिक देता है।

(ब) विद्यालय अपेक्षाकृत अधिकाधिक समय यथास्थिति बनाए रखने पर देता है।

*क्या आप जानते हैं* सॉट प्रक्रिया का सबसे पहला चरण है, शक्तियों, कमजोरियों, अवसरों तथा चुनौतियों को पहचानना।

नोट

## 4.3 सॉट प्रणाली विश्लेषण (SWOT System Analysis)

यहाँ सॉट प्रणाली विश्लेषण का भी उल्लेख करना अत्यन्त उपयोगी होगा, क्योंकि एक निश्चित अवधि में सॉट प्रणाली ने योजनानुरूप क्या प्रगति की, इसका सूक्ष्म विश्लेषण किया जाना अत्यावश्यक है। साथ ही भावी कदमों के लिए निर्णय लिया जाना भी अपेक्षित है। प्रणाली विश्लेषण के संबंध में केव्द तथा वाउचर लिखते हैं–

प्रणाली विश्लेषण वह क्रमबद्ध अधिगम है जो निर्णयकर्ता को समस्या की पूर्ण गवेषणा के बाद, उद्देश्यों की परिणामों के साथ तुलना करने एवं उचित रूपरेखा का प्रयोग करते हुए समस्या के संबंध में कार्य प्रणाली तय करने में योग देता है।

वस्तुत: प्रणाली विश्लेषण की शुरूआत रक्षा-प्रतिष्ठानों में हुई है। इनमें नवीनतम तकनीक का प्रयोग किया जाता है। नई तकनीकी श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए पुराने यंत्रों तथा हथियारों में आवश्यक संशोधन किया जाता है। उदाहरणार्थ भारत-पाक 1972 के युद्ध में नेट वायुयान, सेना काम में ले रही थी आज यह वायुयान युद्ध के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। अन्य देशों में हुई आधुनिक टेक्नोलॉजी के विकास के अनुरूप तथा वहाँ हुए वायुयानों की मारक क्षमता में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि वायुयान की एक नई किस्म (प्रणाली) का विकास किया जाये तथा पुरानी प्रणाली जो आज की स्थिति में अनुपयोगी हो गई है उसे आधुनिकतम बनाया जाए या उसके स्थान पर अन्य प्रकार का नवीन टेक्नोलॉजी के आधार पर यान प्रयोग में लिया जाए। रक्षा उपक्रमों में यही कारण है कि 5 से 10 वर्ष बाद हर क्षेत्र में नई प्रणाली आ जाती है। यही बात शिक्षा जगत में भी लागू होती है। अंतर इतना है कि यहाँ परिवर्तन की आवश्यकता को इतनी गम्भीरता से नहीं लिया जाता है। विज्ञान व टेक्नोलॉजी के विकास एवं ज्ञान के विस्फोट ने शिक्षा-जगत में भी परिवर्तन कर दिया है, परन्तु हम आज भी पुरानी पाठ्यवस्तु व घिसी-पिटी विधियों का प्रयोग कर रहे हैं। यही कारण है कि आज की स्थिति में शिक्षा प्रणाली की उपयोगिता की आलोचना की जाती है, क्योंकि परिवर्तित परिवेश के अनुरूप इसमें वांछित परिवर्तन नहीं किया गया है।

सॉट प्रणाली-विश्लेषण में 5 कदमों का उल्लेख किया गया है–

1. उद्देश्य-निर्णय या कार्य-प्रणाली का निश्चय।
2. विकल्प-उद्देश्य की पूर्ति के लिए संभावित विकल्पों में चुनाव।
3. व्यय-मूल्य-विश्लेषण न केवल तात्कालिक वित्तीय कीमत से लगाया जाए, वरन् इसमें लगा समय एवं भावी उपयोगिता के आधार पर आँका जाए।
4. मॉडल निर्माण-अन्त में उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर एक मॉडल का पूर्व के स्थानापन्न के रूप में निर्माण किया जाये, एवं
5. मूल्यांकन-इस नए मॉडल की उपयोगिता का सतत् विश्लेषण किया जाए।

**सॉट प्रणाली विश्लेषण प्रक्रिया**

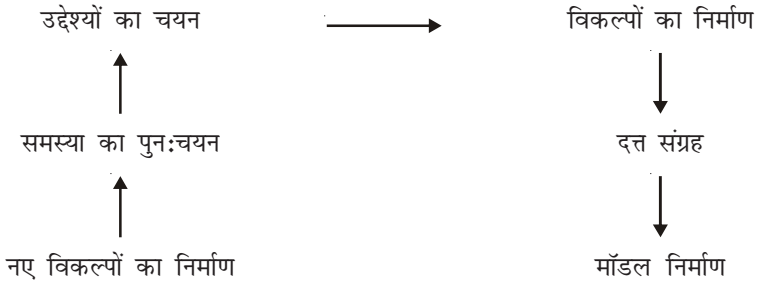

नोट

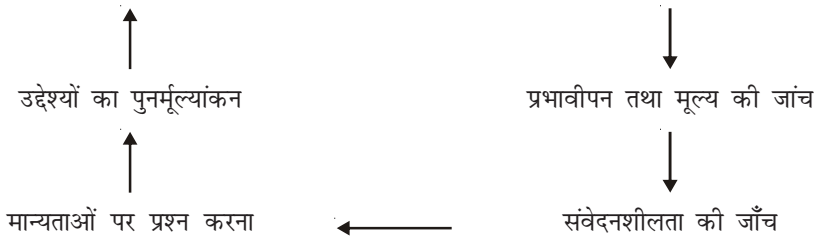


यदि उपर्युक्त चित्र की व्याख्या की जाए तो इस विश्लेषण चक्र में निम्न कदम अपनाने होंगे, वे हैं–

1. उद्देश्यों का चयन।
2. विकल्पों का निर्माण।
3. दत्त संग्रह।
4. मॉडल निर्माण
5. प्रभावीपन तथा मूल्य का अनुमान।
6. संवेदनशीलता की जाँच।
7. पूर्व-मान्यताओं पर प्रश्न।

यदि आज के संदर्भ में अपने विद्यालयों की स्थिति पर दृष्टिगत करें, तो कार्यक्रम रूढ़िगत, पुराने व अनुपयुक्त हो गए हैं। इसका एक ही मुख्य कारण है कि इन्होंने नवीनीकरण की प्रक्रिया छोड़ दी है। केवल परंपराओं और पूर्व-प्रचलित पाठ्यवस्तु एवं पाठन विधियों तक ही ये सीमित रह गए हैं। यही कारण है कि इवान इलिच और रीमर ने आधुनिक विद्यालयों को मृत प्राय: कहा है तथा इन्हें समाज के लिए अनुपयोगी बताया है।

अत: यह आवश्यक ही नहीं, अपितु अपरिहार्य है कि नवीनीकरण के कार्यक्रम अपनाए जाएँ। समाज और देश में जहाँ शिक्षा के उत्पादन केन्द्रित बनाने की बात है, निरक्षरता को समाप्त करने की बात है, विद्यार्थी को अधुनातन बनाए रखने का प्रश्न है, इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमें कार्यक्रमों में अनिवार्यत: परिवर्तन लाना होगा। हमारे विद्यालयों को राष्ट्रीय और सामाजिक धारा से केवल जोड़ना ही नहीं है, अपितु विश्व के प्रगतिशील राष्ट्रों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर उनके साथ चलना होगा अन्यथा विकसित राष्ट्र, अविकसित, अर्द्ध-विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों का न जाने कितनी आगामी सदियों तक दोहन-शोषण करते रहेंगे।

इस प्रक्रिया में अधोलिखित सोपान आते हैं–

1. समस्या का पुनर्संगठन, परिभाषीकरण तथा परिसीमन।
2. समस्या का विश्लेषण एवं मूल्यांकन।
3. एक मानदण्ड निश्चित करना, जिसके अनुरूप समस्या समाधान का मूल्यांकन करना।
4. समस्या के सम्बन्ध में दत्त-संकलन।
5. समस्या समाधान के लिए विकल्पों का निर्माण, उपयुक्त का चुनाव तथा प्रयोग से पूर्व विकल्प का परीक्षण एवं
6. चयनित विकल्प का समस्या के समाधान के लिए प्रयोग।

जब एक बार समस्या का पता चल जाये, तब उसके परिभाषीकरण और परिसीमन के बाद विश्लेषण व मूल्यांकन निम्नलिखित प्रकार के प्रश्नों के आधार पर किया जा सकता है–

(1) इस समस्या का मेरे लिए क्या अर्थ है?
(2) इस समस्या का संगठन के लिए क्या अर्थ होगा।
(3) मैं इस समस्या में क्या कर सकता हूँ?
(4) मैं इस समस्या के बारे में क्या करना चाहता हूँ?
(5) हम इस समस्या के बारे में क्या करना चाहते हैं?

नोट

1. **प्रथम चरण–**प्रशासक के सामने अनेक समस्याएँ हो सकती हैं, परन्तु उसे इनसे परेशान नहीं होना चाहिए। उसे इनमें से गुरुता के आधार पर प्रमुख-प्रमुख समस्याओं को चुन लेना चाहिए तथा इन्हीं पर अपने शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए।
2. **द्वितीय चरण–** समस्या चयन के बाद प्रशासक को समस्या का विश्लेषण व मूल्यांकन करना चाहिए। समस्या का क्या अर्थ है? मेरी क्या भूमिका है? आदि। यदि वह यक समझता है कि इस प्रक्रिया में अन्य लोगों को भी सम्मिलित किया जाए, तब उसे स्वयं निर्णय नहीं लेना चाहिए। बर्नाड के अनुसार निर्णय नहीं लेने की तीन स्थितियाँ हो सकती हैं– (1) जब ऊपर से अधिकृत का संदेश हो, (2) जब अधीनस्थों के द्वारा निर्णय लिया जाना हो एवं (3) वे संदर्भ जिनका संबंध कार्यकारिणी से हो।

मूल्यांकन प्रक्रिया का उद्देश्य संगठन के कार्यों की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन कर यह देखना होता है कि संगठन के लक्ष्यों के अनुरूप सभी कार्यक्रम उपयुक्त रूप से चल रहे हैं अथवा नहीं। यदि कहीं कोई कमी है तो आवश्यक सुधार लाकर कार्यक्रमों को लक्ष्य की प्राप्ति की ओर लगाना भी मूल्यांकन का ही अंग है। मूल्यांकन की प्रक्रिया में मिलर तथा स्पाल्डिंग ने अधोलिखित कदम प्रस्तावित किए हैं–

1. मूल्यांकन की जानी वाली समग्र स्थिति का चयन एवं परिभाषीकरण।
2. मूल्यांकन के लिए मापदंड का विकास, तदनुसार मूल्यांकन के उपकरणों का विकास।
3. मापदंड के आधार पर दत्तों का संग्रह।
4. दत्तों का विश्लेषण तथा निष्कर्ष।

मूल्यांकन के क्या उद्देश्य हो सकते हैं, इस संबंध में संयुक्त राज्य शैक्षिक फाउण्डेशन संघ ने अधोलिखित आधार प्रस्तावित किये हैं–

(*i*) किसी भी संगठन का वर्ष के अंत में उसकी कार्यप्रणाली के बारे में मूल्यांकन किया जाए।

(*ii*) नवीन उद्देश्यों का निरूपण किया जाये। पुराने उद्देश्य जो पूरे नहीं हुए हैं, उनको पुनः रखा जाये तथा अनुपयोगी पुरातन उद्देश्यों को हटा दिया जाये।

(*iii*) यह पता लगाया जाए कि किसी संगठन में उद्देश्य प्राप्ति हेतु विभिन्न समूहों ने अलग-अलग व परस्पर किस सीमा तक सहयोग किया है।

(*iv*) उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में नवीन प्रबंधन प्रक्रिया तय की जाये।

अस्तु मूल्यांकन केवल गठन के लिए ही नहीं, वरन् व्यक्तियों के विकास के लिए भी आवश्यक है, जो संगठन में कार्य कर रहे हैं।

## मूल्यांकन में कठिनाइयाँ

शैक्षिक संगठन एवं औद्योगिक संगठनों के मूल्यांकन में बड़ा अंतर हैं। विशेष रूप से उपलब्धियों के संदर्भ में जहां शैक्षिक संगठन में किसी भी प्रयोग का परिणाम अनेक वर्षों बाद दिखाई देगा, वहां औद्योगिक संगठनों में यह प्रभाव तत्काल दिखाई पड़ता है। शैक्षिक संगठन के उत्पाद की गुणवत्ता भी आसानी से नहीं जानी जा सकती।

## भारत में विद्यालय संगठन के मूल्यांकन का विकास

भारत में शैक्षिक संगठन के मूल्यांकन की शुरुआत 1953-54 से देखने में आती है, जब यूनाइटेड स्टेट्स एजूकेशनल फाउण्डेशन की ओर से कई अमेरिकी शिक्षाविदों का भारत में आगमन हुआ। चार कार्यशालाएँ पटना, जबलपुर, बड़ौदा तथा मैसूर में विद्यालयों के मूल्यांकन पर आयोजित की गई, जिनमें 150 से अधिक प्रधानाध्यापकों, निरीक्षकों व शिक्षकों आदि ने भाग लिया। बड़ौदा में ए समिति ने 'भारतीय विद्यालयों के लिए मूल्यांकन क्राइटेरिया तैयार किया जिसका मैसूर कैम्प में पुनर्मूल्यांकन किया गया। 1954 में यह प्रकाशित हुआ। 1959 में मुकर्जी ने एक और मूल्यांकन क्राइटेरिया विकसित किया जिसे विद्यालयों के मूल्यांकन के लिए तथा निरांक्षक द्वारा निरीक्षक कार्य में प्रयुक्त किया जा सकता है।

नोट

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वास्थ्य शिक्षा और कल्याण विभाग के सहयोग से 1966 में पर्यवेक्षण और निरीक्षण क्राइटरिया तथा इसके लिए एक संदर्शिका भी तैयार की गई। इसी दिशा में प्राथमिक विद्यालयों के लिए भी एन.सी.ई.आर.टी. ने 1976 में एक पर्यवेक्षक प्रपत्र तैयार किया। इस प्रकार विद्यालय या शैक्षिक संगठनों के मूल्यांकन के लिए कतिपय विश्वसनीय आधार उपलब्ध हो सके हैं।

## शैक्षिक आयोजन में पंचवर्षीय योजनाओं की भूमिका और सॉट विश्लेषण

**पंचवर्षीय योजनाएँ**–भारत में पंचवर्षीय योजना 1951 में प्रारंभ हुई। इस प्रथम योजना का उद्देश्य त्वरित रूप से राष्ट्रीय विकास करना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की जर्जर आर्थिक स्थिति में इस योजना का श्रीगणेश हुआ। शिक्षा की मां को देखते हुए सीमित साधनों में सकल योजना की 7.6 प्रतिशत राशि शिक्षा विभाग हेतु आवंटित की गई, जो प्रतिशत की दृष्टि से आज तक की सभी योजनाओं में अधिक है। शिक्षा पर व्यय का यह प्रतिशत आगमी योजनाओं में निरन्तर घटता गया जो शिक्षा के प्रति उपेक्षा का द्योतक ही कहा जा सकता है। निम्नलिखित तालिका से यह स्थिति स्पष्ट है–

**भारत की योजनाओं में शिक्षा पर आवंटित धन का प्रतिशत (करोड़ ₹ में)**

| योजना | कुल योजना को आवंटित धन (लाखों में) | शिक्षा को आवंटित धन (लाख) | कुल योजना में शिक्षा का प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| प्रथम | 1960 | 153 | 7.6 |
| द्वितीय | 4672 | 273 | 5.8 |
| तृतीय | 8209 | 600.05 | 7.3 |
| चतुर्थ | 16000 | 12.10 | 7.6 |
| पंचम | 39287.49 | 1284.29 | 3.3 |
| षष्टम | 97500.00 | 2523.74 | 3.3 |
| सप्तम | 180000.00 | 6382.64 | 3.5 |

**प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर धन का आबंटन (लाखों में)**

| | पहली योजना | दूसरी योजना | तीसरी योजना | तीन वर्षीय योजना | चौथी योजना | (₹ करोड़ में) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्राथमिक | 85 | 95 | 178 | 65 | 238 | 661 |
| शिक्षा | (56%) | (35%) | (30%) | (20%) | (30%) | ( ) |
| माध्यमिक | 20 | 51 | 105 | 53 | 140 | 367 |
| शिक्षा | (13%) | (19%) | (18%) | (16%) | (18%) | (17%) |
| विश्वविद्यालय | 14 | 48 | 87 | 77 | 195 | 42 |
| शिक्षा | (9%) | (18%) | (15%) | (24%) | (25%) | (20%) |
| शिक्षक | – | – | 23 | 9 | – | 32 |
| शिक्षा | | | (4%) | (3%) | | (2%) |
| प्रौढ़ | 5 | 4 | 2 | 2 | 5 | 14 |
| शिक्षा | (3%) | (1%) | | (1%) | (1%) | ( ) |
| सांस्कृतिक | – | 3 | 7 | 4 | 12 | 26 |
| कार्यक्रम | | (1%) | (1%) | (1%) | (2%) | (1%) |

नोट

| जोड़ | 133 | 244 | 464 | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| तकनीकी | 20 | 49 | 125 | 81 | 106 | 381 |
| शिक्षा | (13%) | (18%) | (21%) | (25%) | (13%) | (18%) |
| कुल जोड़ | 153 | 273 | 538 | 322 | 786 | 2123 |
| | (100%) | (100%) | (100%) | (100%) | (100%) | (100%) |

उपर्युक्त सारणी को देखने से यह सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा पर जहां प्रथम पंचवर्षीय योजना में सर्वाधिक व्यय किया गया वहीं यह निरंतर (56 प्रतिशत से) घट पर क्रमशः 35 प्रतिशत द्वितीय योजना, 30 प्रतिशत, तृतीय योजना व 32 प्रतिशत चतुर्थ योजना में रह गया।

माध्यमिक शिक्षा पर जहां प्रथम पंचवर्षीय योजना में व्यय का मात्र 13 प्रतिशत व्यय किया गया था, वहीं द्वितीय पंचवर्षीय योजना से लेकर चौथी पंचवर्षीय योजना तक लगभग समान 16-19 प्रतिशत व्यय किया गया। माध्यमिक शिक्षा पर चारों योजनाओं का औसत व्यय 17 प्रतिशत रहा।

विश्वविद्यालयी शिक्षा को दूसरी पंचवर्षीय योजना के बाद विशेष महत्त्व दिया गया। विश्वविद्यालयी शिक्षा पर प्रथम में 9 प्रतिशत, द्वितीय 18 प्रतिशत, तृतीय में 15 प्रतिशत तथा चतुर्थ योजना में 25 प्रतिशत राशि सकल योजना व्यय की गई। छात्र संख्या की दृष्टि से यह राशि प्रति छात्र प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय छात्र पर होने वाली व्यय राशि से काफी अधिक है।

शिक्षक शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र सर्वथा उपेक्षित रहे। शिक्षक प्रशिक्षण को शिक्षा गुणवत्ता का मुख्य आधार मानते हुए भी इस पर मात्र 2 प्रतिशत राशि व्यय की गई। यही स्थिति प्रौढ़ शिक्षा की रही। देश की आधी से अधिक अशिक्षित जनसंख्या के लिए मात्र 1 प्रतिशत राशि प्रथम चार योजनाओं के व्यय में रखी गई, यह निश्चित रूपे उपयुक्त नहीं कही जा सकती।

सामान्य शिक्षा पर चारों योजनाओं में जहां 82 प्रतिशत व्यय किया गया, वहीं तकनीकी-व्यावसायिक शिक्षा पर मात्र 18 प्रतिशत व्यय किया गया।

शिक्षा की चुनौती दस्तावेज (1986) में शिक्षा की समग्र स्थिति की समीक्षा की गई है। इस समीक्षा में प्राथमिक शिक्षा की आज की स्थिति का अत्यधिक विचारणीय चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस रपट के अनुसार 300 से अधिक आबादी वाले 1/5 गांवों में विद्यालय भवन नहीं हैं। 39.72 प्रतिशत विद्यालयों में श्यामपट्ट नहीं हैं तथा 59.5 प्रतिशत विद्यालयों में पीने के पानी की कोई व्यवस्था नहीं है।

यही नहीं शिक्षा की आधारभूत इकाई शिक्षक है। 35 प्रतिशत विद्यालयों में मात्र 1 शिक्षक है, जो प्रथम कक्षा से पांच तक अध्यापन करता है। अनेक विद्यालयों में लम्बे समय तक कोई शिक्षक नहीं रहता।

शिक्षा की उपर्युक्त स्थिति निश्चित रूप से चिंतनीय है। एक ओर हम 2000 वर्ष तक 'सभी को शिक्षा' देने की घोषणा करते हैं, यह एक सपने ओर छलावे से अधिक और कुछ प्रतीत नहीं होता। यदि यह 2010 तक भी लक्ष्य पूरा हो सके तो देश के लिए लाभकारी होगा।

अखिल भारतीय पांचवें शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार 1986 तक की शिक्षा की स्थिति निम्नानुसार है-

**प्राथमिक स्तर**-कुल 502806 गांवों में प्राथमिक विद्यालय हैं जो 80.34 प्रतिशत गांवों की आबादी की ही व्यवस्था करते हैं। 19.66 प्रतिशत गांवों के बालकों के लिए अभी भी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। इनमें मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार जैसे राज्यों की स्थिति अभी भी विचाराधीन है। समग्र रूप से देश में जहां 1978 में 6-11 वर्ष की आयु के बालकों का नामांकन 81.65 प्रतिशत था यह 1986 में बढ़कर 93.63 तक आ पाया।

**उच्च प्राथमिक स्तर**-देश में 1986 तक मात्र 1325 प्रतिशत गांवों में ही उच्च प्राथमिक विद्यालय थे जो 36.98 प्रतिशत गांवों की जनसंख्या की शिक्षा की व्यवस्था करते थे। इस स्तर पर पूरे देश के दृष्टिकोण से नामांकन 1978 में 37.94 प्रतिशत था, जो 1986 में बढ़कर 48.51 तक ही हो पाया।

नोट

1986 में छात्र नामांकन की दृष्टि से 1–5 कक्षा तक कुल 86683289 छात्र पंजीकृत थे जिनमें से 667999707 (77.00 प्रतिशत लगभग) छात्र ग्रामीण क्षेत्र से थे। छात्राओं का नामांकन 35676643 था, जो कुल बालिकाओं की संख्या का 41.16 प्रतिशत थीं। कक्षा 6 से 8 कक्षाओं में नामांकन 27200656 था, जिनमें 9642537 (35.45) छात्राओं की संख्या थी। इनमें से ग्रामीण क्षेत्र में 17795293 (65.42 प्रतिशत) छात्र संख्या अध्ययनरत थी।

कक्षा 9 तथा 10 तक की कक्षाओं में 11474962 छात्रों का नामांकन था, जिसमें 6488568 ग्रमीण क्षेत्रों में नामांकन का 56.53 प्रतिशत था। इनमें से 31.74 छात्राएँ थीं।

कक्षा 11 तथा 12 कक्षाओं कुल छात्रों का नामांकन 3440863 थ, जिसमें से छात्राएँ 1056592 थीं, जिनका प्रतिशत 30.71 प्रतिशत था।

उपर्युक्त आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता के बाद यद्यपि साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा है, परन्तु अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर पर 20% बालकों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। उच्च प्राथमिक स्तर तक यह बढ़कर 63 प्रतिशत हो जाती है, जो इस तथ्य की साक्षी है कि अभी मंजिल बहुत दूर है। यह संतोष की बात अवश्य है कि छात्राओं के नामांकन का प्रतिशत विद्यालयों में निरंतर बढ़ रहा है।

उपर्युक्त आंकड़ों से यह अवश्य लगता है कि शिक्षितों की संख्या में वृद्धि हो रही है। उदाहरणार्थ प्राथमिक स्तर पर नामांकन लगभग 94% हो गया है। परन्तु यहा यह लिखना उपयुक्त न होगा कि ऐसे अनेक ग्रामीण क्षेत्र हैं, जहां प्राथमिक स्तर शिक्षा की स्थिति आज भी अत्यधिक दयनीय है। विशेषकर महिलाओं की शिक्षा राजस्थान में जालौर, जैसलमेर तथा जनजाति उपयोजना क्षेत्र (डूंगरपुर–बांसवाड़ा) की स्थिति के उदाहरण इस संदर्भ में दिए जा सकते हैं।

**सॉट (SWOT) विश्लेषण के लाभ तथा सीमाएँ–**सॉट (SWOT) विश्लेषण के विभिन्न लाभ हैं जो निम्नलिखित हैं–

(*i*) सॉट (SWOT) विश्लेषण द्वारा बाह्य कारक तथा आन्तरिक क्षमताएँ समझने के लिए आँकड़े उपलब्ध कराता है।

(*ii*) बाह्य अवसरों तथा चुनौतियों का मूल्यांकन करने में अवसर प्रदान करता है।

(*iii*) बाह्य अवसरों तथा चुनौतियों का मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करता है।

(*iv*) सुधार हेतु नवीन तकनीकें तथा कार्यक्रम नियोजित करता है।

## सॉट की सीमाएँ (Limitation of SWOT )

(*i*) इस प्रक्रिया में बहुत अधिक समय लगता है।

(*ii*) पुराने आँकड़े उपलब्ध होने के कारण सही परिणाम नहीं निकलते।

(*iii*) सॉट (SWOT) प्रक्रिया में विभिन्न मतों के चलते विभेदीकारिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment )

**निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' अथवा 'असत्य' का चुनाव करें। (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**

1. सॉट (SWOT) विश्लेषण बाह्य एवं आंतरिक क्षमताओं को समझने के लिए आँकड़े उपलब्ध कराता है।
2. इस प्रक्रिया में बहुत अधिक समय नहीं लगता।
3. सुधार हेतु नवीन तकनीकें तथा कार्यक्रम सॉट (SWOT) विश्लेषण उपलब्ध कराता है।

*टास्क* सॉट (SWOT) विश्लेषण के बाह्य एवं आंतरिक कारक कौन–कौन से हैं?

नोट

## 4.4 सारांश (Summary)

- सॉट (SWOT) विश्लेषण किसी विशेष परिस्थिति को मूल्यांकित करने की विश्लेषणात्मक प्रविधि है। सॉट (SWOT) चार शब्दों का संक्षिप्त रूप है। S से तात्पर्य Strength अर्थात् शक्तियाँ, W से Weakness कमजोरियाँ, O से Opportunities अवसर तथा T से Threats चुनौतियाँ। किसी भी परिस्थिति के ये चार पक्ष होते हैं जो उसका समग्र विश्लेषण करने के लिए आवश्यक हैं। विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक प्रबंधन के साथ-साथ शैक्षिक प्रबंधन में भी इसका महत्त्व बढ़ गया है। सॉट (SWOT) के चार पक्षों में से दो पक्ष, अवसर तथा चुनौतियाँ बाह्य कारक हैं, जबकि शक्तियाँ तथा कमजोरियाँ आन्तरिक कारक हैं।
- इसके आधार पर विद्यालयों में प्रशासनिक सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है।
- इसके आधार पर प्रशासक सहज ही अनुमान लगा लेते हैं कि विद्यालय प्रणाली की उप-प्रणालियों में कहाँ क्या कमी है व इसे कैसे दूर किया जा सकता है।
- यह एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है कि "प्रबंधक एक समग्र प्रणाली" का कार्य कर रहा है।
- इस सिद्धांत के व्यापक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए टजेल्स तथा गुवा लिखते हैं–यह अभिगम किसी संगठन में कार्यरत व्यक्तियों या उनके व्यवहार का विश्लेषण करने का आधार-प्रदान करती है। इसके आधार पर विद्यालय प्रणाली के प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार को चाहे वह प्रिंसीपल, शिक्षक या विद्यार्थी हो समझा जा सकता है। कुछ अपेक्षित व्यवहार होते हैं, उनके यह व्यवहार, उनके निजी दृष्टिकोण पर आधारित होते हैं। व्यक्तियों के व्यवहार के मध्य अंत:क्रिया चलती रहती है। टकराव की स्थिति तब होती है, जब अपेक्षित व्यवहार तथा व्यवहार करने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण में अंतर होता है। इस अभिगम के आधार पर कुशल प्रशासक तनाव व संघर्षों को कम करता हुआ विद्यालय प्रणाली के विकास के लिए अग्रसर हो सकता है।
- किसी भी शैक्षिक संस्था अथवा प्रक्रिया की सम्पूर्ण स्थिति का मूल्यांकन करने का सर्वाधिक उपयुक्त और प्रभावकारी प्रविधि SWOT है। इस प्रक्रिया में SWOT को दो वर्गों में विभाजित किया गया है।
- प्रणाली अंत: संबंधित तथा अन्त: निर्भर भागों की शृंखला है, जिसके किसी एक भाग (उप-प्रणाली) की अंत: क्रिया समग्र प्रणाली को प्रभावित करती है।
- अत: यह पारस्परिक अंत:क्रियाओं का एक मिश्रण है। प्रभावी प्रबंधन के लिए इस अंत:क्रिया को समझना आवश्यक है। इसमें तीन कारकों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है–
  1. व्यक्तियों और समूह के मध्य प्रभावी संप्रेषण,
  2. कर्मियों की अपेक्षाएँ, तदनुरूप उत्प्रेरणा तथा
  3. व्यक्ति और समूह के संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने की समान आकांक्षा। इसके अतिरिक्त प्रणाली में एक कार्यकारी पर्यावरण भी अपेक्षित है।
- प्राय: दो प्रकार के संगठन होते हैं: बंद तथा मुक्त। विद्यालय सामाजिक प्रणाली होने के नाते, मुक्त प्रणाली है। विद्यालय अपने समीपस्थ पर्यावरण, समुदाय, वहाँ की जनसंख्या, छात्र, मूल्य तथा परंपराओं आदि सभी से प्रभावित होता है। सच तो यह है, यह स्थिति एक समुदाय विशेष तक सीमित नहीं रहती, वरन् यह महा-सामाजिक प्रणाली का अंग बन जाती है।
- सॉट प्रणाली सिद्धांत को शैक्षिक प्रबंधन में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रणाली का विस्तार विद्यालय प्रणाली से विद्यालय जिला तथा वृहत समुदाय के साथ जोड़ा जा सकता है। विद्यालय प्रणाली को प्रमाणित करने वाली अन्य प्रमुख प्रणालियाँ हैं राजनीति, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं तकनीी आदि। ये सभी प्रणालियाँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं।
- संगठन प्रणाली को यथास्थिति से बढ़ाकर बदलती आवश्यकताओं व शोध और नव-प्रयोगों द्वारा नवीनीकृत भी किया जा सकता है। एक सफल प्रबंधक को जहां पूर्व की श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को बनाए रखना चाहिए, वहीं प्रणाली

नोट

को नई दिशा भी देनी चाहिए। इसके लिए प्रणाली के कार्यकलापों का निरंतर विश्लेषण होते रहना चाहिए। इस विश्लेषण का आधार उद्देश्यों का चयन, विकल्पों का निर्माण, दत्त संग्रह, मॉडल निर्माण, उद्देश्यों का पुनर्मूल्यांकन एवं नवीन विकल्पों का निर्माण आदि हो सकता है।

- इस प्रकार के उपर्युक्त प्रस्ताव को किसी संगठन, विश्वविद्यालय आदि में व्यावहारिक निर्णय-प्रक्रिया के अध्ययन के आधार पर देखा जाना चाहिए, ताकि यह पता सके कि ये प्रस्ताव कहां तक समीचीन है।
- मुखर्जी का मानना है कि भारतीय संदर्भ में सॉट की सफलता भारतीय विश्वविद्यालयों में बहुत हद तक अनौपचारिक समूहों यथा शिक्षकों के समूह, विद्यार्थी यूनियन आदि पर निर्भर करती है। उपकुलपति स्वयं अपने आप निर्णय नहीं ले सकता। उसे धैर्य के साथ सभी औपचारिकता पूरी होने तक सीनेट के निर्णय की प्रतीक्षा करनी होगी। ये निर्णय और भी प्रभावी हो सकते हैं यदि वह बजाय समग्र निर्णय की प्रक्रिया में आदेश के स्थान पर निर्देशन एवं सॉट विश्लेषण तक अपने को सीमित रखे।

## 4.5 शब्दकोश (Keywords)

- **बंधेज**–प्रतिबंध, रुकावट।
- **मुंसिफाना**–न्यायसंगत।

## 4.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सॉट (SWOT) विश्लेषण की अवधारणा और विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. सॉट (SWOT) विश्लेषण प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।
3. सॉट (SWOT) विश्लेषण के क्या लाभ हैं? इसकी सीमाओं का विवेचन कीजिए।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

**1.** 1. प्रशासनिक 2. दृष्टिकोण 3. समाधान

**2.** 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

## 4.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*–डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–5: शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सॉट विश्लेषण का उपयोग (Application of SWOT Analysis at Various Levels of Education)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 सॉट विश्लेषण का प्रारंभिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में उपयोग (Application of SWOT Analysis at Elementary and Secondary Levels)

5.2 भारतीय उच्च शिक्षा में सॉट विश्लेषण (SWOT Analysis at Higher Education)

5.3 सारांश (Summary)

5.4 शब्दकोश (Keywords)

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सॉट (SWOT) का शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विश्लेषण और उपयोग किस प्रकार किया जाता है की जानकारी प्राप्त करने और व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

सॉट विश्लेषण शिक्षण प्रक्रिया की एक प्रविधि है, जो प्रशासकों, प्रबंधन अध्यापकों तथा स्टॉफ को विद्यालय प्रणाली तथा प्रविधियों को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करने में सहायता करती है। वास्तव में सॉट विश्लेषण ऐसी विश्लेषण प्रक्रिया है, जो भविष्य में वित्त, नियोजन तथा प्रबंधन निर्णय को प्रभावित करती है। इस इकाई में हम विभिन्न स्तरों पर सॉट विश्लेषण के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

## 5.1 सॉट विश्लेषण का प्रारंभिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में उपयोग (Application of SWOT Analysis at Elementary and Secondary Levels)

सॉट विश्लेषण में किसी भी परिस्थिति विशेष के चार पक्षों का विश्लेषण किया जाता है। प्रारंभिक तथा उच्च माध्यमिक शैक्षिक स्तर पर इन्हीं चार पक्षों (शक्ति, कमजोरी, अवसर तथा चुनौती) का विश्लेषण किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं।

नोट

### 1. शक्ति

(*i*) भारत उत्पादकता तथा क्रियात्मकता का विशाल भण्डार है। यदि इन मानवीय मानसिक शक्तियों का उचित प्रकार से उपयोग किया जाए तो इससे राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

(*ii*) भारत में शिक्षा में कम लागत लगने के कारण, शिक्षा में निवेश करना सरल है।

(*iii*) यहाँ कम लागत वाली शिक्षण विधियाँ हैं, जो न केवल शिक्षार्थी को शिक्षित करती हैं, बल्कि आवश्यकतानुसार उपयोगी कौशल तथा ज्ञान प्रदान करती हैं।

(*iv*) अध्यापक प्रशिक्षण में गुणवत्ता लाकर छात्रों तथा अध्यापकों के प्रायोगिक तथा क्रियाशील प्रदर्शन में सुधार लाया जा सकता है।

*क्या आप जानते हैं* भारतीय बालक वैश्विक बुद्धिजीवी धन के बहुमूल्य स्रोत हैं।

### 2. अवसर

(*i*) शहरी अध्यापकों की अपेक्षाकृत बहुत से ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक नए तथा सृजनात्मक विचार रखते हैं, वे शैक्षिक प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए नवीन उपागम, विधियों आदि का प्रयोग करते हैं।

(*ii*) ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में जहाँ शिक्षा का अभाव है, या साक्षरता दर कम है, यदि वहाँ बच्चों को विद्यालय में जाकर पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाए तो बेहतर परिणाम सामने आ सकते हैं। इन बच्चों में सीखने की क्षमता तथा अधिगम उत्सुकता बहुत होती है। सही ढंग से शिक्षा देने से उनकी सृजनात्मकता तथा उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

(*iii*) यदि ग्रामीण तथा शहरी विद्यालयों के छात्रों के बीच शिक्षण तकनीकों तथा आपसी विचारों का आदान–प्रदान हो तो ग्रामीण बच्चे नवीनतम व सृजनात्मक तकनीकों से लाभान्वित हो सकेंगे तथा शहरी विद्यालय के बच्चे, उनकी कठिनाइयों को समझने में सक्षम होंगे।

(*iv*) उच्चतर माध्यमिक स्तर तक के विद्यालय, गैर औपचारिक और प्रौढ़ शिक्षा सहित सभी शैक्षणिक कार्यक्रमों के उत्तरदायित्व द्वारा समझने में सक्षम होंगे।

(*v*) प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर प्रशासनिक और वित्तीय नियंत्रण और कार्मिक प्रबंध के लिहाज से शिक्षण एजेंसियों का राज्य सरकार के साथ सम्बंध को यथोचित दिशानिर्देशों के रूप में विस्तृत रूप से स्पष्ट करना होगा, जिससे सही तथा उचित प्रकार से शिक्षण प्रणाली कार्यान्वित हो सके।

(*vi*) शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर, शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा की कोटि सुनिश्चित करने हेतु केवल, शैक्षिक कार्यों के निरीक्षण के लिए जिला शिक्षा निरीक्षकों की नियुक्ति भी अति आवश्यक है। ये शैक्षिक संस्थाओं में शैक्षिक स्तरों की देख–रेख के लिए उत्तरदायी होंगे और वे संस्थाओं के प्रधानाध्यापकों और शिक्षकों द्वारा शैक्षिक कार्यों के बेहतर निष्पादन में शैक्षिक मार्गदर्शन तथा सहायता भी प्रदान करेंगे।

### 3. कमजोरियाँ

प्रारंभिक तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा के कुछ कमजोर बिन्दु हैं, जो शिक्षण प्रणाली के लिए ठीक नहीं हैं–

(*i*) अधिकांशत: प्रारंभिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा एक विमीय है, जिसमें केन्द्र केवल प्राप्तांकों पर होता है, अत: भारतीय स्कूली शिक्षा केवल उद्देश्य को प्राप्त करने वाली संकीर्ण मानसिकता उत्पन्न करती है।

नोट

(*ii*) अन्य विषयों, व्यावहारिक कौशलों में– टीम भावना, नेतृत्व समुदाय, उपयोग कौशल तथा सृजनात्मक सोच आदि विषयों पर न के बराबर ध्यान दिया जाता है।

(*iii*) शिक्षकों में बच्चों में सृजनात्मकता को उत्पन्न करने की योग्यता का अभाव है।

(*iv*) बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा किताबी है, बहुत ही कम अवसरों पर बच्चे अपने ज्ञान का उपयोग वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में कर पाते हैं।

(*v*) बच्चों को समुदाय आधारित क्रियाकलापों जैसे, पर्यावरण की सुरक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, गरीब तथा पिछड़े वर्ग के लोगों की शिक्षा आदि पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है तथा बच्चों को इन कार्यों के लिए प्रोत्साहित भी नहीं किया जाता।

(*vi*) भारतीय स्कूली शिक्षा में 3 लाख अध्यापकों की कमी है। प्रारंभिक तथा सेकेंडरी विद्यालय अध्यापकों की संख्या 7–8 लाख होनी चाहिए, जबकि केवल 3–4 लाख अध्यापक ही उपलब्ध हैं।

(*vii*) अधिकांशत: अध्यापकों में प्रेरणादायक दूरदृष्टिता की कमी है। भारतीय मध्यवर्गीय परिवारों में शिक्षा के क्षेत्र में निवेश की उपयोगिता को देखकर सभी विद्यालयों में शिक्षा के व्यवसायीकरण की होड़ सी लगी है, वे केवल धनार्जन पर ध्यान देते हैं, शिक्षा की गुणवत्ता पर इन संस्थानों का कोई ध्यान नहीं है।

(*viii*) भारतीय प्रारंभिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। मूलभूत सुविधाओं के अभाव में अध्यापक की कार्यशैली तथा कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(*ix*) उच्च माध्यमिक स्तर पर रट कर सीखने की विधि केवल स्मरण शक्ति पर आधारित होती है, इसमें तर्क-वितर्क विधि की कमी होती है, इस विधि में बहुत सी कमियाँ होती हैं।

### 4. चुनौती

(*i*) भारत के अनेक क्षेत्रों में ऐसे विद्यालय भी हैं जिनमें केवल एक कमरा तथा एक शिक्षक है। इस प्रकार के वातावरण में बेहतर शिक्षा का लक्ष्य एक चुनौती है।

(*ii*) सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के कारण अधिकतर अभिभावक बच्चों को स्कूल भेजने में रुचि नहीं दिखाते हैं। इस कारण बच्चों की अधिगम प्रक्रिया प्रभावित होती है।

(*iii*) भारत के बहुत से दूरस्थ क्षेत्रों, जहाँ शिक्षा का विकास कम है, वहाँ बहुत से बच्चे ऐसे हैं, जिनमें बहुत अधिक प्रतिभा होती है। इन प्रतिभाओं को यदि ठीक से अवसर दिए जाए तो यह देश के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकेंगी।

(*iv*) विद्यालयों में शिक्षण तथा अधिगम के तरीके काफी पुराने हो चुके हैं। प्रश्नोत्तर, अधिगम उपयोग तथा सृजनात्मकता पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

(*v*) ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकों तथा मूलभूत सुविधाओं का अभाव भी शिक्षण प्रक्रिया की एक प्रमुख चुनौती है।

नोट्स 2011 की शिक्षा की वार्षिक स्थिति की रिपोर्ट के अनुसार 41 प्रतिशत विद्यालयों में शौचालय तथा 26 प्रतिशत विद्यालयों में पीने योग्य पानी की कमी है।

## 5.2 भारतीय उच्च शिक्षा में सॉट विश्लेषण (SWOT Analysis at Higher Education)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत उच्च शिक्षा की भूमिका एवं महत्त्व का उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि– "उच्च शिक्षा से लोगों को इस बात का अवसर मिलता है कि वे मानव जाति की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में आई हुई समस्याओं पर विचार कर सकें। विशिष्ट ज्ञान व कुशलताओं

नोट

के प्रसार के द्वारा उच्च शिक्षा, राष्ट्र के विकास में सहायक होती है।" इसलिए समाज के जीवन में उसकी निर्णायक भूमिका है, शैक्षिक प्रारूप के शीर्ष पर होने के नाते शिक्षा व्यवस्था के लिए आवश्यक सॉट विश्लेषण करने में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सॉट विश्लेषण के निम्नलिखित तथ्य हैं:–

### शक्तियाँ

(*i*) आजकल ज्ञान का जो अभूतपूर्व विस्फोट हो रहा है, उसे देखते हुए, उच्च शिक्षा पहले से कहीं अधिक गतिशील हुई है तथा नवीन शिक्षा क्षेत्रों में विस्तार किया जा रहा है। आज भारत में करीब 300 विश्वविद्यालय और 1500 महाविद्यालय हैं, जिसमें 10 करोड़ से अधिक छात्र अध्ययन करते हैं।

(*ii*) 43 हजार अध्यापक उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षण कार्य कर रहे हैं।

(*iii*) भारतीय इस समय विश्व में सबसे अधिक कुशल हैं, तथा देश विदेशों में अपनी कुशलता से विभिन्न कार्य कर रहे हैं। छोटे-बड़े हर स्तर पर इनकी भारी माँग है।

(*iv*) शिक्षा प्रणाली सस्ती होने के कारण, आर्थिक रूप से कमजोर छात्र भी उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, क्योंकि वे शिक्षा में निवेश करना एक समझदारी भरा कदम मानते हैं।

### कमजोरियाँ

(*i*) महाविद्यालय तथा विश्वविद्याल में शैक्षणिक लेखा-जोखा का कोई प्रावधान नहीं है।

(*ii*) अधिकतर उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षा की गुणवत्ता के लिए किये गए प्रयास बहुत कम हैं।

(*iii*) महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में फैकल्टी स्तर पर अधिकतर शैक्षणिक प्रमुख बहुमत द्वारा चुने जाते हैं न कि मेरिट तथा योग्यता के स्तर पर। विश्वविद्यालयों में निर्णय निर्धारण बहुत अधिक केन्द्रित होता है। प्रशासकीय स्टॉफ जटिल कार्यालयी प्रक्रियाओं में पूर्णत: कुशल नहीं है।

(*iv*) विश्वविद्यालय की विभिन्न प्रबंधन तथा प्रशासकीय प्रक्रियाओं में छात्रों की कोई भागीदारी नहीं होती। शिक्षण संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा किसी भी प्रशासकीय कार्य की कोई जवाबदेही नहीं है।

(*v*) एक ही कोर्स के लिए विभिन्न प्रवेश परीक्षाएँ छात्रों पर अनावश्यक दबाव बनाती हैं। छात्रों की शिक्षा की गुणवत्ता के मूल्याँकन के लिए कोई पृष्ठपोषण प्रावधान नहीं है।

### अवसर

(*i*) किसी भी विद्यालय की NET/SLET परीक्षा के परिणाम के प्रतिशत, संस्थान या विश्वविद्यालय की प्रदर्शन के मानदण्ड हैं।

(*ii*) शिक्षा तकनीकी ने शिक्षा के क्षेत्र में अधिक क्रांति उत्पन्न कर दी है। इसने शिक्षण प्रक्रिया को विशेष रूप से प्रभावित किया है। शिक्षण तकनीकी द्वारा शिक्षण की प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली तथा सार्थक बनाया जा सकता है।

(*iii*) पत्राचार पाठ्यवस्तु को अभिक्रमित अनुदेशन तथा रेडियो, दूरदर्शन, टेपरिकार्डर के प्रयोग से अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। शिक्षा के स्तर को उठाया जा सकता है।

(*iv*) प्रशिक्षण संस्थाएँ प्रभावशाली छात्र तैयार नहीं कर पा रही हैं। इसके लिए आवश्यक है कि प्रशिक्षण की नवीन प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाये। शिक्षण कौशल के विकास के लिए पृष्ठपोषण की युक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

(*v*) विश्वविद्यालय-स्थानीय समुदाय, विश्वविद्यालय-समाज के बीच अन्तसंबंध करने से शिक्षा के क्षेत्र में अधिक पारदर्शिता आ सकेगी।

नोट

### चुनौती

(*i*) व्यावसायिक शिक्षा निजीकृत होती जा रही है, सरकारी हस्तक्षेप व अधिकार समाप्त होता जा रहा है, जिससे फीसों में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण अर्थिक रूप से कमजोर छात्र उच्च व्यावसायिक शिक्षा लेने से वंचित हो गए हैं।

(*ii*) अधिकतर छात्र परंपरागत शिक्षण क्षेत्रों में अध्ययन करते हैं, तथा तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा में पर्याप्त छात्र संख्या नहीं, आज के युग में परम्परागत क्षेत्रों का महत्त्व कम हो गया है।

(*iii*) राज्य सरकारें शिक्षा की गुणवत्ता के मानदण्डों को पूरी तरह से लागू नहीं कर पा रही हैं, जिससे उचित परिणाम नहीं आ पा रहे हैं।

(*iv*) अध्यापक का, विषय पर प्रभावशाली स्वामित्व तथा उसमें व्यावसायिक योग्यता होते हुए भी उनका शिक्षण छात्रों से लिए उपयोगी नहीं हो रहा है। ऐसे अध्यापकों का अभाव है जो अपने ज्ञान तथा अनुभवों की व्याख्या छात्र के मस्तिष्क तक पहुँचा सके।

(*v*) शिक्षण युक्तियाँ पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण की तार्किक एवं व्यावहारिक साधन हैं, किन्तु वर्तमान उच्च शिक्षण पाठ्यवस्तु प्रयोगिक उपयोगों से काफी दूर है। इसमें सुधार करना एक बड़ी चुनौती है।

*टास्क* शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर किन पक्षों का विश्लेषण किया जाता है?

### स्व-मूल्याँकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. आजकल ज्ञान का जो ..... हो रहा है उसे देखते हुए उच्च शिक्षा पहले से कहीं अधिक गतिशील हुई है।
2. विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर प्रमुख ..... का विश्लेषण किया जाता है।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में ..... और मूलभूत सुविधाओं का अभाव भी शिक्षण प्रक्रिया की एक प्रमुख चुनौती है।

## 5.3 सारांश (Summary)

- सॉट विश्लेषण में किसी भी परिस्थिति विशेष के चार पक्षों का विश्लेषण किया जाता है। प्रारंभिक तथा उच्च माध्यमिक शैक्षिक स्तर पर इन्हीं चार पक्षों (शक्ति, कमजोरी, अवसर तथा चुनौती) का विश्लेषण किया जाता है।
- भारत उत्पादकता तथा क्रियात्मकता का विशाल भण्डार है। यदि इन मानवीय मानसिक शक्तियों का उचित प्रकार से उपयोग किया जाए तो इससे राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।
- ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में जहाँ शिक्षा का अभाव है, या साक्षरता दर कम है, यदि वहाँ बच्चों को विद्यालय में जाकर पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाए तो बेहतर परिणाम सामने आ सकते हैं। इन बच्चों में सीखने की क्षमता तथा अधिगम उत्सुकता बहुत होती है। सही ढंग से शिक्षा देने से उनकी सृजनात्मकता तथा उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।
- प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर प्रशासनिक और वित्तीय नियंत्रण और कार्मिक प्रबंध के लिहाज से शिक्षण एजेंसियों का राज्य सरकार के साथ सम्बंध को यथोचित दिशानिर्देशों के रूप में विस्तृत रूप से स्पष्ट करना होगा, जिससे सही तथा उचित प्रकार से शिक्षण प्रणाली कार्यान्वित हो सके।

नोट

- अधिकांशत: प्रारंभिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा एक विमीय है, जिसमें केन्द्र केवल प्राप्तांकों पर होता है, अत: भारतीय स्कूली शिक्षा केवल उद्देश्य को प्राप्त करने वाली संकीर्ण मानसिकता उत्पन्न करती है।
- बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा किताबी है, बहुत ही कम अवसरों पर बच्चे अपने ज्ञान का उपयोग वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में कर पाते हैं।
- बच्चों को समुदाय आधारित क्रियाकलापों जैसे, पर्यावरण की सुरक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, गरीब तथा पिछड़े वर्ग के लोगों की शिक्षा आदि पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है तथा बच्चों को इन कार्यों के लिए प्रोत्साहित भी नहीं किया जाता।
- भारतीय स्कूली शिक्षा में 3 लाख अध्यापकों की कमी है। प्रारंभिक तथा सेकेंडरी विद्यालय अध्यापकों की संख्या 7–8 लाख होनी चाहिए, जबकि केवल 3–4 लाख अध्यापक ही उपलब्ध हैं।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत उच्च शिक्षा की भूमिका एवं महत्त्व का उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि– "उच्च शिक्षा से लोगों को इस बात का अवसर मिलता है कि वे मानव जाति की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में आई हुई समस्याओं पर विचार कर सकें। विशिष्ट ज्ञान व कुशलताओं के प्रसार के द्वारा उच्च शिक्षा, राष्ट्र के विकास में सहायक होती है।"
- आजकल ज्ञान का जो अभूतपूर्व विस्फोट हो रहा है, उसे देखते हुए, उच्च शिक्षा पहले से कहीं अधिक गतिशील हुई है तथा नवीन शिक्षा क्षेत्रों में विस्तार किया जा रहा है। आज भारत में करीब 300 विश्वविद्यालय और 1500 महाविद्यालय हैं, जिसमें 10 करोड़ से अधिक छात्र अध्ययन करते हैं।

## 5.4 शब्दकोश (Keywords)

- **अभूतपूर्व**–अविश्वसनीय सफलता, अच्छी सफलता।
- **अनुदेशन**–सांकेतिक, निर्देशित।

## 5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षा में सॉट (SWOT) विश्लेषण की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
2. माध्यमिक स्तर पर शिक्षा में सॉट (SWOT) विश्लेषण की क्या उपयोगिता है? वर्णन कीजिए।
3. भारतीय उच्च शिक्षा में सॉट (SWOT) विश्लेषण की उपयोगिता के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

### उत्तर : स्व-मूल्याँकन (Answer: Self Assessment)

1. अभूतपूर्व विस्फोट
2. चार पक्षों
3. तकनीक

## 5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*–डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–6: प्रबंधकीय प्रक्रिया और उसका महत्व (Managerial Process and its Importance)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 प्रबंधकीय प्रक्रिया की आवश्यकता (Need of Managerial Process)

6.2 शिक्षा प्रबंधन का अर्थ एवं क्षेत्र (Meaning and Scope of Educational Management)

6.3 प्रबंधन के कार्य एवं तत्व (Functions and Elements of Management)

6.4 शैक्षिक प्रबंधन का महत्व अथवा उपयोगिता (Importance or Utility of Educational Management)

6.5 सारांश (Summary)

6.6 शब्दकोश (Keywords)

6.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

6.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा प्रबंधन के अर्थ, क्षेत्र, प्रक्रिया, कार्य एवं महत्व का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

विद्यालयी प्रबन्धन में मानव (शिक्षक, छात्र), मशीन (विद्यालयी उपकरण) माल (शैक्षिक प्रक्रिया) तथा निष्पत्ति, मुद्रा बाजार (शुल्क, अर्थव्यवस्था तथा मानव शक्ति नियोजन), प्रबन्धन (समन्वय) तथा संगठन (प्रबन्धक, प्रधानाचार्य, शिक्षक, कर्मचारी, छात्र, अभिभावक साधन) आदि निहित हैं। इन सबको गतिशील बनाये रखने में प्रबन्धक की भूमिका महत्वपूर्ण है।

## 6.1 प्रबंधकीय प्रक्रिया की आवश्यकता (Need of Managerial Process)

**ब्रीच** (Breech) के शब्दों में–'प्रबन्धन, उपक्रम के कार्यों के प्रभावपूर्ण ढंग से नियोजित व नियमित करने का उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व में (अ) योजनानुसार चलते रहने के लिये उपयुक्त कार्य विधि तैयार करना, उसे बनाये रखना, (ब) और उपक्रम की संरचना करने वाले तथा उसके कार्यक्रमों को सम्पन्न करने वाले कर्मचारियों का मार्ग निर्देशन, संगठन, तथा निरीक्षण निहित है।' अतः स्पष्ट है कि प्रशासन, प्रबन्धन, निष्पादन तथा उत्तरदायित्व सम्बन्धी कार्यों में अन्तर पाया जाता है।

नोट

शिक्षा प्रबन्धन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. **प्रबन्धन एक जन्मजात प्रतिभा है**–प्रबन्धन, नेतृत्व प्रदान करता है। नेता पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। उनके वंशानुगत प्रभाव उनकी कार्य-प्रणाली को प्रभावित करते हैं।
2. **प्रबन्धन एक सामाजिक विज्ञान है**–प्रबन्धन, केवल प्रक्रिया ही नहीं है, यह सामाजिक विज्ञान के रूप में आया है। यह कार्य-कारण सम्बन्धों का विवेचन करता है।
3. **प्रबन्धन एक कला है**–प्रबन्धन को व्यवसाय के रूप में लिया जाता है। प्रबन्धन विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का उपयोग प्रतिष्ठित संस्थानों में करता है। प्रत्येक व्यवसाय में इन तथ्यों का होना आवश्यक है–
   (*i*) प्रत्येक व्यवसाय में संगठित ज्ञान तथा विशेषज्ञ ज्ञान का अस्तित्व होता है।
   (*ii*) सिद्धान्तों के औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है।
   (*iii*) प्रबन्धन व्यवसाय में प्रतिनिधि संस्था विद्यमान होती है।
   (*iv*) व्यवसाय में सदस्यों की सामान्य आचार संहिता होती है।
   (*v*) व्यवसाय में सेवा की प्रकृति तथा मात्रा के अनुसार पारिश्रमिक की व्यवस्था होती है।
4. **प्रबन्धन एक सामाजिक दायित्व है**–एच.ए. साइमन के शब्दों में–प्रबन्धन, अर्थव्यवस्था का केवल एक सामान्य अंग मात्र ही नहीं है अपितु उसका निर्माता भी है। जिस सीमा तक वह आर्थिक परिस्थितियों को नियंत्रित करता है और सतत् प्रयत्नों से उन परिस्थितियों को बदलता है, उसी सीमा तक वह अच्छा प्रबन्ध करता है।'
5. **प्रबन्धन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है**–जीवन तथा समाज का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें प्रबन्धन की आवश्यकता न हो।

*क्या आप जानते हैं* सामाजिक कुशलता के निर्माण में प्रबन्धन को एक सार्वभौम प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है।

## 6.2 शिक्षा प्रबंधन का अर्थ एवं क्षेत्र (Meaning and Scope of Educational Management)

शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यापक प्रक्रिया है इसमें देश की आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति नियोजन आदि निहित होते हैं। प्रबन्धन के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए हेनरी फेयोल ने कहा है–'प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध, या जन कल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।' टेलर के शब्दों में–'वैज्ञानिक प्रबन्धन के आधारभूत सिद्धान्त हमारे साधारण से साधारण व्यक्तिगत कार्यों को लेकर हमारे विशाल निगमों के कार्यों तक लागू होते हैं।' इस दृष्टि से शैक्षिक प्रबन्धन के नौ क्षेत्र हैं।

1. **उत्पादक प्रबन्धन**–इसके अन्तर्गत उत्तम शैक्षिक उपलब्धि को दृष्टिगत रखा जाता है।
2. **वित्तीय प्रबन्धन**–शिक्षा संस्थाओं के संचालन के लिये वित्तीय प्रबन्धन किया जाता है।
3. **विकास प्रबन्धन**–विद्यालयों को प्रोन्नत करने के लिये विकास की व्यवस्था की जाती है।
4. **वितरण प्रबन्धन**–विद्यालयी संसाधनों का वितरण किया जाता है।
5. **क्रय प्रबन्धन**–विद्यालयों में सामान्य क्रम करने का प्रबन्ध किया जाता है।
6. **परिवहन प्रबन्धन**–विद्यालय में सामान, छात्रों, स्टाफ के लाने-ले जाने की व्यवस्था की जाती है।
7. **संस्थापन प्रबन्धन**–संस्था के भवन, उपकरण, अन्य साधनों का प्रबन्धन किया जाता है।

नोट

8. **सेवा वर्गीय प्रबन्धन**–शिक्षक, कर्मचारी आदि की व्यवस्था, पद एवं भूमिका का निर्धारण किया जाता है।
9. **कार्यालय प्रबन्धन**–प्रत्येक विद्यालय में आलेख की व्यवस्था करने के लिये कार्यालय होता है जिसके प्रबन्धन की आवश्यकता होती है।

## 6.3 प्रबंधन के कार्य एवं तत्व (Functions and Elements of Management)

प्रबन्धन प्रक्रिया के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

(*i*) नियोजन (*ii*) संगठन

(*iii*) निर्देशन (*iv*) नियंत्रण

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तत्व भी प्रबंधन प्रक्रिया के ही एक अंग हैं जैसे–

(*i*) प्रेरण (*ii*) समन्वयन

(*iii*) स्टाफिंग (*iv*) जनसंचार

प्रबंधन प्रक्रिया प्रयोगात्मक है। 'गुलिक' ने प्रबंधन प्रक्रिया को (POSDCORB) नाम से सम्बोधित किया है। जिसमें 'P' का अर्थ (Planning) से है, O से Organising, S से Staffing, D से Directing, Co से Co-ordination, R से Reporting तथा B से Budgeting है। इस प्रक्रिया में प्रबंधन के सभी घटक या अंगों का सम्मिलित रूप होता है। एक कुशल व योग्य प्रबंधक को प्रबंधन प्रक्रिया के सभी तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है।

तत्वों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है–

(*i*) **नियोजन**–नियोजन प्रबंधन का प्रमुख कार्य है। नियोजन किसी भी कार्यक्रम का आरंभिक बिन्दु है, किसी भी प्रोजेक्ट या योजना को क्रमबद्ध तथा प्रयोगात्मक रूप में सुचारू ढंग से करने के लिए नियोजन अत्यन्त आवश्यक है। नियोजन किसी भी व्यवसाय में स्थिरता तथा सफलता के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा भविष्य में आने वाली कठिन परिस्थितियों तथा उनका समाधान खोजने में मदद मिलती है।

(*ii*) **संगठन**–नियोजन के बाद, संगठन प्रबंधन का अगला कदम है। (व्यक्ति, मशीनों तथा अन्य संसाधनों को एक साथ उपलब्ध कराकर उसकी सहायता से लक्ष्य की प्राप्ति करना संगठन का प्रमुख उद्देश्य है। संगठन के अन्तर्गत प्रशासनिक ढांचा तथा नियोजन को पूर्णत: लागू करने के सभी संसाधन उपलब्ध कराया जाता है।

(*iii*) **स्टाफ़िंग**–'स्टाफ़' किसी भी व्यवसाय के प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, योग्य, सक्षम तथा कुशल स्टाफ़ के बल पर ही किसी व्यवसाय को उच्चता के शिखर पर पहुँचाया जा सकता है। यह प्रक्रिया किसी व्यवसाय को आरंभ करते समय अथवा बीच में रिक्तियों को भरने के लिए भी प्रयुक्त की जाती है।

(*iv*) **निर्देशन ( नेतृत्व )**–नेतृत्व अथवा निर्देशन का अर्थ कार्यरत लोगों को सही दिशा में कार्यान्वित करना है। यह प्रबंधक के लिए एक प्रमुख उत्तरदायित्व है। प्रबंधन कर्मचारियों तथा सहयोगियों का नेतृत्व करता है, जिससे संस्था या व्यवसाय सही दिशा में सुचारू रूप से चल सके। 'नेतृत्व' का कार्य बहुत वृहद है। नेतृत्व का कार्य सिर्फ़ निर्देश या आदेश देना नहीं बल्कि कर्मचारियों को नैतिक रूप से सहयोग देना भी होता है।

(*v*) **सहयोग**–किसी भी संस्था, या व्यवसाय को चलाने के लिए सभी विभागों, तथा व्यक्तियों में सहयोग की भावना का होना बहुत महत्वपूर्ण है, यह प्रबंधन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है, प्रबंधक को सभी कर्मचारियों तथा सहयोगियों के बीच सहयोग की भावना जागृत करने की आवश्यकता होती है। सहयोग तथा समन्वय द्वारा प्रबंधक को सभी विभागों तथा उसमें लोगों की योग्यता तथा कुशलता का ज्ञान होता है। सहयोग की भावना से यह ज्ञात होता है कि संस्था कितनी एकजुट है।

(*vi*) **नियंत्रण**–नियंत्रण भी प्रबंधन का एक प्रमुख कार्य है। नियंत्रण के तीन प्रमुख अंग हैं–(*a*) प्रदर्शन का मानदण्ड (*b*) प्रगति तथा परिणाम का मापन (*c*) आवश्यक तथा सही प्रतिक्रिया। नियंत्रण एक प्रकार का पर्यवेक्षक कार्य है। जब प्रबंधक किसी योजना को कार्यान्वित करता है तो उसे प्रत्येक चरण में नियंत्रण करना पड़ता है, यह

नोट

नियंत्रण कच्चेमाल के आने, कर्मचारियों के ख़र्चों तथा अन्य बजट पर भी रखना पड़ता है। नियंत्रण के बिना कोई भी प्रक्रिया समाप्त नहीं हो सकती है।

(*vii*) **अभिप्रेरणा**–अभिप्रेरणा प्रबंधन का एक प्रमुख कार्य है जिसमें प्रबंधक अपने कर्मचारियों को काम के प्रति प्रेरित करके उनकी योग्यता तथा कुशलता का उपयोग करता है। लोगों को प्रोत्साहन देकर उन्हें अभिप्रेरित करके उनसे कार्य में रुचि लेने के लिए कहता है। यह अभिप्रेरणा कई प्रकार से दी जाती है, शाब्दिक अभिप्रेरणा के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ तथा वेतन में वृद्धि की जाती है, जिससे कर्मचारी और अधिक लगन तथा कुशलता से कार्य करते हैं।

(*v*) **वार्तालाप**–किसी भी संस्था तथा उसके लोगों के बीच लिखित मौखिक वार्तालाप अत्यन्त आवश्यक है, इसमें तथ्यों, जानकारियों तथा अन्य कार्यों का आदान-प्रदान होता है।

*नोट्स* स्टाफ़ का उनकी योग्यता तथा पद के अनुसार चयन करना एक बहुत आवश्यक और कठिन कार्य है। इस प्रक्रिया को स्टाफ़िंग कहते हैं।

## 6.4 शैक्षिक प्रबंधन का महत्व अथवा उपयोगिता (Importance or Utility of Educational Management)

शैक्षिक प्रबंधन की उपयोगिता सर्वविदित है। आज के युग में शिक्षा प्रबंधन नहीं हैं वरन् यह नियोजन अभिकरण भी हैं। अत: नियोजन, कार्यान्वयन, मूल्यांकन, ये तीनों कार्य शिक्षा प्रबंधन को करने पड़ते हैं। शिक्षा प्रबंधन की उपयोगिता निम्नलिखित है–

**(1) मानवी सम्बन्धों का विकास**–शिक्षा प्रबंधन का कार्यक्षेत्र मानव सम्बन्ध हैं। छात्रों, शिक्षकों तथा प्रशासनिक कर्मचारियों द्वारा शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में शिक्षा प्रबंधन सदा क्रियाशील रहता है। **कोर्ट** तथा **रॉस** के शब्दों में–"शैक्षिक प्रबंधन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षकों को साधन बनाकर छात्रों का विकास करता है।" यह विकास समाज में स्वस्थ मानव सम्बन्धों के लिए किया जाता है।

**(2) प्रयासों का एकीकरण**–शिक्षा प्रबंधन, शिक्षा सम्बन्धी किये जा रहे प्रयासों को स्वीकृत करता है। इस एकीकरण का लक्ष्य समाज में व्यवस्था, एकता, समायोजन तथा सहयोग का निर्माण करना है।

**(3) सम्बन्धों की व्यवस्था**–शिक्षा प्रबंधन, मानव तथा पदार्थों के सम्बन्धों की व्यवस्था, मानव विकास के सन्दर्भ में करता है। **डॉ. एस.एन. मुखर्जी** के अनुसार–"शैक्षिक प्रबंधन वस्तुओं के साथ-साथ मानव सम्बन्धों की व्यवस्था से भी सम्बन्धित है। यह मिल-जुलकर अच्छा कार्य करने पर बल देता है। इसका सम्बन्ध सजीवों से अधिक, भौतिक पदार्थों से कम है।"

**(4) शिक्षा को सेवा मानना**–शिक्षा प्रबंधन, शिक्षा को सेवा कार्य (Service Activity) मानकर चलता है, अत: इसमें लगन तथा मिशनरी भावना का प्राधान्य रहता है। शिक्षा, अन्य कार्यों की अपेक्षा अलग ढंग का कार्य है जिसका उद्देश्य मानव में निहित गुणों का विकास करना है।

**(5) शैक्षिक प्रक्रिया को गति देना**–शैक्षिक प्रबंधन, मूल्यांकन प्रक्रिया को गति देता है। यह गति इस प्रकार दी जाती है।

1. शिक्षा में लक्ष्यों का निर्माण तथा निश्चित सन्दर्भ में मूल्यांकन प्रक्रिया का निर्धारण करना।
2. उपलब्ध सामग्री तथा आँकड़ों की पहचान करना तथा इनके द्वारा सामग्री तथा आँकड़ों के उपयोग पर विचार करना।

नोट

3. आँकड़ों को एकत्र करने के लिये विधियों को विकसित करना। परीक्षण, प्रशिक्षण, सर्वेक्षण, निरीक्षण तथा व्याख्या द्वारा प्रभावशाली उपलब्धि की ओर अग्रसरित होना।
4. समूह चर्चा तथा अन्य विधियों द्वारा प्राप्त परिणामों की व्याख्या करना।

*टास्क* प्रबंधन के क्षेत्र में नियोजन का क्या महत्त्व है?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. शैक्षिक प्रबंधन एक ..... प्रक्रिया है।
2. प्रत्येक व्यवसाय में संगठित ज्ञान तथा ..... का अस्तित्व होता है।
3. प्रबंधन व्यवसाय में ..... संस्था विद्यमान होती है।
4. हेनरी फियोल ने कहा है कि "प्रबंधन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध या ..... सभी पर समान रूप से लागू होता है।
5. प्रबंधन एक जन्मजात ..... है।

## 6.5 सारांश (Summary)

- **ब्रीच** (Breech) के शब्दों में–'प्रबन्धन, उपक्रम के कार्यों के प्रभावपूर्ण ढंग से नियोजित व नियमित करने का उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व में (अ) योजनानुसार चलते रहने के लिये उपयुक्त कार्य विधि तैयार करना, उसे बनाये रखना, (ब) उपक्रम की संरचना करने वाले तथा उसके कार्यक्रमों को सम्पन्न करने वाले कर्मचारियों का मार्ग निर्देशन, संगठन, तथा निरीक्षण निहित है।' अत: स्पष्ट है कि प्रशासन, प्रबन्धन, निष्पादन तथा उत्तरदायित्व सम्बन्धी कार्यों में अन्तर पाया जाता है।
- प्रबन्धन, नेतृत्व प्रदान करता है। नेता पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। उनके वंशानुगत प्रभाव उनकी कार्य-प्रणाली को प्रभावित करते हैं।
- प्रबन्धन, केवल प्रक्रिया ही नहीं है, यह सामाजिक विज्ञान का रूप भी है। यह कार्य-कारण सम्बन्धों का विवेचन करता है।
- एच.ए. साइमन के शब्दों में–प्रबन्धन, अर्थव्यवस्था का केवल एक सामान्य अंग मात्र ही नहीं है अपितु उसका निर्माता भी है। जिस सीमा तक वह आर्थिक परिस्थितियों को नियंत्रित करता है और सतत् प्रयत्नों से उन परिस्थितियों को बदलता है, उसी सीमा तक वह अच्छा प्रबन्ध करता है।'
- शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यापक प्रक्रिया है इसमें देश की आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति नियोजन आदि निहित होते हैं। प्रबन्धन के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए हेनरी फेयोल ने कहा है–'प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध, या जन कल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।'
- इसके अन्तर्गत उत्तम शैक्षिक उपलब्धि को दृष्टिगत रखा जाता है।
- शिक्षा संस्थाओं के संचालन के लिये वित्तीय प्रबन्धन किया जाता है।
- प्रबंधन प्रक्रिया प्रयोगात्मक है। 'गुलिक' ने प्रबंधन प्रक्रिया को (POSDCORB) नाम से सम्बोधित किया है। जिसमें 'P' का अर्थ (Planning) से है, O से Organising, S से Staffing, D से Directing, Co से Co-ordination, R से Reporting तथा B से Budgeting है। इस प्रक्रिया में प्रबंधन के सभी घटक या अंगों का सम्मिलित रूप होता है। एक कुशल व योग्य प्रबंधक को प्रबंधन प्रक्रिया के सभी तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है।

नोट

- नियोजन प्रबंधन का प्रमुख कार्य है। नियोजन किसी भी कार्यक्रम का आरंभिक बिन्दु है, किसी भी प्रोजेक्ट या योजना को क्रमबद्ध तथा प्रयोगात्मक रूप में सुचारू ढंग से करने के लिए नियोजन अत्यन्त आवश्यक है।
- नियोजन के बाद, संगठन प्रबंधन का अगला कदम है। (व्यक्ति, मशीनों तथा अन्य संसाधनों को एक साथ उपलब्ध कराकर उसकी सहायता से लक्ष्य की प्राप्ति करना संगठन का प्रमुख उद्देश्य है) संगठन के अन्तर्गत प्रशासनिक ढांचा तथा नियोजन को पूर्णत: लागू करने के लिए सभी संसाधन उपलब्ध कराया जाता है।
- 'स्टाफ़' किसी भी व्यवसाय के प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, योग्य, सक्षम तथा कुशल स्टाफ़ के बल पर ही किसी व्यवसाय को उच्चता के शिखर पर पहुँचाया जा सकता है।
- नेतृत्व अथवा निर्देशन का अर्थ कार्यरत लोगों को सही दिशा में कार्यान्वित करना है। यह प्रबंधक के लिए एक प्रमुख उत्तरदायित्व है। प्रबंधन कर्मचारियों तथा सहयोगियों का नेतृत्व करता है, जिससे संस्था या व्यवसाय सही दिशा में सुचारू रूप से चल सके।
- किसी भी संस्था, या व्यवसाय को चलाने के लिए सभी विभागों, तथा व्यक्तियों में सहयोग की भावना का होना बहुत महत्वपूर्ण है, यह प्रबंधन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रबंधक को सभी कर्मचारियों तथा सहयोगियों के बीच सहयोग की भावना जागृत करने की आवश्यकता होती है। सहयोग तथा समन्वय द्वारा प्रबंधक को सभी विभागों तथा उसमें लोगों की योग्यता तथा कुशलता का ज्ञान होता है।
- नियंत्रण भी प्रबंधन का एक प्रमुख कार्य है। नियंत्रण के तीन प्रमुख अंग हैं–(*a*) प्रदर्शन का मानदण्ड (*b*) प्रगति तथा परिणाम का मापन (*c*) आवश्यक तथा सही प्रतिक्रिया, एक प्रकार का पर्यवेक्षक कार्य है।
- अभिप्रेरणा प्रबंधन का एक प्रमुख कार्य है जिसमें प्रबंधक अपने कर्मचारियों को काम के प्रति प्रेरित करके उनकी योग्यता तथा कुशलता का उपयोग करता है। लोगों को प्रोत्साहन देकर उन्हें अभिप्रेरित करके उनसे कार्य में रुचि लेने के लिए कहता है।
- किसी भी संस्था तथा उसके लोगों के बीच लिखित मौखिक वार्तालाप अत्यन्त आवश्यक है, इसमें तथ्यों जानकारियों तथा अन्य कार्यों का आदान-प्रदान होता है।
- शैक्षिक प्रबंधन की उपयोगिता सर्वविदित है। आज के युग में शिक्षा प्रबंधन नहीं हैं वरन् यह नियोजन अभिकरण भी है। अत: नियोजन, कार्यान्वयन, मूल्यांकन, ये तीनों कार्य शिक्षा प्रबंधन को करने पड़ते हैं।
- शिक्षा प्रबंधन, शिक्षा को सेवा कार्य (Service Activity) मानकर चलता है, अत: इसमें लगन तथा मिशनरी भावना का प्रधान्य रहता है। शिक्षा, अन्य कार्यों की अपेक्षा अलग ढंग का कार्य है जिसका उद्देश्य मानव में निहित गुणों को विकास करना है।

## 6.6 शब्दकोश (Keywords)

- **पोड्सकॉर्ब**–गुलिक के अनुसार, प्रबंधन प्रक्रिया।
- **स्टाफिंग**–यह एक प्रक्रिया है जिसके अनुसार स्टाफ का उनकी योग्यता तथा पद के अनुसार चयन किया जाता है।।

## 6.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रबंधन प्रक्रिया की क्या विशेषताएँ हैं? इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
2. शिक्षा प्रबंधन के अर्थ को समझाते हुए इसके क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।
3. प्रबंधन के प्रकार्यों अथवा तत्वों की व्याख्या कीजिए।
4. शैक्षिक प्रबंधन के महत्व का विश्लेषण कीजिए।

नोट

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. व्यापारिक
2. विशेषज्ञ ज्ञान
3. प्रतिनिधि
4. जनकल्याण
5. प्रतिभा।

## 6.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–7: नियोजन : प्रक्रिया तथा अर्थ (Planning : Process and Means)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 संस्थागत नियोजन का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य (Meaning, Definition and Aims of Institutional Planning)

7.2 संस्थागत नियोजन का कार्य-क्षेत्र एवं विशेषताएँ (Scope and Characteristics of Institutional Planning)

7.3 संस्थागत नियोजन के सिद्धान्त, सोपान एवं स्तर (Theory, steps and Levels of Institutional Planning)

7.4 सारांश (Summary)

7.5 शब्दकोश (Keywords)

7.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

7.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- संस्थागत नियोजन के अर्थ एवं परिभाषा को समझने में;
- संस्थागत नियोजन के कार्यक्षेत्र, उद्देश्य एवं विशेषताओं की व्याख्या करने में;
- संस्थागत नियोजन के सिद्धांत एवं स्तर का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

नियोजन में संगठन के सभी तत्त्वों, सलाह, सहयोग तथा दूरदर्शिता से कार्य किया जाता है। अधिकारियों का मुख्य कार्य सोच-विचार करके सही ढंग से नियोजन करना है तथा उसको समुचित रूप में कार्यान्वित करना होता है।

## 7.1 संस्थागत नियोजन का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य (Meaning, Definition and Aims of Institutional Planning)

विद्यालय कार्य के भली प्रकार चलने, प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिये आवश्यक है कि विद्यालयों में योजनाएँ बनायी जाएँ जो आगे चलकर राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की योजनाओं का आधार बन सकें। इस प्रकार की योजनाओं में दो बातों पर ध्यान दिया जाता है–(1) हमारे लक्ष्य क्या हैं? (2) क्या-क्या साधन उपलब्ध हैं?

नोट

**संस्थागत नियोजन की परिभाषा**

1. डॉ. एम. बी. बुच "एक शैक्षिक संस्था द्वारा अपने अनुभव में आई आवश्यकताओं, प्राप्त अथवा प्राप्त हो सकने वाले साधनों के आधार पर निर्मित अपने विकास के लिये बनाया गया कार्यक्रम उस संस्था की संस्थागत योजना कहलाती है। यह दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन हो सकती है। यह विद्यालय एवं समाज के सभी साधनों में चरम उपयोग पर आधारित होती है।"
2. "संस्थागत योजना, शिक्षण संस्था द्वारा अपने विकास एवं प्रगति के लिये, अपने उद्देश्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं तथा प्राप्त साधनों के अन्तर्गत किये जाने वाले उपस्थित प्रयासों की रूपरेखा है।"

**संस्थागत नियोजन के उद्देश्य**

1. प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण में उत्तम परिणामों की उपलब्धि।
2. संस्था का बहुमुखी विकास एवं प्रगति।
3. विद्यालयी साधनों अर्थात विद्यार्थियों, शिक्षकों की प्रतिभा एवं भवन, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय आदि का अधिकतम संभव उपयोग।
4. संस्थागत एवं राष्ट्रीय उद्देश्यों में समन्वय।
5. योजनाओं को प्रजातान्त्रिक स्वरूप में विकसित करना।
6. अध्यापकों एवं विद्यार्थियों में सृजनात्मक विकास हेतु उत्तम वातावरण का निर्माण करना।
7. विचार एवं कार्य की स्वतन्त्रता के साथ पारस्परिक सहयोग का विकास।
8. आन्तरिक शक्ति की पहचान, उपयोग, प्रयास, प्रोत्साहन तथा नेतृत्व।
9. स्वयंसेवा तथा आत्म उपलब्धि का अभ्यास।

*क्या आप जानते हैं* संस्थागत नियोजन राष्ट्रीय योजनाओं को उचित आधार प्रदान करता है।

## 7.2 संस्थागत नियोजन का कार्य-क्षेत्र एवं विशेषताएँ (Scope and Characteristics of Institutional Planning)

1. विद्यालय के प्रजातन्त्रात्मक प्रशासन हेतु योजना निर्माण।
2. प्रवेश नीति एवं उसके क्रियान्वयन की योजना का निर्माण
3. आन्तरिक मूल्यांकन सुधार योजना कार्यक्रम का निर्धारण।
4. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संगठन एवं संचालन की योजना का निर्माण।
5. समुदाय विद्यालय सम्बन्ध सुधार।
6. समाज-सेवा कार्यक्रम की योजना का निर्माण।
7. अनुशासनात्मक सुधार कार्यक्रम की योजना का निर्माण।
8. क्रीड़ा व्यवस्था सुधार योजना का निर्माण।
9. विद्यालय प्रांगण के सौन्दर्यीकरण की योजना का निर्माण।
10. छात्रावास, सभाकक्ष, मंच एवं अल्पाहार गृह का निर्माण
11. पुस्तकालय एवं वाचनालय विस्तार योजना का निर्माण।
12. अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियों के विकास हेतु योजना का निर्माण।

नोट

13. कक्षा-शिक्षण सुधार योजना का निर्माण।
14. छात्रों में विविध प्रकार के कौशलों की विकास योजना का निर्माण।
15. व्यावसायिक पाठ्यक्रम के संगठन की योजना का निर्माण।

**संस्थागत योजना की विशेषताएँ**

**( 1 ) लक्ष्य निर्देशन** (Goal Directed)–संस्थागत योजना लक्ष्य निर्देशित प्रक्रिया है। इसमें राष्ट्रीय एवं संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

**( 2 ) उपयोगिता** (Utility)–संस्थागत योजना में ही कार्य किये जाते हैं जिनकी उपयोगिता विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा समुदाय के लिये है। संस्थागत योजना के क्रियान्वयन से विद्यालय की उपयोगिता में वृद्धि होती है। विद्यालय द्वारा अधिक समाज सेवा एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं नैतिक विकास पर विशेष बल दिया जाता है।

**( 3 ) आवश्यकता आधारित** (Necessity Based)–संस्थागत योजना में विद्यालय के संगठन, प्रबन्ध शिक्षण तथा अन्य क्षेत्रों में आवश्यकता पता करने के बाद संस्थागत योजना बनाई जाती है।

**( 4 ) विशिष्टता** (Specificity)–संस्थागत योजना, संस्था विशेष के साधनों, आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों के अनुरूप होती है।

**( 5 ) साधनों का दोहन** (Utilisation of Resources)–संस्थागत योजना में विद्यालय के पास उपलब्ध हो सकने वाले साधनों के अधिकतम सम्भव प्रयोग का प्रयत्न किया जाता है।

**( 6 ) सुधार एवं विकास आधारित** (Based on Improvement and Modification)–प्रत्येक संस्थागत योजना में विद्यालयी कार्यक्रमों में सुधार एवं विकास तथा प्रगति मुख्य तत्त्व होते हैं।

**( 7 ) समुदाय-समर्थित** (Support by Community)–चूंकि संस्थागत योजना स्थानीय स्तर पर बनाई जाती है, इसमें समुदाय की सहायता सुगमता से की जाती है।

**( 8 ) प्रजातन्त्रात्मक** (Democratic)–प्रधानाध्यापक शिक्षक एवं विद्यार्थियों को उचित प्रतिनिधित्व मिलने के कारण संस्थागत योजना निर्माण में प्रजातन्त्रात्मक मूल्यों के विकास में अत्यन्त सहायक होती है।

**( 9 ) सहयोग पर आधारित** (Based on Co-operation)–संस्थागत योजना में विद्यालय तथा समुदाय सभी का पर्याप्त सहयोग प्राप्त किया जाता है।

**( 10 ) प्रेरणादायक** (Inspiring)–संस्थागत योजना में प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता निहित होती है। सभी के सहयोग पर आधारित होने के कारण सभी लोग इसकी सफलता में रुचि लेने लगते हैं।

**( 11 ) समय नियन्त्रित** (Time Bound)–संस्थागत योजनाएँ प्राय: अल्पकालीन जैसे एक सप्ताह, एक सत्र अथवा एक वर्ष के लिये तथा दीर्घकालीन जैसे 2 वर्ष, 5 वर्ष या 10 वर्ष के लिये बनाई जाती हैं। इसके अनुसार निश्चित परिणाम प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

**( 12 ) यथार्थ** (Realistic)–संस्थागत योजना वास्तविक एवं व्यावहारिक होती है क्योंकि यह अनुभूत आवश्यकताओं के आधार पर स्थानीय व्यक्तियों द्वारा बनाई जाती है।

**( 13 ) लचीली** (Flexible)–संस्थागत योजना में समय की आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाना सम्भव है।

**संस्थागत नियोजन की समस्याएँ**

1. कभी-कभी संस्थागत योजनाओं को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बनाया जाता है। अस्तु अपेक्षित सफलता प्राप्त न होने पर निराशा ही हाथ लगती है।
2. योजना के अन्तर्गत शिक्षकों का कार्यभार बढ़ जाता है तथा अवधान अन्य दिशाओं में केन्द्रित होने से शिक्षण कार्य पिछड़ जाता है।
3. अतिरिक्त कार्य हेतु शिक्षक सम्यक् आर्थिक लाभ की अपेक्षा करते हैं इसके अभाव में वे अरुचि उत्पन्न करके वे योजना कार्यक्रमों से पलायन करने लगते हैं और योजना की सफलता संदिग्ध हो जाती है।

नोट

4. संस्थागत योजना में रुचिपूर्वक कार्य करने वाले शिक्षक, उच्च अधिकारियों के प्रशंसा-पात्र बन जाते हैं तथा दूसरे लोग इसकी निकटता से ईर्ष्या करके योजना को असफल बनाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार संस्थागत योजना क्षुद्र राजनीति का कारण बन जाती है।
5. संस्थागत योजना में प्रस्तावित आर्थिक सहायता न मिल पाने पर भी योजना लड़खड़ा जाती है।

## 7.3 संस्थागत नियोजन के सिद्धान्त, सोपान एवं स्तर (Theory, Steps and Levels of Institutional Planning)

### संस्थागत नियोजन के सिद्धान्त

1. आवश्यकताओं के निर्धारण का सिद्धान्त।
2. साधनों के स्पष्ट आकलन का सिद्धान्त।
3. लक्ष्यों के उचित निर्णय का सिद्धान्त।
4. उपयोगिता का सिद्धान्त।
5. प्रजातन्त्रीय मूल्यों के विकास का सिद्धान्त।
6. उचित समय विभाजन का सिद्धान्त।
7. सहयोग का सिद्धान्त।
8. लचीलेपन का सिद्धान्त।
9. वास्तविकता एवं व्यावहारिकता का सिद्धान्त।

### संस्थागत नियोजन के सोपान

**( 1 ) तैयारी** (Preparation)—किसी भी योजना की सफलता उसकी तैयारी पर निर्भर है। प्रधानाध्यापक को सहयोगी अध्यापक-मण्डल से विचार-विमर्श करके दो कार्य करने चाहिये। उसे आवश्यकताओं की सूची बनानी होगी। इसके लिये अध्यापक व्यक्तिगत सूचियाँ तैयार कर सकते हैं तथा फिर एक साथ मिल बैठकर आवश्यकताओं की सूची को अन्तिम रूप दे सकते हैं। दूसरा कार्य इन आवश्यकताओं की सूची में से प्रत्येक के गुण-दोष, व्यावहारिकता तथा तात्कालिक या दीर्घकालीन महत्त्व की दृष्टि से प्राथमिकताओं का निर्धारण करना है। यह कार्य अध्यापकों की छोटी समितियों को दिया जा सकता है।

**( 2 ) स्त्रोतों का अध्यापन** (Study of Sources)—संस्थागत योजना की तैयारी के पश्चात् यह पता कर लेना चाहिये कि विद्यालय के पास क्या-क्या साधन उपलब्ध हैं तथा शिक्षा-विभाग, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राज्य शिक्षा संस्थान, प्रदेश की सरकार, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् अथवा अन्य संस्थाओं से क्या प्राप्त किये जा सकते हैं। तैयारी समिति अथवा एक अन्य समिति इन सबका सही अनुमान कर सकती है।

**( 3 ) योजना का प्रारूप विकास** (Developing a Design)—आवश्यकताओं, उनकी प्राथमिकताओं तथा साधनों का निर्धारण कर लेने के बाद योजना का प्रारूप बनाया जाना चाहिये। इस स्तर पर योजना से सम्बद्ध जारी विशेषज्ञ बुलाकर अथवा उनसे सम्पर्क करके विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। ऐसा करने से संस्थागत योजना की शंकाओं का समाधान भी हो सकेगा।

**( 4 ) विचार-विमर्श के प्रारूप** (Designs of Discussion)—योजना के प्रारूप की जानकारी सभी सम्बद्ध पक्षों को दे देनी चाहिये तथा उनकी प्रतिक्रियाएँ जानने की चेष्टा की जानी चाहिये। यह विचार-विमर्श तीन स्तरों पर किया जा सकता है। (*i*) शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों की गोष्ठी में विचार-विमर्श, (*ii*) समाज के प्रगतिशील व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श, (*iii*) संस्थागत योजना से सम्बद्ध राजकीय अधिकारियों तथा अनुदान देने वाली संस्थाओं के प्रतिनिधियों के साथ विचार-विनिमय। इस प्रकार विचार-विमर्श करने से

नोट

संस्थागत योजना के क्रियान्वयन की प्रक्रिया सरल हो जायेगी। इसी स्तर पर योजना की अवधि, बजट तथा उत्तरदायित्व वितरण का कार्य भी कर लेना चाहिए।

(5) **संस्थागत नियोजन का क्रियान्वयन** (Implementing the Design)–योजना के अन्तिम स्वरूप को अनुदान देने वाली संस्थाओं को प्रेषित कर देना चाहिये। सहमति प्राप्त होने के बाद क्रियान्वयन प्रारम्भ कर देना चाहिये। इस स्तर पर प्रधानाध्यापक का गतिशील होना बहुत आवश्यक है। उसको योजना से सम्बद्ध सहयोगियों एवं अन्य वर्गों को प्रोत्साहित करके उचित नेतृत्व प्रदान करना चाहिये तथा सभी साधनों में उचित समन्वय स्थापित करते रहना चाहिये।

(6) **मूल्यांकन का प्रारूप** (Design for evaluation)–(*i*) इससे योजना की प्रगति एवं बाधाओं का पता चल सकता है तथा आवश्यक होने पर योजना को संशोधित भी किया जा सकता है। इसका समय प्रधानाध्यापक तथा अध्यापक मण्डल अपने विवेक से निश्चित कर सकते हैं। प्राय: यह मूल्यांकन, प्रस्तावित समय में से 25 या 30 प्रतिशत समय के बाद किया जाता है। (*ii*) दूसरा और अन्तिम मूल्यांकन योजना की सफलता का मूल्यांकन होता है। इस समय यह पता लगा सकते हैं कि उद्देश्यों की प्राप्ति में किस सीमा तक सफलता मिली है। योजना का मूल्यांकन करते समय संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों पक्षों पर ध्यान देना चाहिये। मूल्यांकन से संस्थागत योजनाओं की अच्छाइयों एवं त्रुटियों का पता चल जाता है। इन अनुभवों का लाभ आगे अन्य योजनाओं के निर्माण में लिया जा सकता है तथा एक योजना, दूसरी योजना के लिये आधारशिला का कार्य करती है।

*नोट्स* संस्थागत योजना का मूल्यांकन दो स्तरों पर किया जाना चाहिये। प्रथम मूल्यांकन योजना के कुछ समय कार्य करने के बाद तथा दूसरा मूल्यांकन योजना की समाप्ति पर किया जाना चाहिये।

## संस्थागत नियोजन के स्तर

(1) **जिला स्तरीय योजनाएँ**–जिले को योजना, विकास एवं प्रशासन की मूल इकाई मानकर इस स्तर की योजना का निर्माण किया जाता है। इसका संचालन जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिये। जिला-स्तर पर एक शिक्षा योजना बोर्ड गठित किया जाना चाहिये जिसमें विद्यालय शिक्षकों, प्रधानाध्यापकों तथा प्रबन्धकों के प्रतिनिधि तथा समाज-सेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित किये जाने चाहिये।

(2) **राज्य स्तर की संस्थागत योजनाएँ**–संस्थागत योजना निर्माण के लिये राज्य-स्तर पर योजना इकाई, जिला एवं राष्ट्रीय-स्तर की योजना-निर्माण के मध्य कड़ी का काम कर सकता है। इस स्तर पर दीर्घकालीन योजनाएँ बनाई जा सकती हैं जिनका आधार विद्यालय एवं जिला-स्तर पर होना चाहिये। नीति-निर्देश राष्ट्रीय-स्तर से लिये जाते हैं।

(3) **राष्ट्रीय स्तर की संस्थागत योजनाएँ**–पूरे देश के सर्वेक्षण के आधार पर राष्ट्रीय-स्तर की प्राथमिकताएँ निश्चित की जा सकती हैं। सभी राज्यों की योजनाओं के प्रारूप को लेकर राष्ट्रीय योजना तैयार की जा सकती है। केन्द्र एवं राज्यों के समन्वित-कार्यक्रम लेकर संवैधानिक प्रावधानों की पूर्ति हेतु राज्यों के साथ तालमेल करके दीर्घकालीन कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। इस स्तर की योजनाओं का उद्देश्य प्रादेशिक असमानताओं को दूर करके राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम का सफल संचालन है।

## संस्थागत योजना निर्माण में सुझाव

संस्थागत योजना के निर्माण में प्रधानाध्यापक, शिक्षक एवं अन्य अधिकारी तथा संस्थाओं के विशेषज्ञों के अनुभवों का लाभ उठाया जाना चाहिये। योजना के प्रारूप निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, राज्य शिक्षा संस्थान, प्रादेशिक शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण

नोट

परिषदें राज्य शिक्षा विभाग आदि की सहायता ली जा सकती है।

यथार्थ योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिये। कभी-कभी अनुदान प्राप्त करने के दृष्टिकोण से बढ़ा-चढ़ाकर योजनाएँ बनाई जानी चाहिये। कभी-कभी अनुदान प्राप्त करने के दृष्टिकोण से बढ़ा-चढ़ाकर योजनाएँ बनाई जाती हैं उन्हें हम प्लान न कहकर स्कीम कहें तो बेहतर है। ये स्कीमें कभी पूरी नहीं हो सकतीं। योजनाएँ साधनों को दृष्टि में रखकर बनानी चाहिये। इन्हें मांगों के प्रपत्र का स्वरूप नहीं दे देना चाहिये। योजना के अन्तर्गत केवल वास्तविक एवं प्रयोजनशील कार्यक्रम होने चाहिएँ, जिनमें उपलब्ध साधनों एवं मानसिक प्रयासों के श्रेष्ठतम सम्भव उपयोग पर बल दिया जाना चाहिये। योजना निर्माण में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिये। ई. डब्ल्यू. फेंकलिन के मतानुसार, "संस्थागत योजना, शिक्षा सुधार की यात्रा में एक मील का पत्थर है। किसी भी शैक्षिक प्रयास का केन्द्र बिन्दु अध्यापक होता है। इस प्रकार की योजना द्वारा, पहली बार अध्यापक समुदाय को शैक्षिक सुधार का नियोजक एवं संचालक बनने का अवसर दिया जा रहा है।"

**संस्थागत नियोजन के उपयोग**

1. विद्यालय के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण में सहायता।
2. उपलब्ध एवं उपलब्ध हो सकने वाले साधनों की विस्तृत जानकारी।
3. अपने कार्यों में प्राथमिकता निर्धारण।
4. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन कार्यक्रम निश्चित करने से लक्ष्यों की प्राप्ति में सुगमता।
5. विद्यालय सुधार कार्यक्रम में शिक्षक, विद्यार्थी तथा अभिभावक का महत्त्वपूर्ण योगदान।
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन का अच्छा साधन।
7. राष्ट्रीय कार्यक्रमों का आधार।
8. वास्तविक रूप में कठिनाइयों से परिचित कार्यकर्त्ताओं को महत्त्व।
9. विकेन्द्रीकरण से लाभ विद्यालयों में प्रजातान्त्रिक वातावरण।
10. विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलता है।

*टास्क* संस्थागत नियोजन से क्या आशय है?

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**निम्नलिखित कथनों में 'सही' तथा 'गलत' का चुनाव कीजिए– (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**

1. जिला स्तर पर एक शिक्षा योजना बोर्ड गठित किया जाना चाहिए।
2. पूरे देश के सर्वेक्षण के आधार पर राष्ट्रीय स्तर की प्राथमिकताएँ निश्चित नहीं की जा सकतीं।
3. संस्थागत योजना के निर्माण में प्रधानाचार्य, शिक्षक एवं अन्य अधिकारी तथा संस्थाओं के विशेषज्ञों के अनुभवों का लाभ उठाया जा सकता है।
4. संस्थागत नियोजन उपलब्ध एवं उपलब्ध हो सकने वाले साधनों की विस्तृत जानकारी देने में असमर्थ होता है।
5. संस्थागत नियोजन से विद्यालय का कार्य सुचारू रूप से चलता है।

नोट

## 7.4 सारांश (Summary)

- विद्यालय कार्य के भली प्रकार चलने, प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिये आवश्यक है कि विद्यालयों में योजनाएँ बनायी जाएँ जो आगे चलकर राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की योजनाओं का आधार बन सकें। इस प्रकार की योजनाओं में दो बातों पर ध्यान दिया जाता है–(1) हमारे लक्ष्य क्या हैं? (2) क्या-क्या साधन उपलब्ध हैं?
- "संस्थागत योजना, शिक्षण संस्था द्वारा अपने विकास एवं प्रगति के लिये, अपने उद्देश्यों आदर्शों एवं परम्पराओं तथा प्राप्त साधनों के अन्तर्गत किये जाने वाले उपस्थित प्रयासों की रूपरेखा है।"
- संस्थागत योजना लक्ष्य निर्देशित प्रक्रिया है। इसमें राष्ट्रीय एवं संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।
- संस्थागत योजना में ही कार्य किये जाते हैं जिनकी उपयोगिता विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा समुदाय के लिये है। संस्थागत योजना के क्रियान्वयन से विद्यालय की उपयोगिता में वृद्धि होती है। विद्यालय द्वारा अधिक समाज सेवा एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं नैतिक विकास पर विशेष बल दिया जाता है।
- प्रधानाध्यापक शिक्षक एवं विद्यार्थियों को उचित प्रतिनिधित्व मिलने के कारण संस्थागत योजना निर्माण में प्रजातन्त्रात्मक मूल्यों के विकास में अत्यन्त सहायक होती है।
- संस्थागत योजना में प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता निहित होती है। सभी के सहयोग पर आधारित होने के कारण सभी लोग इसकी सफलता में रुचि लेने लगते हैं।
- किसी भी योजना की सफलता उसकी तैयारी पर निर्भर है। प्रधानाध्यापक को सहयोगी अध्यापक-मण्डल से विचार-विमर्श करके दो कार्य करने चाहिये। उसे आवश्यकताओं की सूची बनानी होगी। इसके लिये अध्यापक व्यक्तिगत सूचियाँ तैयार कर सकते हैं तथा फिर एक साथ मिल बैठकर आवश्यकताओं की सूची को अन्तिम रूप दे सकते हैं।
- संस्थागत योजना की तैयारी के पश्चात् यह पता कर लेना चाहिये कि विद्यालय के पास क्या-क्या साधन उपलब्ध हैं तथा शिक्षा-विभाग, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राज्य शिक्षा संस्थान, प्रदेश की सरकार, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् अथवा अन्य संस्थाओं से क्या प्राप्त किये जा सकते हैं।
- आवश्यकताओं, उनकी प्राथमिकताओं तथा साधनों का निर्धारण कर लेने के बाद योजना का प्रारूप बनाया जाना चाहिये। इस स्तर पर योजना से सम्बद्ध जारी विशेषज्ञ बुलाकर अथवा उनसे सम्पर्क करके विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। ऐसा करने से संस्थागत योजना की शंकाओं का समाधान भी हो सकेगा।
- योजना के प्रारूप की जानकारी सभी सम्बद्ध पक्षों को दे देनी चाहिये तथा उनकी प्रतिक्रियाएँ जानने की चेष्टा की जानी चाहिये। यह विचार-विमर्श तीन स्तरों पर किया जा सकता है। (*i*) शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों की गोष्ठी में विचार-विमर्श, (*ii*) समाज के प्रगतिशील व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श, (*iii*) संस्थागत योजना से सम्बद्ध राजकीय अधिकारियों तथा अनुदान देने वाली संस्थाओं के प्रतिनिधियों के साथ विचार-विनिमय करके। इस प्रकार विचार-विमर्श करने से संस्थागत योजना के क्रियान्वयन की प्रक्रिया सरल हो जायेगी।
- योजना के अन्तिम स्वरूप को अनुदान देने वाली संस्थाओं को प्रेषित कर देना चाहिये। सहमति प्राप्त होने के बाद क्रियान्वयन प्रारम्भ कर देना चाहिये। इस स्तर पर प्रधानाध्यापक का गतिशील होना बहुत आवश्यक है।
- जिले को योजना, विकास एवं प्रशासन की मूल इकाई मानकर इस स्तर की योजना का निर्माण किया जाता है। इसका संचालन जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिये।
- पूरे देश के सर्वेक्षण के आधार पर राष्ट्रीय-स्तर की प्राथमिकताएँ निश्चित की जा सकती हैं। सभी राज्यों की योजनाओं को समय रूप में लेकर राष्ट्रीय योजना तैयार की जा सकती है। केन्द्र एवं राज्यों के समन्वित-कार्यक्रम

नोट

लेकर संवैधानिक प्रावधानों की पूर्ति हेतु राज्यों के साथ तालमेल करके दीर्घकालीन कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है।

- योजना के प्रारूप निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, राज्य शिक्षा संस्थान, प्रादेशिक शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदें, राज्य शिक्षा विभाग आदि की सहायता ली जा सकती है।

## 7.5 शब्दकोश (Keywords)

- **विकेन्द्रीकरण**–किसी व्यवस्था को विकेन्द्रित करना।
- **चेष्टा**–प्रयास करना, कोशिश करना।

## 7.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. संस्थागत नियोजन का क्या अर्थ है? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. संस्थागत नियोजन की परिभाषा दीजिए। इसके उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
3. संस्थागत नियोजन के सिद्धांत एवं विभिन्न स्तरों की व्याख्या कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य।

## 7.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–8: संगठन : प्रक्रिया एवं अर्थ
# (Organizing : Process and means)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 शिक्षा संगठन (Educationl Organization)

8.2 मानव प्रकृति की मान्यताएँ (Assumptions about Human Nature)

8.3 शैक्षिक संगठन की परिभाषा एवं विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Educational organization)

8.4 सारांश (Summary)

8.5 शब्दकोश (Keywords)

8.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सांगठनिक प्रक्रिया एवं अर्थ की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

व्यवस्था के प्रत्यय में स्थायित्व, पूर्व-कथन तथा स्वरूपों को अधिक महत्व देने से उद्योग तथा प्रबन्ध अधिक प्रभावित हुए हैं। यह विचाराधारा 'शैक्षिक तकनीकी' के अर्थ के लिये भी अधिक उपयोगी तथा सार्थक है। शैक्षिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व-कथन किया जाता है और सीखने के स्वरूपों के लिये साधनों एवं युक्तियों को निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार शैक्षिक-तकनीकी शिक्षा-व्यवस्था में स्थायित्व लाती है।

व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध मानव से रहा है, इसलिये मानव प्रकृति की धारणाएँ इस प्रत्यय को प्रभावित करती रही हैं।

## 8.1 शिक्षा संगठन का अर्थ (Meaning of Educational Organization)

मानव जीवन को अच्छा बनाने के लिये संघर्ष करता आया है, उसने अपनी कठिनाइयों को हल करने के लिये साधनों और स्रोतों का अधिकतम प्रयोग करने का प्रयास किया है। साधनों तथा स्त्रोंतों को समुचित रूप में प्रयोग करने को 'व्यवस्था' कहते हैं। परम्परागत विचारधारा के अनुसार 'व्यवस्था' का अर्थ होता है साधनों एवं स्त्रोतों को निश्चित उद्देश्यों को प्राप्ति के लिये प्रयोग करने के स्वरूप को 'व्यवस्था' कहते हैं। व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख तीन युक्तियों को प्रयुक्त किया जाता है–

नोट

(1) प्रयासों तथा स्त्रोतों में समन्वय स्थापित किया जाता है।

(2) कार्य एवं क्रियाओं का विभाजन किया जाता है।

(3) अधिकार एवं उत्तरदायित्व को उन्नत क्रम (Hierarchy) में निर्धारित किया जाता है।

स्काट ने भी 'व्यवस्था' की व्याख्या की है। उनके अनुसार व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य 'विवाद को कम करना' है। व्यवस्था के द्वारा उस वस्तु तथा व्यक्ति के महत्व को कम किया जाता है जिससे नियोजन की सफलता में बाधा होती है। इस प्रकार व्यवस्था के द्वारा अनिश्चितता को कम करके निश्चितता तथा स्थायित्व में वृद्धि की जाती है। व्यवस्था के आधार पर वास्तविक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व कथन दिया जाता है। उदाहरण के लिये पाठ्य पुस्तकों, पाठ्य-योजनाओं तथा अभिक्रमित-अनुदेशन की व्यवस्था की जाती है जिससे सीखने के विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है, परन्तु इसके द्वारा पाठ्यवस्तु के आन्तरिक स्वरूप तथा छात्रों के सीखने के व्यवहार स्वरूपों के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी होती है। शैक्षिक तकनीकी में इन्हीं स्वरूपों को समझने पर विशेष बल दिया जाता है।

## 8.2 मानव-प्रकृति की मान्यताएँ (Assumptions about Human Nature)

कुछ समय पूर्व मार्च तथा साइमन (1958) ने औद्योगिक प्रबन्ध (Industrial management) पर कार्य किया और व्यवस्था के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जो वास्तव में मानव-व्यवहार की धारणाओं पर आधारित है। उन्होंने तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

### 1. व्यवस्था का परम्परागत सिद्धान्त : कार्य-केन्द्रित (Classical Theory Organization: Task-Centred)

इस सिद्धान्त की यह धारणा है कि व्यवस्था के सदस्यों में कार्य करने की क्षमता होती है और निर्देशों को स्वीकार करके वे उनका अनुसरण कर सकते हैं। परन्तु उनमें कार्य के लिये स्वोपक्रम (Initiation) की क्षमता नहीं होती है, और न ही कार्य प्रणाली को किसी प्रकार प्रभावित करने की क्षमता होती है, सदस्य प्राथमिक रूप से मशीन के समान कार्य करते हैं। प्रभुत्ववादी शासन-व्यवस्था इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

व्यवस्था के परम्परागत इस सिद्धान्त ने शिक्षा-प्रणाली को अधिक प्रभावित किया है। शिक्षक द्वारा छात्रों को समस्त क्रियाओं प्रेरणा देना, नियन्त्रण करना, छात्रों के व्यवहार में सुधार लाना, तथा उद्देश्यों की प्राप्ति कराना आदि क्रिया-कलाप किया जाता है। छात्र केवल एक स्त्रोत का कार्य करते हैं और शिक्षक के निर्देशों का अनुसरण करते हैं। कक्षा में बोलने तथा लिखने पर ही अधिक बल दिया जाता है। शिक्षण-व्यवस्था कार्य-केन्द्रित तथा शिक्षक-नियन्त्रित होती है। कक्षा-शिक्षण में पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है। छात्र की रुचियों, क्षमताओं तथा अभिवृत्तियों को शिक्षा-व्यवस्था में कोई स्थान नहीं दिया जाता है। छात्र केवल मशीन के समान कार्य करता है। इस प्रकार की शिक्षण व्यवस्था में छात्रों को रटना अधिक पड़ता है। स्मृति स्तर (Memory Level) शिक्षण को ही अपनाया जाता है जिससे केवल निम्न स्तरीय ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। भावात्मक पक्षों के विकास को महत्व नहीं दिया जाता है।

### 2. व्यवस्था का मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त : सम्बन्ध-केन्द्रित (Human Relation Theory of Organization: Relationship-Centred)

मानव सम्बन्ध सिद्धान्त की यह धारणा है कि व्यवस्था के सदस्य अपनी अभिवृत्तियों, अभिरुचियों, मूल्यों तथा लक्ष्यों को लेकर आते हैं। इसलिए व्यवस्था के व्यवहारों के लिये उन्हें प्रेरित तथा प्रोत्साहित करना चाहिये, क्योंकि उनके लक्ष्यों तथा व्यवस्था के लक्ष्यों में अन्तर होता है। व्यवस्था व्यवहार के वास्तविक लक्ष्य के लिये अभिवृत्ति तथा नैतिक अवस्था अधिक महत्वपूर्ण होती है।

नोट

परम्परागत कार्य-केन्द्रित सिद्धान्त के विरोध में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। परम्परागत शिक्षण तथा प्रशिक्षण व्यवस्था के द्वारा छात्रों की मानसिक क्षमताओं का विकास समान स्तर पर ही किया जा सकता है परन्तु इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षण तथा प्रशिक्षण व्यवस्था इस प्रकार की जाती है जो छात्रों की आयु प्रवीणता अभिरुचियों, अभिवृत्तियों तथा योग्यता के अनुरूप होती है और छात्रों का विकास बहुमुखी होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में शिक्षक का उत्तरदायित्व एक निर्देशक तथा परामर्शदाता के रूप में होता है। उसका कर्त्तव्य छात्रों को क्रियाशील रखने के लिये अवसर देना तथा प्रोत्साहित करना है। इस शिक्षण व्यवस्था के आयाम में ऐसी विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसमें छात्रों को अधिक कार्य करना पड़ता है। सामूहिक शिक्षण तथा सीखने की सहायक सामग्री को अधिक प्रयोग करने के लिये बढ़ावा दिया जाता है। सीखने में व्यवहार-विज्ञान के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। सीखने की पाठ्यवस्तु की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि सीखना रुचिकर हो, प्रेरणादायक हो तथा अन्ततः सफलता प्राप्त हो सके। इसमें रटने पर कम से कम बल दिया है। सार्थक-अधिगम को अधिक महत्व दिया जाता है। अधिगम में सार्थक-कार्यों को ही प्रधानता दी जाती है। जैसे खेल-कूद, प्रोजेक्ट का कार्य, खोज आदि।

परम्परागत तथा मानव सम्बन्ध व्यवस्था के सिद्धान्त विरोधी विचारधारा पर आधारित एक अन्य सिद्धान्त है, जो इन दोनों का समन्वय है और मानव की प्रकृति पर आधारित है।

### 3. आधुनिक व्यवस्था का सिद्धान्तः कार्य तथा सम्बन्ध केन्द्रित (Modern Theory of Organization: Task and Relationship-Centred)

आधुनिक व्यवस्था सिद्धान्त की यह धारणा है कि व्यवस्था के सदस्य समस्या का समाधान कर सकते हैं और निर्णय भी ले सकते हैं। व्यवस्था के व्यवहार की व्यवस्था प्रत्यक्षीकरण तथा चिन्तन प्रणाली के माध्यम से की जा सकती है। मानव व्यवहार की प्रकृति पर आधारित होने से इन तीनों सिद्धान्तों में कोई विरोधाभास नहीं है, परन्तु सिद्धान्तों में लक्ष्यों का अन्तर अवश्य है। इन सिद्धान्तों पर प्रतिपादन औद्योगिक प्रबन्ध की दृष्टि से किया गया है परन्तु इन्हें शिक्षण व्यवस्था में भी प्रयुक्त किया जाता है।

*नोट्स* आधुनिक व्यवस्था आयाम (Modern Approach) में कार्य तथा मानव सम्बन्ध को भी सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में शिक्षा व्यवस्था छात्र-केन्द्रित होती है।

शिक्षण तथा प्रशिक्षण में कार्य की आवश्यकताओं तथा छात्र की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाता है। शिक्षक छात्र, कार्य तथा व्यवस्था चरों में समन्वय स्थापित करता है जिसका परिणाम छात्रों की निष्पत्ति होती है। इस विचारधारा का सम्बन्ध-अध्ययन, अनुदेशन-प्रणाली, अनुदेशन-प्रारूप तथा अनुदेशन तकनीकी (Instructional teachnology) से है। **डेवीज** के अनुसार इसे शैक्षिक-तकनीकी का एक पक्ष माना जाता है, जिसे तृतीय शैक्षिक-तकनीकी कहते हैं। इसमें प्रणाली-आयाम (System Approach) का प्रयोग शिक्षण तथा प्रशिक्षण में किया जाता है।

## 8.3 शैक्षिक संगठन की परिभाषा एवं विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Educational Organization)

### शिक्षा संगठन की परिभाषा (Definitions of Organization)

जब हम शैक्षिक प्रशासन की चर्चा करते हैं तो यह स्वाभाविक हो जाता है कि संगठन के रूप में विवेचन किया जाये आरम्भिक काल में समाज सरल थे शिक्षा का संगठन शिक्षक, छात्र तथा स्थान तक सीमित रहता था। कालान्तर

नोट

में समाज के जटिल काम विकसित होने पर काल के अन्य संगठनों की भांति शिक्षा के संगठन में भी परिवर्तन आया है और श्रम का सही उपयोग हो रहा है।

**विद्यालय संगठन की परिभाषाएँ**

विद्यालय संगठन की परिभाषाएँ विद्वानों ने इस प्रकार दी हैं-

**1. वर्गीज टी. पाल ( T. Paul Verghese )**–विद्यालय संगठन का मुख्य आधार श्रम का उचित वर्गीकरण तथा विभाजन है। शिक्षक का कक्षा के साथ, कक्षा का कमरे के साथ, छात्रों को पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धतियों के साथ समायोजन होगा, समय का उचित विभाजन आदि विद्यालय का संगठित स्वरूप बनाने में योग देता है।

**2. आर्थर मोलकन**–संगठन, कार्य करने की एक मशीन है जिसमें पुर्जों के रूप में व्यक्ति, उपकरण, विचार, प्रत्यय, प्रतीक, नियम, सिद्धान्त, स्वतंत्र तथा मिश्रित रूप में कार्य करते हैं। विद्यालय संगठन, एक सोद्देश्य व्यवस्था है। इसका प्रयोजन, शैक्षिक उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये विद्यालय में शिक्षा से सम्बन्धित सभी तथ्यों को संपादित करना है। शिक्षा बोर्ड के अनुसार-प्रत्येक प्रकार के विद्यालय का मुख्य प्रयोजन बालकों के व्यक्तित्व का विकास करना है। विद्यालय, बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिये इस प्रकार सहायता करें कि समाज की आवश्यकता के अनुरूप अपने व्यक्तित्व को विकसित कर सकें।

*क्या आप जानते हैं* आज की शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्रणाली मानव-सम्बन्ध सिद्धान्त से अधिक प्रभावित है।

## विद्यालय संगठन की विशेषताएँ (Characteristics of School Organization)

विद्यालय संगठन स्वयं में एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. **परम्पराओं का निर्माण करना**–विद्यालय का दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिये कि परम्परा बन जाये। प्रार्थना सभा, कक्षा की उपस्थिति, शिक्षण कार्य, विश्राम काल, खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि सभी कार्य परम्परा के अनुसार किये जाते हैं।
2. **व्यक्तित्व का विकास करना**–शिक्षा का उद्देश्य है बालक का सर्वांगीण विकास। विद्यालय इस कार्य को वांछित वातावरण का निर्माण कर अंजाम देता है।
3. **लचीलापन**–विद्यालय का संगठन, लचीला होता है। इसमें देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। विद्यालय में सभी शैक्षिक सुविधाओं को जुटाया जाता है। जो सुविधाएँ जुटाई नहीं जा सकतीं, उनका विकल्प ज्ञात किया जाता है।
4. **समन्वय एवं सहयोग**–विद्यालय संगठन, प्रधानाचार्य, शिक्षकों, छात्रों कर्मचारियों एंव प्रबन्धन समितियों के मध्य समन्वयं तथा सहयोग की व्यवस्था है, ये सभी, सहयोग द्वारा वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।
5. **शैक्षिक अवसरों की समानता**–विद्यालय में सभी छात्रों को पढ़ने के समान अवसर प्रदान किये जाते हैं। उन्हें सुविधाएँ दी जाती हैं।
6. **सृजनात्मकता तथा आदर्शवादिता**–विद्यालय संगठन में सृजनात्मकता का होना आवश्यक है। इससे शैक्षिक आदर्शों की प्राप्ति होती है।

## विद्यालय संगठन का क्षेत्र (Scope of School Organization)

विद्यालय संगठन, विद्यालय के कार्य-कलापों की व्यवस्था है। इस दृष्टि से विद्यालय संगठन का क्षेत्र इस प्रकार है–

नोट

1. **व्यवस्था के अंगों में सहयोग करना**–विद्यालय संगठन के अंग हैं–प्रधानाचार्य, शिक्षक, छात्र, कर्मचारी तथा शैक्षिक सुविधाएँ। इन सभी में सहयोग तथा समन्वय होना चाहिये।
2. **सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करना**–विद्यालय का संगठन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला होना चाहिये। विद्यालयों में ऐसे पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रम चलाये जाने चाहिएँ जो विद्यालयों के साथ-साथ समुदाय की आवश्यकता की भी पूर्ति कर सकें।
3. **समय सारिणी तैयार करना**–विद्यालय को संगठित करने में समय-सारिणी का विशेष महत्व है। समय-सारिणी के द्वारा ही विद्यालय की समस्त क्रियाओं का संगठन किया जाता है।
4. **पाठ्यसहगामी क्रियाओं की व्यवस्था करना**–विद्यालय में केवल पठनपाठन ही नहीं चलता, अपितु पाठ्यसहगामी क्रियाओं को भी बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आयोजित किया जाता है।
5. **संस्थागत नियोजन करना**–विद्यालय एक संस्था है, इस संस्था का उद्देश्य भावी समाज का निर्माण करना है। इसकी भावी योजना के अनुरूप साधन जुटाने का कार्य सर्वोपरि हो जाता है। विद्यालय संगठन के माध्यम से अनेक योजनाएँ बनाई जाती हैं जो भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।
6. **प्रवेश परीक्षा आदि की व्यवस्था करना**–सत्रारंभ से प्रवेश और सत्रान्त में परीक्षा के मध्य विद्यालय की अनेक प्रकार की कार्य-प्रणाली तथा गतिविधियाँ सम्पन्न कराई जाती हैं।
7. **विद्यालय समुदाय सम्बन्ध स्थापित करना**–विद्यालय को लघुसमुदाय कहा गया है। इसलिये विद्यालय तथा समुदाय के सम्बन्धों का विकास करना भी विद्यालय संगठन का अंग है।

*टास्क* समय-सारणी से आप क्या समझते हैं?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. विद्यालय का दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि ..... बन जाए।
2. शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है बालक का ..... विकास करना।
3. विद्यालय का संगठन ..... होता है।
4. ..... प्रधानाचार्य, शिक्षकों, छात्रों, कर्मचारियों एवं प्रबंधन समितियों के मध्य समन्वय तथा सहयोग की व्यवस्था करता है।
5. विद्यालय में सभी छात्रों को ..... के समान अवसर प्रदान किये जाते हैं।

## 8.4 सारांश (Summary)

- साधनों तथा स्त्रोतों को समुचित रूप में प्रयोग करने को 'व्यवस्था' कहते हैं। परम्परागत विचारधारा के अनुसार 'व्यवस्था' का अर्थ होता है साधनों एवं स्त्रोतों को निश्चित उद्देश्यों को प्राप्ति के लिये प्रयोग करने के स्वरूप को 'व्यवस्था' कहते हैं। व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख तीन युक्तियों को प्रयुक्त किया जाता है–
  (1) प्रयासों तथा स्त्रोतों में समन्वय स्थापित किया जाता है।
  (2) कार्य एवं क्रियाओं का विभाजन किया जाता है।
  (3) अधिकार एवं उत्तरदायित्व को उन्नत क्रम (Hierarchy) में निर्धारित किया जाता है।

नोट

- स्काट ने भी 'व्यवस्था' की व्याख्या की है। उनके अनुसार व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य 'विवाद को कम करना' है। व्यवस्था के द्वारा उस वस्तु तथा व्यक्ति के महत्व को कम किया जाता है जिससे नियोजन की सफलता में बाधा होती है। इस प्रकार व्यवस्था के द्वारा अनिश्चितता को कम करके निश्चितता तथा स्थायित्व में वृद्धि की जाती है।
- व्यवस्था के परम्परागत इस सिद्धान्त ने शिक्षा-प्रणाली को अधिक प्रभावित किया है। शिक्षक द्वारा छात्रों को समस्त क्रियाओं की प्रेरणा देना, नियन्त्रण करना, छात्रों के व्यवहार में सुधार लाना, तथा उद्देश्यों की प्राप्ति कराना आदि क्रिया-कलाप किया जाता है। छात्र केवल एक स्त्रोत का कार्य करते हैं और शिक्षक निर्देशों का अनुसरण करते हैं। कक्षा में बोलने तथा लिखने पर ही अधिक बल दिया जाता है। शिक्षण-व्यवस्था कार्य-केन्द्रित तथा शिक्षक-नियन्त्रित होती है। कक्षा-शिक्षण में पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है।
- परम्परागत शिक्षण तथा प्रशिक्षण व्यवस्था के द्वारा छात्रों की मानसिक क्षमताओं का विकास समान स्तर पर ही किया जा सकता है। परन्तु इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षण तथा प्रशिक्षण व्यवस्था इस प्रकार की जाती है जो छात्रों की आयु प्रवीणता अभिरुचियों, अभिवृत्तियों तथा योग्यता के अनुरूप होती है छात्रों का विकास बहुमुखी होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में शिक्षक का उत्तरदायित्व एक निर्देशक तथा परामर्शदाता के रूप में होता है।
- आधुनिक व्यवस्था सिद्धान्त की यह धारणा है कि व्यवस्था के सदस्य समस्या का समाधान कर सकते हैं, और निर्णय भी ले सकते हैं। व्यवस्था के व्यवहार की व्यवस्था प्रत्यक्षीकरण तथा चिन्तन प्रणाली के माध्यम से की जा सकती है।
- शिक्षण तथा प्रशिक्षण में कार्य की आवश्यकताओं तथा छात्र की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाता है। शिक्षक छात्र, कार्य तथा व्यवस्था चरों में समन्वय स्थापित करता है जिसका परिणाम छात्रों की निष्पत्ति होती है।
- इस विचारधारा का सम्बन्ध-अध्ययन, अनुदेशन-प्रणाली, अनुदेशन-प्रारूप तथा अनुदेशन तकनीकी (Instructional technology) से है।
- विद्यालय संगठन का मुख्य आधार श्रम का उचित वर्गीकरण तथा विभाजन है। शिक्षक का कक्षा के साथ, कक्षा का कमरे के साथ, छात्रों को पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धतियों के साथ समायोजन होगा, समय का उचित विभाजन आदि विद्यालय का संगठित स्वरूप बनाने में योग देता है।
- विद्यालय का संगठन, लचीला होता है। इसमें देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। विद्यालय में सभी शैक्षिक सुविधाओं को जुटाया जाता है। जो सुविधाएँ जुटाई नहीं जा सकतीं, उनका विकल्प ज्ञात किया जाता है।

## 8.5 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रवीणता**–किसी क्षेत्र में विशेषज्ञता अथवा कुशलता हासिल करना।
- **सोद्देश्य**–उद्देश्य सहित कार्य करना।

## 8.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा संगठन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
2. शैक्षिक संगठन की परिभाषा दीजिए। इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. विद्यालय संगठन के क्षेत्र का विवेचन कीजिए।
4. शैक्षिक संगठन के संदर्भ में मानव प्रकृति की मान्यताओं की व्याख्या कीजिए।

नोट

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. परंपरा,
2. सर्वांगीण,
3. लचीला,
4. विद्यालय संगठन,
5. पढ़ने।

## 8.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–9: नियंत्रण और नियुक्ति (Controlling and Staffing)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 नियंत्रण का अर्थ और प्रक्रिया (Meaning and process of Controlling)

9.2 नियुक्ति (Staffing)

9.3 नियुक्ति प्रक्रिया (Staffing process)

9.4 अभिप्रेरणा का अर्थ और प्रकृति (Meaning and Nature of Motivation)

9.5 सारांश (Summary)

9.6 शब्दकोश (Keywords)

9.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नियंत्रण, नियुक्ति और अभिप्रेरणा के अर्थ, प्रक्रिया एवं प्रकृति की व्याख्या और विश्लेषण करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

स्कूल-नौका खेने के लिए अध्यापक-नाविकों की आवश्यकता है। नौका को दूसरे तट तक सफलतापूर्वक ले जाने का उत्तरदायित्व जिस प्रकार नाविकों पर है उसी प्रकार स्कूल को सफल रूप से चलाने का उत्तरदायित्व अध्यापकों पर है। जब अध्यापकों का उत्तरदायित्व इतना महान् है तो उनकी नियुक्ति करने वालों का उत्तरदायित्व क्या कम हो सकता है? कदापि नहीं। इसलिए जिन लोगों को अध्यापक नियुक्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता है उन्हें बड़ी योग्यता एवं सतर्कता से अध्यापकों का चुनाव करना चाहिए। उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि जिसको वे अध्यापक के रूप में चुन रहे हैं उसका सम्बन्ध नन्हें-मुन्नों से है, जिन्हें बड़े होकर देश की पतवार को अपनी योग्यता और सबल हाथों से सम्भालना है। हमारे समाज में अध्यापक को परम्परा से ही उच्च स्थान प्राप्त है। स्पष्ट है कि अध्यापक समाज में तभी मान प्राप्त कर सकेगा जब कि उसमें कुछ गुण होंगे; अत: नियुक्ति करने वालों को इन सब बातों का सम्यक् ध्यान रखना चाहिए। निस्सन्देह कुछ क्षणों के साक्षात्कार से हम किसी के सभी गुणों एवं अवगुणों से पूर्ण अवगत नहीं हो सकते, फिर भी यदि शिक्षा-क्षेत्र की कुछ जानकारी रखने वाले तथा अनुभवी लोगों को यह कार्य सौंपा जाए तो वे साक्षात्कार से ही पर्याप्त अनुमान लगा लेते हैं।

नोट

## 9.1 नियन्त्रण का अर्थ और प्रक्रिया (Meaning and Process of Controlling)

शिक्षण के नियोजन, उसकी व्यवस्था तथा मार्गदर्शन के पश्चात् उसका चौथा अन्तिम एवं महत्वपूर्ण सोपान है–शिक्षण का नियन्त्रण (Controlling of Teacher)। नियन्त्रण का तात्पर्य शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया का उद्देश्यों के सन्दर्भ में मूल्यांकन तथा मापन करना है। स्मरण रहे कि जब शिक्षण के उद्देश्य प्राप्त हो जाते हैं तो शिक्षण को सार्थक समझा जाता है। इसके विपरीत यदि उद्देश्यों की प्राप्ति आंशिक रूप से हुई हो अथवा बिल्कुल न हुई तो शिक्षक का कुशल व्यवस्थापक के रूप में शिक्षण परिस्थिति के नियोजन (Planning), व्यवस्था (Organisation) तथा मार्गदर्शन (Leading) में आवश्यक परिवर्तन कर लेना चाहिए, जिससे पूर्व निर्धारित एवं परिभाषित उद्देश्य प्राप्त हो जाएँ। इस प्रकार शिक्षक को अपने द्वारा किए गए शिक्षण की सार्थकता को देखने के लिए उसका मूल्यांकन तथा मापन कर लेना चाहिए। नियन्त्रण की परिभाषा देते हुए डेवीज महोदय ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है–"शिक्षण में नियन्त्रण शिक्षक का वह कार्य है जिसमें वह यह निर्धारित करता है कि क्या उसकी योजनाएँ प्रभावशाली ढंग से लागू की जा रही हैं, व्यवस्था शक्तिशाली है, मार्ग-दर्शन सही दिशा में है और ए सब कार्य पूर्व-निश्चित उद्देश्यों का मापन करने में कहाँ तक सफल है।"

नियन्त्रण की क्रिया द्वारा जहाँ एक ओर शिक्षण परिस्थिति के नियोजन, व्यवस्था तथा मार्गदर्शन में आवश्यक हेर-फेर करके शिक्षण को सफल बनाने में सहायता मिलती है वहाँ दूसरी ओर इसके द्वारा पाठ्यक्रम, शिक्षण की नीतियों, प्रविधियों तथा युक्तियों के सुधार करने में भी पर्याप्त सहायता मिलती है।

### नियंत्रण प्रक्रिया (Controlling Process)

नियन्त्रण में शिक्षण के तीन प्रमुख पदों का अनुसरण किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं–

(1) अधिगम व्यवस्था का मूल्यांकन (Evaluating the Learning System)।

(2) अधिगम का मापन (Measuring Learning)।

(3) अधिगम उद्देश्यों द्वारा व्यवस्था (Managing By Learning Objectives)।

**1. अधिगम व्यवस्था का मूल्यांकन (Evaluating the Learning System)**

कुछ समय पूर्व तक परीक्षा प्रणाली में चारों ओर निबन्धात्मक परीक्षाओं का बोलबाला था। ए परीक्षाएँ अधिगम उद्देश्यों की ओर ध्यान न देते हुए केवल पाठ्य-वस्तु के रटने पर बल देती थीं जिससे विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएँ। इन परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों की भाषा, शैली, विचार, तर्क तथा अभिव्यंजन एवं आलोचना आदि मानसिक शक्तियों की जाँच तो सरलतापूर्वक हो जाती थी परन्तु उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों जैसे–रुचियों, रुझानों, संवेगों तथा आदतों एवं व्यवहारों का परीक्षण नहीं किया जा सकता था। इस दोषयुक्त परीक्षा प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए एक नई परीक्षण-विधि का विकास अमरीका में हुआ जिसे मूल्यांकन की संज्ञा दी जाती है। हमारे देश में भी शिकागो के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री डॉ. बी. ब्लूम (Bloom) के परामर्श के अनुसार मूल्यांकन-विधि का प्रयोग सन् 1958 ई. से हो गया है।

***(a)* मूल्यांकन का अर्थ** (Meaning of Evaluation)–मूल्यांकन एक ऐसी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिन प्रतिदिन होता रहता है। हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जहाँ एक ओर दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों का मूल्यांकन करता है वहाँ दूसरी ओर वह दूसरों के व्यावहारिक परिवर्तनों को आधार मानते हुए अपने कार्य का मूल्यांकन भी समय-समय पर करता रहता है। उदाहरण के लिए एक माली अपने पौधों का मूल्यांकन उनकी सुन्दरता परिवर्तनों को देख कर करता है। स्मरण रहे कि जिस प्रकार माली तथा डॉक्टर एवं अन्य व्यक्ति अपने-अपने कार्यों को उनके परिणामों के अनुसार मूल्यांकन करते हैं, उसी प्रकार शिक्षक भी अपने शिक्षण कार्य का मूल्यांकन विद्यार्थियों में हुए व्यावहारिक परिवर्तनों को आधार मानकर करता है। ध्यान देने की बात है शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन का सम्बन्ध अधिगम उद्देश्यों (Learning Objectives) से होता है। अत: प्रत्येक शिक्षक अपने शिक्षण का मूल्यांकन करते समय यह देखता है कि विद्यार्थियों के व्यवहार में जो भी परिवर्तन हुए वे अभीष्ट अधिगम उद्देश्यों

नोट

के संदर्भ में हुए अथवा नहीं। यदि हुए तो किस सीमा तक। यदि बिल्कुल नहीं हुए तो शिक्षण कार्य में क्या परिवर्तन किया जाए कि उद्देश्य प्राप्त हो जाएँ। इस प्रकार **अधिगम उद्देश्यों के अनुसार शिक्षण तथा परीक्षण का साथ-साथ चलते रहना ही मूल्यांकन कहलाता है।** कोठारी आयोग ने मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए लिखा है–**"मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। समस्त शिक्षा क्रम का महत्वपूर्ण भाग है और इस प्रकार इसका शैक्षिक उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।"**

**(*b*) मूल्यांकन की प्रमुख विशेषताएँ** (Main Characteristic of Evaluation)–मूल्यांकन के अर्थ के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि मूल्यांकन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **व्यापक प्रक्रिया** (Comprehensive Process)–मूल्यांकन एक व्यापक प्रक्रिया है। इसमें निबन्धात्मक परीक्षा की भांति विद्यार्थियों के केवल ज्ञानात्मक (Cognitives) पक्ष की ही जाँच नहीं होती वरन् उनके भावात्मक (Affective) तथा क्रियात्मक (Cognitive) पक्ष में होने वाले सभी परिवर्तनों की जाँच भी सरलतापूर्वक होती है। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक एवं नैतिक सभी पक्षों में होने वाले व्यवहारों की जाँच की जाती है। इस प्रकार मूल्यांकन विद्यार्थियों की परीक्षा के लिए एक अत्यन्त व्यापक विधि है। इसमें मापन तथा जाँच दोनों निहित हैं।
2. **निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया** (Continuous Process)–निबन्धात्मक परीक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों की वर्ष में दो अथवा तीन बार परीक्षा लेकर परिणामों के आधार पर कक्षोन्नति कर दी जाती है। यह बात मूल्यांकन के साथ नहीं है। मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली ऐसी प्रक्रिया है जिसका अधिगम उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसके अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों के अनुसार विद्यार्थी में वांछनीय सीखने के अनुभव (Learning Experiences) उत्पन्न किए जाते हैं तथा उनके दिन प्रतिदिन होने वाले व्यावहारिक परिवर्तनों (Behavioural Changes) का लेखा-जोखा रखा जाता है। इसी लेखा-जोखा के आधार पर विद्यार्थियों का स्तरीकरण (Ranking) किया जाता है तथा उन्हें अगली कक्षा में चढ़ाया जाता है।
3. **सामाजिक प्रक्रिया** (Social Process)–मूल्यांकन एक सामाजिक प्रक्रिया है। उसके अन्तर्गत जहाँ एक ओर व्यक्तित्व के सभी पक्षों का मूल्यांकन किया जाता है वहाँ दूसरी ओर यह इस बात की जाँच भी करती है कि शिक्षण का संचालन समाज की आवश्यकताओं, आदर्शों तथा मानदण्डों के अनुसार हुआ अथवा नहीं।
4. **विवरणात्मक प्रक्रिया** (Descriptive Process)–मूल्यांकन एक विवरणात्मक प्रक्रिया है। इसमें विद्यार्थियों के सभी पक्षों में होने वाली प्रगति का विवरण दिया जाता है।
5. **सहकारी प्रक्रिया** (Co-operative Process)–मूल्यांकन एक सहकारी प्रक्रिया है। सैद्धान्तिक परीक्षा में तो विद्यार्थी की कक्षोन्नति का स्रोत विद्यार्थी ही होता है। वह अपनी उत्तर-पुस्तक में जैसा लिखता है उसे वैसा ही फल मिल जाता है। मूल्यांकन में विद्यार्थी, शिक्षक तथा अभिभावक आदि सभी स्रोतों का आवश्यक सहयोग प्राप्त करते हुए आवश्यक सामग्री एकत्रित की जाती है। तत्पश्चात् उसकी प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है।
6. **निर्णयात्मक प्रक्रिया** (Decisive Process)–मूल्यांकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है। इसके द्वारा यह निर्णय दिया जाता है कि–(अ) कोई वस्तु अथवा प्रक्रिया उपयोगी है अथवा नहीं, (ब) निर्धारित किए हुए शैक्षिक उद्देश्यों के अनुसार शिक्षण किस सीमा तक सफल हुआ, (स) विद्यार्थियों को कक्षा में दिए गए सीखने के अनुभव (Learning Experiences) प्रभावोत्पादक रहे अथवा नहीं तथा (द) शिक्षण के उद्देश्यों को कितने अच्छे ढंग से प्राप्त किया गया है। यदि प्राप्त नहीं किया गया तो क्या उपचारात्मक (Remedial) अनुदेशन दिया जाए अथवा शिक्षण नीतियों (Teaching Strategies) में क्या सुधार किया जाए। संक्षेप में, मूल्यांकन शैक्षिक निष्पति का मापन तो करता ही है साथ में शिक्षण की प्रक्रिया को सुधारता भी है।

**(*c*) मूल्यांकन में तीन प्रमुख पद (Three Important Steps in Evaluation)**

मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है इसमें निम्नलिखित तीन पद होते हैं–

नोट

(1) शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण तथा परिभाषीकरण (Formulation and Definition of Educational Objectives)।

(2) शिक्षण क्रियाओं द्वारा सीखने के उपयुक्त अनुभव उत्पन्न करना (Creating Appropriate)।

(3) व्यवहार परिवर्तन के आधार पर मूल्यांकन करना (Evaluating on the Basis of Behavioural Changes)।

**1. शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण तथा परिभाषीकरण** (Formulation and Definition of Educational Objectives)–शिक्षण के उद्देश्य शिक्षण की कुंजी होते हैं। अत: सफल शिक्षण के लिए पाँच बातों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करना चाहिए वरन् शिक्षण के असफल होने की सम्भावना बढ़ सकती है। वे बातें हैं–(*i*) शिक्षण के उद्देश्य विद्यार्थियों की रुचियों, रुझानों, प्रवृत्तियों, योग्यताओं तथा आवश्यकताओं एवं उनके व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक आदि सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित करने चाहिएँ, (*ii*) शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शों को ध्यान में रखना चाहिएँ, (*iii*) शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय विषय-वस्तु के क्षेत्र एवं उसके स्वभाव को दृष्टि में रखना चाहिए, (*iv*) शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय शिक्षा के नर्सरी, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तरों को ध्यान में रखना चाहिए, तथा (*v*) शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय शिक्षा मनोविज्ञान का पूरा ज्ञान होना चाहिए। जब उक्त पाँचों बातों को ध्यान में रखकर शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित हो जाएँ तो शिक्षक को इसके पश्चात् यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि उसे शिक्षण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विकास सम्बन्धी कौन-कौन से क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अन्दर कौन-कौन से परिवर्तन करने हैं। संक्षेप में शिक्षण उद्देश्यों की विशेषताओं (Specifications) को स्पष्ट कर देना ही उन्हें परिभाषित कर देना है।

**2. शिक्षण क्रियाओं द्वारा सीखने के उपयुक्त अनुभव उत्पन्न करना** (Creating Appropriate Learning Experiences Through Educational Activities)–सीखने के अनुभवों का तात्पर्य उन साधनों से है जिनके द्वारा अभिष्ट शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। अत: शिक्षण उद्देश्यों को निर्धारित एवं परिभाषित करने के पश्चात् शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि वह ऐसे साधनों अर्थात् शिक्षण सामग्रियों तथा परिस्थितियों का निर्माण करे कि विद्यार्थियों को सीखने के उपयुक्त अनुभव प्राप्त हो जाएँ और अन्त में उन्हीं अनुभवों के द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति सरलतापूर्वक हो जाए। दूसरे शब्दों में शिक्षक को ऐसी क्रियाओं तथा अनुभवों का चुनाव करते हुए ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिसमें रहते हुए विद्यार्थियों को उनकी अपनी स्वयं की क्रियाओं द्वारा सीखने के उपयुक्त अनुभव प्राप्त हो जाएँ। स्मरण रहे कि सीखने के अनुभवों को चुनाव करके उपयुक्त शैक्षिक वातावरण का निर्माण करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिए शिक्षक को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ–

(*i*) सीखने के अनुभवों को शिक्षण के उद्देश्यों से सीधा सम्बन्ध होना चाहिए।

(*ii*) सीखने के अनुभवों को विद्यार्थियों के लिए सार्थक (Meaningful) तथा संतोषप्रद होना चाहिए।

(*iii*) सीखने के अनुभव विद्यार्थियों की रुचियों के अनुसार होने चाहिए जिससे वे अधिक से अधिक क्रियाशील रहते हुए निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें।

(*iv*) सीखने के अनुभव पर्याप्त (Adequate) होने चाहिएँ।

(*v*) सीखने के अनुभव विद्यार्थियों की परिपक्वता (Maturity) के अनुसार होने चाहिए।

(*vi*) सीखने के अनुभवों को विद्यार्थियों के व्यवहार का अविच्छिन्न अंग (Integral Part) होना चाहिए।

**3. व्यवहार परिवर्तन के आधार पर मूल्यांकन करना** (Evaluating on the basis of Behavioural Changes)–शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। यह व्यवहार परिवर्तन स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों के शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों में होता है। वे पक्ष हैं–(*i*) ज्ञानात्मक, (*ii*) भावात्मक तथा (*iii*) क्रियात्मक। मूल्यांकन द्वारा व्यवहार के उक्त-तीनों पक्षों की जाँच की जाती है। स्मरण रहे कि व्यवहार के ए तीनों पक्ष पृथक-पृथक नहीं वरन् एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। इस दृष्टि से कोई भी व्यवहार चाहे वह आन्तरिक हो अथवा बाह्य उसमें तीनों पक्षों का समावेश हो सकता है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम उक्त तीनों व्यावहारिक पक्षों का स्पष्टीकरण कर रहे हैं–

नोट

(*i*) **ज्ञानात्मक पक्ष** (Cognitive Aspect)—ज्ञानात्मक पक्ष विद्यार्थियों के व्यवहार का पहला पक्ष है। इसके द्वारा विद्यार्थी नई-नई बातों, सूचनाओं, तथ्यों, घटनाओं तथा सत्यों एवं सिद्धान्तों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस दृष्टि से शिक्षण में ज्ञानात्मक उद्देश्य (Knowledge Objective) इस बात पर बल देता है कि विद्यार्थियों को अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। चूँकि ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित व्यवहार में प्रत्यास्मरण (Recall) तथा पहचान (Recognition) की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया सम्मिलित रहती है, इसलिए स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों के द्वारा इस पक्ष को अधिक से अधिक विकसित करने का प्रयास किया जाता है। प्रोफेसर ब्लूम (Prof. Bloom) के अनुसार ज्ञानात्मक पक्ष में जिस ज्ञान का बोध होता है, वे हैं—(*i*) विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान, (*ii*) विशिष्ट तथ्यों को प्राप्त करने के ढंगों का ज्ञान, (*iii*) मान्यताओं एवं परम्पराओं का ज्ञान, (*iv*) क्रियाओं एवं घटनाओं की गतिविधियों का ज्ञान, (*v*) माप शब्दों का ज्ञान, (*vi*) किसी विषय के अन्तर्गत पाए जाने वाले वर्गीकरण तथा श्रेणियों का ज्ञान, (*vii*) विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान तथा (*viii*) सिद्धान्तों एवं सामान्यीकरण का ज्ञान। स्मरण रहे कि व्यवहार के ज्ञानात्मक पक्ष को विकसित करने के लिए कई स्तरों को पार करना पड़ता है। वे स्तर हैं—(*i*) प्रत्यास्मरण तथा पहचान (Recall and Recognition), (*ii*) बोध (Comprehension), (*iii*) विश्लेषण (Analysis), (*iv*) संश्लेषण (Synthesis) तथा (*v*) मूल्यांकन (Evaluation)।

**(*ii*) भावात्मक पक्ष** (Affective Aspect)—भावात्मक पक्ष विद्यार्थियों के व्यवहार का दूसरा पक्ष है। इसका सम्बन्ध विद्यार्थियों की रुचियों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों से होता है। दूसरे शब्दों में विद्यार्थियों की किसी विषय के प्रति रुचि अथवा अभिवृत्ति का होना तथा अन्य ऐसे ही मनोवृत्तियों एवं संवेगों से सम्बन्धित परिवर्तन भावात्मक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं। स्मरण रहे कि विद्यार्थियों के भावात्मक पक्ष को विकसित करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसका कारण यह है कि रुचियाँ भाव (Sentiments) तथा मनोवृत्तियों की व्यक्तिगत दिशा होती है। इनका सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से पहले होता है तथा अन्य व्यक्तियों से बाद में। इनकी प्रकृति तथा निर्धारक तत्वों को समझना सरल कार्य है। चूँकि हमारी रुचियों, स्थाई भावों तथा मनोवृत्तियों की हमारे व्यक्तित्व की कसौटी माना जाता है, इसलिए इनका शिक्षा के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक का यह परम कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों के भावात्मक पक्ष का अधिक से अधिक विकास करें। इसके लिए उसे कई स्तरों से होकर गुजरना पड़ेगा। वे स्तर हैं—(*i*) आग्रहण (Recieving), (*ii*) प्रतिक्रिया (Response), (*iii*) अनुमूलन (Valuing), (*iv*) व्यवस्थापन (Organization), (*v*) मूल्य समूह का विशेषीकरण (Characterization of a value system)।

**(*iii*) क्रियात्मक पक्ष** (Conative Aspect)—क्रियात्मक पक्ष विद्यार्थियों के व्यवहार का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष है। यह ऐसी क्रियाओं में प्रकट होता है जिनके लिए मांसपेशियों (Muscular) तथा शारीरिक एवं आंगिक गतियों आवश्यकता होती है। क्रियात्मक पक्ष के उपयुक्त उदाहरण है—व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा। ऐसी शिक्षा में विद्यार्थी के व्यवहार का क्रियात्मक पक्ष मुख्य स्थान रखता है। इस पक्ष के मुख्य स्तर हैं।—(*i*) उत्तेजन (Impulsion), (*ii*) कार्यवाही (Manipulation), (*iii*) नियन्त्रण (Control), (*iv*) समायोजन (Co-ordination), (*v*) आदत अथवा कौशल (Habit or Skill) तथा (*vi*) मूल्यांकन (Evaluation)।

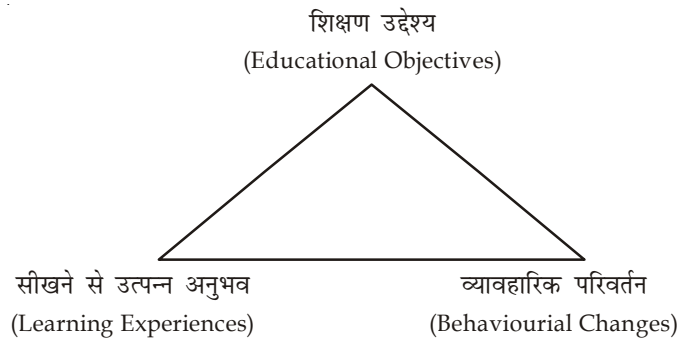

नोट

**(*d*) मूल्यांकन की प्रविधियाँ (Techniques of Evaluation)**

मूल्यांकन की प्रविधियाँ उन प्रविधियों को कहते हैं जिनके द्वारा विद्यार्थियों के न केवल तथ्यात्मक ज्ञान की जाँच की जाती है वरन् उनके व्यावहारिक परिवर्तनों का मूल्यांकन भी किया जाता है। शिक्षण के अनेक उद्देश्य हैं और प्रत्येक उद्देश्य के द्वारा विद्यार्थियों के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन हो सकते हैं। इस सभी प्रकार के व्यावहारिक परिवर्तनों का मूल्यांकन करने के लिए लिखित (निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ), मौखिक (Oral) तथा प्रायोगिक (Practical) परीक्षाएँ, साक्षात्कार (Interview), प्रश्नावली (Questionnaire) मत सूची (Check list), अभिरुचि सूची (Interest Inventory), अभिवृत्ति सूची (Attitude Scale), रेटिंग स्केल (Rating Scale), मूल्यों की परीक्षा (Value Test), अभिलेख (Records), विद्यार्थियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं (Student's Products), तथा निरीक्षण (Observation) एवं मानदण्ड, शक्ति परीक्षण (Criterion Power Test) आदि विभिन्न प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए ज्ञानात्मक पक्ष (Cognative Aspect) में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन लिखित (निबन्धात्मक वस्तुनिष्ठ), मौखिक तथा प्रायोगिक परीक्षाओं एवं निरीक्षण के द्वारा किया जा सकता है, भावात्मक पक्ष में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन निरीक्षण, रेटिंग स्केल, अभिरुचि सूची, अभिवृत्ति सूची, मूल्यों की परीक्षा तथा आंशिक रूप से निबन्धात्मक परीक्षा द्वारा किया जा सकता है एवं क्रियात्मक पक्ष में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन प्रयोगिक परीक्षाओं द्वारा सफलापूर्वक किया जा सकता है।

स्मरण रहे कि मूल्यांकन की प्रविधियों में मानदण्ड शक्ति परीक्षा (Criterieon Power Test) का विशेष महत्व होता है। इसका कारण यह है कि ए परीक्षाएँ उद्देश्य केन्द्रित होती हैं। अत: इसके द्वारा व्यवहार परिवर्तन का मूल्यांकन आसानी से सफलतापूर्वक किया जा सकता है। ध्यान देने की बात है कि मानदण्ड शक्ति परीक्षा में तीन गुण होने चाहिए। वे गुण हैं–(*i*) उपयुक्तता (Appropriateness), (*ii*) प्रभावोत्पादकता (Effectiveness) तथा (*iii*) प्रयोगात्मकता (Practicability)। **दूसरे शब्दों में मानदण्ड शक्ति परीक्षा ऐसे हो जो वांछित उद्देश्यों का मापन कर सके, मापन कार्य सम्पन्न करने में समर्थ हो अर्थात् विश्वसनीय (Reliable) तथा वैध (Valid) हो एवं जिसे सुविधापूर्वक किया जा सके।**

## 9.2 नियुक्ति (Staffing)

हमारे देश में कई प्रकार की शिक्षण संस्थाएँ है और उनका प्रबन्ध भी कई सभाओं या व्यक्तियों द्वारा होता है। परिणाम स्वरूप हर संस्था में अध्यापकों की नियुक्ति का ढंग भिन्न-भिन्न होता है। मुख्य रूप से हमारे देश में तीन प्रकार के स्कूल हैं। सरकारी, अर्धसरकारी तथा ग़ैर सरकारी।

सरकारी स्कूलों में नियुक्ति करने के लिए कोई समिति होती है। जिसके सदस्य शिक्षा-क्षेत्र की साधारण जानकारी रखते हैं, इसलिए उनकी सहायता के लिए एक विभागीय अधिकारी नियुक्त किया जाता है और उसके परामर्श से अध्यापकों का चुनाव हो जाता है। यह चुनाव भले ही कितना अच्छा क्यों न हो; पर इसमें अनेक त्रुटियों की शंका विद्यमान रहती है। कारण यह है कि हर प्रान्त में सरकारी स्कूलों की संख्या बहुत होती है, इस प्रकार इकट्ठे चुने गए अध्यापकों में से प्रत्येक की नियुक्ति विशेष स्कूल की आवश्यकताओं को देख कर नहीं की जाती; अपितु प्रवरता सूची के अनुसार करते हैं। इस प्रकार स्कूल के या वहां के छात्रों के भाग्य में जैसा भी अध्यापक आ जाए उन्हें सन्तोष करना पड़ता है। अपेक्षित तो यह है कि जिस स्कूल के लिए अध्यापक चुना जाता है वहाँ के मुख्याध्यापकों का परामर्श लिया जाए परन्तु दुर्भाग्य से हमारे शिक्षा विभाग के आधुनिक ढाँचे में दीन-मुख्याध्यापकों की क्षीण-पुकार सुनता ही कौन है?

अब अर्धसरकारी स्कूलों को लीजिए। अर्धसरकारी स्कूलों की दशा सरकारी स्कूलों से भी अधिक दयनीय एवं शोचनीय है। कारण यह है कि इनका प्रबन्ध दो के हाथ में होता है। द्वैत-शासन में किसी संस्था का सुचारु रूप से चलना सहज नहीं है। इसमें सरकार स्थानीय निकाय (Local body) को स्कूल चलाने के लिए विशेष अनुदान देती है। अध्यापकों की नियुक्ति सरकारी-कर्मचारी स्थानीय निकाय के अधिकारी के अनुमोदन (Approval) से करते हैं। कई बार दोनों

नोट

अधिकारी सहमत नहीं होते। परिणामस्वरूप नियुक्तियाँ खटाई में पड़ जाती हैं और स्कूल तथा वहाँ के छात्र अध्यापक की प्रतीक्षा करते हैं। अत: इस ढाँचे (Set up) में भी मुख्याध्यापक की कोई नहीं सुनता। हमारे देखने में यह आया है कि इस प्रकार की नियुक्तियों से किसी स्कूल में पाठान्तर क्रियाओं से रुचि लेने वाले कई अध्यापक हो जाते हैं और किसी में कोई भी नहीं! सौभाग्य से कई प्रान्तों में इन अर्धसरकारी स्कूलों को सरकारी बना दिया है। इस प्रकार इनको दो स्वामियों से मुक्ति मिली।

तीसरे प्रकार के स्कूल हैं ग़ैर सरकारी। इनकी दशा सरकारी और अर्ध-सरकारी दोनों से भिन्न है। यदि इन स्कूलों को चलाने वाली समितियाँ (Commities) अच्छी हों, उनके सदस्यों में दल-बन्दी न हो, उनका स्कूल के मुख्याध्यापक पर पूर्ण विश्वास हो तो इन स्कूलों के अहोभाग्य। अन्यथा इनकी शोचनीय हालत पर खेद ही प्रकट करना पड़े। अच्छी समितियों को ऐसा करना चाहिए कि सर्वप्रथम योग्य, अनुभवी एवं उत्साही मुख्याध्यापक की नियुक्ति करें। तदुपरान्त मुख्याध्यापक के परामर्श से शेष स्टाफ की नियुक्ति हो। परन्तु हमारा अनुभव यह है कि जब किसी नए स्कूल का जन्म होता है तो उसको चलाने वाली समिति में कुछ सदस्य नि:स्वार्थ भाव एवं पूर्ण उत्साह से कार्य करते हैं। कुछ वर्षों में ही उस समिति में ऐसे लोग घुस आते हैं जो अपना दल और गुट बना कर आपसी दाँव-पेच खेलने आरम्भ कर देते हैं। परिणामस्वरूप स्कूल उनके सम्मुख गौण हो जाता है और व्यक्तिगत बातें मुख्य। ऐसी अवस्था में मुख्याध्यापक का उत्तरदायित्व अधिक बढ़ जाता है और उसकी पग-पग पर परीक्षा होने लगती है। ऐसी समितियों द्वारा चलाए गए स्कूल में भी अध्यापकों के दो दल बन जाते हैं जिससे स्कूल की उन्नति में गतिरोध हो जाता है। समिति के दोनों दलों के सदस्य अपने ही आदमी को अध्यापक रूप में नियुक्त करना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में अध्यापक के गुण, उसकी योग्यता और अनुभव की कोई चिन्ता नहीं करता। इस प्रकार ऐसे स्कूलों में अच्छे स्टाफ का अभाव रहता है। जब स्टाफ ही अच्छा न होगा तो क्या उस स्कूल से शिक्षा-प्राप्त किए हुए छात्र अच्छे एवं योग्य बन सकते हैं? निस्सन्देह नहीं! इसलिए हमारे शिक्षा-शास्त्री स्कूल में स्टाफ रखने को बड़ा महत्व देते हैं।

*क्या आप जानते हैं* वास्तव में स्कूल की धुरी स्कूल का स्टाफ है। इसकी नियुक्ति के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

**अध्यापकों की संख्या एवं योग्यता**—स्कूल चाहे सरकारी हो, अर्धसरकारी अथवा ग़ैर सरकारी, उसमें कितना अध्यापक चाहिए और उनकी क्या-क्या योग्यता हो, यह निश्चित होना उतना ही आवश्यक है जितना कि स्कूल को चलाना, इसके बिना स्कूल का सुचारु रूप से चलना कठिन है। प्रत्येक स्कूल में कई प्रकार के अध्यापकों की आवश्यकता होती है। मुख्याध्यापक के अतिरिक्त भाषा, गणित, विज्ञान, कृषि आदि अनेक विषयों के भी अध्यापक होते हैं। जिस स्कूल में जिन विषयों के अध्यापक की सुविधा प्रदान की गई होगी उन विषयों के अध्यापक रखें जाएँगे। इसलिए प्रत्येक स्कूल में एक जैसी योग्यता के अध्यापक नहीं रखे जा सकते। ध्यान देने वाली दूसरी बात यह है कि स्कूल के छात्रों की संख्या, उसकी श्रेणियों तथा अनुभागों (Sections) के अनुसार अध्यापकों की संख्या निश्चित की जानी चाहिए। यदि एक स्कूल में 6 कक्षाएँ (5 से 10 तक) हैं और उनका एक ही अनुभाग है, उनमें कृषि विषय पढ़ने वाले छात्र इतने नहीं कि उनके लिए केवल कृषि-विशेषज्ञ अध्यापक नियुक्त किया जाए। ऐसी अवस्था में मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह देखे कि ऐसा अध्यापक चुना जाए जो कृषि के साथ-साथ किसी अन्य विषय को भी पढ़ा सके। इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्यापकों की संख्या और उनकी योग्यता प्रत्येक स्कूल की अपनी विशेष परिस्थितियों के आधार पर ही निश्चित की जा सकती है।

**सहशिक्षा एवं मिश्रित स्टाफ**—कुछ वर्षों में भारत में ऐसी संस्थाओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है जिनमें सह-शिक्षा है। अभी तक आरम्भिक एवं उच्चतम कक्षाओं में ही सह-शिक्षा का अधिक प्रचलन हुआ है। ऐसी अवस्था में इन संस्थाओं में पढ़ाने वाले अध्यापक कैसे हों? यह प्रश्न उठना नितान्त स्वाभाविक है। हमारे सम्मुख तीन विकल्प हैं। केवल अध्यापक, केवल अध्यापिकाएँ या दोनों। इस सम्बन्ध में शिक्षा-शास्त्रियों में मतभेद है। जिस

नोट

संस्था में सहशिक्षा है उसमें यदि केवल पुरुष अध्यापक ही नियुक्त किए जाएँ तो इस संस्था में बालिकाओं की शिक्षा को आघात पहुँचता है और उनके विकास में अवरोध। मनोविज्ञान के अनुसार बालिकाएँ बालकों की अपेक्षा अधिक संकोचशील होती हैं। एक तो उनके साथ बालक और इस पर भी यदि पढ़ाने वाला पुरुष हो तो उनके संकोच के क्या कहने! वे कभी भी स्वाभाविक रूप से वह सब कुछ ग्रहण न कर सकेंगी जो किसी महिला की उपस्थिति में वे कर सकतीं। इसलिए अधिकांश शिक्षा-शास्त्री इस प्रकार के प्रबन्ध से सहमत नहीं है। ऐसी संस्थाओं के लिए दूसरा उपाय है कि हम महिलाएँ ही अध्यापक के रूप में रखें। इससे यह लाभ होगा कि एक और बालिकाएँ अपने स्वाभाविक गुणों को सुरक्षित रखती हुई वह सब कुछ सुगमता से ग्रहण कर लेंगी जो उन्हें दिया जाएगा। दूसरी ओर बालक भी ठीक रूप से ग्रहण कर सकेंगे, क्योंकि बालक घर में भी अपने पिता की अपेक्षा माँ से अधिक सीखते हैं, यह सर्वसम्मत है। इस प्रकार उसे घर के और स्कूल के वातावरण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देगा। स्कूल का कृत्रिम वातावरण उसके लिए स्वाभाविक हो जाएगा। परन्तु इसमें भी कई विद्वान आपत्ति करते हैं। उनके मतानुसार जिस ऐसी संस्था में केवल महिलाएँ ही होंगी वहाँ बालक विशेष रूप से उपद्रवी बन जाते हैं। अधिक शोर करते हैं, परिणाम स्वरूप अनुशासन ठीक नहीं रहता। ऊपर के विचारों के साथ ही एक विचार यह भी है कि महिला अध्यापकों के पास कई बालकों के बाप किसी कारणवश आते हैं तो कई अध्यापिकाएँ सँकोचशील होने के कारण इसे अच्छा नहीं समझतीं। इसलिए अनेक शिक्षा-शास्त्री इस पक्ष में हैं कि ऐसी संस्थाओं में स्टाफ भी मिश्रित हो अर्थात् अध्यापक और अध्यापिकाओं का। परन्तु हमारे मतानुसार इस समस्या का यह समाधान भी आदर्श नहीं है। इस मत में भी अनेक त्रुटियाँ हैं। सम्पूर्ण गुण-सम्पन्न तो स्यात् कोई भी समाधान न हो, अत: वही समाधान श्रेयस्कर समझ लेना चाहिए जिसमें दूसरे समाधान की अपेक्षा अधिक गुण हो। अत: केवल महिलाएँ ही नियुक्त की जाएँ तो अच्छा है।

**स्टाफ का सहयोग**–स्कूल चलाने का निर्दिष्ट उद्देश्य एक है–बालकों का सर्वाङ्गीण विकास। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि स्कूल को चलाने वाले सभी कर्मचारियों का आपस में सम्पूर्ण सहयोग हो। स्कूल के आन्तरिक प्रबन्ध में अध्यापक सर्व प्रमुख हैं। अत: अध्यापकों का आपस में सहयोग नितान्त वाँछनीय है। अध्यापकों का मुख्याध्यापक से और मुख्याध्यापक का अपने स्कूल की समिति से सहयोग होना चाहिए। एक दूसरे के सहयोग से की गई क्रिया में सफलता की अधिक आशा रहती है। अत: किसी अध्यापक को यह समझने की भूल न करनी चाहिए कि उसका विषय अन्य विषयों से अधिक महत्वपूर्ण है और छात्रों को अच्छा बनाने का उत्तरदायित्व उसका अधिक है। यदि सब अध्यापक अपने-अपने विषय को महत्वपूर्ण समझ कर बालकों को उसी पर अधिक ध्यान देने के लिए बाध्य करेंगे, तो कुछ काल बाद बालक सोचने में विवश हो जाएगा कि सभी विषय महत्वपूर्ण बतलाए जाते हैं पर बात ऐसी नहीं है। एक उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है। मान लीजिए किसी कक्षा का एक अध्यापक अपने विषय गणित को बहुत कठिन एवं महत्वपूर्ण समझता है और वह जानबूझ कर बालकों को गृह-कार्य अधिक देता है। दूसरा अध्यापक अंग्रेज़ी की कठिन एवं अधिक महत्वपूर्ण समझता है, वह उस कार्य को करने के लिए बालकों को बाध्य करता है इसी प्रकार अन्य अध्यापक तब परिणाम यह निकलता है कि बालकों के पास गृह-कार्य इतना हो जाता है कि वे उसे पूरा नहीं कर पाते। जिस अध्यापक का भय अधिक होगा उसका कर लेंगे शेष रह जाएगा; या दूसरे बालक की नकल कर जाएँगे। इसके विपरीत यदि अध्यापकों का सहयोग हो तो बालकों और अध्यापकों को बड़ी सुगमता होती है। जैसे अँग्रेजी भाषा का अध्यापक मातृभाषा का अध्यापक कुछ दिन पूर्व बालकों को करवा दे। परिणाम बड़ा ही लाभदायक होगा।

अध्यापकों को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि वे बालकों के सम्मुख अपने साथी अध्यापकों के किसी अवगुण की चर्चा कर उनका अपमान न करें। ऐसा करने से निन्दित अध्यापक का तो कुछ बिगड़ता नहीं, पर बालकों पर उसका कुप्रभाव पड़ता है।

कक्षा के आन्तरिक कार्य की अपेक्षा पाठान्तर क्रियाओं में अध्यापकों के सहयोग की अधिक आवश्यकता है। स्कूल में किसी भी समारोह या उत्सव को अनेक अध्यापकों का सम्मिलित प्रयत्न ही सफल बना सकता है। ऐसे कार्य किसी एक व्यक्ति की क्षमता से बाहर होते हैं।

नोट

## 9.3 नियुक्ति प्रक्रिया (Staffing Process)

मुख्याध्यापक वह है जो अपनी संतुलित एवं अनुभवी दृष्टि से, व्यक्तित्व की विशिष्टता से, अपनी योग्यता एवं कार्यदक्षता से, अपने स्कूल के अध्यापकों का नेतृत्व करता हुआ स्कूल को निर्दिष्ट लक्ष्य तक सफलतापूर्वक ले जा सके। स्कूल में मुख्याध्यापक की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि खेल के मैदान में कैप्टन की तथा युद्ध में सेनापति की। यदि मुख्याध्यापक न हो प्रत्येक अध्यापक अपनी-अपनी इच्छानुसार कार्य करने की चेष्टा करेगा, परिणाम यह होगा कि स्कूल की शिक्षा के उद्देश्य अस्पष्ट रहेंगे, कार्यक्रम की अनुपस्थिति में अस्तव्यस्तता का साम्राज्य होगा तथा अव्यवस्था से बालक कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकेंगे। अत: जिस प्रकार प्रत्येक समूह को ठीक मार्ग पर चलाने के लिए किसी के नेतृत्व की आवश्यकता होती है उसी प्रकार स्कूल में मुख्याध्यापक की। स्यात संसार में शिक्षा-संस्थाओं का तथा शिक्षित लोगों का नेतृत्व करना सबसे कठिन है। कारण यह है कि इसमें मुख्याध्यापक को जिनका नेतृत्व करना होता है वे भी लगभग उतने ही शिक्षित होते हैं जितना कि मुख्याध्यापक। इसलिए वे अन्ध-विश्वास से मुख्याध्यापक का नेतृत्व स्वीकार नहीं करेंगे अपितु सोच-विचार कर। मुख्याध्यापक तो ऐसा नेता होना चाहिए जो अपने साथी अध्यापकों का सहायक बन सके, उनका मार्ग प्रदर्शन कर सके। उनका यह प्रयत्न होना चाहिए कि अध्यापकों की योग्यता एवं अनुभव में सतत् वृद्धि हो। यह तभी हो सकेगा, जबकि मुख्याध्यापक अपने दीर्घ अनुभव से उन्हें भी लाभान्वित करता रहे। इसके विपरीत यदि मुख्याध्यापक यह समझ ले कि शेष अध्यापक तो उसके अधीन हैं, उसकी आज्ञा का पालन करते जाएँ तो यह उसकी भूल होगी। मुख्याध्यापक को सदा उनकी त्रुटियाँ और दोष ही नहीं देखते रहना चाहिए अपितु उनकी किसी भी कठिनाई में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिए। यदि मुख्याध्यापक केवल दोष ढूँढने वाला होगा तो शेष अध्यापक अपने दोषों को दूर करने की अपेक्षा उन्हें छिपाने का प्रयत्न करेंगे जो उनके और स्कूल के हित में अच्छा नहीं होगा। निस्सन्देह मुख्याध्यापक पर स्कूल का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व है। फिर भी उसे चाहिए कि वह इस उत्तरदायित्व को अपने सहयोगी अध्यापकों में बाँट ले। इससे एक लाभ यह होगा कि मुख्याध्यापक की चिन्ता कुछ कम होगी तो दूसरा बड़ा लाभ यह होगा कि शेष अध्यापक अपने आपको सम्मानित समझेंगे और उन्हें इस बात का गर्व होगा कि स्कूल को चलाने में उनका भी हाथ है। प्राय: यह देखने में आया है कि कई बार मुख्याध्यापक के विचारों से कई अध्यापक सहमत नहीं होते और वह अपनी असहमति प्रकट कर देते हैं। इस पर मुख्याध्यापक को अपना अपमान नहीं समझना चाहिए। प्रजातन्त्र युग में प्रत्येक को अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। यदि मुख्याध्यापक इसको अपना अपमान समझ बैठे और उस अध्यापक को इस पर यथोचित दण्ड देने की चिन्ता में रहे तो परिणाम यह होगा कि अध्यापक अपने विचार स्पष्ट नहीं करेंगे, जिस योजना के वे विरुद्ध होंगे, उसको मन से वह असफल बनाने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए अच्छा यही है कि मुख्याध्यापक अपनी योजना की श्रेष्ठता या उपादेयता को उनके सम्मुख सिद्ध करे और उनको तर्कों द्वारा मनाने का प्रयत्न करें। मुख्याध्यापक को ऐसा कोई भी कार्य शीघ्रता में नहीं करना चाहिए जिसके विरुद्ध स्कूल का सारा स्टाफ हो। कम से कम कुछ प्रवर (Senior) सदस्यों की सम्मति का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

**कर्त्तव्य**–मुख्याध्यापक के कर्त्तव्य असीम हैं। पहले भी लिखा जा चुका है, उसकी स्थिति ऐसी है कि स्कूल की हर गतिविधि में उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में हाथ अवश्य रहता है और सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसी का है। इसलिए मुख्याध्यापक यह कह नहीं सकता कि अमुक बात का उसे ज्ञान नहीं। मुख्याध्यापक को चाहिए कि सर्वप्रमुख वह यह समझे कि जिस कार्य को वह करने लगा है उसका द्देश्य और लक्ष्य क्या है। कहने का भाव यह है कि उसे अपने मस्तिष्क में स्कूल चलाने के उद्देश्य स्पष्ट रूप से अंकित कर लेने चाहिएं। तभी वह अपने सहयोगी अध्यापकों के साथ उस निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकता है। स्कूल शिक्षा के कुछ उद्देश्य तो ऐसे होते हैं जो मुख्य रूप से किसी केन्द्रीय संस्था अथवा अधिकारी की ओर से निर्धारित होते हैं और कुछ उद्देश्य प्रत्येक स्कूल के अपने होते हैं। यथा माध्यमिक शिक्षा आयोग (1652-53) ने माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य का उल्लेख किया है–

1. प्रजातन्त्रात्मक नागरिक शिक्षा।
2. व्यावसायिक योग्यता।

नोट

3. व्यक्तित्व का पूर्ण विकास।
4. नेतृत्व का पूर्ण विकास।

कई स्कूल उपरोक्त उद्देश्यों में से किसी एक को महत्त्वपूर्ण समझते हैं। अत: उस पर अधिक ध्यान देते हैं और कई संस्थाओं में कुछ उद्देश्य इनसे भिन्न होते हैं जैसे साधारण स्कूल और पब्लिक स्कूल, दोनों में उद्देश्यों की भिन्नता है। मुख्याध्यापक का परम कर्तव्य है कि स्कूल के उद्देश्यों का मनन करने के पश्चात् यह निश्चित करे कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसे क्या करना है। उसको चाहिए कि अपने स्कूल की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वह क्रियाविधि सोचे जिससे लक्ष्य तक सुगमता से पहुँचा जा सके। मुख्याध्यापक को केवल स्वयं ही उस लक्ष्य तक नहीं पहुँचना, अपितु अध्यापकों के दल को भी वहाँ तक ले जाना है। इसलिए उसका यह भी कर्तव्य है कि वह अध्यापकों के सम्मुख उद्देश्य और उनकी प्राप्ति का ढंग स्पष्ट कर दे। मुख्याध्यापक जो भी योजना बनाएगा उसको सब मिल कर ही कार्यान्वित कर सकेंगे।

**मुख्याध्यापक और पाठ्यक्रम**–पाठ्यक्रम के विषय में मुख्याध्यापक को कोई चिन्ता नहीं। क्योंकि पाठ्यक्रम सभी स्कूलों के लिए एक सा निर्धारित होता है। मुख्याध्यापक को तो केवल उसके अनुसार चलना है। उसको चाहिए कि प्रत्येक विषय के पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के पश्चात् सम्बन्धित अध्यापको को दे दे और उनसे वर्ष के आरम्भ में ही एक ऐसा चार्ट बनाने के लिए कहे जिसमें किसी एक विषय के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को वर्ष भर में बाँटा गया हो। मुख्याध्यापक उन चार्टों का पर्यवेक्षण करे। यदि कोई परामर्श देने की आवश्यकता हो तो सम्बन्धित अध्यापक को दे दे। अन्तिम निर्णय होने के पश्चात् पाठ्यक्रम को कागज पर लिखवा कर एक कक्षा के कमरे में और दूसरा मुख्याध्यापक के कार्यालय में लटकवा दिया जाना चाहिए।

**मुख्याध्यापक और पाठ्य-पुस्तकें**–पाठ्य-पुस्तकों का पाठ्यक्रम से अभिन्न सम्बन्ध है। अत: मुख्याध्यापक को अपने स्कूल में निर्धारित की गई पुस्तकें भी देखनी चाहिए। कई कक्षाओं में मुख्याध्यापक को सूचित किए बिना कई अध्यापक छात्रों को सहायक पुस्तकें लेने के लिए कह देते हैं और कई कक्षाओं में कई छात्र स्वयं ही सहायक पुस्तकें खरीद लेते हैं। इस प्रकार निर्धारित पाठ्य-पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा छात्र सहायक पुस्तक पर ही अवलम्बित हो जाते हैं। इसलिए मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह इतना सावधान रहे कि ऐसी कोई बात न हो।

**शिक्षण प्रणाली**–साधारणतया यह देखा गया है कि स्कूल में प्रशिक्षित अध्यापक भी प्रशिक्षण काल में सीखी गई नई शिक्षण-प्रणालियों का प्रयोग नहीं करते; अपितु परम्परा से चले आ रहे ढंग से ही पढ़ाने लग जाते हैं। जो किसी भी अवस्था में स्तुत्य नहीं कहा जा सकता। यदि पुरानी प्रणाली से अध्यापन-कार्य करना था तो ऐसे अध्यापकों के प्रशिक्षण का क्या लाभ? इसलिए मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह प्रत्यत्न करे कि अध्यापक अपने-अपने विषय पढ़ाते समय नवीनतम शिक्षण-प्रणालियों का प्रयोग करें। निस्सन्देह मुख्याध्यापक सभी विषयों की शिक्षण-प्रणालियों में निपुण नहीं हो सकता, फिर भी उसे इनके विषय में साधारण ज्ञान तो अवश्य ही होना चाहिए।

**प्रशासन**–स्कूल का प्रशासन भी महत्वपूर्ण है। प्रशासन से अभिप्राय है स्कूल में कक्षाओं के लिए स्थान निश्चित करना, अध्यापकों को काम बाँटना, किसी अध्यापक के अनुपस्थित होने पर उसके स्थान पर प्रबन्ध करना, स्कूल में अनुशासन रखना, वित्त सम्बन्धी प्रबन्ध आदि। इनमें कई तो दैनिक कार्य हैं। मुख्याध्यापक उनको किसी भी प्रवर (Senior) अध्यापक को सौंप सकता है। जैसे छात्रों के अवकाश के लिए प्रार्थना पत्र, घंटी बजवाने का कार्य, विलम्ब से आने वाले छात्रों से पूछताछ आदि। इससे मुख्याध्यापक को यह लाभ होगा कि उसको अन्य महत्वपूर्ण कार्यों के लिए पर्याप्त समय प्राप्त होगा। जिन स्कूलों में मुख्याध्यापक अपने प्रवर अध्यापकों को ही किसी प्रकार का प्रशासन कार्य नहीं देते उन स्कूलों में कार्य नियमपूर्वक नहीं हो सकता। हमारे अनुभव की बात है कि ऐसे मुख्याध्यापक प्रशासन कार्य में इतने व्यस्त रहते हैं कि उनको कक्षा में अध्यापन के लिए जाने का भी ध्यान नहीं रहता। कक्षा के किसी छात्र द्वारा स्मरण दिलाने पर ऐसे मुख्याध्यापक घबराए से उठते हैं और कक्षा के कमरे में जा उपस्थित होते हैं। छात्रों से पूछते हैं कहाँ से पढ़ना है! ऐसे मुख्याध्यापक अन्य अध्यापकों पर क्या प्रभाव डालेंगे? उन्हें तो अपना जीवन आदर्श रूप से प्रस्तुत करना चाहिए तभी तो अन्य अध्यापक भी प्रभावित होंगे और वैसे बनने का भरसक प्रयत्न करेंगे। कहते हैं जैसा नेता वैसे ही अनुयायी।

नोट

**अनुशासन**–स्कूल में अनुशासन का होना या न होना मुख्याध्यापक पर निर्भर करता है। यदि मुख्याध्यापक और अध्यापक पहले स्वयं आदर्श प्रस्तुत करें तो निस्सन्देह छात्र उसका अनुकरण करेंगे। मुख्याध्यापक को देखना चाहिए कि छात्र स्कूल में निश्चित समय पर पहुंचें, अधिक शोर ल करें, एक कमरे से दूसरे कमरे में आराम से और पंक्ति में जाएँ, किसी से बातचीत करते समय सभ्यता से व्यवहार करें, पढ़ाई के समय अनावश्यक रूप से बाहर न घूमें आदि।

**अध्यापन कार्य**–मुख्याध्यापक को अच्छे प्रशासक के साथ-साथ एक योग्य अध्यापक होना भी नितान्त वाञ्छनीय है। उसको एक अथवा दो विषयों को पण्डित होना चाहिए और अन्य विषयों का साधारण ज्ञाता। उसको कोई महत्वपूर्ण विषय पढ़ाना चाहिए। मुख्याध्यापक कौन-सी कक्षा को पढ़ाए यह भी विचारणीय विषय है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि उसको सबसे उच्च कक्षा का एक विषय अवश्य पढ़ाना चाहिए। इसके कई कारण हैं। उच्च कक्षा के छात्रों का स्कूल में अन्तिम वर्ष होने के कारण मुख्याध्यापक का उनसे सम्पर्क बनाना आवश्यक है। उच्च कक्षा में शिक्षा-स्तर उच्च होता है जिसके लिए अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती है, मुख्याध्यापक सबसे अनुभवी समझा जाता है।

मुख्याध्यापक को सबसे नीचे वाली कक्षा को भी पढ़ाना चाहिए। यदि हो सके तो कोई एक सम्पूर्ण विषय। यदि स्कूल बड़ा हो और अन्य प्रशासनीय कार्य अधिक हों तो किसी विषय का कोई अंग। इसके साथ-साथ मुख्याध्यापक को कई कक्षाओं में एक घंटी प्रति सप्ताह लेनी चाहिए जिसको सम्पर्क घंटी कहा जाए। इसमें मुख्याध्यापक किसी अन्य विषय सम्बन्धी कुछ पूछताछ न करे। ऐसा करने से अन्य अध्यापकों के मन में सन्देह उत्पन्न हो जाएगा। वे समझेंगे कि इससे हमारे विषयों की परीक्षा ली जाती है। अच्छा हो यदि मुख्याध्यापक इस घंटी में उनसे साधारण ज्ञान की बातचीत करे। दैनिक समाचार-पत्रों के अध्ययन में उनकी रुचि उत्पन्न करने के लिए समाचार पत्र की रुचिकर खबरें सुनाई जाएँ। यदि स्कूल में समाचार पट पर लिखे जाते हों, तो उन सम्बन्धी प्रश्नों से भी छात्र सतर्क हो जाएँगे और समाचार-पट पर लिखे समाचार पढ़ने का प्रयत्न किया करेंगे। कई मुख्याध्यापक छोटी कक्षाओं को पढ़ाना अपना अपमान समझते हैं। वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिए। छोटी कक्षाओं में अधिक अनुभवी एवं योग्य अध्यापक की आवश्यकता होती है। इससे दूसरा लाभ यह होगा कि मुख्याध्यापक का सम्बन्ध छोटे छात्रों से बन जाएगा। उन छात्रों को कई वर्ष तक स्कूल में शिक्षा ग्रहण करनी होती है अत: यह अच्छा है कि वे अपने मुख्याध्यापक के व्यक्तित्व एवं योग्यता से आरम्भ में ही प्रभावित हो जाएँ।

**पर्यवेक्षण कार्य**–सहयोगी अध्यापकों द्वारा किए गए कार्य एवं स्कूल में होने वाली अन्य गतिविधियों का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए मुख्याध्यापक के लिए निरीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि स्कूल में होने वाली प्रत्येक गतिविधि का अन्तिम उत्तरदायित्व मुख्याध्यापक के कन्धों पर होता है इसलिए भी पर्यवेक्षण आवश्यक है। इसलिए निरीक्षण का क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है। मुख्याध्यापक को प्रात: स्कूल में होने वाली प्रार्थना से लेकर अस्तगामी सूर्य के साथ समाप्त होने वाली खेलों तक का निरीक्षण करना चाहिए। मुख्याध्यापक सर्वगुण सम्पन्न नहीं होता। फिर भी वह अपने दीर्घ अनुभव से अध्यापन-व्यवसाय में नए प्रवष्टि होने वालों का मार्ग-प्रदर्शन कर सकता है। मानव गलती का पुतला है। इस बात को मस्तिष्क में रखते हुए मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह अध्यापकों को सुझाव दे। वास्तव में मुख्याध्यापक के निरीक्षण का उद्देश्य होना चाहिए–'हो रहे कार्य में सुधार', न कि अध्यापकों को हतोत्साहित करना। जो मुख्याध्यापक अध्यापकों के कार्य में केवल दोष ढूँढने के लिए आलोचना करेगा, अप्रिय हो जाएगा।

मुख्याध्यापक को यह जानना चाहिए कि अमुक अध्यापक कैसा पढ़ाता है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मुख्याध्यापक जब मन में आया उठकर, अध्यापक के पाठ का पर्यवेक्षण करने के लिए कक्षा में जा धमके। वह किसी भी अध्यापक के एक या दो पाठ देखकर शिक्षण-विधि और अन्य बातों से परिचित हो सकता है। अत: उसे प्रयत्न करना चाहिए कि वह यथाशक्ति उसके शिक्षण-कार्य में कम से कम हस्तक्षेप करे। यदि उसे किसी अध्यापक को कुछ निर्देश भी देने हों तो छात्रों के सामने कभी न दे। वह अध्यापक को सुझाव के रूप में अपने निर्देश दे, वह किसी अध्यापक के अध्यापन से उस अध्यापक की दैनिकी (Dairy) देखकर परिचित हो सकता है।

**दैनिकी ( डायरी )**–मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह वर्ष के आरम्भ में ही एक दिन निश्चित कर दे, जिस दिन सभी अध्यापक अपनी-अपनी डायरी दें। उसे डायरी में देखना चाहिए कि क्या अध्यापक पाठ्यक्रम के अनुसार ठीक गति से चल रहा है? क्या उसने अपनी डायरी के अन्त में अपनी कक्षाओं के छात्रों को उत्तम, मध्यम तथा पिछड़े हुए भागों

नोट

में बाँट कर सूची बनाई हुई है? डायरी के अनुसार कक्षा की कापियाँ मंगवानी चाहिएँ और उनमें देखना चाहिए कि क्या डायरी के अनुसार रचनाएँ करवाई गई हैं? क्या अध्यापक उनके लेखों को शुद्ध करने में पूरी रुचि लेता है? कहने का तात्पर्य यह है कि मुख्याध्यापक अपने कार्यालय में आराम से बैठा हुआ भी अध्यापक की प्रगति के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार डायरी अध्यापक का मार्ग-प्रदर्शन करती है।

**खेल–**खेल आधुनिक शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वास्तव में शारीरिक विकास का एक मात्र साधन तो यही है। इसलिए मुख्याध्यापक को इनकी ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि क्या खेल के मैदान ठीक हैं? क्या खेल का सामान ठीक है? क्या खेल से सम्बन्धित अध्यापक उनमें रुचि लेते हैं? उसे स्मरण रखना चाहिए कि जिस खेल के मैदान में छात्र अनुशासन प्रिय बनते हैं, सहयोग का शुभ मन्त्र सीखते हैं, उसी मैदान में यदि खेलों का संगठन ठीक न हो तो वे सीखते हैं, ईर्ष्या, द्वेष, कलह और अनुशासनहीनता। इसलिए खेलों का प्रबन्ध ठीक होना चाहिए।

**कार्यालय निरीक्षण–**स्कूल में कार्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ सारे स्कूल की सम्पूर्ण निधि एकत्रित रहती है। सम्पूर्ण अभिलेख (Record) वहीं पड़ा होता है। उच्च अधिकारियों से पत्र-व्यवहार की फाइलें वहीं होती हैं। इसलिए मुख्याध्यापक को उसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक स्कूल में लिपिक (क्लर्क) अवश्य होना चाहिए और वह मुख्याध्यापक का विश्वस्त पात्र हो, अन्यथा स्कूल का कार्य सुचारु रूप से चलना कठिन है। मुख्याध्यापक को स्कूल-अभिलेख भी यदा-कदा देखते रहना चाहिए। इनमें कुछ रजिस्टर बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे प्रवेश तथा निकासी रजिस्टर। लेखा रजिस्टरों का कार्य बड़ी सावधानी से करना चाहिए। लेखे में एक पैसे का भी अन्तर नहीं होना चाहिए। लेखे के रजिस्टर किसी भी अध्यापक के पास हो सकते हैं, पर उन सबका उत्तरदायित्व मुख्याध्यापक पर ही होता है।

**स्टाफ सभाएँ–**स्कूल को सफलतापूर्वक चलाने के लिए, स्कूल के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, स्कूल में नई-नई योजनाओं को क्रियात्मक रूप देने के लिए तथा अध्यापक वर्ग का प्रगतिशील दृष्टिकोण बनाए रखने के लिए, स्टाफ सभाओं की आवश्यकता एवं उपादेयता है। इसलिए मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह शिक्षा-वर्ष के आरम्भ में ही एक स्टाफ सभा बुलाकर, स्टाफ से प्रार्थना करे कि अपनी सभाओं के लिए एक मन्त्री चुन लें। मन्त्री का कर्त्तव्य है कि वह स्टाफ-सभाओं की कार्रवाई को लिखे, आगामी सभा के लिए कार्य-सूची (Agenda) को अध्यापकों में वितरण करें।

मुख्याध्यापक को साधारणतया एक पक्ष में एक सभा करनी चाहिए या कम से कम एक मास में एक बार। किसी विशिष्ट कार्य के लिए किसी दिन भी स्टाफ सभा बुलाई जा सकती है। इन सभाओं में केवल मुख्याध्यापक ही अपनी योजनाओं और समस्याओं पर ही बोलता न रहे, अपितु अन्य अध्यापकों की समस्याओं को भी सुने। उन्हें अवसर दे कि वह अपने मन की बात स्पष्ट और निर्भीक बन कर कहें। मुख्याध्यापक को यह पहले से ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस सभा में प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है पर बहुमत से किए गए निर्णयों को पूरा करना होगा।

मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह सम्पूर्ण स्टाफ की सभा करके, उनकी अनेक उपसमितियाँ बना दे। पाठ्यक्रम तथा समय-सारणी, आन्तरिक परीक्षा, खेल भवन तथा सफाई तथा अनुशासन सम्बन्धी उपसमितियाँ बनाई जा सकती हैं। इससे मुख्याध्यापक को अध्यापक-वर्ग का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा और अध्यापक अपने आपको सम्मानित समझेंगे। इन उपसमितियों के बनाने के पश्चात् मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह उनके कार्य-क्षेत्र को निर्धारित कर दे। जैसे आन्तरिक परीक्षा उपसमितियों को यह बताने की आवश्यकता होगी कि स्कूल की सभी आन्तरिक परीक्षाओं के लिए उसने कागज, स्याही, स्याही-चट तथा प्रश्न-पत्रों को छपवाने का प्रबन्ध करना है।

इन समितियों के अतिरिक्त मुख्याध्यापक कभी भी किसी विषय के सभी अध्यापकों से मिल सकता है। उनकी विषय सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर कर सकता है। अनुभवी अध्यापक स्टाफ-सभाओं को सरल बनाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। स्कूल समय के पश्चात् बुलाई गई स्टाफ सभा कभी भी सरल नहीं बन सकती। दिनभर कार्य करने से श्रान्त एवं क्लान्त अध्यापक स्कूल में रुकना नहीं चाहते। इसलिए मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह स्कूल समय के पश्चात् सभा न बुलाए।

नोट

**छात्रालय**–आजकल छात्रालय कम होते जा रहे हैं। कारण यह है कि आज से 10–15 वर्ष पहले अधिकांश हाई स्कूल नगरों अथवा कस्बों में थे। गाँवों में प्राथमिक स्कूल होते थे। इसलिए जो छात्र अपनी प्राथमिक शिक्षा गाँव में प्राप्त करते, वे उच्च शिक्षा के लिए कस्बों या नगरों में जाते। परिणाम स्वरूप उनके लिए छात्रालय बनाए गए। अब लगभग सभी बड़े-बड़े गाँवों में हाई स्कूल हो गए हैं। अत: हाई स्कूल तक की शिक्षा के लिए लोगों को अपने बालक घर से बाहर भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर भी कहीं-कहीं छात्रालय की आवश्यकता है। इसलिए हमें यहाँ देखना चाहिए कि मुख्याध्यापक को उसका प्रबन्ध कैसे करना चाहिए।

मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह किसी योग्य अध्यापक को वहाँ का अधीक्षक बनाए और उसको आवश्यक निर्देश दे। यदि छात्रालय बड़ा हो तो एक अध्यापक अधीक्षक बनकर केवल छात्रालय का ही कार्य करे। मुख्याध्यापक को निरीक्षण करना चाहिए। यदाकदा दिन में तथा रात में जा कर वहाँ की उपस्थिति आदि देखनी चाहिए। दिन में उपस्थिति देखने से तात्पर्य यह है कि वह देखे कि कोई लड़का छात्रालय में है तो क्यों; और रात को यदि कोई छात्र अपने बिस्तर पर या कमरे में नहीं है तो क्यों? यह बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

छात्रालय के सामाजिक जीवन से मुख्याध्यापक का विशेष सम्बन्ध होना चाहिए। उसको ध्यान रखना चाहिए कि छात्रों में जिस प्रकार की आदतें छात्रालय में डाल दी जाएँगी, वही आदतें बड़े होकर वे समाज में ले जाएँगे। इसलिए छात्रालय में अनुशासन और स्वशासन की बहुत आवश्यकता है। बड़ी कक्षाओं के छात्रों की समितियाँ बना दी जानी चाहिए जो अध्यक्ष की देख-भाल से छात्रालय का सब प्रबन्ध करें। छात्रालय में सब कामों का समय निश्चित होना चाहिए। जैसे सोने, उठने और खाने का।

**नया हाई स्कूल तथा नया मुख्याध्यापक**–भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में शिक्षा प्रसार कई गुना हुआ तथा हो रहा है। परिणाम स्वरूप स्कूलों की संख्या में कई गुना वृद्धि हुई। इस समय छोटे-छोटे कस्बों में भी हाईस्कूल विद्यमान हैं। जैसे-जैसे नए स्कूल वैसे ही उनके लिए मुख्याध्यापकों की आवश्यकता पड़ी। प्रबन्धकों की इच्छा तो यही होती है कि उनके लिए कोई दीर्घ अनुभवी, योग्य एवं उत्साही मुख्याध्यापक मिले। योग्य और उत्साही तो मिलने सरल थे पर दीर्घ अनुभवी मुख्याध्यापकों का अभाव ही दिखाई दिया। क्योंकि 1947-48 में इने-गिने स्कूल थे। उनमें भी पर्याप्त संख्या में सरकारी एवं अर्धसरकारी स्कूल थे। इन दस वर्षों में नए खुलने वाले स्कूलों में अधिकांश गैर सरकारी हैं और कोई भी अध्यापक सरकारी स्कूल को छोड़कर ग़ैर सरकारी में आना पसन्द नहीं करता था। इसलिए अनुभवी मुख्याध्यापकों का क्या कहना दीर्घ अनुभवी अध्यापक भी प्राप्त होने आसान नहीं थे। जिससे अनेक नए स्कूलों में नवयुवक मुख्याध्यापक नियुक्त हुए और अब भी हो रहे हैं।

किसी भी चल रहे स्कूल में नए मुख्याध्यापक को इतनी कठिनाइयाँ नहीं होती जितनी कि नए स्कूल में नए मुख्याध्यापक को। निस्सन्देह नया मुख्याध्यापक अन्य स्कूल या स्कूलों में अध्यापक के रूप में काम कर चुका होता है और उसने वहाँ के मुख्याध्यापक के कार्य को भी देखा होता है, पर ये सब बातें उसका ठीक रूप से मार्ग-प्रदर्शन नहीं कर सकतीं, क्योंकि प्रत्येक स्कूल की अपनी परिस्थितियाँ होती हैं। उन परिस्थितियों के अनुसार ही कार्य करना अपेक्षित होता है।

अधिकांश नए हाईस्कूल वहां बनाए जाते हैं जहाँ पहले मिडल स्कूल सफलतापूर्वक चल रहे होते हैं। ऐसी अवस्था में नए मुख्याध्यापक को चाहिए कि उसी स्कूल की आठवीं श्रेणी उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को नवीं कक्षा में दाखिल कर ले। किसी अन्य स्कूल के छात्र कक्षा में यथा सम्भव न लिए जाने चाहिए। साथ ही दसवीं कक्षा प्रथम वर्ष व बनाना ही लाभ दायक है इसके कई कारण हैं। सबसे प्रमुख तो यह है कि दसवीं का वही छात्र अपने पुराने स्कूल को त्याग कर आएगा जो या तो अध्ययन में कमज़ोर हो या उपद्रवी। फिर आसपास के दो या तीन स्कूलों से आने वाले छात्रों के स्तर में अन्तर होता है। किसी स्कूल में नवीं कक्षा में अधिक पाठ्यक्रम समाप्त किया होता है किसी में कम। इस प्रकार "कहीं का पत्थर और कहीं का रोड़ा" जोड़ने से स्कूल में अनुशासन की समस्या अवश्य उत्पन्न होती है। जिसका प्रभाव स्कूल के दसवीं कक्षा के परिणाम पर पड़ता है तथा दसवीं कक्षा का परिणाम मुख्याध्यापक की योग्यता की शायद कसौटी मान लिया जाता है जो निन्दनीय है।

नोट

नए मुख्याध्यापक को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि उसके स्कूल में यथासम्भव उससे अधिक आयु वाले अध्यापक नियुक्त न हों। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अधिक आयु वाले अध्यापक कम आयु वाले मुख्याध्यापक में दुर्गणों की ही तलाश करेंगे और मुख्याध्यापक का आदेश या निर्देश मानने से उनमें हीनता ग्रन्थि आ जाएगी या वे उसको असफल बनाने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

नए मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह अपनी नई योजनाओं को पूर्ण सोच-विचार कर और विश्वस्त साथियों से विचार-विमर्श करके क्रियान्वित करे। जब वह एक बार निर्णय कर ले कि अमुक योजना को क्रियान्वित करना है तो उसे अवश्य करना चाहिए। सबसे अच्छा ढंग तो यह होगा कि स्टाफ-सभा में अपनी नई योजना के विषय में वह अन्य अध्यापकों को जानकारी दे। स्मरण रखना चाहिए कि सभी योजनाएँ एक साथ क्रियान्वित नहीं करनी चाहिएँ।

मानव ग़लती का पुतला है। इसलिए किसी भी कार्य के ठीक न होने पर मुख्याध्यापक को अपनी ग़लती मान लेनी चाहिए। इस प्रकार मुख्याध्यापक का प्रगतिशील दृष्टिकोण होगा तो वह अपनी योजनाओं से नई बातें सीखेगा और यह अनुभव उसे आगामी योजनाओं में सहायता देगा।

शिक्षा क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। नई-नई शिक्षण-प्रणालियाँ हमारे सम्मुख आ रही हैं। मुख्याध्यापक का परम कर्त्तव्य है कि वह उनकी सम्यक् जानकारी प्राप्त करे तथा अपने स्कूल में उन पर प्रयोग करे। इन नए प्रयोगों की जानकारी अध्यापकों को भी करवानी चाहिए।

स्कूल के अनुशासन के विषय में नए मुख्याध्यापक को बड़ा सतर्क रहना चाहिए। अनुशासन के विषय में वह जो कुछ करना चाहे, निर्भीक होकर करे।

**संरक्षकों से सम्पर्क–**बालक स्कूल में कुछ ही घण्टे व्यतीत करता है, शेष सारा समय अपने घर में अर्थात् माँ-बाप के पास। बालक के सर्वतोमुखी विकास के लिए सीमित समय में स्कूल सब कुछ नहीं करता। इस कार्य में स्कूल अधिकारियों की सहायता कर सकते हैं–माँ-बाप या संरक्षक। इस प्रकार इन संरक्षकों का बालक के प्रति उत्तरदायित्व अधिक महत्वपूर्ण है। परन्तु संरक्षकों को उनके उत्तरदायितत्व अधिक महत्वपूर्ण हैं। परन्तु संरक्षकों को उनके उत्तरदायित्व का ज्ञान करवाना स्कूल अधिकारियों का कर्त्तव्य है। इसलिए मुख्याध्यापक और संरक्षकों के सम्पर्क की परम आवश्यकता है। कोई भी मुख्याध्यापक संरक्षकों से बिना सम्पर्क उत्पन्न किए पूर्णसफल नहीं हो सकता। संरक्षकों से सम्पर्क स्थापित करने का परिणाम यह होता है कि वे स्कूल कार्यों में रुचि लेने लगते हैं। वे अपनी निजी कठिनाइयों को पहले बताते नहीं तब स्पष्ट रूप से बताने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार मुख्याध्यापक को उनकी कठिनाइयों को दूर करने का अवसर मिलता है और संरक्षक मुख्याध्यापक को सहयोग प्रदान कर गर्व अनुभव करते हैं। इस प्रकार संरक्षकों का सहयोग और सद्भावना पाकर मुख्याध्याक स्कूल की उन्नति की गति तेज़ कर सकता है।

### अध्यापक

स्कूल की आत्मा अध्यापक है, जिस प्रकार आत्मा रहित शरीर निर्जीव तथा शिथिल है, उसी प्रकार अध्यापक के बिना स्कूल अपांग और जड़ है। स्कूल का भवन है बालकों को आश्रय देने के लिए; बालक एकत्रित हुए हैं, पढ़ने के लिए; मुख्याध्यापक है–स्कूल प्रशासन के लिए, प्रत्येक गतिविधि के पर्यवेक्षण के लिए; पर उन गतिविधियों का प्रेरक कौन है?–अध्यापक। अध्यापक स्कूल-चक्र की धुरी है; चक्र को सहज गति प्रदान करने का श्रेय धुरी को है, पर हम अनजाने ही चक्र चलाने वाले को उसका श्रेय देते हैं, इसी प्रकार स्कूल को गति प्रदान करने वाला अध्यापक है।

दार्शनिक एवं शिक्षा-शास्त्री हमें स्कूल शिक्षा के उद्देश्य बतलाते हैं; शिक्षा-अधिकारी उन उद्देश्यों को प्राप्त करने का ढंग बतलाते तथा पाठ्यक्रम निर्धारित करते हैं; मुख्याध्यापक अपने स्कूल की विशेष परिस्थितियों के अनुरूप लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कार्य का विभाजन करता है। इस कार्य को क्रियात्मक रूप देने वाला है–अध्यापक।

नोट

इसलिए अध्यापक का उत्तरदायित्व महान् है। महान् उत्तरदायित्व महान् महत्ता का द्योतक है। इसलिए अध्यापक की आवश्यकता निर्विवाद है।

प्राचीन काल में भारत में ही नहीं, अन्य अनेक उन्नत देशों में भी अध्यापक का एक विशिष्ट स्थान रहा है। यह प्रसिद्ध उक्ति कि 'वाटरलू का युद्ध ऍटन के खेल के मैदानों में जीता गया था' अध्यापक के महत्त्व को दर्शाती है। इसलिए इतने महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व की सफल पूर्ति के लिए उसमें किन गुणों की आवश्यकता है यह देखना उचित ही होगा।

*नोट्स* अध्यापक अपने व्यक्तित्व तथा चरित्र से, विद्वत्ता एवं योग्यता से, तथा क्रिया-कलापों से बालक का बहुमुखी विकास करता हुआ, उसके चरित्र का निर्माण करता है।

**अध्यापक के गुण**–इस महान् उत्तरदायित्व को निभाने के लिए कई लोगों का मत है कि अध्यापक सर्वगुण सम्पन्न हो। पर क्या यह सम्भव है? सब गुणों का एक ही व्यक्ति में मिलना असम्भव नहीं तो कठिन एवं दुर्लभ है। फिर भी उन गुणों का वर्णन अपेक्षित है, इसलिए कि अध्यापक उन गुणों का विकास करने का प्रयत्न करेंगे।

**अध्यापक का अपना जीवन-दर्शन**–नवीनतम खोजों के अनुसार यह सिद्ध हो चुका है कि अध्यापक बालक को केवल अपने विषय का ज्ञान ही नहीं करवाता अपितु अप्रत्यक्ष रूप में वह अपने जीवन-दर्शन से भी उसे प्रभावित करता रहता है। अध्यापक के जीवन-दर्शन से तात्पर्य यह है कि अध्यापक जीवन की मूलभूत समस्याओं के विषय में क्या दृष्टिकोण रखता है और उन्हें सुलझाने का कैसे प्रयत्न करता है। कई अध्यापक सोचते हैं कि उनके पाठ्य विषय में तो ऐसी कोई बात नहीं होती जिससे जीवन के प्रति अध्यापक के दृष्टिकोण का बालकों को ज्ञान हो! वास्तव में ऐसा नहीं है। एक अध्यापक भाषा पढ़ाता है, उसमें महापुरुषों का जीवन चरित्र आना स्वाभाविक है। अत: अध्यापक की ओर से जाने या अनजाने उन सिद्धान्तों की ओर संकेत हो जाता है जिनको वह जीवन में उत्तम समझता है। एक उदाहरण देखिए–कोई अध्यापक अपने व्यक्तिगत जीवन में अथवा गृहस्थ-जीवन में अनेक दु:ख और कष्ट अनुभव करता है। वह उनसे मुक्ति पाने के अनेक प्रयत्न करता है पर असफल रहता है। उसका जीवन-दर्शन निराशावादी भी हो सकता है और अन्य प्रकार का भी। यदि दु:ख और कष्ट से घबरा गया तो जीवन में कोई उत्साह न रहेगा। यदि उसने दु:ख से ही समझौता कर लिया और इसी में सुख का अनुभव कर लिया तो उसका जीवन गतिशील बना रहेगा। पहले दृष्टिकोण के आने पर वह बालकों को किसी प्रकार का उत्साह प्रदान नहीं कर सकता। जबकि दूसरे दृष्टिकोण से वह उन्हें संघर्ष-प्रिय बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

अध्यापक हमारे समाज का एक अंग है तथा देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का उस पर प्रभाव पड़ना आवश्यक है। यह भी सत्य है कि इनके विषय में उसके विचार बालकों को भी प्रभावित करेंगे। इस प्रकार समाज में जिस प्रकार के परिवर्तन लाना चाहता है उनके लिए बालकों को तैयार करे। उनमें नेतृत्व की भावना का पूर्ण विकास करे। ताकि वे बड़े होकर वैसे ही दृष्टिकोण पर चल सकें। इसलिए यह आवश्यक है कि अध्यापक का अपना जीवन-दर्शन उच्च हो।

**आकर्षक व्यक्तित्व**–अध्यापक अपने विषय का कितना महान् पण्डित क्यों न हो यदि उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं है तो वह अध्यापन-कार्य में पूर्ण सफल नहीं हो सकता। व्यक्तित्व क्या है? इसका उत्तर सहज में ही किसी परिभाषा में बाँधा नहीं जा सकता। क्योंकि उसके विषय में अनेक मत हैं। कुछ विद्वान् बाह्य व्यक्तित्व के साथ-साथ भीतरी गुणों को भी महत्त्व देते हैं तथा कई अन्य विद्वान् तो भीतरी गुणों (व्यक्तित्व) को बाह्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाते हैं। हमारे विचार में व्यक्तित्व बाह्य और भीतरी गुणों को मिलाकर देखा जाना चाहिए। बाह्य व्यक्तित्व में अध्यापक की आकृति, पहिरावा, चाल-ढाल तथा स्वास्थ्य आते हैं।

नोट

**नेतृत्व**–स्कूल में बालकों का नेतृत्व सामान्य से भिन्न है। अध्यापक में नेतृत्व के कुछ विशिष्ट गुण होने चाहिए। अध्यापक का चरित्र तथा बालकों में उसका आदर, उसके नेतृत्व के आधार हैं। जो अध्यापक बालकों में जितना अधिक मान प्राप्त करता है वह उतना ही सफल नेता बन सकता है। अध्यापक स्वयं जिन आदर्शों पर चलता है उन पर चलने के लिए सहज ही बालकों को प्रेरणा दे सकता है, तथा बालक भी अनुगामी बनने के लिए तत्पर होते हैं। अध्यापक बालकों को केवल उपदेश ही न दे, अपितु उनके साथ मिलकर क्रियात्मक कार्य भी करे। बालक अध्यापक को कार्य करते देखकर उसका शीघ्र ही अनुकरण करते हैं।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने लिखा है कि विद्यार्थियों को नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण माध्यमिक स्कूल में ही मिलना चाहिए। नेता बनने के लिए यह आवश्यक है कि छात्रों को सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों की पूर्ण जानकारी रहे। जन-समूह से ही नेताओं का निर्माण होता है, इसलिए स्कूल-समाज में रहते हुए ही छात्रों को नेतृत्व के लिए आवश्यक गुणों को क्रियात्मक ढंग से ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अध्यापक को न केवल बालकों का नेतृत्व करना है अपितु उनमें नेतृत्व का विकास भी करना है।

**प्रजातन्त्रवादी**–भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् तथा यहाँ प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली होने के कारण अध्यापक का दृष्टिकोण भी प्रजातन्त्रात्मक होना आवश्यक है। अनेक पुराने स्कूलों में वयोवृद्ध अध्यापक अब भी अपने आपको सर्वेसर्वा समझते हैं। वे छात्रों के व्यक्तित्व को कभी स्वीकार नहीं करते। उनका दृढ़ निश्चय होता है कि भय के बिना छात्रों से कोई काम नहीं करवाया जा सकता। जब तक बालक करे अध्यापक को उचित अथवा अनुचित आज्ञा का अन्ध पालन करना नहीं आता वह कुछ भी सीखने के योग्य नहीं होता, परिणामस्वरूप अध्यापक रूपी हौवे से भयभीत बालक के व्यक्तित्व का विकास नहीं होता। वह अपने मन की बात को निरन्तर दबाने और गुप्त रखने की चेष्टा करता है यही आदतें वह आगे चलकर समाज में ले जाता है पर आज समाज का वातावरण बदल चुका है। भारत ही नहीं, सम्पूर्ण संसार में प्रजातन्त्रात्मक विचारों का विकास हो रहा है। अत: अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को भी प्रजातन्त्रात्मक नागरिक-शिक्षा दे। उनमें स्वतन्त्र सोचने और नए विचारों को ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न कर सके। वह छात्रों का दृष्टिकोण ऐसा बना सके जो शान्तिपूर्वक विचारों का आदान-प्रदान कर सके, समाज की इकाई बन कर रह सके, सहयोग के महत्व को समझ सके, सहनशील और अनुशासन प्रिय बन सके। ए सब गुण अध्यापक में होंगे तो वह इनको छात्रों में उत्पन्न कर सकेगा। आजकल अध्यापक अपने आपको शासक न समझे और उसे यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि छात्र उसकी आज्ञा का अन्ध-पालन करें। कक्षा की अनेक समस्याओं पर छात्रों को अपने विचार प्रकट करने दे। परिणामस्वरूप उनके व्यक्तित्व का विकास होगा और अपने विचार समादृत समझकर अध्यापकों का भी आदर करेंगे।

**व्यावसायिक प्रशिक्षण**–कोई कितना ही योग्य क्यों न हों, किसी विषय का कितना ही पण्डित क्यों न हो, जब तक उसे अपने विषय को पढ़ाने का ढंग नहीं आता, वह अपने ज्ञान को, अपनी बात को, अपने विचार को स्पष्ट रूप से दूसरों को समझा नहीं सकता। यदि वह अनेक उपायों से समझाने में कुछ सफल हो भी, तो वह उतना प्रभावशाली न बन सकेगा जितना कि वह व्यक्ति होगा जिसने पढ़ाने का ढंग या शिक्षण-प्रणाली को सीखा हो। इससे स्पष्ट है कि किसी विषय का ज्ञान होना एक बात है; दूसरों को पढ़ाना निश्चय ही अलग बात है। इसलिए अध्यापक को प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए। यदि प्रशिक्षण की सुविधाएँ न हों तो प्रत्येक नए अध्यापक को अपने अध्यापन के कुछ वर्षों के पश्चात् अपनी कुछ त्रुटियाँ स्पष्ट अनुभव होती हैं तथा वह दूर करे। पर यदि प्रशिक्षण की सुविधा हो तो प्रत्येक अध्यापक की उन त्रुटियों को पहले से दूर कर दिया जाए। इस प्रकार अनेक अध्यापकों की असावधानी और अनुभवहीनता से बच्चों को होने वाली हानि से बचाया जा सकता है।

**व्यावसायिक दृष्टिकोण**–कई युवक कोई अन्य नौकरी न मिलने से, परिस्थितियों से विवश होकर अध्यापन कार्य को ग्रहण करते हैं। वे लोग सदा किसी अन्य कार्य की खोज में रहते हैं कि वास्तव में प्रशिक्षण प्राप्त करके भी कोई लाभ नहीं उठाते। उनका मन चंचल रहता है और सन्तोष तो उनसे कोसों दूर। इसका मुख्य कारण यह होता है कि उनको इस व्यवसाय में आर्थिक लाभ कम होता है। वे ऐसी नौकरी की ओर शीर्घ ही आकृष्ट होते हैं जिसमें

नोट

आर्थिक लाभ अधिक हो। जब तक अन्य नौकरी नहीं मिलती, वे ट्यूशन आदि पढ़ाने के चक्कर में रहते हैं। स्कूल में परिश्रम करने को उनका मन नहीं करता। इसलिए ऐसे लोगों का व्यावसायिक दृष्टिकोण नहीं बन सकता। कई शिक्षा-शास्त्री एवं शिक्षा-अधिकारी प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले अध्यापकों को दीक्षान्त समारोह के अवसर पर भाषण देते हुए कहते हैं कि वे प्राचीन भारत के गुरुओं के अनुगामी बनें। उनकी भाँति विद्यादान, विद्या और ज्ञान के प्रकाश के लिए करें, धन के लिए नहीं। आर्थिक लाभ की बात मत सोचें। सादा जीवन और उच्च विचार उनके आधार हों। अपना पुनीत कार्य-विद्यादान करते जाएँ, फल की प्राप्ति न करें। निस्सन्देह यह महान आदर्श है पर दूसरे ही क्षण वे दीन अध्यापक अपने शिक्षा-अधिकारी को कार (Car) में बैठकर आनन्द और गर्व से जाते हुए देखते हैं तो उनके मन में सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है, "क्या हमें नसीहत देने वाले ने उस पर अमल किया।" वे शीघ्र ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं–नहीं। तो ऐसी शिक्षा से क्या लाभ।

राजा गुरु-आश्रम के लिए भूमिदान दिया करता था। शिष्य उसके लिए भिक्षा माँग कर लाया करता था। वह अपने आश्रम का राजा और सेवक दोनों था, शिष्य भी उसका पुत्र और सेवक दोनों रूप रखता था। गुरु फीस नहीं लेते थे। शिक्षा पूर्ण हो जाने पर कुछ दक्षिणा लिया करते थे। आज परिस्थितियाँ वैसी नहीं। शिष्य सेवा नहीं कर सकते। उनके विचार में 'हम फीस देते हैं, इसलिए अध्यापक पढ़ाते हैं।' ऐसी परिस्थितियों में अध्यापक का दृष्टिकोण आर्थिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। यदि अध्यापकों का व्यावसायिक दृष्टिकोण बनाना है तो उन्हें अच्छा वेतन दिया जाना चाहिए।

**बाल-मनोविज्ञान–**आधुनिक युग में मनोविज्ञान ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। शिक्षा एवं बाल-मनोविज्ञान भी उसी का अंग है। इसके ज्ञान बिना अध्यापक न तो बालक के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है और न अपने विषय में। बाल-मनोविज्ञान की आवश्यकता इसलिए है कि वह बालकों के विकास–शारीरिक एवं मानसिक, के विषय में जान सकें। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उनकी मानसिक दशा कैसी होगी; उनकी रुचियाँ भिन्न क्यों होती हैं, तथा उन विभिन्न परिस्थितियों में उसे क्या करना है, इन सबका सम्यक् ज्ञान उसे हो सके। बाल-मनोविज्ञान जानने के पश्चात् अध्यापक बालकों की प्रत्येक क्रिया को व्यर्थ नहीं समझता, उनके शोर से तंग नहीं आता और उन्हें भयभीत पक्षी की भाँति कमरे रूपी पिंजरे में बन्द नहीं रखता प्रत्युत बालकों से स्नेह करता है। अत: उनको समझने का प्रयत्न करता है।

**पाठान्तर क्रियाएँ–**शिक्षा का उद्देश्य बालक का बहुमुखी विकास होने के कारण, आजकल स्कूलों में केवल किसी विषय की ज्ञान-प्राप्ति पर ही बल नहीं दिया जाता, अपितु उसके साथ-साथ पाठान्तर क्रियाओं का भी ध्यान रखा जाता है। आजकल इनको स्कूल-शिक्षा का एक प्रमुख अंग माना जाता है। पाठान्तर क्रियाओं की कोई सीमा नहीं, वे अनन्त हैं। खेल, नाटक, सभा, उत्सव, वाद-विवाद, कविता-पाठ, स्काऊटिंग, ए. सी. सी., एन. सी. सी., यात्रा, विहार, प्रिय व्यापार आदि अनेक प्रकार की पाठान्तर क्रियाएँ हैं।

हम प्रत्येक अध्यापक को इन सभी पाठान्तर क्रियाओं में पारंगत नहीं मान सकते और न ही ऐसा सम्भव है। इनमें कुछ पाठान्तर क्रियाएँ ऐसी हैं जिनके लिए विशिष्ट प्रशिक्षण अपेक्षित है जैसे ए. सी. सी., एन. सी. सी. तथा स्काऊटिंग। कुछ ऐसी हैं जिनका अध्यापक अपने स्कूल तथा कॉलेज जीवन से ज्ञान प्राप्त करके आते हैं। जैसे खेल, वाद-विवाद, नाटक आदि। इसलिए प्रत्येक अध्यापक को किसी एक पाठान्तर क्रिया को विशेष रूप से ग्रहण करना चाहिए और उसमें वह पारंगत हो। जैसे नाटक लीजिए, कोई अध्यापक अपने स्कूल-जीवन में अभिनेता रहा हो तो वह इस कार्य को अच्छी प्रकार कर सकता है। कोई अध्यापक किसी खेल को खेलता हो तो वह उसमें बालकों को प्रशिक्षण दे सकता है। भावार्थ यह है कि अध्यापक की किसी एक पाठान्तर क्रिया में अभिरुचि अवश्य हो। स्कूल में उसे जिस पाठान्तर क्रिया का कार्य मिला हो, उसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का उसे सदा प्रयत्न करना चाहिए। जैसे वाद-विवाद का अध्यक्ष होने पर उसे ध्यान रखना चाहिए कि कहीं आस-पड़ोस के स्कूल व कॉलेज में वाद-विवाद हो तो वह अवश्य वहाँ जाए। इस प्रकार उसकी उस पाठान्तर क्रिया में अभिरुचि बढ़ेगी।

**राष्ट्र-प्रेम–**बालक राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं। इसलिए उनमें राष्ट्र-प्रेम की भावना का विकास करना चाहिए, यह तभी हो सकता है जब कि यह गुण अध्यापक में विद्यमान हो। अध्यापक में इतनी सामर्थ्य हो कि वह बालकों को अपने

नोट

राष्ट्र सम्बन्धी पूर्ण जानकारी दे। माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने इस सम्बन्ध में लिखा है, 'सच्चे राष्ट्र-प्रेम से तात्पर्य है कि छात्र अपने देश की सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं की प्रशंसा करे, अपने दोषों को शीघ्र ही स्वीकार करने के लिए नि:संकोच हो और उन्हें दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो·····अपने व्यक्तिगत लाभ को देश के लाभ के सम्मुख लघु समझे।'

स्पष्ट है कि बालक अपने राष्ट्र से तभी प्रेम कर सकते हैं जब उन्हें राष्ट्र का पूर्ण ज्ञान हो। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि भारत के ऐतिहासिक स्थानों के विषय में बतलाए या वहाँ की यात्रा करवाए, भिन्न क्षेत्रों के सांस्कृतिक उत्सवों में बालकों को लेकर जाए। अध्यापक में यह गुण हो कि इनके प्रति बालकों में उत्सुकता भर सके।

**बालकों से सम्बन्ध–**अध्यापक बालकों से स्कूल में, कक्षा के कमरे में, खेल के मैदान में तथा गली-बाजार में मिलता है। सभी स्थानों पर अध्यापक और बालक के मिलने में एक विशिष्टता होती है, जैसे अध्यापक बड़े ध्यान से देखता है कि बालक उससे कैसा व्यवहार करता है, ठीक उसी प्रकार बालक देखता है कि अध्यापक का उसके प्रति कैसा व्यवहार है। इस व्यवहार का बड़ा महत्व है, अध्यापक बालक को जैसा देखना चाहता है पहिले उसे वैसा स्वयं बनकर दिखाना चाहिए। आदर्श प्रस्तुत करने पर ही बालक अध्यापक में आस्था रखकर उस कार्य को सीख सकेंगे। यदि अध्यापक केवल उपदेश ही देगा और स्वयं उन उपदेशों के अनुरूप कार्य न करेगा तो ऐसे उपदेश का बालकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अध्यापक यदि चाहता है कि छात्र स्कूल के प्रत्येक नियम का पालन करे तो यह भी आवश्यक है कि अध्यापक स्वयं उन नियमों का दृढ़ता से तथा आस्था से पालन करे। कई बार यह भी देखा गया है कि स्कूल में विलम्ब से आने वाले बालकों को स्कूल के द्वार पर रोक लिया जाता है और उन्हें पंक्ति बनाकर खड़े होने के लिए कहा जाता है। उसी समय यदि कोई अध्यापक भी विलम्ब से आए और वह सीधा स्कूल में चला जाए तो बालक आपस में उस सम्बन्ध में बातचीत करते हैं, रोष प्रकट करते हैं। कई उद्दण्ड बालक कह भी देते हैं। ऐसी अवस्था में अध्यापक अपना मान कम कर लेते हैं।

आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों के अनुसार अध्यापक को बालकों का मित्र तथा पथ-प्रदर्शक होना चाहिए, राजा और प्रजा अथवा मालिक और दास वाली भावना नहीं होनी चाहिए। अध्यापक बालकों का मित्र बन, उनकी समस्याओं को समझने का प्रयत्न करे। इस प्रकार अध्यापक शीघ्र ही उनके दिल को जीत लेता है। वे अध्यापक के पास जाने से घबराते नहीं। अध्यापक का आदर करते हैं।

**अध्यापक का स्टाफ तथा मुख्याध्यापक से सम्बन्ध–**स्कूल एक बड़ा परिवार है। इसलिए अध्यापकों का आपस में व्यवहार भाई-भाई जैसा होना चाहिए। स्कूल के सभी अध्यापकों का एक ही निर्दिष्ट लक्ष्य होता है। इसलिए वह जितना मिलकर या संगठित होकर चलेंगे उतना अच्छा रहेगा। लक्ष्य तक सुविधा से पहुँच जाएँगे। स्कूल में दिया जाने वाला ज्ञान वास्तव में एक है, इसको तो अध्ययन की सुविधा के लिए कई भागों में बाँटा गया है। इसलिए प्रत्येक विषय का दूसरे विषय से सम्बन्ध है। अत: अध्यापकों का सहयोग एक-दूसरे को सहायता पहुँचा सकता है। इस प्रकार स्कूल को चलाने का सामूहिक उत्तरदायित्व होना चाहिए। यह भावना नहीं आनी चाहिए कि अमुक अध्यापक इस कार्य का ज़िम्मेदार है, मैं नहीं हूँ। छिद्रान्वेषी नहीं होना चाहिए। दूसरों का आदर करना चाहिए। बालकों के सम्मुख किसी अन्य अध्यापक के विषय में कुछ नहीं कहना चाहिए।

अध्यापक को मुख्याध्यापक के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास होना चाहिए। उसके आदेश और निर्देश अवश्य पूरे किए जाने चाहिए। उसकी नई योजनाओं को सफल बनाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक कार्य के लिए अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिए। मुख्याध्यापक के दीर्घ अनुभव से लाभ उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। मुख्याध्यापक के कार्य-भार को हल्का करना चाहिए। मुख्याध्यापक की किसी नई योजना अथवा निर्णय से असहमत होने पर उसे स्पष्ट बता देना चाहिए। यदि फिर भी कोई नई योजना कार्यान्वित करनी पड़े तो अध्यापक को पूरा प्रयत्न करना चाहिए। मुख्याध्यापक के कर्त्तव्यों की विभिन्नता समझते हुए, कई कार्य स्वयं ही कर लेने चाहिएँ। जैसे किसी एक कक्षा में किसी अध्यापक की किसी कारणवश अनुपस्थिति में बालक शोर कर रहे हों, तो जो अध्यापक खाली हो वह स्वयं उस कक्षा में चला जाए, उसे यह सोचते नहीं रहना चाहिए कि मुख्याध्यापक का आदेश प्राप्त हो तो जाऊँ। इस प्रकार अपने मुख्याध्यापक के विषय में अपशब्द कभी नहीं बोलने चाहिए।

नोट

मुख्याध्यापक सभी बालकों के माँ-बाप या संरक्षकों से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता और न ही वह सबसे परिचित ही हो सकता है। अध्यापक इस कार्य को बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। इसलिए कि उनकी कक्षा के बालकों की संख्या कम होती है, इसलिए उन्हें थोड़े से संरक्षकों से सम्पर्क स्थापित करना होता है। इस प्रकार मुख्याध्यापक कुछ विशिष्ट संरक्षकों से अवश्य परिचित हो और उनसे सम्पर्क बनाए रखे।

अध्यापक को अपनी संस्था की भलाई का सदा ध्यान रखना चाहिए। उसे यह अनुभव करना चाहिए कि सभी अध्यापक, 'मुख्याध्यापक सहित भलाई और बुराई के हिस्सेदार हैं।

**विषय का पण्डित**–कोई व्यक्ति किसी विषय के ज्ञान के बिना अध्यापक नहीं बन सकता। अध्यापक को विषय पढ़ाना है उसका उसे पूर्ण ज्ञान होना अपेक्षित है। निस्सन्देह किसी ज्ञान को हम सीमा में नहीं बाँध सकते, इसलिए पूर्ण ज्ञान की कसौटी नहीं बनाई जा सकती। फिर अध्यापक को अपने विषय का ज्ञान छात्रों से पर्याप्त अधिक होना चाहिए। अस्पष्ट अथवा अव्यवस्थित ज्ञान से कोई भी अध्यापक प्रभावशाली अध्यापन-कार्य नहीं कर सकता और न ही इससे बालकों का कोई कल्याण सम्भव है। अपने विषय के ज्ञान के साथ-साथ उसका सामान्य ज्ञान भी पर्याप्त होना चाहिए। उसे अपने देश, अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के विषय में अच्छी जानकारी हो। अध्यापक ने स्कूल व कालेज में अनेक विषयों का अध्ययन किया होता है अत: उन विषयों का सामान्य ज्ञान भी उसे अवश्य होना चाहिए। इससे एक मुख्य लाभ यह होता है कि वह अपने विषय को शेष विषयों से एकदम पृथक् नहीं समझता। अत: पढ़ाते समय अन्य विषयों के उदाहरण देकर अपने विषय को रोचक बना सकता है। मार्टिन ने कहा है, 'अच्छा अध्यापक होने के लिए अच्छा विद्यार्थी होना भी आवश्यक है,' इस उक्ति से यही स्पष्ट होता है कि अध्यापक को अपने ज्ञान की सदा वृद्धि करते रहना चाहिए। स्वाध्याय से ज्ञान में स्पष्टता आती है। इस प्रतिक्षण परिवर्तनशील संसार में प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन हो रहे हैं अत: अध्यापक को उनसे परिचित रहने के लिए सामाजिक पत्र-पत्रिकाएं भी पढ़ते रहना चाहिए। इससे पढ़ने की आदत बनी रहेगी।

भारत के कई भागों में प्रारम्भिक कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापकों का निर्धारित शिक्षा स्तर बहुत निम्न है। उनका ज्ञान अभी अधूरी अवस्था में होता है जब कि उन्हें अध्यापक बनने का अवसर मिल जाता है। कुछ ही वर्षों में उनका ज्ञान उसी कक्षा के ज्ञान-स्तर तक रह जाता है। कारण यह है कि हमारे शिक्षा विभाग के अधिकारी शायद प्रारम्भिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए कोई दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र की आवश्यकता नहीं समझते। अभिनव-पाठ्य-क्रम (Refresher Course) का अभाव होने से वे अध्यापक अपने ज्ञान की वृद्धि करने में असमर्थ रहते हैं। उनकी अपनी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं होती। अपने विषय के पण्डित होने के साथ उस विषय को पढ़ाने की विधियाँ जानना सोने पर सुहागे का कार्य है।

**विषय-विशेषज्ञ या कक्षा अध्यापक**–कई स्कूलों में एक अध्यापक को एक ही विषय पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाता है तो कई स्कूलों में उसे कक्षा के सम्पूर्ण विषयों का अध्यापन करना होता है। क्या वह सभी विषयों का विशेषज्ञ हो सकता है? कदाचित नहीं? अध्यापक एक या दो विषयों का ही विशेषज्ञ हो सकता है, तो क्या वह शेष विषयों के साथ पूरा न्याय कर सकेगा? इस प्रकार आजकल विद्वानों में दो मत दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ तो विषय-विशेषज्ञ ढंग को स्कूल में ग्रहण करना चाहते हैं तो कुछ सम्पूर्ण कक्षा का कार्यभार एक ही अध्यापक के कन्धों पर रखना चाहते हैं। ध्यान से छानबीन करने पर दोनों मतों में अपनी-अपनी विशेषताएँ तथा न्यूनताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

### विशेषज्ञ

1. अध्यापक को विद्वान होना आवश्यक है। विशेषज्ञ अपने विषय का निस्सन्देह उत्तम विद्वान होता है क्योंकि वह अपना सारा ध्यान और परिश्रम इस पर केन्द्रित करता है और सतत् स्वाध्याय से उस विषय में प्रवीण हो जाता है।
2. जब एक अध्यापक के पास पढ़ाने के लिए एक ही विषय होगा तो वह निश्चय ही उसकी रुचि होगा। किसी विषय में अध्यापक की जितनी अधिक रुचि होगी अध्यापन-कार्य उतना ही प्रभावशाली होगा। उसके विपरीत यदि उसके पास कक्षा के सभी विषय हों तो उन सबमें उसकी रुचि नहीं होगी। जिसमें उसकी रुचि नहीं होगी, बालक उसमें अवश्य कमजोर रह जाएँगे जो अच्छा नहीं है।

नोट

3. विशेषज्ञ अध्यापक को कई कक्षाओं के पाठ्यक्रम को वर्ष भर में विभक्त करना होता है। विशेषज्ञ अध्यापक पाठ्यक्रम को इस ढंग से विभक्त करता है कि विषय को बार-बार न पढ़ाना पड़े। वह उचित समन्वय कर लेता है। उसकी दृष्टि में तीन-चार वर्ष का कार्यक्रम रहता है। इसलिए वह किसी कक्षा को जो कुछ गत वर्ष पढ़ाया हो उससे आगे पढ़ाता है। इसमें समय और परिश्रम दोनों की बचत है।
4. विशेषज्ञ अध्यापक बड़ी सुगमता से अपने विषय की विशेष शिक्षण विधियों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वह एक ही वर्ष भिन्न-भिन्न कक्षाओं में भिन्न-भिन्न शिक्षण-विधियों द्वारा अपने विषय को पढ़ाने का प्रयोग कर सकता है। इससे वह उन विधियों में से उत्तम विधि का निर्णय कर सकता है। जो उसके भावी जीवन में लाभदायक सिद्ध होती है। दूसरी ओर किसी कक्षा के सम्पूर्ण विषय पढ़ाने से यह सम्भव नहीं। किसी अध्यापक का सभी विषयों की शिक्षण-विधियों का ज्ञान प्राप्त करना बड़ा कठिन है।
5. कई विद्वानों का मत है कि विशेषज्ञ अध्यापक अधिक बालकों से सम्पर्क स्थापित करता है। इसका कारण यह है कि वह एक दिन कई कक्षाओं के बालकों को पढ़ाता है, अत: उनके सम्पर्क में आता है। इस प्रकार कई वर्ष के निरन्तर सम्पर्क से वह उनकी योग्यता एवं रुचि से परिचित हो जाता है। एक उदाहरण देना अनुचित न होगा, एक विशेषज्ञ अध्यापक छटी कक्षा को इतिहास पढ़ाता है। वही बालक सातवीं और आठवीं में भी उसी अध्यापक से इतिहास पढ़ेंगे। इसलिए कई वर्ष वे उसी अध्यापक के सम्पर्क में आते हैं।
6. बालकों को भी इससे एक विशेष लाभ यह होता है कि वे अधिक अध्यापकों के सम्पर्क में आते हैं। इस सम्पर्क से उनके दृष्टिकोण में उदारता आती है। वे अध्यापक के गुणों से परिचित होते हैं अत: अपनी स्वाभाविक रुचि को जानने के अधिक अवसर मिलते हैं।
7. विशेषज्ञ प्रणाली ग्रहण करने से अध्यापकों को विश्राम के लिए रिक्त घंटी सुलभ होती है, जिससे आगामी घण्टी में वे पुन: उत्साह से पढ़ा सकते हैं।

**आलोचना–**कुछ विद्वान् विशेषज्ञ-अध्यापक-प्रणाली की इस बात को स्वीकार नहीं करते कि विशेषज्ञ अध्यापक अधिक बालकों के सम्पर्क में आने से वह उनकी योग्यता एवं रुचि से परिचित हो जाता है। उनका कहना है कि विशेषज्ञ अध्यापक को अधिक छात्रों के सम्पर्क में आने का अवसर तो अवश्य मिलता है, परन्तु इस थोड़े से सम्पर्क में अध्यापक बालकों के नाममात्र से ही परिचित हो सकता है। उसके विषय में अपेक्षित पूर्ण जानकारी वह प्राप्त नहीं कर सकता। इसमें सन्देह नहीं कि विशेषज्ञ-अध्यापक अपने विषय का कई कक्षाओं के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर भली भाँति विभाजन कर सकता है। पर अधिकांश हाई स्कूल के भिन्न-भिन्न कक्षाओं के लिए एक ही विषय के भिन्न-भिन्न योग्यता के अध्यापक नियुक्त होते हैं। इसलिए यह आवश्यक नहीं कि जिन बालकों को एक अध्यापक ने एक वर्ष पढ़ाया हो, आगामी वर्ष वही अध्यापक उन्हीं बालकों को पढ़ाने का अवसर प्राप्त करे। छोटे स्कूलों में यह सम्भव हो सकता है।

कुछ अध्यापक एक ही विषय पढ़ाते-पढ़ाते ऊब जाते हैं। भाषा के विशेषज्ञ अध्यापक के लिए तो इस प्रणाली में बड़ी कठिनाई यह होती है कि उसको कापियां शुद्ध करने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। ढेर की ढेर कापियाँ शुद्ध करने के लिए उसे स्कूल में ही समय देना पड़ता है, अन्यथा वह कर्त्तव्य पालन में स्वयं को असमर्थ समझता है। इससे उसका मन कापियों से ऊब जाता है क्योंकि वह देखता है कि उसके कुछ साथी अध्यापक ऐसे विषय पढ़ाते हैं जिनमें कापियाँ नाममात्र की देखनी पड़ती हैं। इससे उसके मन में खिन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

विशेषज्ञ-अध्यापक प्रणाली से भिन्न-भिन्न विषयों में समन्वय (Co-ordination) नहीं होता। कुछ अध्यापक अपने विषय को अधिक महत्त्वपूर्ण बतला कर बालकों को अन्य विषयों की ओर कम ध्यान देने पर विवश कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि बालक सब विषयों में एक जैसी उन्नति नहीं करते। समय-सारणी की कठिनाई बढ़ जाती है।

कोई भी अध्यापक किसी बालक के आचरण एवं व्यवहार की ओर ध्यान नहीं दे पाता। परिणाम यह होता है कि बालकों का बहुमुखी विकास नहीं हो पाता।

### कक्षा अध्यापक

1. कक्षा-अध्यापक प्रणाली के समर्थक अपने विचारों के समर्थन में कहते हैं कि कक्षा अध्यापक की अपनी कक्षा

नोट

में अधिक रुचि होती है। कक्षा-अध्यापक सारा दिन अपनी कक्षा के बालकों के साथ रहने से शीघ्र ही उनसे पूर्ण परिचित हो जाता है।

2. कक्षा-अध्यापक प्रणाली में समय-सारणी की कोई कठिनाई नहीं रहती। कक्षा अध्यापक आदर्श समय-सारणी के नियमों का भली-भाँति पालन कर सकता है। मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार विषयों को पढ़ा सकता है जैसे दिन की दूसरी-तीसरी घण्टी में कठिन विषय पढ़ाए जा सकते हैं। उनमें बालकों की तन्मयता पूरी होती है।
3. कक्षा-अध्यापक भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाने से थकावट अनुभव नहीं करता। एक घंटे के पश्चात् दूसरा विषय पढ़ाने से उसमें पुन: उत्साह का संचार होता है जो अध्यापन कार्य के लिए परमावश्यक है।
4. कक्षा-अध्यापक विषयों की कठिनता को ध्यान में रखते हुए समय विभाजन कर सकता है। वह किसी एक विषय पर अनावश्यक बल नहीं देता और न ही किसी विषय की अवहेलना करता है। परिणाम यह होता है कि बालक सब विषयों पर पूरा ध्यान देते हैं जिससे परीक्षा में उन्हें लाभ रहता है।
5. कक्षा-अध्यापक को एक लाभ और है कि वह बालकों की किसी विषय में कमज़ोरी को बड़ी सुगमतापूर्वक दूर कर सकता है। सारे दिन का कार्यक्रम उसकी अपनी इच्छा पर है। अत: वह जिस विषय में बालक कमज़ोर हों उसको अधिक समय दे सकता है।
6. कक्षा-अध्यापक बालकों के चरित्र-निर्माण की ओर विशेष ध्यान दे सकता है। उनके सामान्य व्यवहार पर दृष्टि रखता है।
7. कक्षा-अध्यापक को अनुसन्धान के अधिक अवसर मिलते हैं। मान लीजिए कोई छात्र किन्हीं दो विषयों में होशियार है और दो में वह कमज़ोर है, तो कक्षा-अध्यापक इन कारणों की छानबीन कर सकता है।

**आलोचना–**कक्षा-अध्यापक सम्पूर्ण विषयों का उत्तम ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और सब विषयों में उसकी एक-सी रुचि नहीं होती।

कक्षा-अध्यापक को सम्पूर्ण विषयों की उत्तम शिक्षण-विधियों का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं। अत: शिक्षण-विधियों के अभाव में अध्यापक अपने पाठ को उतना रोचक और प्रभावशाली नहीं बना सकता जितना कि विशेषज्ञ-अध्यापक।

कक्षा-अध्यापक सारा दिन एक ही कक्षा में बैठे-बैठे ऊब जाता है। स्कूल की प्रथम घंटी से अन्तिम घंटी तक वह खड़ा नहीं रह सकता और यदि बैठकर पढ़ाए तो वह अध्यापन कार्य इतना प्रभावशाली ढंग से नहीं कर सकता जितना कि अपेक्षित है। प्रथम 2-3 घंटियों तक वह बड़ी तन्मयता से पढ़ाएगा, तत्पश्चात् उसकी रुचि तथा उत्साह कम हो जाएगा।

अध्यापक को विश्राम के लिए समय नहीं मिलता। कक्षा को खाली छोड़कर कहीं जाना स्कूल के नियमों के प्रतिकूल होगा। इसलिए अध्यापक कक्षा में बैठा आराम करेगा जिसका बालकों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

कई विद्वानों का विचार है कि स्कूल में सामान्यरूप से तो कक्षा-अध्यापक ही हों पर कुछ विशेष विषयों जैसे ड्राइंग, विज्ञान, संगीत, शिल्प तथा कृषि के विशेषज्ञ अध्यापक हों। इस प्रकार दोनों प्रणालियों को मिला लेने से कार्य सुचारु रूप से चल सकेगा।

**प्रयोग एवं अनुसन्धान–**इस वैज्ञानिक युग में संसार एक परिवार सा बन गया है। कोई विद्वान या शिक्षा-शास्त्री किसी भी देश का क्यों न हो, जब कोई नवीन खोज करता है तो उसके नवीन अनुसन्धान या विचार सभी देशों में अल्पकाल में पहुँच जाते हैं। अत: अध्यापक को चाहिए कि वह पत्र एवं पत्रिकाओं का अध्ययन करता रहे और अध्यापन कार्य से सम्बन्धित नवीन खोजों का प्रयोग करके देखे। उसमें इतनी नमनीयता होनी चाहिए कि वह नए विचारों और खोजों के परिणाम को स्वीकार कर सके।

यदि अध्यापक नवीन प्रयोगों में आंशिक सफलता भी प्राप्त कर लेता है तो वह अनुसन्धान के क्षेत्र में भी सफल हो सकता है। भले ही हमारे देश में अध्यापक को अनुसन्धान के लिए वे सुविधाएँ प्राप्त नहीं जो अन्य उन्नत देशों में हैं, फिर भी हमें विश्वास है कि यदि किसी अध्यापक में अनुसन्धान की अभिलाषा हो, लगन हो और दृढ़ निश्चय के साथ परिश्रम करने की शक्ति हो तो साधारण अड़चनें अपने आप दूर हो जाती हैं। इसलिए अध्यापक को प्रयोग और अनुसन्धान में अभिरुचि रखनी चाहिए। अपने प्रयोग के परिणाम मुख्याध्यापक के द्वारा उच्चाधिकारियों को पहुँचाने

नोट

चाहिएँ। वह पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में भी प्रयोग कर सकता है, क्योंकि पाठ्यक्रम को क्रियात्मक रूप देने वाला तो अध्यापक ही है। अत: पाठ्यक्रम में जो दोष दिखाई दें वे भी उच्च अधिकारियों तक पहुँचाने चाहिएँ। कारण यह है कि जिन लोगों को पाठ्यक्रम बनाने का सौभाग्य मिलता है उनका प्रत्यक्ष रूप से स्कूल अध्यापन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इससे यह लाभ होता है कि वे अध्यापक के सुझावानुसार पाठ्यक्रम में संशोधन कर सकते हैं।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**1. निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' अथवा 'असत्य' का चुनाव कीजिए। (State Whether the following sentences are 'True' or 'False')–**

1. नियंत्रण का तात्पर्य शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया का उद्देश्यों के संदर्भ में मूल्यांकन तथा मापन करना है।
2. निबंधात्मक परीक्षा प्रणाली अधिगम उद्देश्यों की ओर अधिक बल देते हुए पाठ्यवस्तु के रटने पर बल देती थी।
3. मूल्यांकन एक ऐसी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन होता रहता है।
4. शिक्षण के उद्देश्य शिक्षण की कुंजी होते हैं।

## 9.4 अभिप्रेरणा का अर्थ और प्रकृति (Meaning and Nature of Motivation)

अभिप्रेरणा एक आन्तरिक शक्ति होती है जो अनुक्रिया अथवा व्यवहार को तीव्र करती है। अभिप्रेरणा के अन्तर्गत वे सभी आन्तरिक अवस्थाएँ आती हैं जो किसी क्रिया को आरम्भ करती हैं अथवा जारी रखती हैं। यदि अभिप्रेरणा की आन्तरिक अवस्थाएँ क्रियाशील न हों तो बाह्य उद्दीपन होने पर अनुक्रिया उत्पन्न नहीं की जा सकती है। **बर्नार्ड** के अनुसार अभिप्रेरणा की परिभाषा निम्नलिखित है–

"अभिप्रेरणा के द्वारा उन विशिष्ट उद्देश्यों की ओर क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाता है जिन उद्देश्यों के प्रति पहले कोई आकर्षण नहीं होता है।"

("Motivation is the stimulation of action towards a particular objective where previously there was little or no attraction to that goal.")

**जे. पी. गिलफोर्ड** के अनुसार–'प्रेरक एक विशिष्ट आन्तरिक कारण या अवस्था है जो कि क्रिया का आरम्भ करने या जारी रखने में प्रवृत्त करता है।'

("A motive is any particular internal factor or condition that trends to initiate and to sustain activity.")

शिक्षक अधिगम ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है उसमें छात्रों द्वारा उन्हीं क्रियाओं को कराया जाता है जिससे उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन हो सकता है इसलिए अभिप्रेरणा की प्रकृति क्रियाओं को आगे बढ़ाने (Leading) की है। **बी. एफ. स्किनर** के अनुसार अभिप्रेरणा की परिभाषा निम्नलिखित है–

"विद्यालय अभिप्रेरणा का अर्थ अपेक्षित व्यवहार के लिए प्रोत्साहित करना आरम्भ करना, जारी रखना तथा दिशा प्रदान करना है।"

("Motivation in school learning involves, arousing persisting, sustaining and directing desirable behaviour.")

### अभिप्रेरणा की प्रकृति (Nature of Motivation)

अभिप्रेरणा एक मनोशारीरिक प्रत्यय है अथवा आन्तरिक प्रक्रिया है जो क्रियाओं को आरम्भ करती है, उन्हें दिशा प्रदान करती है तथा आगे बढ़ाती है। अधिगम की यह प्राथमिक आवश्यकता होती है। अभिप्रेरणा के अनेक आन्तरिक कारक होते हैं जो जीवन को क्रियाओं के लिए प्रोत्साहित करते हैं और उन्हें जारी रखते हैं। परन्तु मानव-अधिगम में आवश्यकताओं (Needs) का विशेष महत्व होता है।

नोट

## अभिप्रेरणा की शब्दावली (Terminology of Motivation)

अभिप्रेरणा के सन्दर्भ में कई शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। प्राय: उनको भ्रमवश हम एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। परन्तु इनका अर्थ विशिष्ट होता है, इसलिए अभिप्रेरणा की शब्दावली का स्पष्ट अर्थ समझना चाहिए। इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है–

1. **प्रेरक (Motive)**–व्यक्ति के अन्दर उपस्थित मनोशारीरिक दशाएँ जो किसी कार्य विशेष को प्रेरित करती है वे प्रेरक कहलाती हैं।
2. **प्रोत्साहन (Incentive)**–प्रोत्साहन का सम्बन्ध निश्चित वस्तुओं से होता है जिनको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयत्न करता है। इसका सम्बन्ध बाह्य वातावरण से होता है। इसका लक्ष्य व्यक्ति को किसी विशेष दिशा की ओर आकर्षित करना है।
3. **प्रणोदन (Drive)**–प्रणोदन का सम्बन्ध शारीरिक आवश्यकताओं से है व्यक्ति के जन्म से ही उसकी शारीरिक आवश्यकताएँ आरम्भ हो जाती हैं। जैसे–भूख तथा प्यास।
4. **अभिरुचि (Interest)**–व्यक्ति अनेक कार्यों तथा वस्तुओं में से किसी विशेष कार्य तथा वस्तु को ही पसन्द करता है और उनकी ओर आकर्षित होता है। अन्य कार्यों तथा वस्तुओं को पसन्द नहीं करता है।
5. **उत्सुकता (Curiosity)**–उत्सुकता, अभिरुचि से भिन्न होती है। अभिरुचि में चयन की प्रवृत्ति होती है जब उत्सुकता में व्यक्ति अन्वेषण तथा उन नई वस्तुओं के सम्बन्ध में जानने के लिए प्रयत्न करता है कि जिनके सम्बन्ध में उसे कोई जानकारी नहीं होती है।
6. **लक्ष्य (Goals)**–लक्ष्य अन्तिम परिणाम के सम्बन्ध में सूचित करता है, जिसको व्यक्ति चेतन अवस्था में प्राप्त करने का प्रयास करता है।

## आवश्यकता का अर्थ (Meaning of Need)

आवश्कता का तात्पर्य किसी वस्तु के अभाव की अनुभूति से होता है जिससे मनुष्य का सामान्य व्यवहार प्रभावित होता है। बर्नाड महोदय ने 'आवश्यकता' को इस प्रकार परिभाषित किया है–

("A need is the lack of something which is present, would trend to further the welfare of the organism or of the species or to facilitate its usual behaviour.")

जब तक आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है जीवन में तनाव की स्थिति बनी रहती है। इस प्रकार आवश्यकता की धारणा और उनसे सम्बन्धित तत्व अभिप्रेरणा से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक प्रकार के व्यवहार के मूल में आवश्यकता महत्वपूर्ण कार्य करती है। इस प्रकार व्यक्ति में निहित वह शक्ति जो व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार के व्यवहार करने को प्रेरित करती है उसे आवश्यकता कहते हैं।

'आवश्यकताएँ' दो प्रकार की होती हैं–(1) शारीरिक (Physiological) तथा (2) मानसिक (Mental)। इसलिए अभिप्रेरणा की प्रकृति मनो-शारीरिक होती है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होते ही व्यवहार का रूप संतुष्टि में बदल जाता है परन्तु मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ व्यवहार के निर्धारण में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। इनकी सन्तुष्टि कभी भी पूर्ण रूप में नहीं होती है। अधिकांश व्यक्तियों का व्यवहार मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से नियन्त्रित होता है।

## अभिप्रेरणा देने वाले घटक (Factors Accounting for Motivation)

जॉन पी. डिसेको ने अभिप्रेरणा देने वाले चार घटकों (Factors) का विवेचन किया है। यह चार घटक इस प्रकार है–

1. उत्तेजना (Arousal),
2. आकांक्षा (Expectancy),
3. प्रोत्साहन (Incentive), तथा
4. दण्ड (Punishment)।

इन चारों घटकों में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ए शिक्षण में अभिप्रेरणा देने की क्रियाएँ मानी जाती हैं–

नोट

1. उत्तेजना का कार्य (Arousal Function),
2. आकांक्षा का कार्य (Expectancy Function),
3. प्रोत्साहन का कार्य (Incentive Function), तथा
4. दण्ड अथवा अनुशासन का कार्य (Punishment or Disciplinary Function)।

1. **उत्तेजना** (Arousal)–उत्तेजना शक्ति प्रदान करती है परन्तु निर्देशन नहीं प्रदान करती है। जैसे किसी मशीन को चालू कर दिया जाए परन्तु उसका मार्ग (Steering) निश्चित नहीं किया जाए। उत्तेजना व्यक्ति की सक्रियता के लिए आवश्यक घटक माना जाता है। उत्तेजना के तीन प्रकार होते हैं–

   (अ) उच्च स्तर, (ब) मध्य स्तर, (स) निम्न स्तर। व्यक्ति को उत्तेजना दो स्रोतों से मिलती है–

   (*i*) **आन्तरिक उत्तेजना स्रोत**–सामान्य रूप से शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए व्यक्ति सक्रिय होता है। व्यक्ति स्वभाव से ही सक्रिय होता है। आन्तरिक उत्तेजना स्रोत शारीरिक निम्न स्तर की आवश्यकताओं से लेकर मानसिक उच्च स्तर की आवश्यकताओं तक होता है।

   (*ii*) **बाह्य उत्तेजना स्रोत**–साधारणत: वातावरण से व्यक्ति को उत्तेजना मिलती है। वातावरण के तत्व उद्दीपन का कार्य करते हैं। वातावरण की नवीनता भी बालकों को प्रेरित करती है। नीरसता को दूर करने के लिए परिवर्तन तथा वातावरण की नवीनता आवश्यक होती है। उत्सुकता तथा उत्तेजना दोनों ही भावना के स्तर को उठाने में सहायक होते हैं। उत्तेजना में भावुकता की मात्रा अधिक होती है। उत्सुकता का छात्र की निष्पत्तियों से धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है।

2. **आकांक्षा** (Expectancy)–किसी कार्य के लिए हम कितनी अपेक्षा करते हैं और कितना वास्तव में कर पाते हैं, यह अन्तर हमें उत्तेजित करता है। यह उत्तेजना प्रदान करने का एक स्रोत भी माना जाता है।

   अनुदेशन के उद्देश्य भी आकांक्षा का कार्य करते हैं। इनसे शिक्षक का विशेष सम्बन्ध रहता है परन्तु शिक्षक को छात्रों की आकांक्षा तथा मूल्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

   छात्र जिस शक्ति से अनुदेशन उद्देश्यों को पाने का प्रयास करता है वही उसकी आकांक्षा तथा शक्ति सन्तुलन का परिणाम होता है। इस प्रकार छात्र जिस प्रेरक को पाना चाहता है उससे उसकी आकांक्षा तथा शक्ति सन्तुलन का पता चलता है।

   आकांक्षा तथा प्रत्यक्षीकरण में अन्तर उत्तेजना स्रोत का कार्य करता है। अन्तर के आकार को छात्र की भावना निर्धारित करती है। अधिक अन्तर होने पर असन्तुष्टि की भावना विकसित होती है और कम अन्तर होने पर प्रसन्नता का अनुभव करता है। निष्पत्ति अभिप्रेरणा इसी का परिणाम होता है।

3. **प्रोत्साहन** (Incentive)–प्रोत्साहन वास्तव में मानव जीवन का लक्ष्य होता है। हल तथा स्पेन्स का मत है कि प्राणी की क्रियाओं को लक्ष्य अथवा प्रोत्साहन द्वारा प्रेरित किया जा सकता है। जीव जो भी क्रियाएँ करता है उनसे कुछ न कुछ पाना चाहता है। जितना ही प्रोत्साहन का आकार बड़ा होता है उतनी ही अधिक प्रेरणा मिलती है। व्यक्ति के कार्य करने की शक्ति प्रोत्साहन की प्रकृति से प्रभावित होती है। बी. एफ. स्किनर पुनर्बलन को भी प्रोत्साहन मानता है।

4. **दण्ड अथवा अनुशासन** (Punishment or Discipline)–दण्ड एक उद्दीपन के समान है जिससे व्यक्ति बचने का प्रयास करता है।

   "सोलमन (1964) दण्ड को उद्दीपन की संज्ञा दी क्योंकि छात्र उससे बचने का प्रयास करता है।"

   दण्ड व्यवहार को रोकने के लिए उतना ही दिया जाना चाहिए जितने से अपना उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। दण्ड के दो रूप होते हैं–

   (*i*) उस व्यक्तियों को दिया जाए जिसने गलत व्यवहार किया हो, जिससे वह भविष्य में उस व्यवहार की पुनरावृत्ति न करे।

नोट

(*ii*) अन्य व्यक्ति के समक्ष इसलिए दिया जाता है, जिससे वह व्यक्ति भी ऐसे व्यवहार न करे।

स्किनर ने दण्ड को स्वास्थ संवेग नहीं माना है क्योंकि इसका आधार भय होता है। उनका सुझाव है कि अवांछनीय कार्यों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। क्योंकि दण्ड देने पर अवांछनीय व्यवहारों को बल मिलता है। छात्रों में हीनभावना आ जाती है, शिक्षक के प्रति सद्भावना नहीं रहती है। अत: इसके प्रयोग यदा-कदा ही करना चाहिए।

*टास्क* आवश्यकता कितने प्रकार की होती है?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. मुख्याध्यापक की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि खेल के मैदान में ..... की तथा युद्ध क्षेत्र में सेनापति की।
2. मुख्याध्यापक के कर्तव्य ..... हैं।
3. जिस प्रकार आत्मारहित शरीर निर्जीव तथा शिथिल है उसी प्रकार अध्यापक के बिना स्कूल ..... है।
4. शिक्षा का मूल उद्देश्य है बालक का ..... करना।

## 9.5 सारांश (Summary)

- नियन्त्रण का तात्पर्य शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया का उद्देश्यों के सन्दर्भ में मूल्यांकन तथा मापन करना है। स्मरण रहे कि जब शिक्षण के उद्देश्य प्राप्त हो जाते हैं तो शिक्षण को सार्थक समझा जाता है। इसके विपरीत यदि उद्देश्यों की प्राप्ति आंशिक रूप से हुई हो अथवा बिल्कुल न हुई तो शिक्षक का कुशल व्यवस्थापक के रूप में शिक्षण परिस्थिति के नियोजन (Planning), व्यवस्था (Organisation) तथा मार्ग-दर्शन (Leading) में आवश्यक परिवर्तन कर लेना चाहिए, जिससे पूर्व निर्धारित एवं परिभाषित उद्देश्य प्राप्त हो जाएँ। इस प्रकार शिक्षक को अपने द्वारा किए गए शिक्षण की सार्थकता को देखने के लिए उसका मूल्यांकन तथा मापन कर लेना चाहिए।
- कुछ समय पूर्व तक परीक्षा प्रणाली में चारों ओर निबन्धात्मक परीक्षाओं का बोलबाला था। ए परीक्षाएँ अधिगम उद्देश्यों की ओर ध्यान न देते हुए केवल पाठ्य-वस्तु के रटने पर बल देती थीं जिससे विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएँ। इन परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों की भाषा, शैली, विचार, तर्क तथा अभिव्यंजन एवं आलोचना आदि मानसिक शक्तियों की जाँच तो सरलतापूर्वक हो जाती थी परन्तु उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों जैसे–रुचियों, रुझानों, संवेगों तथा आदतों एवं व्यवहारों का परीक्षण नहीं किया जा सकता था। इस दोषयुक्त परीक्षा प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए एक नई परीक्षण-विधि का विकास अमरीका में हुआ जिसे मूल्यांकन की संज्ञा दी जाती है।
- मूल्यांकन एक ऐसी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिन प्रतिदिन होता रहता है। हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जहाँ एक ओर दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों का मूल्यांकन करता है वहाँ दूसरी ओर वह दूसरों के व्यावहारिक परिवर्तनों को आधार मानते हुए अपने कार्य का मूल्यांकन भी समय-समय पर करता रहता है।
- शिक्षण के उद्देश्य शिक्षण की कुंजी होते हैं। अत: सफल शिक्षण के लिए पाँच बातों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करना चाहिए वरन् शिक्षण के असफल होने की सम्भावना बढ़ सकती है। वे बातें हैं–(*i*) शिक्षण के उद्देश्य विद्यार्थियों की रुचियों, रुझानों, प्रवृत्तियों, योग्यताओं तथा आवश्यकताओं एवं

नोट

उनके व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक आदि सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित करने चाहिएँ, (*ii*) शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शों को ध्यान में रखना चाहिएँ, (*iii*) शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय विषय-वस्तु के क्षेत्र एवं उसके स्वभाव को दृष्टि में रखना चाहिए, (*iv*) शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय शिक्षा के नर्सरी, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तरों को ध्यान में रखना चाहिए, तथा (*v*) शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय शिक्षा मनोविज्ञान का पूरा ज्ञान होना चाहिए। जब उक्त पाँचों बातों को ध्यान में रखकर शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित हो जाएँ तो शिक्षक को इसके पश्चात् यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि उसे शिक्षण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विकास सम्बन्धी कौन-कौन से क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अन्दर कौन-कौन से परिवर्तन करने हैं।

- सीखने के अनुभवों का तात्पर्य उन साधनों से है जिनके द्वारा अभीष्ट शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। अत: शिक्षण उद्देश्यों को निर्धारित एवं परिभाषित करने के पश्चात् शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि वह ऐसे साधनों अर्थात् शिक्षण सामग्रियों तथा परिस्थितियों का निर्माण करे कि विद्यार्थियों को सीखने के उपयुक्त अनुभव प्राप्त हो जाएँ और अन्त में उन्हीं अनुभवों के द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति सरलतापूर्वक हो जाए।
- शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। यह व्यवहार परिवर्तन स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों के शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों में होता है। वे पक्ष हैं–(*i*) ज्ञानात्मक, (*ii*) भावात्मक तथा (*iii*) क्रियात्मक। मूल्यांकन द्वारा व्यवहार के उक्त-तीनों पक्षों की जाँच की जाती है।
- ज्ञानात्मक पक्ष विद्यार्थियों के व्यवहार का पहला पक्ष है। इसके द्वारा विद्यार्थी नई-नई बातों, सूचनाओं, तथ्यों, घटनाओं तथा सत्यों एवं सिद्धान्तों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करते हैं।
- स्मरण रहे कि व्यवहार के ज्ञानात्मक पक्ष को विकसित करने के लिए कई स्तरों को पार करना पड़ता है। वे स्तर हैं–(*i*) प्रत्यास्मरण तथा पहचान (Recall and Recognition), (*ii*) बोध (Comprehension), (*iii*) विश्लेषण (Analysis), (*iv*) संश्लेषण (Synthesis) तथा (*v*) मूल्यांकन (Evaluation)।
- भावात्मक पक्ष विद्यार्थियों के व्यवहार का दूसरा पक्ष है। इसका सम्बन्ध विद्यार्थियों की रुचियों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों से होता है।
- शिक्षक का यह परम कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों के भावात्मक पक्ष का अधिक से अधिक विकास करे। इसके लिए उसे कई स्तरों से होकर गुजरना पड़ेगा। वे स्तर हैं–(*i*) आग्रहण (Recieving), (*ii*) प्रतिक्रिया (Response), (*iii*) अनुमूलन (Valuing), (*iv*) व्यवस्थापन (Organization), (*v*) मूल्य समूह का विशेषीकरण (Characterization of a value system)।
- क्रियात्मक पक्ष विद्यार्थियों के व्यवहार का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष है। यह ऐसी क्रियाओं में प्रकट होता है जिनके लिए मांसपेशियों (Muscular) तथा शारीरिक एवं आंगिक गतियों की आवश्यकता होती है। क्रियात्मक पक्ष के उपयुक्त उदाहरण हैं–व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा।
- हमारे देश में कई प्रकार की शिक्षाएं हैं और उनका प्रबन्ध भी कई सभाओं या व्यक्तियों द्वारा होता है। परिणाम स्वरूप हर संस्था में अध्यापकों की नियुक्ति का ढंग भिन्न-भिन्न होता है। मुख्य रूप से हमारे देश में तीन प्रकार के स्कूल हैं। सरकारी, अर्धसरकारी तथा ग़ैर सरकारी।
- सरकारी स्कूलों में नियुक्ति करने के लिए कोई समिति होती है। जिसके सदस्य शिक्षा-क्षेत्र की साधारण जानकारी रखते हैं, इसलिए उनकी सहायता के लिए एक विभागीय अधिकारी नियुक्त किया जाता है और उसके परामर्श से अध्यापकों का चुनाव हो जाता है।
- अब अर्धसरकारी स्कूलों को लीजिए। अर्धसरकारी स्कूलों की दशा सरकारी स्कूलों से भी अधिक दयनीय एवं शोचनीय है। कारण यह है कि इनका प्रबन्ध दो के हाथ में होता है। द्वैत-शासन में किसी संस्था का सुचारु

नोट

रूप से चलना सहज नहीं है। इसमें सरकार स्थानीय निकाय (Local body) को स्कूल चलाने के लिए विशेष अनुदान देती है। अध्यापकों की नियुक्ति सरकारी-कर्मचारी स्थानीय निकाय के अधिकारी के अनुमोदन (Approval) से करते हैं। कई बार दोनों अधिकारी सहमत नहीं होते। परिणाम स्वरूप नियुक्तियाँ खटाई में पड़ जाती हैं और स्कूल तथा वहाँ के छात्र अध्यापक की प्रतीक्षा करते हैं। अत: इस ढाँचे (Set up) में भी मुख्याध्यापक की कोई नहीं सुनता।

- तीसरे प्रकार के स्कूल हैं ग़ैर सरकारी। इनकी दशा सरकारी और अर्ध-सरकारी दोनों से भिन्न है। यदि इन स्कूलों को चलाने वाली समितियाँ (Commities) अच्छी हों, उनके सदस्यों में दलबन्दी न हो, उनका स्कूल के मुख्याध्यापक पर पूर्ण विश्वास हो तो इन स्कूलों के अहोभाग्य। अन्यथा इनकी शोचनीय हालत पर खेद ही प्रकट करना पड़े।
- प्रत्येक स्कूल में कई प्रकार के अध्यापकों की आवश्यकता होती है। मुख्याध्यापक के अतिरिक्त भाषा, गणित, विज्ञान, कृषि आदि अनेक विषयों के भी अध्यापक होते हैं। जिस स्कूल में जिन विषयों के अध्यापक की सुविधा प्रदान की गई होगी उन विषयों के अध्यापक रखें जाएँगे। इसलिए प्रत्येक स्कूल में एक जैसी योग्यता के अध्यापक नहीं रखे जा सकते।
- कुछ वर्षों में भारत में ऐसी संस्थाओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है जिनमें सह-शिक्षा है। अभी तक आरम्भिक एवं उच्चतम कक्षाओं में ही सह-शिक्षा का अधिक प्रचलन हुआ है।
- स्कूल चलाने का निर्दिष्ट उद्देश्य एक है–बालकों का सर्वांगीण विकास। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि स्कूल को चलाने वाले सभी कर्मचारियों का आपस में सम्पूर्ण सहयोग हो। स्कूल के आन्तरिक प्रबन्ध में अध्यापक सर्वप्रमुख हैं। अत: अध्यापकों का आपस में सहयोग नितान्त वाँछनीय है। अध्यापकों का मुख्याध्यापक से और मुख्याध्यापक का अपने स्कूल की समिति से सहयोग होना चाहिए।
- मुख्याध्यापक वह है जो अपनी संतुलित एवं अनुभवी दृष्टि से, व्यक्तित्व की विशिष्टता से, अपनी योग्यता एवं कार्यदक्षता से, अपने स्कूल के अध्यापकों का नेतृत्व करता हुआ स्कूल को निर्दिष्ट लक्ष्य तक सफलतापूर्वक ले जा सके। स्कूल में मुख्याध्यापक की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि खेल के मैदान में कैप्टन की तथा युद्ध में सेनापति की।
- मुख्याध्यापक के कर्त्तव्य असीम हैं। पहले भी लिखा जा चुका है, उसकी स्थिति ऐसी है कि स्कूल की हर गतिविधि में उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में हाथ अवश्य रहता है और सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसी का है। इसलिए मुख्याध्यापक यह कह नहीं सकता कि अमुक बात का उसे ज्ञान नहीं। मुख्याध्यापक को चाहिए कि सर्वप्रमुख वह यह समझे कि जिस कार्य को वह करने लगा है उसका उद्देश्य और लक्ष्य क्या है।
- साधारणतया यह देखा गया है कि स्कूल में प्रशिक्षित अध्यापक भी प्रशिक्षण काल में सीखी गई नई शिक्षण-प्रणलियों का प्रयोग नहीं करते; अपितु परम्परा से चले आ रहे ढंग से ही पढ़ाने लग जाते हैं। जो किसी भी अवस्था में स्तुत्य नहीं कहा जा सकता।

  इसलिए मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह प्रत्यत्न करे कि अध्यापक अपने-अपने विषय पढ़ाते समय नवीनतम शिक्षण-प्रणालियों का प्रयोग करें।
- स्कूल का प्रशासन भी महत्वपूर्ण है। प्रशासन से अभिप्राय है स्कूल में कक्षाओं के लिए स्थान निश्चित करना, अध्यापकों को काम बाँटना, किसी अध्यापक के अनुपस्थित होने पर उसके स्थान पर प्रबन्ध करना, स्कूल में अनुशासन रखना, वित्त सम्बन्धी प्रबन्ध आदि। इनमें कई तो दैनिक कार्य हैं।
- स्कूल में अनुशासन का होना या न होना मुख्याध्यापक पर निर्भर करता है। यदि मुख्याध्यापक और अध्यापक पहले स्वयं आदर्श प्रस्तुत करें तो निस्सन्देह छात्र उसका अनुकरण करेंगे।
- मुख्याध्यापक को अच्छे प्रशासक के साथ-साथ एक योग्य अध्यापक होना भी नितान्त वाञ्छनीय है। उसको एक अथवा दो विषयों को पण्डित होना चाहिए और अन्य विषयों का साधारण ज्ञाता। उसको कोई महत्वपूर्ण विषय पढ़ाना चाहिए।

नोट

- सहयोगी अध्यापकों द्वारा किए गए कार्य एवं स्कूल में होने वाली अन्य गतिविधियों का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए मुख्याध्यापक के लिए निरीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि स्कूल में होने वाली प्रत्येक गतिविधि का अन्तिम उत्तरदायित्व मुख्याध्यापक के कन्धों पर होता है इसलिए भी पर्यवेक्षण आवश्यक है।
- मुख्याध्यापक को चाहिए कि वह वर्ष के आरम्भ में ही एक दिन निश्चित कर दे, जिस दिन सभी अध्यापक अपनी-अपनी डायरी दें। उसे डायरी में देखना चाहिए कि क्या अध्यापक पाठ्यक्रम के अनुसार ठीक गति से चल रहा है? क्या उसने अपनी डायरी के अन्त में अपनी कक्षाओं के छात्रों को उत्तम, मध्यम तथा पिछड़े हुए भागों में बाँट कर सूची बनाई हुई है?

  कहने का तात्पर्य यह है कि मुख्याध्यापक अपने कार्यालय में आराम से बैठा हुआ भी अध्यापक की प्रगति के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार डायरी अध्यापक का मार्ग-प्रदर्शन करती है।
- मुख्याध्यापक को साधारणतया एक पक्ष में एक सभा करनी चाहिए या कम से कम एक मास में एक बार। किसी विशिष्ट कार्य के लिए किसी दिन भी स्टाफ सभा बुलाई जा सकती है। इन सभाओं में केवल मुख्याध्यापक ही अपनी योजनाओं और समस्याओं पर ही बोलता न रहे, अपितु अन्य अध्यापकों की समस्याओं को भी सुने। उन्हें अवसर दे कि वह अपने मन की बात स्पष्ट और निर्भीक बन कर कहें।
- शिक्षा क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। नई-नई शिक्षण-प्रणालियाँ हमारे सम्मुख आ रही हैं। मुख्याध्यापक का परम कर्त्तव्य है कि वह उनकी सम्यक् जानकारी प्राप्त करे तथा अपने स्कूल में उन पर प्रयोग करे। इन नए प्रयोगों की जानकारी अध्यापकों को भी करवानी चाहिए।
- स्कूल की आत्मा अध्यापक है, जिस प्रकार आत्मा रहित शरीर निर्जीव तथा शिथिल है, उसी प्रकार अध्यापक के बिना स्कूल अपांग और जड़ है। स्कूल का भवन है बालकों को आश्रय देने के लिए; बालक एकत्रित हुए हैं, पढ़ने के लिए; मुख्याध्यापक है–स्कूल प्रशासन के लिए, प्रत्येक गतिविधि के पर्यवेक्षण के लिए; पर उन गतिविधियों का प्रेरक कौन है?–अध्यापक। अध्यापक स्कूल-चक्र की धुरी है; चक्र को सहज गति प्रदान करने का श्रेय धुरी को है,
- यह प्रसिद्ध उक्ति कि 'वाटरलू का युद्ध ऍटन के खेल के मैदानों में जीता गया था' अध्यापक के महत्त्व को दर्शाती है।
- अध्यापक अपने विषय का कितना महान् पण्डित क्यों न हो यदि उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं है तो वह अध्यापन-कार्य में पूर्ण सफल नहीं हो सकता। व्यक्तित्व क्या है?
- हमारे विचार में व्यक्तित्व बाह्य और भीतरी गुणों को मिला कर देखा जाना चाहिए।

## 9.6 शब्दकोश (Keywords)

- **आकांक्षा**–किसी कार्य अथवा व्यक्ति की सफलता की अपेक्षा ही भावनात्मक रूप से आकांक्षा होती है।
- **प्रोत्साहन**–व्यक्ति के कार्य करने की शक्ति प्रोत्साहन की प्रकृति से प्रभावित होती है।

## 9.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रक्रियागत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. नियुक्ति का क्या अर्थ है? नियुक्ति प्रक्रिया को समझाइए।
3. समूह गतिशीलता (Group dynamics) किसे कहते हैं? वर्णन कीजिए।
4. अभिप्रेरणा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसकी प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिए।

नोट

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

**1.** (*i*) सत्य (*ii*) असत्य (*iii*) सत्य

(*iv*) सत्य।

**2.** (*i*) कैप्टन (*ii*) असीम (*iii*) अपंग और जड़

(*iv*) सर्वांगीण विकास।

## 9.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–10: निर्णय निर्धारण और क्रियान्वयन (Implementing and Decision Making)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 निर्णय/नीति निर्धारण का अर्थ (Meaning of Decision Making)

10.2 निर्णय के प्रकार और प्रक्रिया (Kinds and Process of Decision)

10.3 निर्णय की प्रभावी क्रियान्विति सम्बंधी आवश्यक लक्ष्य (Main Goals of Effective Implementation)

10.4 सारांश (Summary)

10.5 शब्दकोश (Keywords)

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निर्णय निर्धारण के अर्थ, प्रकार और प्रक्रिया की व्याख्या करने में;
- निर्णय की प्रभावी क्रियान्विति सम्बंधी लक्ष्य को समझने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

निर्णय लेना समग्र संगठन की प्रबंधन प्रक्रिया में व्याप्त रहता है। अत: आवश्यकता है कि प्रबंधन सिद्धान्तों में 'निर्णय प्रक्रिया' को अवश्य सम्मिलित किया जाये, ताकि प्रबंधक सही निर्णय ले सकें।

यूँ तो सभी व्यक्ति निर्णय लेते हैं, परन्तु उनके वे निर्णय कितने सार्थक व प्रभावी होते हैं, यह अनुभव, चिन्तन, विचार-विमर्श तथा निर्णय की प्रक्रिया पर निर्भर करता है। यही कारण है कि मैनेजमेण्ट तथा प्रशासन के पाठ्यक्रमों में निर्णय कैसे लिए जायें, के संबंध में प्रशिक्षण पर बल दिया जाता है। अनुभव का आधार मानकर जटिल निर्णय लेने के लिए योग्य व वरिष्ठ अधिकारी को ही यह दायित्व सौंपा जाता है। राष्ट्रीय उच्च पदों पर वे ही ब्यूरोक्रेट निर्णय लेते हैं, जिन्हें लम्बा प्रशासनिक अनुभव है।

प्रशासन और प्रबन्ध की संस्थितियों में निर्णय वस्तुत: पग-पग पर लेना आवश्यक होता है। जब भी कोई समस्या प्रबंधक-प्रशासक के सामने आती है, वह बिना निर्णय लिए सुलझा नहीं सकता। कभी-कभी इतनी जटिल समस्याएँ आ जाती हैं, जिनके बारे में वह अपने को असहाय पाता है। इस स्थिति में यदि निर्णय प्रक्रिया के विभिन्न घटकों का मानव वैज्ञानिक निर्णय लेने की कला उसे ज्ञात है, तो वह जटिल से जटिल समस्याओं को स्वयं या आवश्यकतानुसार सहयोगियों के साथ परामर्श करके अथवा उनके साथ सामूहिक निर्णय के आधार पर समाधान कर सकता है।

नोट

## 10.1 निर्णय करना/नीति निर्धारण का अर्थ (Meaning of Decision Making)

सामान्यतया किसी शैक्षिक या प्रशासनिक समस्या के समाधान के लिए किए गए निश्चय को निर्णय कहा जाता है। कुछ लोग इसे वैकल्पिक कार्य की विधियों और मूल्यांकन और चुनाव की विधि के रूप में परिभाषित करते हैं। ग्रिफिथ्स ने इसे वर्तमान की परिस्थितियों में उपलब्ध विकल्पों के आधार पर भावी घटनाक्रम के रूप में देखा है।

नीति निर्धारण की प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान के लिए उपलब्ध विकल्पों में से किसी एक या अनेक विकल्पों को चुनना होता है। कोई भी प्रबंध प्रशासक जिस विकल्प को उचित समझता है, उसे या तो स्वयं के विवेक से अथवा अपने सहयोगियों की सलाह से चुनता है। यह भी संभव है कि समस्या की गुणवत्ता अधिक नहीं है, तो कुछ समय के लिए कोई भी निर्णय नहीं ले। नीति निर्धारण के लिए समय का चुनाव अत्यंत महत्व रखता है। समय के चुनाव में समस्या के कारण, मूल्य, पर्यावरण आदि कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं।

प्रबंध विषयक लेखक यथा आवंस, आधुनिक विचारक रसल टी ग्रेग कल्बर्स्टन, जी.एल.वेफ, जे.एल. मेकम के समान अन्य भी निर्णय प्रक्रिया को प्रबंधन प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु मानते हैं। इसका मुख्य कारण है कि यह संगठन के समग्र कार्यकलापों को नियंत्रित करता है। लिचफील्ड यहाँ तक कहते हैं कि प्रबंधन उन कार्यकलापों का चक्र (cycle) है, जिसमें आदि और अंत नीति निर्धारण से होता है। जो कुछ इसकी केन्द्रीय स्थिति स्वीकार नहीं करते वे भी शायद इसे किसी भी प्रशासनिक अंग से कम महत्व का स्वीकार नहीं करते हैं।

जब हमें कोई निर्णय व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से लेना ही है, तब कुछ बातों पर विचार करना होता है। साइमन (Simon) के अनुसार निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. संगठन के उद्देश्य की ओर ध्यान,
2. समस्या के संबंध में संबंधित तथ्य और सूचनाएं एकत्रित करना,
3. समस्या के संबंध में अन्य लोगों की राय,
4. प्राप्त सूचनाओं और आँकड़ों का विश्लेषण और समस्या समाधान के संभावित विकल्प,
5. प्रत्येक समस्या समाधान के सम्भावित विकल्प का मूल्यांकन और
6. सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का समस्या समाधान के लिए चुनाव।

ब्रिजेज (Bridges) ने नीति निर्धारण में निम्नलिखित पदों का उल्लेख किया है–

1. समस्या का परिभाषीकरण
2. समस्या समाधान के संभावित विकल्पों का चुनाव
3. तर्कसंगत विकल्पों के संभावित परिणामों पर विचार एवं
4. सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव।

### निर्णय तथा प्रबंधन का संबंध

1950 से पूर्व प्रबंधन के इतिहास में प्रत्यक्षत: निर्णय को प्रबंधन प्रक्रिया के अलग अंग के रूप में नहीं देखा गया। वह या तो योजना निर्माण का अंग रहा या संगठन का। परन्तु 1950 के दशक के प्रशासनिक प्रबंधन साहित्य को देखा जाये तो वह एक प्रकार से नीति निर्धारण का ही साहित्य है। वस्तुत: यह प्रशासन की केन्द्रीय प्रक्रिया है जिसके अधीन सभी प्रशासनिक प्रवृत्तियाँ आती हैं। लिचफील्ड ने प्रशासन को उन घटनाओं का चक्र माना है, जो निर्णय के आधार पर घटित होती हैं। उन्होंने प्रशासन में सर्वप्रथम निर्णय-प्रक्रिया को स्वीकार किया। उनके अनुसार प्रबंधक/प्रशासक केवल निर्णय ही नहीं लेते वरन् उन निर्णयों को लागू करने के लिए कार्यक्रम आयोजित करते हैं। संगठन करना, संगठन की विभिन्न अधिकृतियों को निर्णय से अवगत कराते हैं। (संप्रेषण करना) कार्यक्रमों के लागू करने के लिए विभिन्न कारकों पर ध्यान रखते हैं (नियंत्रण करना) तथा निर्णयों की क्रियान्विति की प्रगति का अवलोकन करते हैं (मूल्यांकन करना) इस प्रकार वस्तुत: समग्र प्रबंध प्रशासन ही, निर्णय प्रक्रिया के अन्तर्गत आ जाता है।

नोट

*क्या आप जानते हैं* शिक्षा प्रशासन के क्षेत्र में हर्बर्ट साइमन द्वारा निर्णय सिद्धांत प्रक्रिया के अध्ययन के क्षेत्र में एक नई दिशा प्रदान की। इस अध्ययन ने प्रशासनिक सिद्धान्त निरूपण के साथ प्रबंध-प्रशासन को निर्णय सिद्धान्त भी दिया है जो आज भी प्रबंधकों व प्रशासकों को मार्गदर्शन देता है।

## 10.2 निर्णय के प्रकार और प्रक्रिया (Types and Process of Decision)

### निर्णय के प्रकार (Types of Decision)

निर्णय के मुख्य रूप से निम्नलिखित चार प्रकार हो सकते हैं–

(1) दैनिक सामान्य निर्णय (Daily Routine decisions)

(2) नीतिगत निर्णय (Policy decisions)

(3) वैयक्तिक निर्णय (Personal or Individual decisions)

(4) सामूहिक निर्णय (Collective decisions)

**(1) दैनिक सामान्य निर्णय**–वे निर्णय दैनिक सामान्य निर्णय कहलाते हैं जिन्हें प्रशासक/प्रबंधक नियमित प्रबंधन के लिए लेता है। इनमें स्टाफ के सदस्यों के अवकाश, प्रवृत्ति प्रभारी संबंधी कार्य विभाजन, नियमान्तर्गत सामान्य क्रय, सेमिनार, स्टाफ को कार्यशालाओं में भेजना एवं सामान्य व्यवस्था संबंधी निर्णय आदि आते हैं। ये वे निर्णय हैं जो परम्परा या विभागीय नियमों में प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत आते हैं। यदि सहानुभूतिपूर्वक स्टाफ की समस्याएँ समझते हुए प्रबंधक स्टाफ के संबंध में विवेकपूर्ण निर्णय लेता है, अनावश्यक व्यवधान खड़ा नहीं करता, पक्षपात रहित निर्णय लेता है तब वह अपने स्टाफ की प्रशंसा अर्जित करता है। इसके विपरीत निर्णय लेने से वह आलोचना का पात्र बन जाता है तथा विद्यालय में प्रबंधक के लिए अवांछित पर्यावरण सृजित हो जाता है।

**(2) नीतिगत निर्णय**–इन निर्णयों को लेने की स्थिति तब पैदा होती है जब प्रबंधक (प्रशासक) को एक नवीन परिस्थिति में निर्णय लेना होता है और जिसके संबंध में स्पष्ट प्रशासनिक निर्देश या परम्पराओं का अभाव होता है। जिन संगठनों की नीतियाँ स्पष्ट लिखित रूप में उपलब्ध होती हैं वहाँ निर्णय लेने में अधिक कठिनाई नहीं होती। इसके विपरीत जिन संगठनों की विविध समस्याओं के संबंध में स्पष्ट नीति नहीं होती, वहाँ निर्णय लेने में प्रबंधक (प्रशासक) को अनेक कठिनाइयाँ आती हैं, भले ही संगठन कितना भी छोटा क्यों न हो।

प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग ने इसी कठिनाई को दूर करने के लिए शिक्षा संहिताएँ (education codes) प्रकाशित की हैं। समय-समय पर नीति संबंधी विविध निर्णय प्रकाशित किए जाते हैं। उदाहरणार्थ–राजस्थान में शिविरा पत्रिका शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित की जाती है। इसी पत्रिका के माध्यम से विभाग समय-समय पर उठने वाली प्रबंधन संबंधी समस्याओं के संबंध में अपनी नीतियाँ प्रसारित करता रहता है, ताकि प्रत्येक विद्यालय उनके आधार पर नीति संबंधी निर्णय ले सके। इस तरह नीति सम्बन्धी अधिकांश मुख्य निर्णय विभाग ही लेता है। फिर भी कुछ ऐसी समस्याएँ आ सकती हैं, जिनका समाधान इन आदेशों में नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में प्रधानाध्यापक को अपने सहयोगियों से मिलकर निर्णय लेना पड़ता है।

विद्यालयी स्तर पर विद्यालय विस्तार के लिए नवीन भवनों का निर्माण, विद्यार्थी स्ट्राइक से उत्पन्न समस्या, शिक्षक की अनुशासनहीनता एवं छात्र अनुशासनहीनता आदि ऐसे विषय हो सकते हैं, जब प्रबंधक/प्रशासक इस प्रकार के निर्णय लेने में कठिनाई का अनुभव करे। इस स्थिति में आवश्यक होता है कि प्रधानाध्यापक, स्टाफ या स्टाफ के वरिष्ठ साथियों अथवा प्रभारी व स्टाफ के एक दो अन्य सहयोगियों के साथ सम्बन्धित पक्ष के साथ विचार-विमर्श कर निर्णय ले। इन निर्णयों में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि नीतिगत निर्णय, सक्षम अधिकारी द्वारा ही लिए

नोट

जायें तथा जिन पर निर्णयों का प्रभाव भविष्य में पड़ता है, उन पक्षों को निर्णय प्रक्रिया में अवश्य सम्मिलित किया जाए, अन्यथा इन निर्णयों का विरोध हो सकता है।

राज्य सरकार द्वारा राज्य कर्मचारियों की वेतन संबंधी नीति को बिना राज्यकर्मियों के साथ विचार-विमर्श के तय नहीं किया जा सकता है। राज्य सरकार की एकतरफा घोषणा को कर्मचारी संघ स्वीकार नहीं करते।

विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थी अथवा स्टाफ सम्बन्धी अनेक निर्णयों के प्रस्ताव पहले शिक्षा संकाय में प्रस्तुत किए जाते हैं फिर अकादमिक काउंसिल और तत्पश्चात् सिंडीकेट/सीनेट/बोर्ड आफ मैनेजमेंट में आते हैं। अन्त में कुलपति के निर्णय से (विभिन्न विचार-विमर्श के बाद) स्वीकृत निर्णयों को लागू किया जाता है। वस्तुत: यह सामूहिक निर्णय की स्वीकृत प्रक्रिया है जो सर्वमान्य होती है।

**(3) वैयक्तिक निर्णय**–वैयक्तिक निर्णय हर व्यक्ति अपने स्तर पर अपने अधिकार क्षेत्र में लेता है। प्रबंधक या प्रधानाध्यापक ही नहीं, शिक्षक भी विद्यार्थियों के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं। यथा, किस प्रकार का गृह-कार्य छात्रों को दिया जाए? कौन सी प्रेजेक्ट या प्रवृत्ति उसकी कक्षा को मुख्य रूप से लेनी चाहिए? कौन सी विधा या विधि किसी पाठ्यांश को पढ़ाने के लिए उपयुक्त होगी? आदि। इसी प्रकार प्रबंधक प्रशासक कौन से कार्य को पहले वरीयता दे, विभिन्न समितियों में किस-किस स्टाफ को रखें? अनुदेशन पर्यवेक्षण कब किया जाय? आदि प्रकार वैयक्तिक प्रकार के निर्णय हैं।

**(4) सामूहिक निर्णय**–जब कोई समूह की समस्या हो तब सामूहिक निर्णय लेना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ स्टाफ की पिकनिक के लिए स्थान का निर्णय, विद्यालय के लिए स्टाफ द्वारा लिए जाने वाली प्रयोजनाओं के संबंध में निर्णय, स्थानीय समुदाय में स्टाफ के द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन आदि ऐसे निर्णय हैं जो सामूहिक निर्णय की श्रेणी में आते हैं। प्रबंधक/प्रशासक को यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे निर्णय जो पूरे विद्यालय समूह को प्रभावित करें, सदैव समूह की राय से लिए जाने चाहिए।

## निर्णायक स्तर

विद्यालयों की परिस्थिति में प्राय: तीन स्तरों पर निर्णय लिए जाते हैं, जैसा कि निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है–

**शैक्षिक निर्णय के प्रबंधकीय स्तर**

| स्तर | निर्णय लेने वाले | क्षेत्र |
|---|---|---|
| उच्च स्तर | विभागीय स्तर<br>(1) राज्य सरकार<br>(2) शिक्षा विभाग<br>(3) शिक्षा परिषद् | शिक्षा विभाग के लक्ष्य, उद्देश्य, नीति आदि संबंधी निर्णय लेना |
| मध्यम स्तर | प्रधानाध्यापक/शिक्षक | शाला स्तर पर उद्देश्यों का विवेचन, तदनुसार प्रधानाध्यापक और शिक्षकों के द्वारा मिलकर निर्णय लेना। |
| निचला स्तर | व्यक्तिगत रूप से निर्णय | कार्य सम्पादन के स्तर पर निर्णय लेना, प्रत्येक स्तर पर भूमिका निश्चित करना एवं नीतियों को लागू करना। |

### उच्च स्तर

यह स्तर निर्णयों की क्रियान्विति का होता है। इस स्तर पर निर्णय की क्रियान्विति के लिए प्रत्येक कार्यकर्ता की भूमिका निश्चित की जाती है, ताकि निर्णय सुचारु रूप से लागू किया जा सके।

नोट

इस प्रकार प्रशासनिक प्रक्रिया में निर्णय एक महत्वपूर्ण अंग है।

नोट्स निर्णयों का व्यापक प्रभाव पड़ता है, अत: निर्णयों को वैज्ञानिक ढंग से लिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ स्टाफ की नियुक्ति सेवा शर्तों के संबंध में निर्णय के लिए संगठन में प्रबंधक को व्यापक विचार-विमर्श कर सेवा संबंधी नियम तय करना चाहिए, अन्यथा स्टाफ की ओर से आक्रोश प्रदर्शित किया जा सकता है।

## निर्णय प्रक्रिया (Decision Process)

निर्णय प्रक्रिया से आशय निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चिन्तन के बाद प्राप्त विकल्पों में से निश्चित विकल्प को अपनाने से है। दूसरे शब्दों में उद्देश्य प्राप्ति के लिए उपलब्ध विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प के चुनाव की विधि है। इस प्रक्रिया में सही समस्या का आकलन हो, तत्सम्बन्धी उपयुक्त दत्त प्राप्त हों, समस्या समाधान के लिए विकल्पों के बारे में चिन्तन हो और निश्चित विकल्पों में से सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प के चुनाव का निर्णय लिया जाये इसे निर्णय की प्रक्रिया कहा जा सकता है।

साइमन ने निर्णय लेने से पूर्व निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना परमावश्यक माना है–

(1) संगठन के उद्देश्यों पर विचार।

(2) समस्या के संबंध में सही तथ्यों और सूचनाओं को एकत्रित करना

(3) समस्या के संबंध में अन्य लोगों की राय।

(4) प्राप्त सूचनाओं और आँकड़ों का विश्लेषण और समस्या समाधान के संभावित विकल्पों पर विचार।

(5) प्रत्येक समस्या समाधान के संभावित विकल्प का मूल्यांकन।

(6) समाधान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का चुनाव।

ब्रिजेज (Bridges) ने नीति निर्धारण में निम्नलिखित 4 कदमों का उल्लेख किया है–

(1) समस्या का परिभाषीकरण।

(2) समस्या समाधान के संभावित विकल्पों का चुनाव।

(3) तर्कसंगत विकल्प के संभावित परिणामों पर विचार।

(4) निर्णय के लिए सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव।

साइमन एवं ब्रिजेज के नीति-निर्धारण सम्बन्धी उपर्युक्त प्रतिमान केवल सुझाव मात्र हैं। कोई भी प्रशासक अपने ढंग से भी मॉडल तैयार कर सकता है। डिल (W. R. Drill) ने समस्या के निराकरण में निर्णय से पूर्व अन्य कदमों के साथ-साथ तत्संबंधी पर्यावरण (Environment) जानने के लिए अत्यधिक महत्व दिया है जिसमें किसी प्रशासक को निर्णय लेना पड़ता है।

हेरीसन ने निर्णय प्रक्रिया में 6 कदमों का उल्लेख किया है–

(1) उद्देश्य या समस्या का निर्धारण।

(2) विकल्पों पर विचार।

(3) प्रत्येक विकल्प के बारे में दूसरे विकल्पों की तुलना में श्रेष्ठता संबंधी विचार करना।

(4) सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का चुनाव।

(5) निर्णय को पूरा करना।

(6) निर्णय की क्रियान्विति का अनुकरण (फॉलोअप) करना।

नोट

**हैरीसन के निर्णय प्रक्रिया पद**

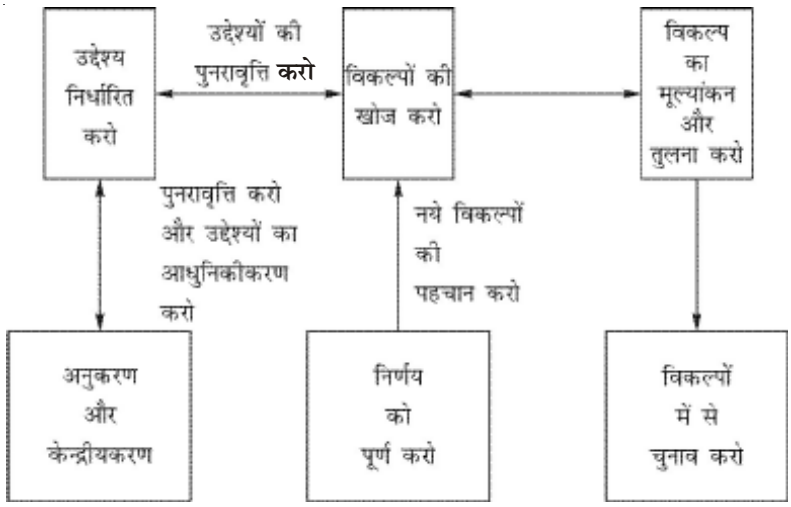


नीति निर्धारण के सम्बन्ध में उपर्युक्त सैद्धांतिक विवेचन के बाद लेखक ने स्कूलों की परिस्थिति में निर्णय प्रक्रिया के लिए दो मॉडल तैयार किए हैं–एक तो व्यक्तिगत निर्णयों के लिए एवं दूसरा सामूहिक रूप से निर्णयों के लिए–

### व्यक्तिगत आधार पर नीति निर्धारण प्रतिमान

प्रबंधक/प्रशासक के लिए यह संभव नहीं होता कि वह प्रतिदिन अधिकाधिक निर्णय स्टाफ के सहयोग से ले सके। प्राय: अधिसंख्यक निर्णय उसे स्वयं विवेक से लेने पड़ते हैं। लेखक द्वारा राजस्थान के 260 माध्यमिक विद्यालयों का सर्वेक्षण करने पर पता चला कि 80 प्रतिशत निर्णय प्रधानाध्यापकों द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर स्वयं विवेक से लिए गए जबकि लगभग 20 प्रतिशत निर्णय ही स्टाफ के सहयोग से लिए गए।

जब प्रबंधक/प्रशासक को स्वयं के विवेक से निर्णय लेना हो तो अग्रलिखित पदों को अपनाना उपयुक्त होता है–

1. **उद्देश्य, लक्ष्य या समस्या के बारे में पता लगाना**–प्रत्येक कुशल प्रबंधक/प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि जैसे ही कोई समस्या उत्पन्न हो, पता लगा ले और समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाना शुरू कर दें।
2. **समस्या के संबंध में सूचनाएँ या दत्तों को एकत्रित करना**–समस्या समाधान के लिए समस्या संबंधी विविध दृष्टिकोणों से सूचनाएँ एकत्रित करना परमावश्यक है। सूचनाएँ जितनी सही और पर्याप्त मात्रा में होंगी, निर्णय उतना ही अच्छा होगा।
3. **समस्या को परिभाषित करना**–समस्या की गुरुता कितनी है? किस प्रकार की समस्या है? आदि की परिभाषा करना भी निर्णय लेने के दृष्टिकोण से उपयुक्त है।
4. **समस्या के पर्यावरण के सम्बन्ध में विचार करना**–एक कुशल प्रशासक को विद्यालय की समस्या के संबंध में पर्यावरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। यथा विद्यार्थी, शिक्षकों एवं प्रशासन की धारणाओं का जितना ठीक ज्ञान प्रशासक को होगा, उतना ही समस्या समाधान में सभी का सहयोग मिलेगा।
5. **समस्या समाधान के लिए विविध विकल्पों का पता लगाना**–समस्या समाधान के लिए निर्णय लेने से पूर्व अनेक विकल्पों पर सोचना परमावश्यक है। ये विकल्प ही सही निर्णयों के लिए आधार बनते हैं। साथ ही निर्णय लेने पर आने वाली बाधाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए।
6. **प्रत्येक विकल्प की युक्तता का मूल्यांकन करना**–जब अनेक विकल्पों पर प्रबंधक विचार कर ले तब उसे प्रत्येक विकल्प की युक्तता को तर्क पर कसना चाहिए। जो विकल्प सर्वाधिक उपयुक्त लगे, उसी के संबंध में निर्णय लिया जाना चाहिए।

नोट

नोट

7. **समस्या समाधान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प के बारे में निर्णय लेना**–विकल्प जितना तर्कसम्मत एवं उपयुक्त होगा, निर्णय उतना ही सफल होगा।
8. **निर्णय का मूल्यांकन**–अन्त में प्रबंधक को समय-समय पर उसके द्वारा लिए गए निर्णय का मूल्यांकन करते रहना चाहिए अन्यथा निर्णय किस सीमा तक फलीभूत हुआ है, यह ज्ञात नहीं हो सकेगा।

## सामूहिक निर्णय प्रक्रिया संबंधी प्रतिमान

जब प्रबंधक को नीतिगत अथवा सामूहिक निर्णय लेना हो तब अग्रलिखित निर्णय प्रक्रिया मॉडल को अपनाया जा सकता है–

प्रबंधक द्वारा परस्पर विचार-विमर्श द्वारा

समूह में लिए जाने वाले निर्णयों के लिए प्रतिमान

### सामूहिक निर्णय के लिए प्रतिमान

उपर्युक्त मॉडल व्यक्तिगत निर्णय के मॉडल से थोड़ा सा ही भिन्न है। भिन्नता इस बात में है कि व्यक्तिगत रूप से निर्णय लेते समय निर्णय लेने वाले को ही सभी प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, वहीं इस प्रक्रिया में प्रधानाध्यापक को समस्या की अनुभूति होते ही समस्या के परिभाषीकरण से लेकर, पर्यावरण के अध्ययन, समस्या के समाधान के लिए विकल्पों के संबंध में चिन्तन, विकल्पों का मूल्यांकन, विकल्पों में सर्वाधिक उपयुक्त विचारों के बारे में निर्णय एवं उसकी क्रियान्विति करने तक के सभी कदम स्टाफ के सहयोग से सम्पन्न कराने होते हैं।

परन्तु व्यक्तिगत निर्णय जहां जल्दी लिए जा सकते हैं वहीं स्टाफ के साथ निर्णय लेने में थोड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। मुख्य कठिनाई अध्यापन में बिना व्यवधान के स्टाफ के सहयोग से निर्णय लेने की होती है। यह समय स्कूल समय के बाद ही मिल सकता है। यदाकदा तो स्कूल के बाद विविध निर्णयों के लिए बैठक बुलाने में स्टाफ को कोई आपत्ति नहीं होती परन्तु नियमित रूप से यह संभव नहीं है। विद्यालय स्तर पर कार्य करने वाले शिक्षकों के एक सर्वेक्षण के अनुसार पाक्षिक एवं मासिक रूप से ही बैठक के लिए शिक्षक सहमत होते हैं।

ऐसे स्कूल जहां दो पारी विद्यालय हैं, वहाँ तो सामूहिक निर्णय लेना बहुत ही कठिन है। मुख्य समस्या यह है कि इसके लिए स्टाफ के सभी सदस्य एकत्रित कैसे हों? यदि दोनों पारियों के मध्य समय चुना जाता है तो पहले से ही कम समय का कालांश (30 मिनट से) और भी घट कर 20 से 25 मिनट रह जाता है जो उपयुक्त नहीं है। स्कूल के बाद का समय प्रथम पारी के शिक्षकों के लिए उपयुक्त नहीं है।

## अन्य निर्णय प्रतिमान

**1. गुणवत्ता बनाम स्वीकार्य निर्णय प्रतिमान**–कभी-कभी प्रबंधक के सामने ऐसी स्थिति आती है जब एक ओर निर्णय से गुणवत्ता जुड़ी हुई है तो दूसरी ओर निर्णय की आम स्वीकृति है। एक परिस्थिति जिसमें मूल्य और प्रभावशीलता के आधार पर कोई निर्णय किया जाना है, यथा किसी पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता अस्थायी अथवा स्थायी स्टाफ आधारित नियुक्ति के बारे में से चुनाव करना हो। प्रथम विकल्प में न केवल वित्तीय दृष्टि से कम वित्तीय लागत आती है, वरन् पाठ्यक्रम भी प्रभावी ढंग से पूरा होता है दूसरे विकल्प में स्थायी स्टाफ की नियुक्ति जो मूल्य सम्मत है, पाठ्यक्रम भी प्रभावी ढंग से पूरा नहीं होता अत: प्रभावशीलता भी प्रभावित होती है, तब क्या निर्णय लिया जाए? आज के भारतीय परिवेश में इस विकल्प का विरोध हो सकता है और आम सहमति दूसरे विकल्प स्थायी स्टाफ आधारित की हो सकती है। अत: प्रबंधक यह जानते हुए भी कि आर्थिक व प्रभावशीलता की दृष्टि से कोई श्रेष्ठ निर्णय अन्य संगठन कर्मियों के द्वारा स्वीकार नहीं होने के कारण नहीं होता है क्योंकि क्रियान्विति में वहीं निर्णय सफल होता है जिसमें कर्मियों की आम स्वीकृति होती है।

नोट

**गुणवत्ता बनाम स्वीकार्य निर्णय प्रतिमान**

| | | |
|---|---|---|
| उच्च संबंध | 8– इस वर्ग में समस्याएँ | इस वर्ग में कर्मियों के साथ |
| | 7– समूह द्वारा निर्णय लेने के लिए उपयुक्त हैं। | विचार-विमर्श के आधार पर |
| | 6– | निर्णय लिए जाने की अपेक्षा है। |
| | 5– | |
| स्वीकृति आयाम | 4– इस वर्ग में समस्याओं | इस वर्ग की समस्याओं |
| | 3– का अहस्तक्षेपीय पद्धति | को विशेष और कुशल |
| | 2– से या सिक्का उछाल कर | नेतृत्व द्वारा सुलझाया |
| | 1– हल किया जा सकता है। | जा सकता है। |
| निम्न संबंध | | गुणवत्ता आयाम |

यद्यपि जब स्पष्ट लाभकारी व दक्षता लाने वाला निर्णय स्वयं प्रबंधन ले सकता है, परन्तु ऐसे निर्णय जिनसे व्यक्ति की नौकरी और लाभ पर प्रभाव पड़ता है, उन्हें स्वीकार कराना प्रबंधन के लिए आसान नहीं होता।

उपर्युक्त चित्र से उच्च संबंध आयाम में जहाँ वे समस्याएँ जिनसे आम कर्मियों पर प्रभाव पड़ता, आम सहमति से निर्णय लिए जाने चाहिए, परन्तु जहाँ उनके कार्य या लाभ पर असर पड़ता है, भले ही निर्णय उपयुक्त हैं, तभी स्वीकार होता है जब नेतृत्व कुशलता से कर्मियों को संतुष्ट करता है।

सही समस्याओं जिनका विशेष प्रभाव कार्यकर्ताओं पर नहीं पड़ता, उन पर आसानी से निर्णय लिया जा सकता है। परन्तु उन समस्याओं को सुलझाने में नेतृत्व को विशेष योग्यता व कुशलता का परिचय देना होता है जिनका कर्मियों पर सीधा विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसे में कर्मियों को आश्वस्त करना आवश्यक है कि इससे संगठन की कुशलता बढ़ेगी।

अत: प्रबंधन के लिए यह आवश्यक है कि निर्णय से पूर्व समस्याओं का वर्गीकरण करे। जो समस्याएँ कर्मियों से विशेष संबंध नहीं रखतीं, प्रबंधन की कुशलता को बढ़ाती है, उन पर निर्णय ले लिया जाना चाहिए, परन्तु जहाँ कर्मियों से संबंध रखने वाली समस्याएँ हैं और वे भी जो उनके वेतन व सेवा से संबंधित हैं, उनको कर्मियों के साथ विचार-विमर्श और सहमति व पूर्ण प्रबंधन कुशलता से ही लिया जाना चाहिए जिसकी आवश्यक पूर्व तैयारी प्रबंधक को करनी चाहिए।

**2. निराशावादी निर्णय प्रतिमान**–इसके अन्तर्गत यह कल्पना की जाती है कि किसी भी निर्णय की तीन संस्थितियाँ होती हैं–उदाहरणार्थ–विद्यालय में एक नवीन विज्ञान प्रयोगशाला निर्माण करनी है। इस स्थिति में तीन संस्थितियाँ पैदा होती हैं–नई प्रयोगशाला बनाई जाये, (2) विद्यालय भवन में ही किसी कक्ष को प्रयोगशाला बना लिया जाये, अथवा (3) कुछ नहीं किया जाये अर्थात् यथास्थिति बनाए रखी जाय। जहाँ विचार यह किया जाना है कि–

1. नवीन प्रयोगशाला से शिक्षा की गुणवत्ता पर क्या प्रभाव आएगा?
2. वित्तीय स्त्रोत कहाँ से प्राप्त होगा?
3. नवीन प्रयोगशाला बनने से अन्य व्यक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

इस संस्थिति में निराशावादी प्रतिमान के अनुसार चुनाव का सूत्र $C^1, C^2, C^3$ होगा। अन्य कारकों यथा वित्तीय व मानवीय पर भी विचार करना होगा। इस आधार पर हम निवेश प्रतिफल (Return on investment) को आधार मानकर निर्णय ले सकते हैं।

यहाँ निर्णय संबंधी विकल्प सर्वोत्तम से निकृष्ट के मध्य होगा। उदाहरण के लिए सर्वाधिक निकृष्ट विकल्प होगा $C^1$-1, $C^2$-2, $C^3$-3 अथवा निराशावादी विकल्प का चुनाव कर सकते हैं जिसका अर्थ है कि विद्यालय भवन में कोई भी नवीन प्रयोगशाला का निर्माण न कर, यथास्थिति बनाई रखी जाये। यह निकृष्ट विकल्प में से सर्वोत्तम के चुनाव की स्थिति है।

नोट

यदि इस फार्मूले की वित्तीय स्थिति का आकलन किया जाये तो अग्रलिखित स्थिति बनती है–

विकल्प/मत/आर्थिक

| | *विपक्ष में मत* | *कोई मत नहीं* | *पक्ष* |
|---|---|---|---|
| नवीन प्रयोगशाला निर्माण | 1 | 3 | 7 |
| भवन में ही किसी कक्ष को प्रयोगशाला में परिवर्तित | 2 | 4 | 5.5 |
| कोई परिवर्तन नहीं, यथास्थिति रखी जाए | 3 | 3.5 | 4 |

उपर्युक्त सारणी से पक्ष में 7 अंक मिलने से निर्णय यह होगा कि विद्यालय भवन में नई प्रयोगशाला निर्मित की जाये। दूसरा विकल्प निम्नानुसार होगा।

| *विकल्प* | *आर्थिक पक्ष* | | | *अधिकाधिक विपक्ष* |
|---|---|---|---|---|
| | $E^1$ | $E^2$ | $E^3$ | |
| $C^1$ | 2 | 1 | 0 | 2 |
| $C^2$ | 1 | 0 | 1.5 | 1.5 |
| $C^3$ | 0 | 0.5 | 3 | 3 |

इस प्रतिमान के अन्तर्गत निर्णयकर्ता उस विकल्प को चुनता है जिसमें आर्थिक दृष्टि से कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् यथास्थिति बनाए रखना जिससे किसी वित्तीय कारक की आवश्यकता नहीं रहती।

श्रेष्ठतर स्थिति वह होगी जिसमें मध्यम मार्ग अपनाया जाये, जहाँ न अधिक आर्थिक जोखिम हो और कार्य-प्रणाली को सुधारा भी जा सकता हो अर्थात् हम वर्तमान विद्यालय भवन में ही आवश्यक सुधार कर नई प्रयोगशाला निर्माण करें, जिससे विद्यार्थी एवं शिक्षकों की संतुष्टि के साथ विद्यालय में नई प्रयोगशाला का निर्माण हो सकेगा।

हर्बर्ट साइमन ने प्रबंधकों के निर्णय लेने के संदर्भ में एक मार्गदर्शिका प्रस्तावित की है जो प्रबंधनकर्ताओं के लिए अत्यंत उपयोगी हो सकती है। इसमें साधारण व जटिल समस्याओं को पारंपरिक व आधुनिक तकनीक के आधार पर सुलझाने का आधार प्रस्तुत किया है जो निम्नानुसार है–

1. साधार समस्या संबंधी
   नियम, नीति, प्रक्रिया गुणावगुण आधार पर विश्लेषण
2. जटिल समस्या
   अन्तर्दृष्टि, न्याय, कुशलता भावना, उच्च तकनीकी योग्यता

**निर्णय लेने की परंपरागत व आधुनिक तकनीकें**

**निर्णय के प्रकार–**

1. योजनाबद्ध
   दैनिक, पुनरावृत्ति प्रकार के निर्णय के लिए प्रक्रिया के आधार पर निर्णय लेना
2. पारंपरिक
   1. स्वभाव/आदत
   2. वे जिनमें लिपिकीय आम स्तर के निर्णय की निर्धारित प्रक्रिया हो।
   3. संगठनात्मक संरचना, जन सामान्य अपेक्षाओं
4. आधुनिक
   अनुसंधान/ गणितीय विश्लेषण, प्रतिमान कम्प्यूटर या अन्य इलेक्ट्रोनिक माध्यम द्वारा दत्तों के

नोट

| | | |
|---|---|---|
| | के लिए–एक प्रणाली या सुपरिभाषित दत्त और माध्यम के आधार पर। | विश्लेषण के आधार पर। |
| **अनियोजित–** | | |
| संक्षिप्त, त्रुटिपूर्ण, संचरित परन्तु महत्व–पूर्ण समस्याओं का सामान्य समस्या समाधान प्रक्रिया के आधार पर। | 1. न्याय, अन्तर्दृष्टि तथा सृजनशीलता।<br>2. अधिकृति के स्वयं का नियम।<br>3. अधिकृतियों का चयन व प्रशिक्षण। | 1. समस्या समाधान विधि का प्रयोग<br>2. मानवीय निर्णयों के लिए उचित प्रशिक्षण।<br>3. कम्प्यूटरीकृत अन्वेषण आधारित कार्यक्रम। |

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

साइमन ने निर्णय लेने से पूर्व निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना परमावश्यक माना है–

1. संगठन के ..... पर विचार अवश्य करना चाहिए।
2. ..... के संबंध में अन्य लोगों की राय लेनी आवश्यक होती है।
3. समस्या समाधान के लिए सबसे ..... का चुनाव करना चाहिए।
4. हेरीसन ने निर्णय प्रक्रिया में उद्देश्य या ..... निर्धारण पर विशेष बल दिया है।

## 10.3 निर्णय की प्रभावी क्रियान्विति सम्बंधी आवश्यक लक्ष्य (Main Goals of Effective Implementation of Decision)

कोई भी निर्णय तब तक पूर्णतया प्रभावी ढंग से लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि निर्णय क्रियान्विति करने वाले व्यक्तियों की निर्णय के प्रति प्रतिबद्धता नहीं हो। अनेक अच्छे निर्णय इस कारण क्रियान्वित नहीं हो पाते कि व्यक्तियों में निर्णय लागू करने के प्रति समर्पण का अभाव होता है। यह कठिनाई तब और बढ़ जाती है जब किसी निर्णय की क्रियान्विति में परस्पर सहयोग व विश्वास की कमी हो। निर्णयों की प्रभावी क्रियान्विति के लिए निम्न लक्ष्यों पर विचार किया जाना चाहिए–

1. **नियंत्रण संबंधी लक्ष्य–**निर्णय पूर्णतया लागू किया जा सके, इसके लिए कुछ व्यक्तियों पर इसका दायित्व सौंपना आवश्यक है ताकि वे निर्णय के मूल्यांकन अथवा परिणाम जानने के समय निर्णय के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण आवश्यक स्पष्टीकरण दे सकें।
2. **उत्प्रेरणा संबंधी लक्ष्य–**जहाँ तक हो निर्णय लेने वाले और निर्णय क्रियान्विति करने वालों के मध्य अंतराल को घटाया जाना चाहिए, ताकि प्रत्येक व्यक्ति निर्णय के प्रति अपने को उत्तरदायी समझे।
3. **गुणवत्ता संबंधी लक्ष्य–**निर्णय प्रक्रिया में उन व्यक्तियों को अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए जो निर्णय लेने में विशेष योगदान दे सकते हों। अनुभवी तथा गंभीर व्यक्तियों को इस प्रक्रिया में सम्मिलित करने से निर्णयों की गुणवत्ता बढ़ जाती है।

नोट

4. **प्रशिक्षण संबंधी लक्ष्य**–संगठन में भाग लेने वाले उन कर्मियों को जो प्रशासनिक कार्यों से संबद्ध हैं, उनको विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान एवं आवश्यक कौशलों के विकास के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे संगठन में निर्णय की कुशलता बढ़ती है।
5. **प्रभावीपन का लक्ष्य**–जहाँ तक हो निर्णय शीघ्र तथा आवश्यक प्रक्रिया के अनुसार लिए जाएँ तथा यह भी देखा जाये कि अनावश्यक मानवीय शक्ति व्यर्थ में नष्ट न हों।

**निर्णय संबंधी समस्याएँ**

निर्णय संबंधी अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। इन्हें हम मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1. प्रक्रिया अथवा तकनीकी संबंधी।
2. संगठन अथवा प्रशासन संबंधी।
3. भौतिक कारण।
4. मानवीय कारण।

**प्रक्रिया अथवा तकनीकी कारण**–यह प्रारंभ में लिखा जा चुका है कि प्रभावी निर्णय लेने के लिए आवश्यक प्रक्रिया अपनानी चाहिए। हमारे निर्णय अनेक प्रक्रिया अथवा तकनीकी कारणों से अप्रभावी रह जाते हैं। ये कारण निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं–

(1) समस्या का उपयुक्त व स्पष्ट परिभाषीकरण न होना।
(2) समस्या के संबंध में निर्णय लेने से पूर्व समुचित तथा विश्वसनीय तथ्यों का अभाव होना।
(3) निर्णयकर्ता में निर्णय तकनीकी ज्ञान का अभाव का होना।
(4) निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए निर्णयकर्ता को आवश्यक चरणों की अस्पष्टता का होना।
(5) निर्णय प्रभाव का समुचित मूल्यांकन न होना।
(6) निर्णय लेने में विलंब होना।
(7) अपरिपक्व निर्णयों का लिया जाना।

**संगठन अथवा प्रशासन संबंधी कारण**

(1) निर्णय लेने वाली सक्षम अधिकृतियों के अधिकारों के संबंध में अनिश्चितता।
(2) विभिन्न अधिकृतियों के मध्य उचित संप्रेषण का अभाव।
(3) निर्णय को क्रियान्वित करने वाले अधिकारों की उपेक्षा।
(4) निर्णय के नियमित व समुचित मूल्यांकन का अभाव।
(5) निर्णय लेने में अधीनस्थों पर अविश्वास एवं निर्णय की अस्पष्टता।

**भौतिक कारण**

(1) तथ्यात्मक सामग्री का न होना।
(2) निर्णय के लिए आवश्यक सामग्री के संकलन व विश्लेषण का अभाव।
(3) निर्णय प्रक्रिया के मूल्यांकन संबंधी तथ्यों का अभाव।

**मानवीय कारण**

(1) बाह्य दबाव के कारण पक्षपातपूर्ण निर्णय का लिया जाना।
(2) वैयक्तिक रुझान अथवा हठधर्मिता के कारण सही निर्णय का न लिया जाना।
(3) वैयक्तिक स्वार्थ अथवा किसी प्राप्ति के कारण निष्पक्ष निर्णय का न लिया जाना।

**प्रभावी निर्णय के लिए आवश्यक कारक**

संगठन में निर्णय प्रभावी ढंग से लिए जाएँ इसके लिए चार कारकों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

नोट

(1) संगठन की संरचना–निर्णय प्रक्रिया की प्रकृति के अनुरूप हो। जब संगठन में अनेक संरचनाएँ हो जाती हैं, तब प्रभावी निर्णय लिया जाना कठिन होता है। उदाहरणार्थ दो पारी विद्यालय और एक पारी विद्यालय की संगठनात्मक संरचना भिन्न होने के कारण निर्णय प्रक्रिया भिन्न होगी। दो पारी प्रधानाध्यापक को दोनों ओर और कभी-कभी तीनों पारियों के शिक्षकों (जो शिक्षक दोनों पारियों में आते हैं) से विचार-विमर्श के बाद ही निर्णय लेना होता है, जिसके लिए पूर्व सूचना/समय व स्थान के निश्चय के साथ 'संबंधित अधिकृतियों की सहभागिता' का आश्वासन आदि आवश्यक होता है, जबकि एक पारी विद्यालयों में इस जटिलता की आवश्यकता नहीं है।

(2) संगठन में औपचारिक एवं अनौपचारिक समूहों का मिलकर कार्य करना प्रभावी निर्णय के लिए आवश्यक है। परन्तु यदि अनौपचारिक समूहों के 'क्लिक्स' निर्णय प्रक्रिया में बाधक बनते हैं, तब सही निर्णय लेने व उन निर्णयों की क्रियान्विति दोनों में बाधा उपस्थित हो सकती है। अत: निर्णय असफल हो जाते हैं। असफल निर्णय इस बात के द्योतक हैं कि संगठन में औपचारिक व अनौपचारिक समूह मिलकर कार्य नहीं कर रहे हैं।

किसी निर्णय की सफलता और असफलता में औपचारिक या अनौपचारिक समूह की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरणार्थ शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक निर्णय की सफलता में शिक्षकों के अनौपचारिक समूह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं क्योंकि निर्णय अनेक श्रेणियों यथा बोर्ड ऑफ स्टडीज, अकादमिक काउंसिल व सीनेट आदि से होकर आते हैं। विभिन्न शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के समूह भी इन निर्णयों को प्रभावित करते हैं। प्रशासन सचिव/उपकुलपति को तो बड़े धैर्य के साथ संपूर्ण औपचारिकता पूर्ण होने तक अन्तिम निर्णय के लिए प्रतीक्षा करनी होती है।

(3) निर्णय के अनुरूप अधिकृति का व्यवहार प्रभावी निर्णय की क्रियान्विति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। यदि स्वयं नेतृत्व या अधिकृति किसी निर्णय के विपरीत आचरण करें तो स्वाभाविक है कि अधीनस्थ कर्मचारी भी निर्णय के प्रति पूरी निष्ठा व सजगता प्रदर्शित नहीं करेंगे। यह देखा गया है कि यदि अधिकृति किसी निर्णय पर पूर्ण ईमानदारी व निष्ठा को अमल करती है तो अधीनस्थ भी उस निर्णय को स्वीकार कर अमल करते हैं।

(4) जब प्रशासनिक अधिकृति निर्णय लेने के स्थान पर निर्णय के नियंत्रण पर अधिक ध्यान देती है तब निर्णय अधिक प्रभावी होते हैं।

## निर्णय लेने की शैलियाँ

निर्णय शैलियाँ वस्तुत: प्रशासनिक शैलियाँ ही हैं। शिक्षक प्रबंधन के इतिहास में मुख्य रूप से तीन प्रकार की निर्णय शैलियों का उल्लेख मिलता है–(1) जनतंत्रीय निर्णय शैली, (2) आधिकारिक निर्णय शैली तथा (3) अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली। परन्तु गत कुछ वर्षों में हुए अनुसंधानों ने दो और नेतृत्व शैलियों का पता लगाया है। बांकों ने इन्हें मध्यवर्तीय शैली (Transactional style) तथा छद्म-जनतांत्रिक शैली (Pseudo-democratic style) का नाम दिया है। पाँचों निर्णय शैलियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **जनतंत्रीय निर्णय शैली**–इस शैली में निर्णय संगठन के सदस्यों की आम सहमति से लिए जाते हैं। किसी भी समस्या पर खुलकर बात होती है। प्रत्येक व्यक्ति निर्णय के पक्ष अथवा विपक्ष में खुलकर अपनी राय देता है। नेतृत्व धैर्यपूर्वक संगठन के सदस्यों अथवा उनके प्रतिनिधियों की राय सुनता है और सभी के मान्य निर्णय को स्वीकार किया जाता है। विद्यालय की स्थिति में जनतांत्रिक शैली अपनाने वाला प्रधानाध्यापक प्रथम तो स्टाफ की बैठक आमन्त्रित करके निर्णय लेता है अथवा शीघ्रता की स्थिति में स्टाफ के मध्य से चुने हुए सचिव व वरिष्ठ सहयोगियों के साथ मिलकर आम सहमति से निर्णय लेता है। बाद में निर्णय के बारे में स्टाफ की स्वीकृति ली जाती है। नेतृत्व अपने निर्णय नहीं थोपता। वह केवल अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। निर्णय क्रियान्वित के लिए दायित्व विभाजन भी किया जाता है। चूंकि संगठन के सभी निर्णय आम सहमति से होते हैं, अत: निर्णयों

नोट

की क्रियान्विति में व्यवधान कम होता है। इस निर्णय शैली की अनुशंसा प्रशासन साहित्य में विशेषकर 1935 से 1950 के मध्य सर्वाधिक की गई है।

2. **आधिकारिक निर्णय शैली**–भारतीय जनमानस में आज भी परम्पराओं से प्रशासन की आधिकारिक शैली को पसंद किया जाता है। अत: स्वाभाविक है कि अनेक विद्यालय प्रधानाध्यापक इस शैली को अपनाते देखे जाते हैं। इस शैली में नेतृत्व स्वयं या वरिष्ठ सहयोगियों के साथ परामर्श कर निर्णय लेता है। प्रशासक यह मानकर चलता है कि अनुभव व प्रशासनिक योग्यता के कारण वह निर्णय लेने में अधिक सक्षम है। वह यह अपेक्षा करके चलता है कि उसके द्वारा लिए गए निर्णय स्टाफ को मान्य होंगे। मेक ग्रेगर के सिद्धान्त के अनुसार वह यह भी मानकर चलता है कि अधीनस्थ चूंकि कम योग्य तथा कार्य से जी चुराने वाले होते हैं, अत: आत्म-निर्णय के लिए अधिकारी नहीं है। उन्हें तो निर्णय की क्रियान्विति में योग देने की ही जिम्मेदारी होनी चाहिए।
3. **अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली**–इस शैली में तो अधिकृति पूरा दायित्व स्टाफ पर ही छोड़ देती है। जैसा कुछ भी हो रहा है वह उसी से सन्तुष्ट रहती है। विभिन्न प्रभारी अपने-अपने स्तर पर निर्णय लेते रहते हैं। अधिकृति किसी भी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती।
4. **मध्यवर्तीय शैली**–यह शैली जनतांत्रिक नेतृत्व शैली तथा अधिकारिक नेतृत्व शैली के गुणों को अपनाते हुए और दोषों के परिमार्जन से जन्मी है। जहाँ एक ओर आधिकारिक शैली की भांति निर्णयों में संगठन के लक्ष्यों का ध्यान रखती है, वहीं जनतांत्रिक शैली की भांति समूह की अपेक्षाओं का भी ध्यान रखती है। वस्तुत: इस शैली में संगठन और व्यक्ति की अपेक्षाओं में सामंजस्य का ध्यान कर निर्णय लिए जाते हैं। प्रशासक जहाँ समूह के पक्ष को धैर्यपूर्वक सुनता है, वहीं संगठन का भी दृष्टिकोण सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत करता है तथा दोनों की अपेक्षाओं में समन्वय कर निर्णय लिए जाते हैं।
5. **छद्म जनतांत्रिक शैली**–इस शैली में प्रशासक ऊपर से जनतांत्रिक शैली के आधार पर निर्णय लेने का दिखावा करता है, परन्तु वह निर्णय वही लेता है जो उसे पसन्द हैं। वह स्टाफ को समस्या पर विचार के लिए आमंत्रित तो करता है, उनके विचार भी सुनता है, परन्तु उसके स्वयं के द्वारा पूर्व में निश्चित निर्णयों के अनुरूप ही निर्णय लेता है। वस्तुत: मन से वह आधिकारिक शैली को ही अपनाता है, परन्तु प्रदर्शन में जनतांत्रित शैली का नाटक करता है। इसलिए इस नेतृत्व शैली को छद्म जनतांत्रिक निर्णय शैली की संज्ञा दी गई है।

नाइजीरिया में किए गए अनुसंधानों के आधार पर मध्यमवर्गीय नेतृत्व शैली वहाँ के माध्यमिक विद्यालयों में सर्वाधिक प्रभावी ही नहीं, वरन् सबसे अधिक प्रचलित पाई गई।

प्रबंधन में निर्णय प्रक्रिया का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा प्रबंधन उससे अलग नहीं है। सच तो यह है कि निर्णय प्रक्रिया प्रबंधन प्रक्रिया की धुरी है, जिस पर प्रबंधन आरुढ़ रहता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया अत्यंत जटिल है। निर्णय प्रक्रिया के विकास में हर्बर्ट साइमन, डिनाहल ग्रिफिथ्स आदि नाम विशेष उल्लेखनीय है। ग्रिफिथ्स ने निर्णय प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाने का भी प्रयास किया। उसने निर्णयों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया–1. मध्यम, 2. अपीली तथा 3. सृजनशील।

सामान्य कार्य व व्यक्तियों के आधार पर निर्णय चार प्रकार के होते हैं–(1) दैनिक-सामान्य निर्णय (2) नीतिगत निर्णय (3) वैयक्तिक निर्णय एवं (4) सामूहिक निर्णय। राजस्थान शैक्षिक प्रबंधन को निर्णय की दृष्टि से तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है–(1) उच्च स्तर। विभागीय स्तर, राज्य सरकार, शिक्षा विभाग, शिक्षा परिषद के केन्द्रीय स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय, (2) मध्यम स्तर पर प्रधानाध्यापकों व शिक्षकों द्वारा लिए जाने वाले निर्णय तथा (3) निचले स्तर पर व्यक्तिगत निर्णय लिया जाना।

हैरीसन ने निर्णय प्रक्रिया में अपनाये जाने वाले कदमों के मॉडल्स भी प्रस्तुत किए, जो व्यक्तिगत निर्णय व सामूहिक निर्णय मॉडल के रूप में जाने जाते हैं। निर्णय संबंधी अन्य प्रतिमानों में गुणवत्ता बनाम स्वीकार्य निर्णय प्रतिमान तथा निराशावादी निर्णय प्रतिमान हैं। साइमन ने निर्णय लेने की प्रक्रिया की मार्गदर्शिका भी प्रस्तुत की।

निर्णय लेने के क्षेत्र में निर्णय लेने की शैली का अत्यंत महत्व है। शिक्षक प्रबंधन के इतिहास में मुख्य रूप से जिन

नोट

प्रबंधन शैलियों का उल्लेख मिलता है, वे हैं–1. आधिकारिक निर्णय शैली, 2. जनतांत्रिक शैली एवं 3. अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली। दो और निर्णय शैलियों का पता चला है वे हैं–मध्यमवर्ती शैली तथा छद्म जनतांत्रिक शैली।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. निम्नलिखित कथनों में से 'सत्य' अथवा असत्य का चुनाव कीजिए। (State whether the following sentences 'True' or 'False')**

1. निर्णय लेने की शैलियाँ वस्तुत: प्रशासनिक शैलियाँ ही होती हैं।
2. शिक्षक प्रबंधन के इतिहास में मुख्य रूप से 8 प्रकार की निर्णय शैलियों का उल्लेख किया गया है।
3. कुछ वर्षों में हुए अनुसंधानों ने दो अन्य नेतृत्व शैलियों को जन्म दिया है जिन्हें मध्यवर्तीय शैली तथा छद्म-जनतांत्रिक शैली कहा जाता है।

*टास्क* निर्णय लेने की छद्म जनतांत्रिक शैली से आप क्या समझते हैं?

## 10.4 सारांश (Summary)

- सामान्यतया किसी शैक्षिक या प्रशासनिक समस्या के समाधान के लिए किए गए निश्चय को निर्णय कहा जाता है। कुछ लोग इसे वैकल्पिक कार्य की विधियों और मूल्यांकन और चुनाव की विधि के रूप में परिभाषित करते हैं। ग्रिफिथ्स ने इसे वर्तमान की परिस्थितियों में उपलब्ध विकल्पों के आधार पर भावी घटना क्रम के रूप में देखा है।
- नीति निर्धारण की प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान के लिए उपलब्ध विकल्पों में से किसी एक या अनेक विकल्पों को चुनना होता है। कोई भी प्रबंध प्रशासक जिस विकल्प को उचित समझता है, उसे या तो स्वयं के विवेक से अथवा अपने सहयोगियों की सलाह से चुनता है।
- वे निर्णय दैनिक सामान्य निर्णय कहलाते हैं जिन्हें प्रशासक/प्रबंधक नियमित प्रबंधन के लिए लेता है। इनमें स्टाफ के सदस्यों के अवकाश, प्रवृत्ति प्रभारी संबंधी कार्य विभाजन, नियमान्तर्गत सामान्य क्रय, सेमिनार, स्टाफ को कार्यशालाओं में भेजना एवं सामान्य व्यवस्था संबंधी निर्णय आदि आते हैं। ये वे निर्णय हैं जो परम्परा या विभागीय नियमों में प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत आते हैं।
- इन निर्णयों को लेने की स्थिति तब पैदा होती है जब प्रबंधक (प्रशासक) को एक नवीन परिस्थिति में निर्णय लेना होता है और जिसके संबंध में स्पष्ट प्रशासनिक निर्देश या परम्पराओं का अभाव होता है।
- विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थी अथवा स्टाफ सम्बन्धी अनेक निर्णयों के प्रस्ताव पहले शिक्षा संकाय में प्रस्तुत किए जाते हैं फिर अकादमिक काउंसिल और तत्पश्चात् सिंडीकेट/सीनेट/बोर्ड आफ मैनेजमेंट में आते हैं। अन्त में कुलपति के निर्णय से (विभिन्न विचार-विमर्श के बाद) स्वीकृत निर्णयों को लागू किया जाता है। वस्तुत: यह सामूहिक निर्णय की स्वीकृत प्रक्रिया है जो सर्वमान्य होती है।
- वैयक्तिक निर्णय हर व्यक्ति अपने स्तर पर अपने अधिकार क्षेत्र में लेता है। प्रबंधक या प्रधानाध्यापक ही नहीं, शिक्षक भी विद्यार्थियों के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं।
- जब कोई समूह की समस्या हो तब सामूहिक निर्णय लेना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ स्टाफ की पिकनिक के लिए स्थान का निर्णय, विद्यालय के लिए स्टाफ द्वारा लिए जाने वाली प्रायोजनाओं के संबंध में निर्णय, स्थानीय समुदाय में स्टाफ के द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन आदि ऐसे निर्णय हैं जो सामूहिक निर्णय की श्रेणी में आते हैं।
- प्रबंधन में निर्णय प्रक्रिया का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा प्रबंधन उससे अलग नहीं है। सच तो यह है कि

नोट

निर्णय प्रक्रिया प्रबंधन प्रक्रिया की धुरी है, जिस पर प्रबंधन आरुढ़ रहता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया अत्यंत जटिल है। निर्णय प्रक्रिया के विकास में हर्बर्ट साइमन, डिनाहल ग्रिफिथ्स आदि नाम विशेष उल्लेखनीय है। ग्रिफिथ्स ने निर्णय प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाने का भी प्रयास किया। उसने निर्णयों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया–1. मध्यम, 2. अपीली तथा 3. सृजनशील।

- सामान्य कार्य व व्यक्तियों के आधार पर निर्णय चार प्रकार के होते हैं–(1) दैनिक-सामान्य निर्णय (2) नीतिगत निर्णय (3) वैयक्तिक निर्णय एवं (4) सामूहिक निर्णय। राजस्थान शैक्षिक प्रबंधन को निर्णय की दृष्टि से तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है–(1) उच्च स्तर। विभागीय स्तर, राज्य सरकार, शिक्षा विभाग, शिक्षा परिषद के केन्द्रीय स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय, (2) मध्यम स्तर पर प्रधानाध्यापकों व शिक्षकों द्वारा लिए जाने वाले निर्णय तथा (3) निचले स्तर पर व्यक्तिगत निर्णय लिया जाना।
- हैरीसन ने निर्णय प्रक्रिया में अपनाये जाने वाले कदमों के मॉडल्स भी प्रस्तुत किए, जो व्यक्तिगत निर्णय व सामूहिक निर्णय मॉडल के रूप में जाने जाते हैं। निर्णय संबंधी अन्य प्रतिमानों में गुणवत्ता बनाम स्वीकार्य निर्णय प्रतिमान तथा निराशावादी निर्णय प्रतिमान हैं। साइमन ने निर्णय लेने की प्रक्रिया की मार्गदर्शिका भी प्रस्तुत की।
- निर्णय लेने के क्षेत्र में निर्णय लेने की शैली का अत्यंत महत्व है। शिक्षक प्रबंधन के इतिहास में मुख्य रूप से जिन प्रबंधन शैलियों का उल्लेख मिलता है, वे हैं–1. अधिकारिक निर्णय शैली, 2. जनतांत्रिक शैली एवं 3. अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली। दो और निर्णय शैलियों का पता चला है वे हैं–मध्यमवर्ती शैली तथा छद्म जनतांत्रिक शैली।

## 10.5 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रतिमान**–परछाई, प्रतिमूर्ति, मानक, स्टैंडर्ड।
- **गुरुता**–महत्त्व।

## 10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रबंधन में निर्णय लेने का क्या महत्व है?
2. निर्णय प्रक्रिया के अधुनातन स्वरूप तक पहुँचने में किन-किन विद्वानों का विशेष योगदान है?
3. निर्णयों को कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है?
4. निर्णय लेने की प्रमुख शैलियाँ कौन-कौन सी हैं? विद्यालय स्तर पर सर्वाधिक प्रचलित निर्णय शैली बताइए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

**1.** 1. उद्देश्यों 2. समस्या 3. उपयुक्त विकल्प 4. समस्या

**2.** 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य।

## 10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–11: नेतृत्व शैली और नेतृत्व के सिद्धांत (Leadership Style and Theory of Leadership)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 नेतृत्व के प्रकार एवं नेतृत्व शैलियाँ (Types of Leadership and Leadership Styles)

11.2 नेतृत्व का अर्थ और नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण (Meaning of Leadership and Essential Qualities for Leadership)

11.3 शैक्षिक नेतृत्व का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व (Meaning, Needs and Importance of Educational Leadership)

11.4 प्रभावपूर्ण नेतृत्व के कार्य एवं विशेषताएँ (Functions and Characteristics of Effective Leadership)

11.5 सारांश (Summary)

11.6 शब्दकोश (Keywords)

11.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नेतृत्व के प्रकार एवं विभिन्न शैलियों से परिचित होंगे।
- नेतृत्व का अर्थ जानने एवं उसके लिए आवश्यक गुणों की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- प्रभावपूर्ण शैक्षिक नेतृत्व का अर्थ, कार्य, आवश्यकता एवं महत्व की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

समाज में साधारणत: सभी व्यक्ति समान होते हैं परन्तु मानवीय गुणों की अधिकता के कारण कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों का भी मार्ग-दर्शन करते हैं तो कभी उन पर शासन करने लगते हैं। हम नित्य प्रति विद्यालय में उपस्थिति बालकों के समूह में, शिक्षकों के सम्मेलन में तथा साधारण जनता की भीड़ में देखते हैं कि इन विभिन्न प्रकार के समूहों में कुछ व्यक्ति अत्यन्त सक्रिय दिखाई देते हैं प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करने में ऐसे व्यक्तियों की प्राथमिकता तथा साहसिक प्रवृत्ति दिखाई देती है। वे अन्य व्यक्तियों को आदेश देने में अधिकार की भावना रखते हैं और अन्य साधारण तथा गुण सामान्य व्यक्ति उनके संकेतों पर चलते हैं। इस प्रकार के साहसी, उत्साही तथा गुण सम्पन्न व्यक्ति ही समाज में नेतृत्व शक्ति को प्राप्त करते हैं। इन नेताओं की वास्तविक योग्यता तथा उत्तरदायित्व निर्वाह की उचित क्षमता से समाज एवं राष्ट्र उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

नोट

योग्यता, परिस्थिति तथा समयानुसार नेतृत्व-शक्ति का विस्तार-क्षेत्र कभी-कभी तो सम्पूर्ण विश्व ही बन जाता है। महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, हिटलर, आदि ऐसे व्यक्ति हैं जो जीवन के अन्तिम क्षण तक सम्पूर्ण संसार में यशस्वी नेताओं में अग्रगण्य रहे। विश्व के रंगमंच पर ऐसे भी महान नेता अवतरित हुए हैं जिनके संकेत पर विश्व का इतिहास भी झुक गया अथवा जिनके ओजस्वी व्यक्तित्व के सम्मुख अन्य कोई शक्तिशाली व्यक्ति ठहर नहीं पाया। सभी जानते हैं कि सृष्टि की आदि से नेतृत्व-शक्ति का बोल-बाला रहा है। जनतन्त्रात्मक प्रणाली के अन्तर्गत तो नेतृत्व-शक्ति की परमावश्यकता होती है तथा नेतृत्व-शक्ति के उत्तम प्रशिक्षण को जनतन्त्र में प्राथमिकता दी जाती है। शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में नेतृत्व का प्रशिक्षण प्रमुख रूप में माना जाने लगता है तथा विद्यालयों में भी इस उद्देश्य की सफलता हेतु बालकों के व्यक्तित्व को विकसित किया जाता है, परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इतना प्रयास किये जाने पर क्या सभी बालक नेता बन जाते हैं? क्या नेतृत्व-शक्ति वंशानुक्रम पर आधारित है अथवा वातावरण की उपयुक्तता व्यक्ति को नेता बना देती है? वास्तव में इन सभी प्रश्नों को गम्भीरतापूर्वक समझने के पूर्व नेतृत्व (Leadership) के प्रत्यय को समझना परमावश्यक प्रतीत होता है।

## 11.1 नेतृत्व के प्रकार एवं नेतृत्व शैलियाँ (Types of Leadership and Leadership Styles)

नेतृत्व साहित्य में अनेक प्रकार के नेतृत्व का उल्लेख मिलता है। मुख्य रूप से नेतृत्व का वर्गीकरण (1) कार्यों के आधार पर (2) पद/प्रस्थिति के आधार पर और (3) गतिशीलता के आधार पर किया जा सकता है।

प्रधानाध्यापक की भूमिका के दृष्टिकोण से नेतृत्व शैलियों का जानना आवश्यक है। मुख्य रूप से तीन नेतृत्व शैलियाँ होती हैं–

(1) आधिकारिक नेतृत्व (Autocratic Leadership)

(2) जनतंत्रीय नेतृत्व (Democratic Leadership)

(3) अहस्तेक्षपीय नेतृत्व (Laissez faire Leadership)

अहस्तक्षेपीय नेतृत्व वस्तुत: कोई नेतृत्व नहीं होता। उस स्थिति में हर व्यक्ति स्वेच्छाचारी हो जाता है। अत: दो ही प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ हैं–(1) आधिकारिक व (2) जनतंत्रीय। प्रधानाध्यापक को दोनों शैलियों में से एक चुनना होता है।

### आधिकारिक शैली

आधिकारिक शैली के सम्बन्ध में **अर्गरिस** ने लिखा है–यदि प्रबंधक कार्य की स्वयं शुरूआत करता है, नीतियों पर नियंत्रण करता है, कार्य प्रणाली स्वयं निर्दिष्ट करता है, भविष्य के पारितोषकों का नियंत्रण करता है तथा अधीनस्थों के कार्य का विश्लेषण व मूल्यांकन करता है तब उसे निर्देश या आधिकारिक निरंकुश नेता कहा जा सकता है।

इस नेतृत्व के सन्दर्भ में अधोलिखित मान्यताएँ हैं–

(1) ये नेतृत्व उन लोगों तक सीमित होता है, जो किसी पद या प्रस्थिति के कारण शक्ति सम्पन्न हैं।

(2) आदेश को मन से मानने के लिए उचित मानवीय सम्बन्ध आवश्यक है।

(3) इस नेतृत्व में शक्ति विकेन्द्रित हो सकती है, दायित्व नहीं।

(4) अन्तिम रूप से दायित्व उसी का होता है जो उच्च पदस्थ है।

(5) उद्देश्य प्रभावी ढंग से तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब सहयोगियों में एकजुटता हो।

(6) अच्छे परिणाम दबाव जन्य नियंत्रित पर्यावरण में ही सम्भव है।

(7) अधिकृति ही सही होती है।

(8) व्यक्ति संगठन से ऊपर नहीं होता उसे संगठन के हित में त्यागा जा सकता है।

नोट

(9) नियुक्ति या वियुक्ति का अधिकार अधिकृति को ही होता है।

(10) मूल्यांकन का दायित्व पद प्रस्थिति नेतृत्व का ही है।

*क्या आप जानते हैं* आजकल नेतृत्व की एक और शैली सर्वाधिक प्रचलित है जिसे व्यवहारी शैली (Transactional Style) कहा जाता है। इसमें प्रधानाध्यापक मध्यम मार्ग अपनाता है।

### जनतंत्रीय शैली

आधुनिक युग की यह सबसे प्रशासनिक/प्रबंधन मान्य नेतृत्व शैली है। जनतंत्रीय नेतृत्व परिस्थितिजन्य होता है। इस नेतृत्व शैली में जहां तक सम्भव है, प्रबंधन प्रक्रिया से सम्बन्धित घटकों, आयोजन, नीति निर्धारण, कार्य विभाजन में सभी मिलकर आम राय से कार्य करते हैं। नेतृत्व उतना ही सफल माना जाता है, जितना वह अनुकरणकर्त्ताओं का सहयोग प्राप्त कर पाता है। अनुसंधानों के आधार पर इस नेतृत्व शैली की निम्न विशेषताएँ हैं–

(1) नेतृत्व केवल उन लोगों तक सीमित नहीं, जो पद प्रस्थिति में है वरन यह परिस्थिति जन्म होता है। बदली परिस्थिति में दूसरा नेता हो सकता है।

(2) जनतंत्रीय नेतृत्व में अधिकार और कर्त्तव्य दोनों का विकेन्द्रीकरण होता है।

(3) श्रेष्ठ परिणामों के लिए संगठन में कार्य करने वालों की आवश्यकताओं व अपेक्षाओं की संतुष्टि आवश्यक है।

(4) जो व्यक्ति निर्णय या नीतियों से प्रभावित हों, उनका निर्णय प्रक्रिया में भाग लेना आवश्यक है।

(5) व्यक्ति गतिशील पर्यावरण में अधिक सुरक्षित रहता है।

(6) समूह के लक्ष्यों को आम सहमति व निष्ठा से प्राप्त किया जा सकता है।

(7) भयहीन पर्यावरण में अधिकाधिक उपलब्धिक सम्भव है।

(8) संगठन में पद, प्रस्थिति का उपयोग कार्य विभाजन के लिए व नीतियों के लागू करने के लिए होना चाहिए परन्तु नीतियाँ व श्रम विभाजन समूह द्वारा तय किया जाना चाहिए।

(9) व्यक्ति संगठन के लिए महत्त्वपूर्ण है, त्याज्य नहीं है।

(10) व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन, समूह का दायित्व है।

### अहस्तक्षेपीय नेतृत्व शैली

वस्तुत: यह कोई नेतृत्व शैली नहीं है। इस नेतृत्व का स्वयं पर भरोसा नहीं होता अत: वह स्वयं को अधिकाधिक कागजी कार्यवाही में व्यस्त रखता है। वह अधिकांश कार्य अपने सहयोगियों पर डालकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। अत: एक ऐसी स्थिति जन्म लेती है, जब संगठन नेतृत्वविहीन लगता है।

एक अन्य विभाजन लिपहम ने किया है, इनके अनुसार नेतृत्व की तीन प्रकार की शैलियाँ होती हैं–

(1) आदर्शमूलक शैली (Normative Style)

(2) वैयक्तिक शैली (Personal Style)

(3) व्यवहारी शैली (Transactional Style)

इसी विभाजन को गेट्जेल गूवा ने आदर्श मूलक (Nomothetic) वैयक्तिक (Ideographic) तथा मध्यमार्गीय (Transactional) कहा है।

**(1) आदर्शमूलक शैली**–इस शैली में नेतृत्व के संगठनात्मक व्यवहार आते हैं। नेतृत्व संगठन के लक्ष्यों पर अधिक ध्यान देता है, व्यक्ति की अपेक्षाओं पर कम ध्यान जाता है। व्यक्ति का मूल्यांकन अपेक्षाओं की पूर्ति के आधार पर तय होता है। यह सिद्धान्त भूमिका सिद्धान्त (Role Theory) में प्रभावित है।

नोट

(2) **व्यक्तिमूलक शैली**–इस शैली में मुख्य रूप से व्यक्ति को प्राथमिकता दी जाती है। उसकी आवश्यकता, आकांक्षाओं की संगठन द्वारा पूर्ति हो रही है अथवा नहीं, ध्यान दिया जाता है। व्यक्ति संगठन से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। यह माना जाता है कि यदि भूमिका उपयुक्त हो, आवश्यकताओं की संतुष्टि हो, उसे संगठन में मान्यता मिले, तब व्यक्ति और संगठन दोनों के लक्ष्यों की पूर्ति हो सकती है। संगठन और व्यक्ति दोनों की अपेक्षाओं में जब सामंजस्य होता है, तभी संगठन के लक्ष्य प्रभावी ढंग से प्राप्त होते हैं।

(3) **मध्यवर्ती/व्यवहारी शैली**–इस नेतृत्व शैली में संगठन व व्यक्ति दोनों की अपेक्षाओं का ध्यान रखा जाता है। इस शैली में नेतृत्व की प्रमुख कठिनाई यह होती है कि वह व्यक्ति व संगठन की अपेक्षाओं में समन्वय कैसे करे? तथा अपेक्षाओं के अन्तराल के कारण संगठन में होने वाले संघर्षों को कैसे सुलझाऐ? इस शैली की सफलता, नेतृत्व क्षमता पर निर्भर करती है। कुशल प्रबंधक इस शैली को अपना सकते हैं।

*टास्क* नेतृत्व की कौन-सी शैली भूमिका सिद्धांत से प्रभावित है?

## विद्यालय प्रधानाध्यापक से नेतृत्व सम्बन्धी अपेक्षाएँ

विद्यालय की निर्विवाद अधिकृति प्रधानाध्यापक है। प्रस्थिति के अनुसार वह नेता भी है। विद्यालय की समग्र गतिविधियाँ उसी से नियमित होती हैं। अत: अपेक्षा है कि विद्यालय प्रधानाध्यापक सुयोग्य हो ताकि राष्ट्र के भावी नागरिकों का अपेक्षित निर्माण कुशल नेतृत्व में हो। परन्तु राष्ट्र की बढ़ती शैक्षिक आवश्यकताओं के अनुरूप सुयोग्य व गुण सम्पन्न, नेतृत्व देने वाले प्रधानाध्यापकों का उपलब्ध होना सर्वथा असंभव है। अत: मात्र यही विकल्प शेष रहता है कि शैक्षिक दृष्टि से योग्य व्यक्तियों का चयन कर नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाये।

राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार की आवश्यकता भी अनुभव की गई है कि कुशल प्रबंधकों प्रशासकों के निर्माण के लिए अनुस्थापन (ओरिएन्टेशन) कार्यक्रम आयोजित हों। योजना एवं प्रशासन राष्ट्रीय संस्थान (NIEPA) इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करता भी है, परन्तु ये प्रयास अभी तक नगण्य हैं। आवश्यकता है कि इस प्रकार के कार्यक्रम अधिकाधिक हों। नई शिक्षा नीति 1986 में सेवारत शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों के लिए इस प्रकार के प्रशिक्षण की कल्पना की गई है। उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थानों में भी इस प्रकार के सेवारत प्रशिक्षण का प्रावधान किया गया है।

नेतृत्व के क्षेत्र में अनुसंधानों और प्रयोगों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसका लाभ विद्यालय प्रबंधकों/प्रशासकों को प्राप्त होना चाहिए। वर्तमान में हुए अनुसंधान इस तथ्य पर बल देते हैं कि नेतृत्व के सामने मुख्य रूप से दो पक्ष होते हैं–(1) संगठन, (2) व्यक्ति/एक कुशल नेतृत्व में प्रशिक्षित व्यक्ति ही यह समझता है कि सफल प्रबंधक वह है जो संगठन के लक्ष्यों को उसमें संलग्न व्यक्तियों को संतुष्ट करते हुए प्रभावी ढंग से प्राप्त करे। अत: विद्यालय प्रधानाध्यापक से भी यही अपेक्षा है।

इस दृष्टि से हॉल्पिन का मानवीय सम्बन्ध तथा संरचना प्रतिमान तथा मोटेन की प्रबंधक ग्रिड संकल्पना प्रतिमान का ज्ञान प्रधानाचार्य को महत्त्वपूर्ण दिशा दे सकता है। टैरी तथा फैंकलिन का नेतृत्व एकीकृत मॉडल भी विद्यालयी समस्याओं के समाधान के लिए एक व्यापक आधार प्रदान करता है। नेतृत्व के सन्दर्भ में हाल ही में दो अनुसंधान हुए हैं। शर्मा एस. (1982) के शोध के निष्कर्षों के आधार पर यह पाया गया कि विद्यालय प्रधान के नेतृत्व का सीधा प्रभाव विद्यालय व उसके कार्यकलापों पर पड़ता है। जयज्योति के.वी. (1992) ने अपने शोध में पाया विद्यालय के नेतृत्व का प्रभाव प्रभावी व अप्रभावी पर्यावरण पर पड़ता है तथा उससे ही शिक्षकों का मनोबल भी प्रभावित होता है।

नेतृत्व शैलियों का ज्ञान किसी भी प्रभावी प्रधानाध्यापक को प्रभावी प्रबंध की योग्यता अर्जित करने के लिए आवश्यक है। उससे यह अपेक्षा है कि वह उस नेतृत्व शैली को अपनाए जिससे संगठन व समूह की अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके। आधिकारिक व जनतांत्रिक शैलियों के गुण और दोषों के विवेचन के बाद वह चाहे तो मध्यवर्तीय नेतृत्व

नोट

शैली विद्यालय प्रबंधन के लिए चुन सकता है। अहस्तक्षेपीय शैली तथा छद्म-जनतांत्रिक शैली के ज्ञान के बाद वह इन शैलियों को त्याग सकता है।

प्रधानाध्यापक के रूप में नेतृत्व साहित्य के विषय में अध्ययन के बाद वह स्वयं की भी एक ऐसी नेतृत्व शैली विकसित कर सकता है जो उसे स्वयं, विद्यालय संगठन एवं सहयोगी शिक्षकों और कर्मियों को पसन्द हो। वह किसी एक नेतृत्व प्रतिमान या सम्मिश्र प्रतिमान पर चलकर विद्यालय के विकास को गति दे सकता है।

राष्ट्र, शिक्षा जगत, स्थानीय समुदाय तथा विद्यालय सभी की यह अपेक्षा है कि प्रत्येक विद्यालय प्रधानाध्यापक उसके शिक्षकों व विद्यार्थियों तथा समुदाय को एक सृजनशील, प्रभावी शैक्षिक नेतृत्व प्रदान करे। उसके नेतृत्व में संगठन और उसमें लगे व्यक्ति दोनों का विकास हो। वह नेतृत्व शैली के आधार पर जनप्रिय हो परन्तु संगठन की उपेक्षा न हो। उसकी कार्यशैली व व्यवहार कार्यकर्ताओं और विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय हो, वह वास्तव में विद्यालय समूह का 'तारा' हो। परन्तु यह प्रधानाचार्यों के उचित प्रशिक्षण दीक्षण, अभिनवन व अनुस्थापन कार्यक्रमों के द्वारा तथा उपलब्ध साहित्य, अनुसंधान व तकनीकी ज्ञान के आधार पर ही संभव हो सकता है। प्रस्तुत परिच्छेद इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योग दे सकता है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. विद्यालय की निर्विवाद अधिकृति ..... है।
2. प्रधानाध्यापक से अपेक्षा की जाती है कि वह उस ..... को अपनाये जिससे संगठन व समूह की अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके।
3. ..... में व्यक्ति गतिशील वातावरण के कारण अधिक सुरक्षित रहता है।
4. जनतंत्रीय नेतृत्व में व्यक्ति संगठन के लिए महत्त्वपूर्ण है ..... नहीं।
5. ..... में व्यक्ति संगठन से ऊपर नहीं होता उसे संगठन के हित में त्यागा जा सकता है।

## 11.2 नेतृत्व का अर्थ और नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण (Meaning of Leadership and Essential Qualities for Leadership)

मनुष्य में आत्म-प्रदर्शन की प्रवृत्ति मूल रूप में होती है। यही मूल प्रवृत्ति शक्ति को जगाने में अत्यधिक सहायक होती है। वैसे तो मनुष्य के अतिरिक्त भी अन्य प्राणियों में प्रभुता (Dominancy) की भावना रहती है। वन के अन्य प्राणियों पर प्रभुता के कारण सिंह को "वनराज" कहा जाता है। मधु-मक्खियों में "रानीमक्खी" के प्रभुत्व को स्वीकार किया जाता है, परन्तु मनुष्य अन्य सभी प्राणियों में विवेकशील होने के कारण प्रभुत्व शक्ति को विकसित करके नेतृत्व शक्ति को प्राप्त कर लेता है। फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर "अहं-आदर्श" (Ego Ideal) ही "नेतृत्व" का जन्म है, क्योंकि अहं अनुभूति होती है जो मानव को किसी कार्य के लिये प्रेरित करती है। जब इस "अहं" में कोई उद्देश्य अथवा आदर्श समाहित हो जाता है तो वह "अहं आदर्श" कहलाने लगता है यही "अहं आदर्श" मनुष्य को नेता बनने की निरन्तर चेष्टा में तल्लीन रहने की प्रेरणा देता रहता है। व्यक्ति "अहं आदर्श" के वशीभूत होकर ऐसे "आत्म-प्रदर्शन" के कार्य करने लगता है जिससे वह समाज में आदर्श स्थान प्राप्त करता है। ऐसा "अहं आदर्श" प्रेरित व्यक्ति समाज के व्यक्तियों के हृदय को जीतने लगता है आदर्शमय व्यक्ति बनने की यह प्रक्रिया ही नेतृत्व शक्ति का मूल आधार होती है।

अंग्रेजी भाषा में Leader शब्द का अर्थ है One who leads "लीडर" शब्द भी "नायक", "मार्ग-प्रदर्शक", "अगुआ तथा अग्रसर करने वाला" अर्थों को प्रकट करता है। इन शब्दों के शाब्दिक अर्थों को स्पष्ट करने का तात्पर्य यही है कि जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को मार्ग दिखाने अथवा अगुवा होकर आदर्श व्यवहार करने की क्षमता रखता है, वही सचमुच नेता कहलाता है।

नोट

"ला पियरे तथा फ्रैन्सवर्थ" ने अपनी पुस्तक "सोशियल साइकोलॉजी" में नेतृत्व के सम्बन्ध में लिखा है–

*"नेतृत्व एक प्रकार का व्यवहार है जो नेता में ही पाया जाता है। यह व्यवहार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को अधिकतर प्रभावित करता है एवं नेता उनके व्यवहार से इतना अधिक प्रभावित नहीं होता।"*

नोट्स संस्कृत भाषा में "नेता" शब्द "रीयते य: अनने" अर्थात जो दूसरों को ले जाने की क्षमता रखे, अर्थ को प्रकट करता है। इसका तात्पर्य यही है कि जो व्यक्ति स्वयं आदर्श रूप होकर अन्य व्यक्तियों को आदर्श की ओर अग्रसर करता है, वही नेता हो सकता है।

## प्रभुत्व तथा नेतृत्व में अन्तर (Difference between dominance and Leadership)

'प्रभुत्व' तथा 'नेतृत्व' में थोड़ा अन्तर होता है जहाँ किसी भी प्रकार शक्ति अथवा आधिपत्य प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है वहाँ प्रभुता होती है। स्वेच्छाचारिता, आतंक अथवा भय दिखाकर भी प्रभुता प्राप्त की जा सकती है। प्रभुत्व में स्वार्थपरता तथा संकीर्णता व्याप्त होती है परन्तु जहाँ व्यक्ति जनसमूह के हृदय पर अधिकार जमाकर परोपकार की भावना को व्यक्त करता है। नि:स्वार्थ भावना के द्वारा ही नेतृत्व शक्ति को प्राप्त किया जा सकता है वास्तव में नेतृत्व की भावना के लिये ही परोपकार सेवा तथा कल्याण की भावना को रखना अत्यन्त आवश्यक है। कहा जा सकता है कि 'प्रभुता' की अपेक्षा 'नेतृत्व' शब्द का प्रयोग कल्याणकारी तथा मानवतायुक्त भावनाओं के लिये अधिक रूप में किया जाता है। आधुनिक युग में तो नेतृत्व शब्द और भी अधिक उत्तमता तथा प्रभावशीलता को व्यक्त करता है।

## प्रशासन एवं नेतृत्व में अन्तर (Difference between Administration and Leadership)

'प्रशासन' तथा 'नेतृत्व' में भी सूक्ष्म अन्तर स्वीकार किया जाता है। वस्तुत: प्रशासन के अन्तर्गत किन्हीं कार्यों को स्थिरतापूर्वक तथा कुशलतापूर्वक करने का प्रयास किया जाता है। परन्तु उस कार्य प्रणाली में अधिक परिवर्तन करने की इच्छा प्रकट नहीं की जाती इसके विपरीत नेतृत्व के अन्तर्गत परिवर्तन को ही मुख्य कार्य समझा जाता है।

यद्यपि कुछ विचारकों द्वारा लिफ्हम के इस मत की आलोचना भी की गयी है। उनका मत है कि प्रशासन केवल किन्हीं कार्यों की सुरक्षा करने का ही माध्यम नहीं होता अपितु वह उत्तम प्रशासन के लिये परिवर्तन भी कर सकता है और वह एक नेता भी बन सकता है। इसी प्रकार एक नेता सदैव परिवर्तनकारी नहीं होता, वह अपनी परिवर्तन की प्रवृत्ति को रोक भी सकता है। वास्तव में नेतृत्व के प्रत्यय में सदैव परिवर्तन होता रहा है। परिवर्तन करना अथवा न करना नेता की एकाधिकारिक अथवा जनतान्त्रिक प्रवृत्ति पर आधारित है। बहुधा देखा भी जाता है कि स्वेच्छाचारी तथा प्रभुतावादी नेता अपनी इच्छानुसार समाज में कभी परिवर्तन करते हैं और कभी समाज में प्रचलित परम्पराओं को ही दीर्घ समय तक सुरक्षित रखते हैं। सारांश में इतना अवश्य कहा जा सकता है। कि नेता की स्वाभाविक प्रवृत्ति परिवर्तनकारी ही होती है। अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व की धाक जमाने के लिये तथा दूसरों की दृष्टि में प्रभावशाली बनने के लिये नेता जन कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य किया करते हैं।

*"व्यक्ति अपने कुछ वैयक्तिक गुणों के आधार पर ही नेता नहीं बनता अपितु नेता के वैयक्तिक गुणों का सम्बन्ध अनुयायियों के उद्देश्यों, कार्यों आदि से भी होना परमावश्यक है।"*

इस प्रकार की नेतृत्व शक्ति को जनता के प्रति अन्तरक्रिया सम्बन्ध रखने से ही प्राप्त किया जा सकता है। नेतृत्व शक्ति की योग्यतायें अर्जित की जाती हैं। इस सम्बन्ध में मायर्स ने भी ऐसा ही विचार प्रकट किया है कि नेता में समूह के कार्यों को सम्पन्न करने की अद्‌भुत क्षमता होने के कारण ही वह नेतृत्व शक्ति को प्राप्त करता है।

**मायर्स** ने नेतृत्व के सम्बन्ध में लगभग दो सौ अध्ययनों पर विचार मंथन किया तथा यह निष्कर्ष निकला कि नेतृत्व शक्ति तथा भौतिक तत्वों में कोई महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं होता। नेता में अन्य सदस्यों की अपेक्षा कुछ अधिक उच्च बुद्धि होती है, परन्तु बुद्धि तथा नेतृत्व का कोई आपसी गहरा सम्बन्ध नहीं है अर्थात् बुद्धिमान व्यक्ति का नेता बनना सदैव आवश्यक नहीं है।

नोट

**होमनस** के गहन अध्ययन के अनुसार "समूह में वही नेता हो सकता है जो समूह के मूल्यों तथा आदर्शों को सर्वाधिकार साकार रूप में समझ लेता है उसका नेतृत्व पद व्यक्तियों को आकर्षित करने लगता है, समस्त योजनाओं का कार्यान्वयन उसी पर केन्द्रित होने लगता है, इसी बीच उसका उच्च पद समूह को नियन्त्रित भी करने लगता है तथा समूह को नियन्त्रित करने के कारण उसके सम्मान में वृद्धि होने लगती है।"

**मायर्स** ने नेतृत्व पर शोध कार्य करते हुए नेतृत्व सम्बन्धी कुछ तथ्यों का निर्धारण किया है। इन तथ्यों को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

1. नेतृत्व अन्त:क्रिया सम्बन्ध का ही परिणाम होता है, यह कोई स्तर अथवा स्थिति नहीं है।
2. नेतृत्व की संरचना अग्रिम रूप में नहीं की जा सकती। उद्देश्यों, कार्य प्रणाली तथा शक्ति की विभिन्नता के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के नेता विकसित हो सकते हैं।
3. किसी एक स्थिति में उत्पन्न नेता अन्य स्थिति में स्वयमेव नेता नहीं हो सकता।
4. स्थिति अथवा स्तर के परिणामस्वरूप नेतृत्व नहीं रहता अपितु नेतृत्व तो व्यक्ति के संगठन में विशिष्ट व्यवहार करने पर ही आश्रित होता है।
5. कोई व्यक्ति नेता है अथवा नहीं यह बात समूह के द्वारा उसे ग्रहण करने पर आश्रित होती है।
6. एक नेता अपनी भूमिका को जिस दृष्टि से देखता है उसी के अनुसार अपने कार्यों को भी निश्चित करता है।
7. अनेक समूहों में एक से अधिक व्यक्तित्व की भूमिका का निर्वाह करते हैं।
8. समूह के व्यक्तियों तथा कार्यों के प्रति नेता अनुकूल भावनाओं को रखता है।
9. नेतृत्व आधिकारिक अथवा प्रजातान्त्रिक तो हो सकता है परन्तु नेतृत्व तटस्थ भावयुक्त अथवा हस्तक्षेप रहित कदापि नहीं हो सकता।
10. किसी समूह के आदर्श की आलोचना किये जाने पर भी उनकी रक्षा नेतृत्व द्वारा ही की जाती हैं तथा समूह के स्तर को बनाये रखने का उत्तरदायित्व नेता पर ही होता है।
11. नेतृत्व समूह के व्यक्तियों के द्वारा दिया गया अधिकार है। यह अधिकार केवल उसी व्यक्ति को दिया जाता है जो समूह के द्वारा भली प्रकार आँका जाता है तथा जिसमें समूह की नेतृत्व भूमिका का निर्वाह करने की पूर्ण योग्यता होती है।

**मायर्स** (Mayers) नेतृत्व शक्ति के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्यों का अन्तिम रूप में सामान्यीकरण तो नहीं हो सका तथापि नेतृत्व के लिये इन विशेषताओं को आवश्यक माना जा सकता है। यह निर्विवाद है कि किसी भी संगठन की प्रभावयुक्तता अकेले योग्य नेता पर अधिक आश्रित होती है। जिस नेता में दूसरों को समायोजित तथा एकीकृत करने की शक्ति जितनी प्रबल होती है वह उतना ही योग्य नेता समझा जाता है। समूह की समस्याओं का निराकारण करने के लिये नेता में अधिक ज्ञान का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त किसी कार्य में पहल करने की क्षमता, अन्तर्दृष्टि, सहयोग, निर्णय लेने की क्षमता (decision-making), भावनात्मक स्थिरता, निश्चित जीवन उद्देश्य, मौलिकता आदि गुण भी नेतृत्व से अधिक सम्बन्धित होते हैं।

**हैम्फिल** (Hemphill) के द्वारा भी नेतृत्व शक्ति का सही मूल्यांकन करने के लिये विशेष अध्ययन किया गया। हैम्फिल ने कुछ विशेष लक्षणों अथवा परिणामात्मक विशेषताओं का निर्धारण किया तथा नेतृत्व शक्ति का अध्ययन इन्हीं लक्षणों के माध्यम से किया। हैम्फिल के इस अध्ययन का निष्कर्ष यही था कि नेतृत्व में इन लक्षणों की सीमा कहाँ तक विद्यमान होती है। हैम्फिल के इन लक्षणों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **समीपता** (Viscidity)–इसका अभिप्राय एक साथ रहने की भावना से है अर्थात् समूह के व्यक्ति नेता के साथ रहने में कितनी समीपता का अनुभव करते हैं।
2. **समरूपता** (Homogenity)–समूह के व्यक्तियों में पारस्परिक समता की भावना को ही समरूपता का नाम दिया जाता है।

नोट

3. **लचीलापन** (Flexibility)–एक समूह के व्यक्ति किसी व्यवहार की स्थिरता के प्रति किसी सीमा तक चिपके रहते हैं।
4. **प्रवेशता** (Permeability)–इसका तात्पर्य समूह के व्यक्तियों में नेतृत्व के प्रभाव से ही है अर्थात् समूह के व्यक्ति अपनी सदस्यता को किस सीमा तक बनाये रखते हैं।
5. **ध्रुवीकरण** (Polarisation)–इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति अपने समूह की सदस्यता को विषम परिस्थितियों में भी किसी सीमा तक बनाये रखते हैं अर्थात् अवसरवादिता के कारण उसमें दल-बदल की भावना नहीं होनी चाहिए।
6. **घनिष्ठता** (Intimacy)–इसका तात्पर्य व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों में अत्यधिक प्रेम भावना का व्याप्त होना ही समझा जाता है।
7. **स्वायत्तता** (Autonomy)–दूसरे समूहों से एक समूह कितनी सीमा तक स्वतन्त्र होता है तथा नेता की योग्यता के कारण समूह का अस्तित्व किसी सीमा तक सुरक्षित रहता है।
8. **नियन्त्रण** (Control)–समूह के व्यक्ति किस सीमा तक आपस में तथा नेता के प्रति अनुशासित होते हैं।
9. **स्थिति** (Position)–समूह के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति का स्तर कितना और कैसा होता है।
10. **शक्ति** (Potency)–किसी समूह की सदस्यता ग्रहण करने से व्यक्तियों की आवश्यकताओं में सन्तुष्टि समूह की वास्तविक शक्ति के द्वारा ही होता है।
11. **विनोदी वाच** (Hedonic Tone)–इसका अभिप्राय है कि किसी समूह की सदस्यता के कारण सदस्यों के पारस्परिक व्यवहार में किसी सीमा तक मधुरता की वृद्धि होती है तथा नेता प्रभावपूर्ण वाणी से कितने व्यक्ति उत्साहित होते हैं।
12. **भागीदार** (Participation)–समूह के व्यक्ति नेता के साथ निर्णय लेने तथा परामर्श करने में कहाँ तक सहयोग देता है।
13. **आश्रितता** (Dependence)–समूह के व्यक्ति अपने कार्यों के लिए नेता पर किसी सीमा तक लम्बित हैं अर्थात् उनके सभी कार्य नेता के परामर्श एवं सहयोग के बिना नहीं होते।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर ही नेतृत्व शक्ति की सफलता एवं असफलता का मूल्यांकन किया जा सकता है, परन्तु नेतृत्व की विशेषताओं को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। नेतृत्व की अनेकानेक विशेषताओं के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने पर्याप्त रूप में विचार किया है।

## नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण (Essential Qualities for Leadership)

प्रभावशाली नेतृत्व की योग्यता को प्राप्त करने के लिये नेता में अनेक गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है। नेतृत्व के गुण वस्तुत: संख्या में इतने अधिक हैं जिन्हें सरलतापूर्वक गिनाया भी नहीं जा सकता। नेता के गुणों के सम्बन्ध में एफ.एच. आलपोर्ट, एल.एल.बर्नार्ड, ओ.टेड. चार्ल्स बर्ड आदि विद्वानों ने पर्याप्त मनन एवं चिन्तन किया है। नेतृत्व के सामान्य गुणों का नीचे की पंक्तियों में संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है–

1. **बौद्धिक कुशाग्रता** (Intelligence)–नेतृत्व के लिये 'बौद्धिक कुशाग्रता' एक आवश्यक गुण समझा जाता है। बौद्धिक कुशाग्रता के अन्तर्गत सूझ (Insight), व्यापक दृष्टि (Vision), चातुर्य, परिपक्व अनुभव, उच्च चिन्तन आदि विशेषताओं की आवश्यकता होती है।
2. **कल्पना** (Imagination)–कल्पना के अन्तर्गत पूर्व-चिन्तन, दूरदर्शिता, व्यापक रुचि, मौलिकता, सन्तुलित अवधान, बौद्धिक एवं मानसिक धारणा शक्ति, प्रत्ययों का साधन अर्जन इत्यादि विशेषताएँ सम्मिलित होती हैं।
3. **आत्मनिर्भरता** (Self-reliance)–आत्म-निर्भरता नेतृत्व का एक महत्वपूर्ण गुण है। आत्मविश्वास, उत्तरदायित्व लेने की भावना, लक्ष्य एवं दिशा का ज्ञान, अन्तिम निर्णय लेने की क्षमता, समयानुकूल स्वागत युक्तियों को अवलम्बन, लेने की प्रवृत्ति आदि विशेषताएं आत्म निर्भरता का अंग है।

नोट

4. **नैतिक जागरूकता** (Moral Sensitivity)–नेतृत्व के इस गुण में स्पष्टवादिता, आदर्श निर्वाह, सत्यता, न्याय, नैतिक आचरणशीलता, गम्भीर निर्णय, विस्तीर्ण मनोदशा, जन विश्वास, कार्य पवित्रता आदि विशेषताएँ सम्मिलित होती हैं। इन सभी विशेषताओं से युक्त नेतृत्व उत्तम होता है।
5. **संयम** (Restraint)–नेतृत्व को प्रभावशाली बनाने के लिये संयम भी एक आवश्यक गुण है। संयम के अन्तर्गत आत्म-संयम, आत्मानुभूति, आत्मानुशासन, आत्मनियन्त्रण, दमन आदि विशेषताएँ आती हैं।
6. **उत्तरदायित्व निर्वाह** (Responsibility)–'उत्तरदायित्व निर्वाह' के बिना नेतृत्व की सफलता असम्भव है। उत्तरदायित्व निर्वाह करने में स्वावलम्बन, परिपक्वता, कर्तव्य-परायणता, उद्यमशीलता, तल्लीनता, कार्य-प्रेम, शालीनता, स्पष्टता, कर्म-पवित्रता, चरित्र-अनुशीलता आदि विशेषताओं का होना परमावश्यक है।
7. **आदर्श चरित्र और सन्तुलित स्वभाव** (Ideal Character and Balanced Nature)–नेता के आदर्श चरित्र एवं स्थायित्व में संतुलन होने पर नेतृत्व निखरता है। धैर्य, स्वनिर्माण, आशावादिता, मानसिक ग्रन्थि-विहीनता, स्वाभाविक प्रसन्नता, मानसिक सन्तुलन और मानसिक सन्तुष्टि, आत्मानुभूतिपूर्ण आदर्श व्यवहार, गम्भीर्य, सहनशीलता आदि विशेषताओं से 'नेता' का चरित्र आदर्श एवं व्यवहार सन्तुलित बनता है।
8. **प्रेरणा एवं संकल्प** (Drive and Determination)–नेतृत्व के लिये प्रेरणा एवं संकल्प की अत्यधिक आवश्यकता होती है। इसके लिये नेता में उत्साह, श्रम गम्भीर्य, वाक्पटुता, ओज, शौर्य, गत्यात्मकता यश की आकांक्षा, उद्देश्यों एवं प्रयोजन की एकलता आदि विशेषताएँ होनी चाहियें।
9. **प्रभावशाली शारीरिक गठन** (Effective Body Structure)–अच्छे नेतृत्व के लिये नेता का शारीरिक गठन प्रभावी होना आवश्यक है। शारीरिक बल, समांगता, ऊँचाई, वर्ण, स्वास्थ्य, स्फूर्ति, चंचलता, अस्थि-सुदृढ़ता आदि विशेषताओं से शारीरिक गठन प्रभावी होता है।
10. **जन-सम्पर्क एवं लोकप्रियता** (Interaction and Popularity)–नेता में जन-सम्पर्क एवं लोकप्रियता का अभाव होने पर नेतृत्व की सफलता में सन्देह ही बना रहता है। सामाजिक आवश्यकताओं एवं आदर्शों का ज्ञान, सामाजिक परम्पराओं का अनुपालन, अन्धविश्वास का सहानुभूतिपूर्ण एवं वैज्ञानिक निराकरण, प्रेम, सहयोग की भावना, सामाजिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने में प्राथमिकता, सामाजिक व्यवहार आदि क्षमताएं नेता के जन-सम्पर्क को बढ़ाती हैं तथा उसे लोकप्रिय बनाती हैं।

इन सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त "चित्रा नायक" ने नेतृत्व के जो आवश्यक गुण बतलाये हैं, वे निम्नलिखित हैं–

1. सेवा भावना की इच्छा (Desire to serve the people)
2. समस्याओं से अवगत होना (Identification with Problems)
3. सृजनात्मक योग्यता की अधिकता (More creative ability than others)
4. अपराध निर्णय अथवा दोष सिद्धि का साहस (Caurage of Convictions)
5. साहसिक उत्तरदायित्व निर्वाह (Courage to shoulder responsibility)
6. उद्देश्य तल्लीनता (Tenacity of Purpose)
7. उच्चबौद्धिक योग्यता (High Intelligence)
8. आत्म गौरव की अनुभूति तथा व्यक्तित्व आकर्षण (Personal dignity and charm)
9. सामाजिक व्यवहार में प्रौढ़ता (Maturity in social behaviour)
10. भावात्मक-स्थायित्व (Emotional stability)
11. सहयोग में विश्वास (Faith in co-operative action)
12. आश्रितता के प्रति आस्था (Faith in dependability)
13. उत्तरदायित्व तथा अधिकार सौंपने की इच्छुकता (Willingness to delegate responsibility as well as authority)

नोट

14. नवीन विचारों को प्रकट करने तथा समस्या निराकरण की योग्यता (Ability of expression of new ideals and Problem solutions)
15. उद्देश्य-स्पष्टता, योजना-निर्माण तथा सक्रिय कार्य क्षमता (Knowledge of field work, clear vision of goals and competency in planning)
16. सहयोगात्मक कार्यों के निर्देशन की योग्यता (Ability of guiding co-operative action)
17. भाषण, लेखन सम्मेलन तथा सामाजिक उत्सवों के आयोजन की योग्यता (Ability of speech-making, writing, Conferences and organisation of social functions)
18. अधिकतम कार्य करने की क्षमता (Ability to do maximum work)
19. नियमों तथा कानूनों का ज्ञान (Knowledge of rules and regulations)
20. व्यक्तियों की योग्यता की पहचान (Knowledge of Individual worth)

इन सभी गुणों का एक ही नेता के व्यक्तित्व में विद्यमान होना अत्यन्त कठिन है। कुशल नेताओं में इन गुणों की संख्या अधिक रूप में अवश्य देखी जाती है। कभी-कभी तो वैयक्तिक गुणों की कमी रहने पर भी व्यक्ति नेतृत्व को प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें समय तथा परिस्थिति ही नेतृत्व प्रदान कर देती है। हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, जुल्फिकार अली भुट्टो आदि अपने-अपने देशों में बड़े नेता रहे हैं यद्यपि इनके व्यक्तित्व में नेतृत्व के अनेक गुणों का अभाव भी रहा। फिर भी समय चक्र ने इन्हें नेतृत्व प्रदान किया। आज अपने देश में जनतन्त्र राज्य हैं अनेक क्षेत्रों में तथा अनेक राजनीतिक दलों में समय एवं परिस्थितिवश कुछ व्यक्तियों की अकस्मात् बड़े नेताओं में गिनती होने लगती है। इन स्वयंभूत नेताओं के व्यक्तित्व एवं चरित्र की निष्पक्ष व्याख्या की जाने पर विदित होता है कि इनमें नेतृत्व-शक्ति के गुणों का सर्वथा अभाव ही होता है। गोस्वामी तुलसी दास जी की प्रसिद्ध उक्ति हानि-लाभ जीवन-मरण, यश-अपयश विधि-हाथ के अनुसार ऐसे व्यक्ति प्रारब्ध में लिखे हुए "यश" को अवश्य भोगते हैं। बहुधा यह भी देखने में आता है कि "गुण शून्य-नेतृत्व" चिंगारी के सदृश चमककर सदैव के लिये धूमिल हो जाता है परन्तु अनेकानेक गुणों से युक्त नेता का व्यक्तित्व चाहे वह प्रभुता या सत्ता में रहे, अथवा न रहें, फिर भी वह मध्याह्न के सूर्य के समान, विश्व-गगन को अपने ओजस्वी यश की किरणों से प्रकाशमान करता ही रहता है। नेतृत्व के लिये आवश्यकता यही है कि समाज की कितनी परिधि उसका लोहा मानती है। तब तक उसकी यश गाथा को सुना-सुनाकर भावी संतति को प्रेरणा देती है। "महात्मा गाँधी, सुभाष चन्द्र बोस, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द" जैसे महान व्यक्ति अपने नेतृत्व गुणों के कारण अखिल विश्व में सम्मानित हैं तथा दीर्घकाल तक ये महान पुरुष स्मरणीय तथा बन्दनीय रहेंगे।

प्रजातांत्रिक प्रणाली से युक्त देश में नेतृत्व-शक्ति की नितान्त आवश्यकता है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति प्रयास करने पर भी नेता नहीं बन सकता। उर्दू शायर की उक्ति "नेताओं की धूम है और फौलोवर कोई नहीं" अपनी जगह ठीक प्रतीत होती है। नेता बनाने के लिये कारखाने नहीं खोले जा सकते। "नेतृत्व" शक्ति यदि आंशिक रूप में "वातावरण, समय एवं परिस्थिति" पर आश्रित है तो उसका सम्बन्ध कुछ अंशों में "वंशानुक्रम तथा ईश्वर प्रदत्त स्वाभाविक योग्यता" से भी अवश्य जोड़ा जा सकता है। कुछ व्यक्ति जीवन काल के प्रारम्भ से ही "अद्भुत" आकर्षण युक्त, स्थायी प्रभाव छोड़ने वाले तथा जनता के हृदय में एकदम बसने वाले होते हैं। ऐसे साहसी तथा सच्चे नेताओं का व्यक्तित्व उस समाज को भी चमका देता है जिसमें वे रहते हैं। समाज की परिस्थितियों से उनका व्यक्तित्व ही कृतज्ञ नहीं होता अपितु वे स्वयं को विविध गुणों से चमत्कृत एवं कृतज्ञ करते हैं। कहा भी गया है–*"लोग कहते हैं कि बदलता है जमाना अक्सर, मर्द वे हैं जो जमाने को बदल देते हैं।"* नेतृत्व शक्ति की उपलब्धि के लिये आवश्यक गुणों के सम्बन्ध में समन्वय की नीति को ही स्वीकार करना चाहिए। व्यक्ति, नेता स्वयं बने अथवा उसे समय या परिस्थिति नेता बनाये, उसके व्यक्तित्व में उपयुक्त विशेषताएं होनी चाहिएं। "नेतृत्व-शक्ति" पर अनेक अध्ययनों तथा अनुसन्धानों को गम्भीर रूप में विद्वान द्वारा दीर्घ समय तक किया गया है। अनेक नेताओं के व्यक्तित्व को उचित रूप में मूल्यांकन किया गया है। "नेतृत्व" के सम्बन्ध में अपनाई गई वैज्ञानिक विधियों को ठीक रूप में माना जाता है। इन सभी विधियों तथा अध्ययनों का निष्कर्ष अथवा सामान्यीकरण यही है कि नेताओं के व्यक्तित्व में उपर्युक्त गुणों का होना आवश्यक है तथा गुणों के अभाव में कोई नेता स्थायी यश को प्राप्त नहीं कर सकता।

नोट

## 11.3 शैक्षिक नेतृत्व का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्त्व (Meaning, Needs and Importance of Educational Leadership)

वर्तमान युग में शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता जा रहा है। शिक्षा मन्त्रालय, शिक्षा विभाग तथा शिक्षालयों में सभी प्रकार के व्यक्तियों को कार्य करना पड़ता है। इनमें से कुछ व्यक्ति प्रशासक के रूप में अपने कार्य का निर्वाह करते हैं तथा अन्य व्यक्तियों से आशा की जाती हैं कि वे प्रशासक के आदेशानुसार कार्य करें। वस्तुत: शिक्षा के क्षेत्र में निदेशक, उपनिदेशक, विद्यालय निरीक्षक, प्रधानाचार्य, विभागाध्यक्ष तथा कुछ वरिष्ठ अध्यापकों को प्रशासक के रूप में ही अपने उत्तरदायित्वों को निभाना पड़ता है। इन प्रशासकों को ही शिक्षा क्षेत्र में "नेता" समस्याओं का विधिवत् ज्ञान होना ही चाहिए। "पाठ्यक्रम पाठ्य पुस्तक, शिक्षण विधि, शिक्षक समस्याओं का विधिवत् ज्ञान होना चाहिए। "पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तक, पुस्तक, शिक्षण विधि, शिक्षण प्रविधि, शिक्षक व्यवहार, मूल्यांकन-प्रक्रिया" आदि का प्रशासकों को सम्यक् ज्ञान होना चाहिए, परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इन सभी बातों की पूर्ण जानकारी रखने पर तथा प्रसिद्ध होने पर कोई भी व्यक्ति सफल प्रशासक बन सकता है? यदि यह बात पूर्णयता सही होती है तो सम्पूर्ण देश के विद्वानों तथा ज्ञानियों को खोज-खोजकर शिक्षा विभाग में प्रशासक के पद पर नियुक्त करने की प्रथा अवश्य प्रचलित होती। आँकड़ें इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि विद्वता तथा प्रशासन योग्यता में कोई धनात्मक सहसम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत यह भी देखने में आता है कि अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा शैक्षिक योग्यता में कुछ कम योग्य होने पर भी कुछ प्रशासक अपने क्षेत्रों में इतने अधिक कुशल, योग्य तथा सफल होते हैं कि बड़े-बड़े विद्वान तथा प्रभावशाली व्यक्ति भी उनके व्यक्तित्व का लोहा मानते हैं। तो फिर कौन-सी ऐसी विशेषता है जिसके कारण कोई प्रशासक स्थायी प्रभाव को प्राप्त कर लेता हैं तथा जिसके अभाव में वह अवकाश प्राप्ति के समय तक उदरपूर्ति तो करता है परन्तु सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति सदैव उसकी निन्दा एवं भर्त्सना ही करते रहते हैं।

वास्तव में शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में सफल प्रशासक बनाने के लिये शैक्षिक नेतृत्व की अद्‌भुत शक्ति को निश्चित रूप से अर्जित करना पड़ता हैं जिस प्रकार समाज के अन्य क्षेत्रों में नेतृत्व-शक्ति की महत्ता को सभी स्वीकार करते हैं उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में "शैक्षिक नेतृत्व" की परमावश्यकता तथा महत्त्व को निर्विवाद रूप से माना जाता हैं। "शैक्षिक नेतृत्व" के लिये जन्मगत अथवा वंशानुक्रम की विशेषताओं को आजकल स्वीकार नहीं किया जाता अपितु व्यक्तित्व सम्बन्धी अनेक गुणों तथा अर्जित योग्यताओं को (Acquired abilities) को ही शैक्षिक नेतृत्व का आधार स्वीकार किया जाता है। "यस्य कस्य प्रसूतों अपि गुणवान पूज्यते नर" मनुष्य कहीं भी उत्पन्न हो, इसका कोई अर्थ नहीं, गुणवान् होने पर ही वह पूज्य होता हैं। इस सम्बन्ध में "पंचतन्त्र" की उक्ति भी उल्लेखनीय है–"प्रकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणीनां गच्छन्ति किं जन्मना" (कोई वस्तु गुणों के उदय से ही प्रकाशमान होती है, उसके उत्पत्ति स्थान का कोई महत्व नहीं होता)। सर्वमान्य मत यह है चूंकि समाज में रहकर अनुकूल परिस्थितियों के मिलने पर तथा आन्तरिक प्रेरणा से उत्साहित होकर कोई व्यक्ति ऐसे गुणों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है कि समाज के अन्य व्यक्ति उसे नेता के कहने तथा मानने के लिये बाध्य हो जाते हैं। यही प्रक्रिया शिक्षा क्षेत्र में "शैक्षिक नेतृत्व" की अपने सीमित शब्दों में इस प्रकार परिभाषा व्यक्त कर सकते हैं।

"शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में किसी विशिष्ट व्यक्ति का जनतान्त्रिक युक्त तथा सहकर्मियों के हृदय को सर्वागरूप में जीतने वाला व्यवहार जो वैयक्तिक तथा अर्जित गुणों पर आधारित होता है, "शैक्षिक नेतृत्व" कहा जाता है।"

'शैक्षिक नेतृत्व' से परिपूर्ण, प्रशासन के कार्यों को उसी प्रकार करने में सक्षम होता है जैसा उस शैक्षिक समूह के व्यक्ति कराने की इच्छा रखते हैं। शैक्षिक के अन्तर्गत कार्यकुशलता, लोकप्रिय व्यवहार तथा सद्‌भावना आदि का बड़ा मूल्य होता है। "शैक्षिक नेतृत्व" में ऐसी शक्ति होती है। जो अध्यापन की क्षमता में निसन्देह वृद्धि कर देती है। इस सम्बन्ध में अमेरिका में SSCPEA (Southern State in Cooperative Programme in Educational Administration) के अन्तर्गत अनुसंधान कार्य भी किया गया। जिसका निष्कर्ष है–

*"Competency in educational administration results when an individual exhibits behaviour that enables him to perform a particular administrative task in the most desirable manner."*

*–SSCPEA*

नोट

सारांश में कहा जा सकता है कि "शैक्षिक नेतृत्व" में इन सभी कार्यों को करने की क्षमता होती है जो शिक्षा विभाग तथा शिक्षण संस्थाओं की उत्तरोत्तर उन्नति के लिये आवश्यक समझे जाते हैं। नेतृत्व के जितने गुण पहले बताये जा चुके हैं उनका शैक्षिक नेतृत्व में भी होना आवश्यक है। शिक्षण संस्थाओं के प्रशासन तथा पर्यवेक्षण सम्बन्धी सभी कार्यों की सफलता वस्तुतः शैक्षिक नेतृत्व पर ही आधारित होती है।

## शैक्षिक-नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व (Need & Importance of Educational Leadership)

कोई भी समूह अपने कार्यों का सम्पादन नेता के माध्यम से ही करना चाहता है। नेतृत्व युक्त समूह गौरव का अनुभव भी करता है। जिस समूह अथवा समाज का कोई नेता नहीं होता वह समूह दिशाहीन तथा उद्देश्यहीन होता है। आजकल अपने देश में प्रजातन्त्र की स्थापना हो चुकी है देश में विभिन्न समाजों, सम्प्रदायों संगठनों तथा संस्थाओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। अतएव नेताओं की संख्या का भी उसी अनुपात में बढ़ना स्वाभाविक है एक समूह अथवा समाज में कई नेता भी उदित हो जाते हैं परन्तु इन सभी का सर्व प्रमुख नेता एक ही व्यक्ति होता है, अन्य सह-नेता कालान्तर में प्रमुख नेता की बातों का ही अनुमोदन करने लगते हैं। इतना निश्चित है कि समाज में नेतृत्व की आवश्यकता निस्सन्देह होती है।

आवश्यकता (Need) शिक्षा का क्षेत्र भी अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र है। देश की रचनात्मक तथा विकासात्मक अवस्था के मूल में शिक्षा ही होती है। उत्तम शिक्षा तथा समाजोपयोगी शिक्षा की व्यवस्था शैक्षिक नेतृत्व के अभाव में कदापि नहीं हो सकती। शिक्षा विभाग के अन्तर्गत असंख्य शिक्षण-संस्थाएं समाज-कल्याण में ही सहायक होती है। इन संस्थाओं में पढ़ने वाले छात्र तथा शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक दिन-रात अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया में तल्लीन रहते हैं परन्तु छात्रों, अध्यापकों तथा संरक्षकों की कार्य क्षमता को उचित दिशा दिखाने के लिये शैक्षिक नेतृत्व की परमावश्यकता होती है। "शैक्षिक नेतृत्व" की आवश्यकताओं का संक्षेप में इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है–

1. **सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल शिक्षा विकास** (Education development according to Social change)–समाज सदैव एक-सी स्थिति में नहीं रहा करता। समाज की मान्यताओं, मूल्यों तथा धारणाओं में परिवर्तन होता रहता है। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का साधन माना जाता है, साथ ही शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का अनुगमन भी करना पड़ता है। समाज के अनुरूप किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए तथा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, व्यवस्था, शिक्षण विधि आदि में किस प्रकार का परिवर्तन होना आवश्यक है, इन सभी बातों का ज्ञान शैक्षिक नेतृत्व को संभालने वाले व्यक्तियों को हुआ करता है। विद्यालयों, महाविद्यालयों में आवश्यक नीतियों तथा रीतियों का कार्यान्वयन शैक्षिक नेता ही कर सकते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन को विद्यालय के वातावरण में प्रधानाचार्य के सहयोग से ही अपनाया जा सकता है।
2. **सामूहिक कार्यक्रमों में समन्वय** (Co-ordination in group activities)–शैक्षिक समाजों में सभी व्यक्ति एक ही स्वभाव के नहीं होते। विद्यालयों में देखा जाता है कि कुछ अध्यापक कार्य के प्रति तल्लीन, कुछ उपयोगी तथा उन्नतिप्रद बातों का सदैव विरोध करने वाले, कुछ अर्थोपार्जन को ही अधिक महत्त्व देने वाले तो कुछ अध्यापक, अध्यापन कार्य के प्रति निष्ठावान् होते हैं। स्वभाव की दृष्टि से भी कुछ विनोदी, परोपकारी तथा मृदुभाषी होते हैं तो कुछ झगड़ालू, ईर्ष्यालु तथा मितभाषी होते हैं। इस विभिन्नता के रहते हुए भी विद्यालय के सामूहिक कार्य-कलापों में सभी अध्यापकों को एक साँचें में ढालने तथा पारस्परिक एकता एवं सद्भाव को बनाये रखने के लिए किसी एक योग्य नेता की आवश्यकता होती है। विद्यालय के प्रधानाचार्य "शैक्षिक नेतृत्व" के उत्तरदायित्व को समझते हुए इस कार्य का कुशलतापूर्वक सम्पादन कर सकते हैं। "शैक्षिक नेतृत्व" की यह अपूर्व विशेषता होती है कि व्यक्तियों की विरोधी विचारधाराओं के होते हुए भी उन्हें एक उद्देश्य तथा एक योजना में तल्लीन रहने के लिये प्रेरित एवं उत्साहित कर देता है।
3. **नियोजन, व्यवस्था तथा संलग्नता की सफलता** (Success in planning, organization and pursuasion)–शिक्षा के क्षेत्र में नवीन तथा उपयोगी कार्यों के लिये योजना का निर्माण करना होता है। कार्य

नोट

सफलता के लिये संगठन की आवश्यकता होती है, कार्यान्वयन में कोई व्यक्ति विरोध या उदासीनता न दिखाये, इसके लिये सजग रहना पड़ता है। वास्तव में इन कार्यों को उचित रूप में करने के लिये योग्य नेताओं की दक्षता, प्रवीणता तथा कुशलता की आवश्यकता होती है। नियोजन तथा व्यवस्था के कार्यों में सभी व्यक्तियों का नेता में विश्वास तथा उसके प्रति आदर की भावना होती है। विरोध व्यक्त करने वाले व्यक्तियों का नेता व्यक्तित्व के प्रभाव से शीघ्र ही सहमत कर लेता हैं तथा कार्य संचालन के लिये सुविधा प्राप्त करता है। कुछ विद्यालय के प्रधानाचार्यों का सर्वगुण-सम्पन्न व्यक्तित्व छात्रों के तथा अध्यापकों के लिये अत्यन्त आदर्शमय एवं प्रभावयुक्त होता है। इस प्रकार के कार्यों के नियोजन तथा प्रशासन में पूर्णतया सफल होते हैं। शिक्षा विभाग के अन्य आधिकारिक प्रशासनिक योजनाएं भी तभी सफल होती हैं जब उनमें शैक्षिक नेतृत्व की योग्यता होती है।

4. **शैक्षिक स्तर की निरन्तर उन्नति** (Continuous progress in Educational Standard)–शिक्षा के क्षेत्र में नवीन अनुसन्धानों, आयामों (approaches) तथा नई विधियों का बड़ा महत्त्व होता है। शैक्षिक नेता से यह आशा की जाती है कि वह अद्यतन (uptodate) शैक्षिक सामग्री से पूर्णतया परिचित रहे तथा अपने आश्रित व्यक्तियों को भी उनसे अवगत कराये। उत्तम शैक्षिक नेता अपने सहकर्मियों की शैक्षिक योग्यताओं की वृद्धि करने में रुचि लेता है। नेता की प्रेरणा से ही विद्यालय के अध्यापक योग्यता तथा कुशलता प्राप्त करने के लिये लालायित होते हैं। अध्यापकों का व्यक्तिगत रूप से परीक्षाओं को उत्तरीर्ण करना, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से अवकाश लेकर अनुसंधान कार्य करना तथा सभी विषयों पर उत्तमोत्तम ग्रन्थ लेखन का कार्य करना वास्तव में शैक्षिक स्तर को ऊँचा करना है। अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि किसी विद्यालय के मूल क्षेत्र में, कुछ खेलकूद की क्रियाओं में तो कुछ विद्यालय सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में प्रसिद्ध हो जाते हैं। वास्तव में इन विशिष्ट क्षेत्रों की ख्याति प्रधानाचार्य की विशेष प्रवृत्ति (attitude) पर ही अवलम्बित होती है। योग्य तथा कुशल नेता विद्यालय की सर्वांगीण उन्नति पर ही अपना ध्यान आकर्षित करते हैं और ऐसा करने में सफल भी होते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा विभाग के आदेशानुसार तथा पर्यवेक्षकों के दिये गये सुझावों के अनुसार जैसा शैक्षिक स्तर होना चाहिये उसे निर्मित करने तथा बनाये रखने के लिये योग्य शैक्षिक नेतृत्व की ही आवश्यकता होती है।

5. **सामाजिकता, सामाजिक जागरूकता तथा कार्यारम्भ की प्रवृत्ति का विकास** (Development in Socialibility, social Consciousness and Initiation)–किसी समूह के व्यक्ति पारस्परिक व्यवहारों में सामाजिकता को अपनाया अर्थात् जिन व्यवहारों को समाज में शिष्ट एवं सभ्य कहा जाता है, उन्हें अपनाने का प्रयत्न करें, इसके लिये मार्ग प्रदर्शन कुशल नेतृत्व द्वारा ही किया जा सकता है। समाज के नियमों में बँधकर तथा अनुशासन का पालन करते हुए श्रेष्ठ नागरिक के गुणों को निरन्तर सीखना सामाजिक जागरूकता कहलाती है। समाज में क्या भला अथवा बुरा है, इसका ज्ञान भी व्यक्ति को होना चाहिए परन्तु व्यक्ति स्वयं ही इन सभी बातों को नहीं जान सकता। अतएव इन बातों की उचित जानकारी प्राप्त करने के लिये किसी योग्य नेता की आवश्यकता का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त सभी व्यक्तियों में यद्यपि कार्य करने की शक्ति होती है और समय तथा अवसर मिलने पर वे उसका परिचय भी देते हैं परन्तु किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने की अथवा उनमें योग्यता और हिम्मत नहीं होती। कार्य में पहल करने तथा अन्य व्यक्तियों को लक्ष्य प्राप्ति में जुटाने की अद्‌भुत योग्यता नेता में ही होती है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि किसी समाज में नेतृत्व शक्ति द्वारा कार्यारम्भ पहले नहीं किया जाता तो वह समाज शक्ति रखते हुए भी सुप्त तथा मृतप्राय हो जाता है। सैनिकों में पराक्रम का अभाव कभी नहीं होता परन्तु अपने नेता, द्वारा कार्यारम्भ करते ही तथा नेता का संकेत मिलते ही सैनिकों में अद्‌भुत शक्ति का संचार होने लगता है।

एक अन्य सरल उदाहरण से इस बात को और भी अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। एक विद्यालय के अध्यापक पारस्परिक सद्‌भावनाओं में वृद्धि करने के लिये विद्यालय के अन्दर गोष्ठी अथवा क्लब की स्थापना करना चाहते हैं, छात्रों तथा अध्यापकों की सुविधा के लिये किसी सहकारी समिति का निर्माण करना चाहते हैं तथा छात्रों में नैतिकता

नोट

की भावना को जागृत करने के लिये अनेक योजनाएं भी बनाते हैं, इन कार्यों का संचालन करने के लिये कि अनेक बार विचार-विमर्श करते हैं परन्तु उनका कार्यान्वयन वे तब तक नहीं कर पाते जब तक कोई वरिष्ठ अध्यापक अथवा स्वयं प्रधानाचार्य इन कार्यों को करने में पहल नहीं करता। कार्यारम्भ होने के पश्चात् तो सभी व्यक्ति सक्रिय हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विद्यालय में सामाजिक जागरूकता तथा सामाजिकता को अपनाने के लिये शैक्षिक नेतृत्व की परमावश्यकता होती है।

## शैक्षिक नेतृत्व और उसका कार्य क्षेत्र (Educational Leadership and its Working Field)

किसी भी संगठन का कार्य-संचालन करने के लिये नेतृत्व शक्ति की उपयोगिता को स्वीकार किया जाता है। नेता अपनी सूझ-बूझ से अनेक कार्यों को सम्पादित करता है। शैक्षिक नेतृत्व के प्रमुख कार्यों को सम्पादित करता हैं शैक्षिक नेतृत्व के प्रमुख कार्यों के सम्बन्ध में भी विद्वानों ने विचार किया है। रेम्सेयर तथा अन्य (Ramseyer john. A and other) ने ओहियो (Ohia) विश्वविद्यालय के शिक्षा महाविद्यालय में शैक्षिक नेतृत्व के कार्यों के निम्नलिखित नौ क्षेत्रों को गिनाया गया है–

1. कार्यों के लिये उद्देश्यों को निश्चित करना।
2. नीति निर्धारित करना।
3. कार्यों का निश्चय करना।
4. प्रशासकीय कार्यों तथा उनके ढाँचे में समन्वय करना।
5. प्रभाव का मूल्यांकन।
6. शिक्षा विकास हेतु सामाजिक नेतृत्व के साथ मिलकर कार्य करना।
7. सामाजिक शैक्षिक साधनों का उपयोग करना।
8. समाज के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करना।
9. सम्बन्धित तथा शैक्षिक कार्यों में सहायक व्यक्तियों से विचार-विनिमय करना।

उपर्युक्त कार्यों का सम्पादन करने में ही शैक्षिक नेतृत्व-शक्ति की परीक्षा होती है। शैक्षिक नेतृत्व द्वारा यदि उद्देश्यों को गम्भीरतापूर्वक विचार करने के उपरान्त निश्चित किया जाता है तथा उसकी उपयुक्त नीतियों को निर्धारित किया जाता है और किये जाने वाले कार्यों का नेताओं द्वारा ठीक प्रकार अवलोकन किया जाता है तो कार्य-सफलता में कोई सन्देह नहीं रहता। शैक्षिक नेता शिक्षण-संस्था के लिये सजग प्रहरी होता है। संस्था के लिये समाज की जो बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं, उनका लाभ उठाने में शैक्षिक नेता अपनी पूरी शक्ति को लगा देता है। वस्तुत: किसी विद्यालय के प्रधानाचार्य (नेता) के उपयुक्त व्यवहार को देखकर ही समाज के व्यक्ति उस विद्यालय की उन्नति में सहायक होते हैं। उसके विपरीत प्रधानाचार्य के स्वभाव तथा व्यवहार की कटुता समाज के व्यक्तियों को कट्टर शत्रु बना देती है, साथ ही इन सामाजिक व्यक्तियों को विद्यालय के प्रति उदासीन भी बना देती है कहा जा सकता है कि विद्यालय की सतत् उन्नति के मूल में शैक्षिक नेता की कार्य शैली तथा उसका कुशल व्यवहार ही होता है। नेता द्वारा अपने आश्रित व्यक्तियों के साथ शिक्षण संस्था की प्रगति के सम्बन्ध में यदाकदा विचार-विनिमय करना भी साथियों के साथ विद्यालय की उन्नति के लिये विचार करना वास्तव में सामाजिकों की सहानुभूति तथा सद्भावना को प्राप्त करना है। शैक्षिक नेतृत्व द्वारा इन सभी कार्यों को करने में सदैव सजग एवं तत्पर रहना चाहिए।

1. निर्णय लेना। 2. योजना बनाना। 3. व्यवस्था करना।
4. विचार-विनिमय करना। 5. प्रभाव डालना। 6. समन्वय करना।
7. मूल्यांकन करना।

'ग्रेग' द्वारा सम्पादित शैक्षिक नेतृत्व के कार्यों तथा 'रिम्सेयर' के कार्यों में अधिक भिन्नता नहीं है। "व्यवस्था करने का कार्य" भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि वांछित उद्देश्यों की पूर्ति तथा नीति निर्माण की योजना वस्तुत: उचित व्यवस्था पर ही आधारित होती है। योग्य नेता द्वारा कार्य सफलता हेतु व्यवस्था पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है उचित

नोट

व्यवस्था ही उत्तम-अनुशासन का जन्म देती है। उदाहरणार्थ किसी विद्यालय के प्रधानाचार्य अपने साथी अध्यापकों के साथ किसी विशेष उत्सव को आयोजित करने की योग्यता बनाते हैं अथवा अध्यापकों तथा छात्रों को आयोजनों में बैठने-उठने तथा सभ्यतापूर्ण व्यवहार करने की सुशिक्षा दी जाती है। कुछ वरिष्ठ अध्यापकों को अनशासन के प्रति सजग रहने के लिये पहले ही तैयार कर लिया जाता है। तो सम्पूर्ण उत्सव एवं आयोजनों में पूर्ण सफलता मिलती है तथा विद्यालय के प्रधानाचार्य को भी अपूर्व आत्मगौरव की अनुभूति होती है।

## 11.4 प्रभावपूर्ण नेतृत्व के कार्य एवं विशेषताएँ (Functions and Characteristics of Effective Leadership)

संयुक्त राज्य अमेरिका में शैक्षिक नेतृत्व के ऐसे कार्यों के सम्बन्ध में विचार किया गया है। जिनका सम्पादन करने से शैक्षिक नेतृत्व की क्षमता में वृद्धि होती है। इन कार्यों का निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णन किया जा रहा है–

1. **सुनिश्चित नियोजन** (Planning)–योजना जितनी सुदृढ़ तथा सुनिश्चित होगी, कार्य में उतनी ही सफलता मिलेगी। उद्देश्य प्राप्ति एवं सफलता के लिये नेता को अत्यन्त कुशलतापूर्वक योजना का निर्माण करना चाहिए। योजना में क्रमबद्धता तथा सैद्धान्तिकता होनी चाहिए। शैक्षिक नेता योजना का निर्माण इस प्रकार करता है जिससे शिक्षा की गुणात्मकता में वृद्धि होती है तथा विद्यालयों की सेवा द्वारा समाज को भी अधिक लाभ मिलता है।
2. **वित्तीय कार्य कुशलता** (Efficiency Educational Finance)–शैक्षिक नेतृत्व का कार्य वित्तीय समस्याओं को सुलझाने का भी होता है। नेता को "भवन निर्माण, पुस्तकालय, क्रीड़ा, सांस्कृतिक" कार्य आदि पर व्यय होने वाली धनराशि का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। उसे बजट बनाने तथा भली प्रकार समझने में प्रवीण होना चाहिए। वास्तव में विद्यालय-कोष को उचित रूप में व्यय करना नेता की कुशलता पर ही अवलम्बित होता है। वार्षिक आय वित्तीय-निरीक्षण के कार्य को भी ठीक प्रकार से समझना अत्यन्त आवश्यक है।
3. **विकास कार्यों में निरन्तरता** (Continuation in Developing Programme)–वस्तुतः नेता को सम्पूर्ण राष्ट्र के शैक्षिक विकास, राष्ट्रीय नीति, स्थानीय सहायता, स्रोत आदि का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। शैक्षिक नेता के कार्यों की तभी प्रशंसा होती है तब वह विद्यालय की निरन्तर उन्नति के लिये प्रयत्न करता है। विद्यालय को अधिक दिनों तक सुप्तावस्था में रखना किसी भी दशा में प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। "स्थानीय व्यक्तियों की सहायता को प्राप्त करना, शैक्षिक योजनाओं के लिये विभिन्न स्रोतों से धन एकत्रित करना, शिक्षाधिकारियों को विद्यालय के लाभार्थ आमन्त्रित करना, नवीन अनुसन्धानों तथा नवीन शिक्षण-पद्धतियों को अपनाना" आदि ऐसे अनेक कार्य होते हैं जिसमें विद्यालय की निरन्तर उन्नति होती है तथा शैक्षिक नेता की ख्याति में भी वृद्धि होती है।
4. **संस्थागत प्रशासन** (Institutional Administration)–शैक्षिक नेता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य उस संस्था के प्रशासन को ठीक रखना है जिसका उत्तरदायित्व उसके कन्धों पर होता है। विद्यालय की अनेक गतिविधियाँ होती हैं "शैक्षिक कार्य, कार्यालय सम्बन्धी कार्य, पुस्तकालय, क्रीड़ाकार्य, शिक्षाधिकारियों के कार्यालयों से सम्बन्धित कार्य, समाज के व्यक्तियों से सम्पर्क रखना" आदि ऐसे अनेक कार्य हैं जिनके सम्बन्ध में नेता को सदैव जागरूक रहना होता है। इन कार्यों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान तथा इन्हें कार्यान्वित कराने का कौशल शैक्षिक नेता में पूर्णतया होना चाहिए। विद्यालय के विभिन्न कार्यों में शिक्षक, कार्णिक (Clerk) तथा अन्य कर्मचारी भाग लेते हैं, उनके प्रति नेता को सदैव जनतान्त्रिक नीतियुक्त व्यवहार करना चाहिए। शैक्षिक नेता के स्वभाव, व्यवहार तथा कार्य प्रणाली में इतना आकर्षण होना चाहिए कि उसके संकेत पर ही प्रशासन का कार्य उत्तम ढंग से चलता रहे। नेता के विरुद्ध संगठन या संस्था के कर्मचारियों द्वारा सामूहिक रूप में विरोध प्रकट करना, नारेबाजी तथा अश्लील शब्दों का प्रयोग करना नेता की असफलता ही समझी जाती है। वाणी का माधुर्य पारस्परिक सम्बन्धों के लिये आधार (Base) का कार्य करता है। शैक्षिक नेता को मीठे तथा सरल

नोट

वचनों का प्रयोग करने के लिये अभ्यस्त होना चाहिए। व्यंग्यात्मक तथा कटुतापूर्ण वाक्यों के प्रयोग से सभी निकट सहयोगी नेता के सम्पर्क से हटते चले जाते हैं और इन सभी बातों का प्रभाव संस्था के प्रशासन पर निश्चित रूप से होता है। शैक्षिक नेता को समुदाय तथा विद्यालय के निकटतम पड़ौसियों से भी उत्तम सम्बन्धों की स्थापना करनी चाहिए तथा विद्यालय की उन्नति में उनका निरन्तर सहयोग प्राप्त करना चाहिए। सारांश यह है कि शैक्षिक नेता स्वभाव, व्यवहार, निरीक्षण, आय-व्यय, ज्ञान, नियन्त्रण आदि में निपुण होकर ही संस्था के प्रशासन का ठीक से संचालन कर सकता है।

5. **नियुक्ति एवं चयन** (Recruitment and Selection)—संस्था का सम्पूर्ण कार्यभार योग्य अध्यापकों की नियुक्ति पर ही आश्रित होता है योग्य शैक्षिक नेता को यह स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए कि किस विषय तथा किस वेतनमान (grade) में कितने अध्यापकों के स्थान रिक्त होने वाले हैं तथा रिक्तपूर्ति हेतु किन योग्यताओं से परिपूर्ण अध्यापकों की नियुक्ति करनी है। नियुक्ति, प्रोन्नति (Promotion) के नियमों का भी नेता को पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। नियुक्ति इस प्रकार विधिवत् की जायें उनका अनुमोदन शिक्षाधिकारी-कार्यालय से अविलम्ब प्राप्त हो जाये। नियुक्ति सम्बन्धी प्रश्नों में हेर-फेर करने तथा नियमों का अधूरा ज्ञान होने से शिक्षकों का अनुमोदन (approval) दीर्घ काल तक न मिलने के कारण शिक्षकों को निराशा होने लगती है, उन्हें अपना भविष्य अधर में टंगा हुआ नजर आने लगता है। वास्तव में शिक्षकों को इस सम्बन्ध में सुविधा प्रदान करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व नेता (प्रधानाचार्य) पर ही होता है। नियुक्ति के अतिरिक्त विद्यालय के समस्त कार्यों का सम्पादन करने के लिये शैक्षिक नेता की दृष्टि तदानुकूल योग्यताओं वाले अध्यापकों पर रहनी चाहिए तथा उनके उचित कार्यों की प्रशंसा करनी चाहिए। सुयोग्य वक्ता, पाठ्येत्तर क्रियाओं में दक्ष, क्रीड़ा सम्बन्धी कार्यों का आयोजन करने में प्रवीण तथा अनुशासन प्रिय अध्यापकों को वही कार्य सौंपना चाहिए जिनके लिये वे अध्यापक सर्वथा योग्य तथा क्षमतावान् हैं। ऐसे कार्यों के सम्पादन में ही इन अध्यापकों की क्षमताओं की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सकती है। पूर्णतया उत्तरदायित्व सीलने वाले तथा प्रत्येक गतिविधि में अगुआ रहने वाले अध्यापकों का नेता द्वारा कुशलता पूर्वक चयन किया जाना परमावश्यक है। उचित चयन के लिये निष्पक्षता, उदारता तथा न्यायप्रियता की आवश्यकता है जो शैक्षिक नेता में पूर्णरूप से होनी चाहिए। वास्तव में उपयुक्त नियुक्ति एवं चयन की प्रक्रिया ही अध्यापकों में "सन्तोष आत्मविश्वास, कार्य तल्लीनता, संस्था के प्रति आस्था" आदि अनेक गुणों की वृद्धि करती है। शैक्षिक नेता को अपने आश्रित व्यक्तियों की निरन्तर उन्नति करने में प्रसन्नता होनी चाहिए। इसके विपरीत योग्य अध्यापकों की कुशलता से भयभीत होना अथवा उनके अध्यापन कार्य के प्रति इर्ष्या भाव रखना (Professional jealousy) तथा उनकी उन्नति में परोक्ष अथवा अपरोक्ष ढंग से रोड़े अटकाना शैक्षिक नेता के व्यक्तित्व में व्याप्त हीनभावना को ही व्यक्त करता है। निस्सन्देह नियुक्ति एवं चयन सम्बन्धी कार्यों में शैक्षिक नेता को अत्यधिक कुशल होना चाहिए।

6. **छात्रों के प्रवेश की योजना** (Planning for the student's administration)—संख्या की सामर्थ्यानुसार छात्रों को प्रवेश देने की योजना बनाना नेता का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। इसके लिये "अध्यापकों की समिति का निर्माण करना, प्रवेश के लिये परीक्षा आदि की योजना बनाना तथा छात्रों के पुराने चारित्रिक तथा शैक्षिक प्रमाणपत्रों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना" आदि प्रमुख कार्य समझे जाते हैं कुछ अच्छे वक्ता, कुशल खिलाड़ी तथा पाठ्येत्तर क्रियाओं में अग्रणी छात्रों को प्रविष्ट करने में भी प्रधानाचार्य को सजग रहना आवश्यक है। विद्यालय-प्रांगण में छात्रों को सभी क्षेत्रों में उत्तम बनने का प्रयास करना वास्तव में शैक्षिक नेता का मुख्य कार्य होना चाहिए।

7. **विद्यालय भवन तथा साज-सज्जा** (School Building and Equipement)—वस्तुतः विद्यालय के भवन निर्माण का उत्तरदायित्व शैक्षिक नेता पर ही होता है। भवन का बनाना, उसकी मरम्मत करना तथा आवश्यकता के अनुसार उसका विकास करना प्रधानाचार्य के मुख्य कार्यों में सम्मिलित होता है। भवन निर्माण के लिये नेता को योग्य इंजीनियरों तथा तकनीकी विशेषज्ञों से परामर्श लेना चाहिए। केवल भवन निर्माण करने में ही

नोट

शैक्षिक नेता के कार्य ही इति श्री (समाप्ति) नहीं समझी जाती अपितु प्रत्येक विषय तथा विभाग के लिये साज-सज्जा का प्रबन्ध करना भी अत्यन्त आवश्यक है। कला, विज्ञान, गृहविज्ञान आदि विषयों के कमरों में पर्याप्त शिक्षण सामग्री इस प्रकार व्यवस्थित की जानी चाहिए जिससे आगन्तुकों तथा अतिथियों द्वारा प्रशंसा प्राप्त हो सके। सम्पूर्ण संस्था की साज-सज्जा पर भी प्रधानाचार्य का विशेष ध्यान होना चाहिए। केवल टोली निरीक्षण के अवसर पर ही विद्यालय की सफाई रखना तथा उसके पश्चात् वर्षों तक इस ओर ध्यान नहीं देना, नेता का उचित कार्य नहीं होता।

शैक्षिक नेता द्वारा ये सभी कार्य कुशलता के साथ किये जाने चाहिए। इन कार्यों का परिणाम विद्यालय की उन्नति तथा प्रधानाचार्य की प्रशंसा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः किसी भी शैक्षिक नेता का व्यक्तित्व कार्य क्षेत्र में ही चमकता है। प्रत्येक क्षेत्र का पूर्ण ज्ञान रखने तथा शिक्षण संस्था के कार्यों को कुशलतापूर्वक करने से शैक्षिक नेता आदर व यश का पात्र होता है।

## उत्तम शैक्षिक नेतृत्व की विशेषताएँ (Characteristics for Good Educational Leadership)

भारत की वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षा-क्षेत्र की बहुमुखी उन्नति हुई है। शिक्षण संस्थाओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। शिक्षण संस्थाओं तथा शिक्षा विभागों का दक्षतापूर्वक संचालन करने के लिये योग्य शैक्षिक नेतृत्व की परमावश्यकता होती है। किसी संस्था का प्रधानाध्यापक होना अथवा किसी विभाग का अध्यक्ष होना ही सर्वगुणसम्पन्नता का परिचायक नहीं है। किसी भी शैक्षिक नेता (प्रधानाचार्य आदि) के एक या दो अवगुण ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की छवि को नष्ट करने के लिये पर्याप्त होते हैं। किसी नेता का प्रभावशाली व्यक्तित्व होते हुए भी उसमें आत्मविश्वास तथा समायोजन की क्षमता का अभाव उसकी लोकप्रियता में बाधक बन जाता है तो किसी में कार्यारम्भ करने की पहल का गुण न होने से वह सदैव संकोचशील तथा भीरू बना रहता है। कुछ ऐसी योग्यताएं अवश्य हैं जिनको अपनाने से शैक्षिक नेता विद्यालय प्रांगण तथा स्थानीय जनता के मध्य प्रशिक्षित समझा जाता है। वस्तुतः शैक्षिक नेता की गुणात्मकता (Qualitativeness) ही उसे योग्य नेता बनाती है। कतिपय विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में इसी आशय से किया जा रहा है जिससे उत्तम शैक्षिक नेतृत्व प्राप्त करने में सुविधा हो सके–

1. **प्रभावशाली व्यक्तित्व** (Effective Personality)–शैक्षिक नेता अपने संगठन का मुख्य व्यक्ति होता है। जब कोई विद्यालय निरीक्षक, निर्देशक अथवा प्रधानाचार्य हमारे सम्मुख आता है। तब सर्वप्रथम हमारी दृष्टि उसके बाह्य व्यक्तित्व (सुडौल अंग-प्रत्यंग, कद, वर्ण) भी आकर्षण उत्पन्न करता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिये शारीरिक स्वास्थ्य की परमावश्यकता होती है। डब्ल्यू. एम. रायबर्न का प्रधानाचार्य के लिये कथन है "प्रधानाचार्य किसी जहाज के कप्तान की भाँति स्कूल में अपना मुख्य स्थान रखता है–"

   "The headmaster holds the day position in a school just as the Captain of a ship holds the key position on a ship."

   अतएव ऐसे मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण पद को सुशोभित करने के लिये प्रभावशाली व्यक्तित्व की अत्यन्त आवश्यकता है।

2. **आदर्श चरित्र** (Ideal Character)–शैक्षिक नेतृत्व के लिये चरित्र आदर्शवादिता परमावश्यक है। चरित्र तो स्वभावों तथा मानवीय गुणों के भण्डार का ही दूसरा नाम होता है। चरित्र के अन्तर्गत "सत्यवादिता, नैतिकता, सद्भावना, ईमानदारी, न्यायप्रियता, निष्पक्षता, सामाजिकता, शिष्टता" आदि अनेक गुणों की गणना की जा सकती है। शैक्षिक नेता का आदर्श चरित्र आश्रित कर्मचारियों के लिये मार्गदर्शन, प्रेरणास्रोत तथा प्रकाश स्तम्भ के रूप में होता है। "आदर्श" शब्द मूल्यों तथा पवित्र आचरणों से जुड़ा हुआ है। समाज में जो कार्य तथा विचार अन्य व्यक्तियों के लिये अनुकरणीय होते हैं। वे आदर्श के प्रतीक होते हैं जनकल्याण भावना का परिचय देता है तो उसका चरित्र उज्ज्वल हो उठता है। दुश्चरित्रता के अवसर मिलने पर भी चारित्रिक दृढ़ता आर्थिक प्रलोभन दिये जाने पर भी इमानदारी का प्रमाण, भयावह परिस्थितियों में भी धैर्य का परिचय वही शैक्षिक नेता

नोट

दे सकता है जो आदर्श चरित्रवान होता है। निस्सन्देह शैक्षिक नेता के आदर्श चरित्र का आलोक सम्पूर्ण संस्था के वातावरण को आलोकित कर देता है जिससे आश्रित व्यक्ति कभी मार्ग नहीं भूल सकते और वे भी सदैव कर्त्तव्य साधना में तल्लीन रहते हैं।

3. **व्यावसायिक तथा शैक्षिक ज्ञान** (Professional and Academic Knowledge)—शैक्षिक नेतृत्व के लिये शिक्षा सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी का होना आवश्यक है। अध्यापन व्यवसाय की समस्याओं तथा उनका निराकरण करना नेता का विशिष्ट गुण होना चाहिए। नेता का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए जिससे वह जन सभाओं में अपने ज्ञान से अन्य व्यक्तियों को प्रभावित कर सके। शिक्षा व्यवसाय की उन्नति हेतु सुझाव, नियोजन तथा संगठन करना भी शैक्षिक नेता का आवश्यक गुण माना जाता है। विविध विषयों तथा नवीन शिक्षण-विधियों का स्पष्ट ज्ञान भी शैक्षिक नेता के सम्मान में वृद्धि कर देता है। शैक्षिक नेता को ज्ञान वृद्धि के लिए शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों तथा समाचार पत्रों का निरन्तर अध्ययन करते रहना चाहिए। प्रधानाचार्यों को विद्यालयों में सुन्दरतम पुस्तकालयों का प्रबन्ध करना चाहिए जिससे अध्ययन का वातावरण बन सके। शिक्षण व्यवसाय तथा शिक्षा से सम्बन्धित अनेक पत्र-पत्रिकाओं को पुस्तकालय में रखना आवश्यक है। इस प्रकार की व्यवस्था में शैक्षिक नेता की अभिरुचि होनी चाहिए।

4. **सहिष्णुता एवं समायोजन** (Toleration and adjustment)—किसी भी संस्था संगठन अथवा समाज में सदैव भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों वाले व्यक्ति रहते हैं। शिक्षण संस्था में भी सभी अध्यापक पृथक स्वभाव रखते हैं। अतएव नेता अथवा प्रधानाचार्य का स्वभाव समायोजन करने की क्षमता की अवश्य होना चाहिए। संस्था में विरोधी व्यक्ति अनुशासनहीनता तथा उच्छृंखलता का वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। नेता के विरुद्ध अश्लील शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में नेता को सहिष्णुता के गुणों का प्रदर्शन करना चाहिए। विरोधियों के साथ भी मृदुलता में वार्तालाप करना तथा समस्या को सुलझाने के लिए धैर्यपूर्वक प्रयास करते रहना शैक्षिक नेता का अद्वितीय गुण होता है वस्तुतः विरोधियों को पराजित करना तो सरल कार्य है परन्तु विरोधियों के हृदय को जीतना कठिन कार्य होता है। शैक्षिक नेता को हृदय जीतने के महान कार्य में निरन्तर विश्वास रखना चाहिए, क्योंकि यदि परिस्थितिवश किसी व्यक्ति के साथ यदा-कदा अप्रसन्नता या कटुता का व्यवहार करना पड़े तो भी शैक्षिक नेता को यह बात भुला देनी चाहिए। एक बार हृदय में ईर्ष्या तथा प्रतिशोध की भावना आने पर यह व्यक्ति को वर्षों तक बन्धन में जकड़े रहती है। सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रत्येक क्षण प्रसन्न करना सम्भव नहीं होता है। *'दुश्मनी लाख सही खत्म न कीजे रिश्ते, दिल मिलें या न मिले हाथ मिलाते रहिये।'* वास्तव में यह पंक्ति शैक्षिक नेता को समायोजन का पाठ सिखाने में सहायक है। कुछ नेता अपने स्वभाव से मेल न रखने वाले आश्रित व्यक्तियों से बोलना भी बन्द कर देते हैं तथा पगपग पर उनकी उपेक्षा करने लगते हैं, ऐसा व्यवहार उचित नहीं होता। शैक्षिक नेता को तो सदैव सहिष्णुता तथा समायोजन में ही विश्वास रखना चाहिए।

5. **संस्थागत नियोजन का ज्ञान** (Knowledge Institutional Planning)—प्रत्येक शैक्षिक नेता को संस्थागत नियोजन का ज्ञान होना चाहिए। संस्थागत योजना में वे सभी कार्य सम्मिलित होते हैं जो संस्था के सर्वांगीण विकास में आवश्यक समझे जाते हैं। वस्तुतः इस योजना में नेता के अतिरिक्त व्यक्तियों का प्रयास एवं परामर्श सम्मिलित किया जाता है। इसमें मानव साधनों से बड़ा समझा जाता है। प्रतिभावाना व्यक्तियों की मानसिक क्षमता का पूर्ण लाभ उठाया जाता है। स्थानीय समुदायों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त किया जाता है।

6. **पक्षपात रहित दृष्टिकोण** (Unprejudiced Attitude)—पक्षपातपूर्ण व्यवहार नेता की लोकप्रियता को नष्ट करने वाला होता है। शैक्षिक नेता द्वारा कुछ व्यक्तियों को अनुचित लाभ पहुँचाना तथा कुछ व्यक्तियों की उपेक्षा करना वास्तव में दलबन्दी तथा विरोधी भावना को प्रोत्साहन देना है उस नेता की न्यायप्रियता तथा समान्यतापूर्ण व्यवहार की सर्वत्र प्रशंसा होती है। उसका शैक्षिक प्रशासन भी सुव्यवस्थित ढंग से चलता रहता

नोट

है। शैक्षिक नेता के मन में अपने–पराये का विचार आना भी नहीं चाहिए। उसके लिए तो सभी अपने होने चाहिए। सद्व्यवहार तो पराये व्यक्तियों को भी अपना बना लेता है। निस्सन्देह शैक्षिक नेता का पक्षपात रहित दृष्टिकोण ही संस्था के सम्पूर्ण वातावरण को प्रशंसनीय बनाने में सक्षम होता है।

7. **मानवीय सम्पर्क कला में दक्षता** (Expertness in Human Relationship)–नेता को सदैव दूसरे व्यक्तियों के विचारों को ध्यानपूर्वक सुनने तथा उनके प्रति आदरभाव रखने का अभ्यास करना चाहिए। अन्य व्यक्ति उसकी कथनी और करनी में विश्वास रखें, अनुचित दबाव की अनुभूति न कर सकें तथा उसके व्यवहार से निरन्तर प्रसन्न रहें, शैक्षिक नेता को ऐसा बनने के लिए सदैव प्रयास करना चाहिए। स्नेहपूर्ण तथा मैत्रीयुक्त व्यवहार मानवीय सम्बन्धों में मधुरता उत्पन्न करता है। शैक्षिक नेता को सदैव सभी व्यक्तियों का परामर्श लेना तथा पारस्परिक सहयोग एवं प्रेम भावना के लिये प्रयत्न करना चाहिए। विद्यालय में छात्रों तथा अध्यापकों, अध्यापकों तथा संरक्षकों के पारस्परिक सम्बन्ध की मधुरता में प्रधानाचार्य की व्यावहारिक क्षमता निश्चित रूप से वृद्धि करती है। शैक्षिक नेता को अपनी सुरक्षा अथवा स्वार्थप्रियता को ध्यान में रखते हुए कभी आश्रित व्यक्तियों को आपस में टकराने के लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इस कुत्सित प्रक्रिया के कारण मानवीय सम्बन्धों की समाप्ति हो जाती है।

8. **भाषण तथा लेखन क्षमता** (Ability of Speech and Writing)–केवल जनतन्त्र में ही नहीं अपितु प्रत्येक युग में भाषण की विशिष्ट योग्यता नेता की लोकप्रियता का आधार मानी जाती है। शैक्षिक नेता को भी विद्यालय में, जनता के बीच में अपने विचारों की अभिव्यक्ति इतने प्रभावशाली ढंग से करनी चाहिए जिससे अन्य व्यक्ति नेता की योग्यता को भली प्रकार समझ सकें। ज्ञानवान होने पर भी स्पष्ट वक्ता न होने पर शैक्षिक नेता प्रभाव शून्य ही रहता है। इसी प्रकार लेखन–योग्यता का भी शैक्षिक नेता के लिए अधिक महत्व होता है। शिक्षा विभाग के प्रपत्रों का ठीक प्रकार उत्तर देने, शिक्षा विभाग के कर्मचारियों के लिये आदेश लिखने तथा समय-समय पर अनुसन्धानात्मक लेख लिखने में शैक्षिक नेता को प्रवीण होना चाहिए। कुछ विद्यालयों में देखा जाता है कि कार्यालय अधीक्षक द्वारा कागज पर जो लिख दिया जाता है, जैसा ड्राफ्ट बना दिया जाता है उस पर मौन होकर विद्यालय के प्रधानाचार्य हस्ताक्षर करने में ही अपनी सुरक्षा समझते हैं। उस ड्राफ्ट में संशोधन करने का साहस ही नहीं दिखाते। वास्तव में लेखन-योग्यता का अभाव ही उन्हें मूक दर्शक बनने के लिये विवश करता है। शैक्षिक नेता को निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण हेतु आख्या लिखने में नित्यप्रति डाक में आए हुए पत्रों का उत्तर देने, जनता के अनेक प्रश्नों का उत्तर देने, आदि अनेक कार्यों में लेखन योग्यता की आवश्यकता होती है। अशुद्ध उच्चारण करना, रुक-रुक कर बोलना, लिखते समय वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ करना तथा अशुद्ध वाक्य गठन करना शैक्षिक नेता के प्रभाव को समाप्त करता है। तथा उसे हास्यास्पद स्थिति में खड़ा कर देता है अतएव भाषण तथा लेखन की क्षमता शैक्षिक नेता के लिए परमावश्यक है।

9. **उत्तरदायित्व निर्वाह तथा कार्य में पहल करने की क्षमता** (Ability of responsibility and Initiation)– शैक्षिक नेता को कर्त्तव्य परायण, लगनशील तथा उद्यमी होना चाहिए। उसके चेहरे पर सजीवता, प्रफुल्लता तथा सक्रियता दिखाई देनी चाहिए। प्रत्येक कार्य में उसे अगुआ होना चाहिए। नेता की इस विशेषता का प्रभाव अन्य व्यक्तियों पर गहरा होता है। इसी प्रकार विद्यालय अथवा शिक्षण-संस्था के समस्त कार्यों में शैक्षिक नेता को पूर्ण उत्तरदायित्व निभाना चाहिए। स्वयं सदैव कार्यालय में बैठे रहना तथा महत्वपूर्ण कार्यों को भी आश्रित व्यक्तियों पर टालते रहना विद्यालय के वातावरण को अस्त-व्यस्त कर देता है। आलस्य तथा अकर्मण्यता तो मनुष्य के लिए शत्रुवत होते हैं इसलिए इनका शैक्षिक नेता को सर्वथा परित्याग करना चाहिए।

10. **आत्म-विश्वास तथा सहयोग प्राप्त करने की क्षमता** (Self confidance and Cooperation)–नेता का आत्म-विश्वास उसका सबसे बड़ा गुण होता है। आत्मविश्वास महान से महान कार्यों में सफलता प्रदान करता है। नेता का व्यक्तित्व आत्मविश्वास के कारण ही विकसित होता है। नेता वही सफल होता है जो स्वयं विश्वासी होता हुआ अपने साथियों पर भी विश्वास करता है। शैक्षिक नेता यदि अन्य व्यक्तियों के कार्यों की सराहना करता है और कार्यों में भी सहायता करता है तो उसे पूर्ण सहयोग मिलता है। शैक्षिक नेता के प्रत्येक आदेश

नोट

को पूर्ण सम्मान देते हुए कार्य में जुटना तथा कार्य में सफलता प्राप्त करने का नाम ही सहयोग होता है। वस्तुत: शैक्षिक नेता तथा अन्य कर्मचारी शृंखला की कड़ियों के समान एक दूसरे से जुड़े हुए होने चाहिए। शैक्षिक नेता का सद्व्यवहार सहयोग भावना को विकसित करने में सहायक होता है।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य विशेषताओं पर शैक्षिक नेता को ध्यानाकर्षण करते रहना चाहिए। इस प्रकार की विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख किया जा सकता है–

1. आशावादी दृष्टिकोण (Optimistic outlook)
2. प्रशासनिक योग्यता (Administrative ability)
3. जनतान्त्रिक व्यवहार (Democratic Behaviour)
4. मनोविज्ञान का ज्ञान (Knowledge of Psychology)
5. समाज की आवश्यकताओं का ज्ञान (Knowledge of Social needs)
6. विनोदी स्वभाव (Humorous Nature)
7. संगठन शक्ति (Organizing capacity)
8. दूरदर्शिता (Farsightedness)
9. मिलनसारी की योग्यता (Capacity to mixup with others)
10. प्रेरणा स्त्रोत (Source of Inspiration)
11. कार्य के प्रति आस्था (Devotion to work)
12. अभिवृत्यात्मक विशेषताएँ (Attitudenal abilities)

यथा– (क) समूह के सभी व्यक्तियों को उपयोगी समझना।

(ख) दूसरे व्यक्तियों के प्रति विश्वास व्यक्त करना।

(ग) अन्य व्यक्तियों के विचारों का आदर करना।

(घ) शैक्षिक कार्यों की सफलता में समूह के प्रत्येक व्यक्ति के योगदान को समझना।

(ङ) अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करने तथा उनसे प्रभावित होने की भावना रखना।

(च) समूह के अन्य व्यक्तियों को बुद्धिमान समझना।

(छ) समूह को नियन्त्रित करने तथा समूह द्वारा नियन्त्रित होने की भावना रखना।

शैक्षिक नेतृत्व की पूर्ण सफलता के लिये उपर्युक्त सभी विशेषताओं का पालन करना आवश्यक है। शैक्षिक नेता का समूह के व्यक्तियों में सर्वोपरि स्थान होता है। अतएव इस पद या स्थान की गरिमा को बनाए रखने के लिए नेता के व्यक्तित्व में गुणों का अतुलनीय भण्डार होना चाहिए।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' तथा 'असत्य' का चुनाव कीजिए–**

**(State Whether the following statement are 'True' or 'False')**

1. कुशल नेतृत्व के लिए सुदृढ़ और सुनिश्चित योजना निर्माण परम आवश्यक होता है।
2. शैक्षिक नेतृत्व के लिए वित्तीय कार्यकुशलता जरूरी नहीं होती।
3. शैक्षिक नेता में उचित चयन के लिए निष्पक्षता, उदारता तथा न्यायप्रियता की आवश्यकता होती है।
4. प्रभावशाली व्यक्तित्व उत्तम शैक्षिक नेतृत्वकर्ता की विशेषता होती है।
5. शैक्षिक नेतृत्वकर्ता आदर्श चरित्र और पक्षपात रहित होना चाहिए।

नोट

## 11.5 सारांश (Summary)

- नेतृत्व साहित्य में अनेक प्रकार के नेतृत्व का उल्लेख मिलता है। मुख्य रूप से नेतृत्व का वर्गीकरण (1) कार्यों के आधार पर (2) पद/प्रस्थिति के आधार पर और (3) गतिशीलता के आधार पर किया जा सकता है।
- अहस्तक्षेपीय नेतृत्व वस्तुत: कोई नेतृत्व नहीं होता। उस स्थिति में हर व्यक्ति स्वेच्छाचारी हो जाता है। अत: दो ही प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ हैं–(1) आधिकारिक व (2) जनतंत्रीय। प्रधानाध्यापक को दोनों शैलियों में से एक चुनना होता है।
- आधिकारिक शैली के सम्बन्ध में **अर्गरिस** ने लिखा है–यदि प्रबंधक कार्य की स्वयं शुरूआत करता है, नीतियों पर नियंत्रण करता है, कार्य प्रणाली स्वयं निर्दिष्ट करता है, भविष्य के पारितोषकों का नियंत्रण करता है तथा अधीनस्थों के कार्य का विश्लेषण व मूल्यांकन करता है जब उसे निर्देश या आधिकारिक निरंकुश नेता कहा जा सकता है।
- आधुनिक युग की यह सबसे प्रशासनिक/प्रबंधन मान्य नेतृत्व शैली है। जनतंत्रीय नेतृत्व परिस्थितिजन्य होता है। इस नेतृत्व शैली में जहां तक सम्भव है, प्रबंधन प्रक्रिया से सम्बन्धित घटकों, आयोजन, नीति निर्धारण, कार्य विभाजन में सभी मिलकर आम राय से कार्य करते हैं।
- वस्तुत: यह कोई नेतृत्व शैली नहीं है। इस नेतृत्व का स्वयं पर भरोसा नहीं होता अत: वह स्वयं को अधिकाधिक कागजी कार्यवाही में व्यस्त रखता है। वह अधिकांश कार्य अपने सहयोगियों पर डालकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। अत: एक ऐसी स्थिति जन्म लेती है, जब संगठन नेतृत्वविहीन लगता है।
- इस शैली में नेतृत्व के संगठनात्मक व्यवहार आते हैं। नेतृत्व संगठन के लक्ष्यों पर अधिक ध्यान देता है, व्यक्ति की अपेक्षाओं पर कम ध्यान जाता है। व्यक्ति का मूल्यांकन अपेक्षाओं की पूर्ति के आधार पर तय होता है। यह सिद्धान्त भूमिका सिद्धान्त (Role Theory) से प्रभावित है।
- इस शैली में मुख्य रूप से व्यक्ति को प्राथमिकता दी जाती है। उसकी आवश्यकता, आकांक्षाओं की संगठन द्वारा पूर्ति हो रही है अथवा नहीं, ध्यान दिया जाता है। व्यक्ति संगठन से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।
- विद्यालय का निर्विवाद अधिकृति प्रधानाध्यापक है। प्रस्थिति के अनुसार वह नेता भी है। विद्यालय की समग्र गतिविधियाँ उसी से नियमित होती हैं। अत: अपेक्षा है कि विद्यालय प्रधानाध्यापक सुयोग्य हो ताकि राष्ट्र के भावी नागरिकों का अपेक्षित निर्माण कुशल नेतृत्व में हो।
- राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार की आवश्यकता भी अनुभव की गई है कि कुशल प्रबंधकों प्रशासकों के निर्माण के लिए अनुस्थापन (ओरिएन्टेशन) कार्यक्रम आयोजित हों। योजना एवं प्रशासन राष्ट्रीय संस्थान (NIEPA) इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करता भी है, परन्तु ये प्रयास अभी तक नगण्य हैं। आवश्यकता है कि इस प्रकार के कार्यक्रम अधिकाधिक हों।
- नेतृत्व शैलियों का ज्ञान किसी भी प्रभावी प्रधानाध्यापक को प्रभावी प्रबंध की योग्यता अर्जित करने के लिए आवश्यक है। उससे यह अपेक्षा है कि वह उस नेतृत्व शैली को अपनाए जिससे संगठन व समूह की अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके।
- राष्ट्र, शिक्षा जगत, स्थानीय समुदाय तथा विद्यालय सभी की यह अपेक्षा है कि प्रत्येक विद्यालय प्रधानाध्यापक उसके शिक्षकों व विद्यार्थियों तथा समुदाय को एक सृजनशील, प्रभावी शैक्षिक नेतृत्व प्रदान करे।
- विद्यालयी प्रबंध में तथा उसकी प्रभाविता में प्रधानाध्यापक के नेतृत्व का अत्यन्त महत्त्व है। यह उसका नेतृत्व ही है कि जिसके कारण विद्यालय में सकारात्मक पर्यावरण का सृजन होता है तथा विद्यालय के छात्रों की श्रेष्ठ निष्पत्ति संभव होती है। नेतृत्व की तीन शैलियाँ होती हैं–आधिकारिक नेतृत्व शैली, जनतांत्रिक नेतृत्व शैली व अहस्तक्षेपीय नेतृत्व शैली। एक-दूसरे विभाजन के आधार पर आदर्श मूलक, व्यक्तिमूलक व मध्यवर्तीय शैलियाँ होती हैं। नेतृत्व को लेकर विभिन्न संस्थितियों के अनेक नेतृत्व प्रतिमान आज उपलब्ध हैं। इसमें पाल हर्से, कैनथ तथा ब्लेशर्ड का कार्य व जन आधारित प्रतिमान, टेनन बॉय व श्मिट का नेतृत्व व्यवहार प्रतिमान,

नोट

हॉल्पिन की अगुवाई प्रतिमान, आहियो स्टेट नेतृत्व प्रतिमान, ब्लेक तथा मोटन का प्रबंधक ग्रिड संकल्पना टैरी तथा फ्रैंकलीन का नेतृत्व एकीकृत प्रतिमान, प्रबंध का त्रिकोणीय सिद्धांत, प्रबंध नेतृत्व दक्षता प्रतिमान प्रमुख हैं। इन प्रतिमानों के अनुशीलन से प्रधानाध्यापक विभिन्न संस्थितियों में अपनी भिन्न भूमिका निश्चित कर सकता है। प्रधानाध्यापक को विद्यालयी नेतृत्व में अनेक समस्याएँ भी आती हैं। इन समस्याओं के लिए अनेक निर्णय सिद्धान्त उपलब्ध हैं। इनमें मोर्ट का समन्वित निर्णय सिद्धान्त, प्रशासनिक व्यवहार सिद्धान्त, शिक्षा प्रशासन कार्य सिद्धान्त, ग्राफ तथा स्ट्रीट का दक्षता सिद्धान्त, गेटजेल का संघर्ष सिद्धान्त, बर्नाड व साइमन का संतुलन सिद्धान्त, ग्रिफिथ्स का निर्णय सिद्धान्त तथा ब्लेक व मोटन का मेनेजेरियल ग्रिड सिद्धान्त प्रमुख हैं। प्रधानाध्यापक क्योंकि विद्यालय समाज की एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक विकास की इकाई है अत: उसके प्रभावी नेतृत्व की राष्ट्र, समाज, शिक्षक, विद्यार्थी आदि सभी की अपेक्षाएँ हैं।

- फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर "अहं-आदर्श" (Ego Ideal) ही "नेतृत्व" का जन्म है, क्योंकि अहं अनुभूति होती है जो मानव को किसी कार्य के लिये प्रेरित करती है। जब इस "अहं" में कोई उद्देश्य अथवा आदर्श समाहित हो जाता है तो वह "अहं आदर्श" कहलाने लगता है यही "अहं आदर्श" मनुष्य को नेता बनने की निरन्तर चेष्टा में तल्लीन रहने की प्रेरणा देता रहता है। व्यक्ति "अहं आदर्श" के वशीभूत होकर ऐसे "आत्म-प्रदर्शन" के कार्य करने लगता है जिससे वह समाज में आदर्श स्थान प्राप्त करता है।
- अंग्रेजी भाषा में Leader शब्द का अर्थ है One who leads है। "लीडर" शब्द भी "नायक", "मार्ग-प्रदर्शक", "अगुआ तथा अग्रसर करने वाला" अर्थों को प्रकट करता है। इन शब्दों के शाब्दिक अर्थों को स्पष्ट करने का तात्पर्य यही है कि जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को मार्ग दिखाने अथवा अगुवा होकर आदर्श व्यवहार करने की क्षमता रखता है, वही सचमुच नेता कहलाता है।
- 'प्रभुत्व' तथा 'नेतृत्व' में थोड़ा अन्तर होता है। जहाँ किसी भी प्रकार शक्ति अथवा आधिपत्य प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है वहाँ प्रभुता होती है। स्वेच्छाचारिता, आतंक अथवा भय दिखाकर भी प्रभुता प्राप्त की जा सकती है। प्रभुत्व में स्वार्थपरता तथा संकीर्णता व्याप्त होती है परन्तु जहाँ व्यक्ति जनसमूह के हृदय पर अधिकार जमाकर परोपकार की भावना को व्यक्त करता है। नि:स्वार्थ भावना के द्वारा ही नेतृत्व शक्ति को प्राप्त किया जा सकता है वास्तव में नेतृत्व की भावना के लिये ही परोपकार सेवा तथा कल्याण की भावना को रखना अत्यन्त आवश्यक है।
- 'प्रशासन' तथा 'नेतृत्व' में भी सूक्ष्म अन्तर स्वीकार किया जाता है। वस्तुत: प्रशासन के अन्तर्गत किन्हीं कार्यों को स्थिरतापूर्वक तथा कुशलतापूर्वक करने का प्रयास किया जाता है। परन्तु उस कार्य प्रणाली में अधिक परिवर्तन करने की इच्छा प्रकट नहीं की जाती इसके विपरीत नेतृत्व के अन्तर्गत परिवर्तन को ही मुख्य कार्य समझा जाता है। जो परिवर्तन न कर सके उसे नेता ही नहीं कहा जाता।
- प्रभावशाली नेतृत्व की योग्यता को प्राप्त करने के लिये नेता में अनेक गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है। नेतृत्व के गुण वस्तुत: संख्या में इतने अधिक हैं जिन्हें सरलतापूर्वक गिनाया भी नहीं जा सकता।
- नेतृत्व के लिये 'बौद्धिक कुशाग्रता' एक आवश्यक गुण समझा जाता है। बौद्धिक कुशाग्रता के अन्तर्गत सूझ (Insight), व्यापक दृष्टि (Vision), चातुर्य, परिपक्व अनुभव, उच्च चिन्तन आदि विशेषताओं की आवश्यकता होती है।
- वर्तमान युग में शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता जा रहा है। शिक्षा मन्त्रालय, शिक्षा विभाग तथा शिक्षालयों में सभी प्रकार के व्यक्तियों को कार्य करना पड़ता है। इनमें से कुछ व्यक्ति प्रशासक के रूप में अपने कार्य का निर्वाह करते हैं तथा अन्य व्यक्तियों से आशा की जाती है कि वे प्रशासक के आदेशानुसार कार्य करें।
- "शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में किसी विशिष्ट व्यक्ति का जनतान्त्रिक युक्त तथा सहकर्मियों के हृदय को सर्वांगरूप में जीतने वाला व्यवहार जो वैयक्तिक तथा अर्जित गुणों पर आधारित होता है, "शैक्षिक नेतृत्व" कहा जाता है।"

नोट

- आवश्यकता (Need) शिक्षा का क्षेत्र भी अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र है। देश की रचनात्मक तथा विकासात्मक अवस्था के मूल में शिक्षा ही होती है। उत्तम शिक्षा तथा समाजोपयोगी शिक्षा की व्यवस्था शैक्षिक नेतृत्व के अभाव में कदापि नहीं हो सकती।

## 11.6 शब्दकोश (Keywords)

- **तटस्थ**–गुटबाजी से अलग रहना।
- **अर्जित करना**–प्राप्त करना।

## 11.7 अभ्यास-प्रश्न ( Review Questions)

1. नेतृत्व की कौन-कौन सी प्रमुख शैलियाँ हैं? वर्णन कीजिए।
2. प्रधानाध्यापक की नेतृत्व सम्बन्धी भूमिका का विवेचन कीजिए।
3. एक प्रभावी नेतृत्व से क्या-क्या अपेक्षाएँ हैं, विवेचना कीजिए।
4. नेतृत्व की परिभाषा दीजिए। प्रशासन तथा नेतृत्व में अन्तर बताइए।
5. उत्तम शैक्षिक नेतृत्व की विशेषताओं तथा बाधाओं का उल्लेख कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

**1.** 1. प्रधानाध्यापक 2. नेतृत्व शैली 3. जनतंत्रीय नेतृत्व 4. त्याज्य
5. आधिकारिक शैली।

**2.** 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य
5. सत्य।

## 11.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–12: जवाबदेही, प्रबंधन प्रशिक्षण : अर्थ और आवश्यकता (Job Accountability, Management Training : Needs and Means)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही का अर्थ (Meaning of Accountability in School Education)

12.2 जवाबदेही निर्वहन की जाँच में प्रयुक्त विधियाँ (Methods Used for Assessing the Observance of Accountability)

12.3 प्रबंधन प्रशिक्षण : अर्थ और आवश्यकता (Management Training : Meaning and Needs)

12.4 सारांश (Summary)

12.5 शब्दकोश (Keywords)

12.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही को समझने एवं प्रबंधन प्रशिक्षण के अर्थ एवं आवश्यकता की विवेचना करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

जवाबदेही के अर्थ से परिचित होने हेतु हमें इसके मूल में निहित इस विचार या संकल्पना के अर्थ को ध्यान में रखना चाहिये कि मानव समाज से जुड़ा हुआ जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो उसमें व्यक्ति जो कुछ भी करता है और उसके परिणामस्वरूप जो कुछ भी पाता है उसके लिये काफी हद तक स्वयं ही उत्तरदायी या जवाबदेह होता है। दूसरे शब्दों में जवाबदेही से एक ऐसी प्रणाली या तन्त्र का जन्म होता है जिसमें किसी व्यक्ति विशेष या समूह विशेष को सौंपी गयी जिम्मेदारियों को ठीक प्रकार से न निभा पाने या उनमें लापरवाही बरतने के लिये उत्तरदायी ठहराने का प्रयत्न किया जाता है। इस तरह जवाबदेही वैयक्तिक भी होती है और सामूहिक भी। इसके वैयक्तिक रूप में विद्यार्थियों की असफलता के लिये हम उनके माता-पिता तथा अध्यापकों को उत्तरदायी ठहराते हैं तथा सामूहिक रूप में विद्यालय तथा उसके प्रबन्ध से जुड़े हुए संपूर्ण प्रशासन तन्त्र को इसके लिये उत्तरदायी माना जाता है।

इस दृष्टि से सोचा जाये तो यह निष्कर्ष निकालने में देर नहीं लगेगी कि जवाबदेही का उद्देश्य और प्रयोजन पूर्णतया

नोट

सकारात्मक ही होता है क्योंकि यह किसी भी प्रणाली की प्रक्रिया में कार्यरत मानव संसाधनों से अपेक्षा करती है कि उन्हें उस प्रक्रिया के माध्यम से सभी अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये। अगर वे ठीक प्रकार अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करें तो फिर प्रणाली की प्रक्रिया निश्चित ही आशाप्रद परिणामों को फलीभूत करेगी। प्रणाली या संयन्त्र अपने उद्देश्य में असफल ही तभी होता है जबकि उनके द्वारा अपनी या सम्मिलित रूप से सौंपी गई जिम्मेदारियाँ ठीक तरह न निभाई जायें। इसी असफलता या अपूर्णता के लिये तो वे ही उत्तरदायी होते हैं और उनकी वैयक्तिक तथा सामूहिक जवाबदेही बनती है।

ऊपर हमने जगह उत्तरदायित्व और जवाबदेही दोनों प्रकार की शब्दावाली का प्रयोग किया है। यह इसलिये है कि अंग्रेजी शब्द अकाउन्टेबिलिटी (Accountability) के हिन्दी रूपान्तरण में दोनों का ही प्रयोग हो सकता है। इन दोनों में अन्तर भी ज्यादा स्पष्ट नहीं है। जहाँ उत्तरदायित्व में एक प्रकार नैतिक जिम्मेदारी का अहसास होता है वहीं जवाबदेही में किसी लाभ के बदले में सौंपे हुये कार्य की पूर्ति अपेक्षानुकूल न होने या उसमें लापरवाही बरतने पर स्पष्टीकरण देने या कारण बताने की बाध्यता झलकती है। प्रश्न उठता है किसी प्रणाली या व्यवस्था को विधि वत चालू रखने तथा उसमें अपेक्षित परिणामों की प्राप्ति की दृष्टि से किसकी नैतिक जिम्मेदारी बनती है या किसको जवाबदेह माना जाना चाहिये? उत्तर स्पष्ट चालन का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है वे सभी उस प्रणाली की प्रक्रिया की सफलता या असफलता के लिए जवाबदेह होते हैं। यहाँ एक बात और भी है कि किसी व्यवस्था या प्रणाली में अपने अलग-अलग प्रयोजन भी छुपे रहते हैं। दूसरे शब्दों में उन्हें अपने उत्तरदायित्वों के वहन में तभी सफलता मिलती है जब दूसरों के द्वारा भी उतने ही निष्ठा से अपने उत्तरदायित्वों का वहन किया जाये। उत्तरदायित्वता या जवाबदेही इसलिये प्राय: सम्बन्धित तथा अन्त: निर्भर (Interelated and interdependent) होती है। उदाहरण के लिए अगर शिक्षकों की अपने विद्यार्थियों को ठीक प्रकार शिक्षा देने हेतु जवाबदेही बनती है विद्यार्थियों को भी शिक्षकों से ठीक तरह शिक्षा ग्रहण कर उचित अधिगम अनुभव अर्जित करने की जवाबदेही बनती है। इस तरह किसी प्रणाली तन्त्र या व्यवस्था के सफलतापूर्वक संचालन एवं क्रियान्वयन के लिए उन सभी की जवाबदेही बनती है जिनके पारस्परिक हित किसी न किसी रूप में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यहाँ हम अगर जवाबदेही पद को किसी प्रणाली या व्यवस्था की सफलता के संदर्भ में परिभाषित करना चाहें तो उसका कुछ निम्न रूप हो सकता है।

*जवाबदेही पद का किसी भी प्रणाली या व्यवस्था की सफलता के संदर्भ में एक ऐसी कार्यपद्धति के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसमें प्रणाली या व्यवस्था के संचालन में रत वे सभी व्यक्ति जिनके पारस्परिक हित प्रणाली की सफलता से जुड़े रहते हैं, अपने-अपने उत्तरदायित्वों का वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से इस प्रकार निर्वहन करते हैं कि वे एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी रहते हुये प्रणाली या व्यवस्था को इतने निर्धारित उद्देश्यों की उपलब्धि कराने में अपेक्षित सफलता अर्जित कर सकें।*

## 12.1 विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही का अर्थ (Meaning of Accountability in School Education)

"जवाबदेही" पद को किसी भी प्रणाली या व्यवस्था के उचित संचालन तथा इस संचालन में मिली अपेक्षित सफलता के संदर्भ में सामान्य रूप से परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। अगर यहाँ विद्यालय शिक्षा को एक प्रणाली तन्त्र या व्यवस्था के रूप में सामने रखकर चलें तो हमें विद्यालय शिक्षा से जुड़ी हुई जवाबदेही के अर्थ को समझने में काफी सुविधा हो सकती है। इसके लिये हमें विद्यालय शिक्षा की व्यवस्था या प्रणाली से जुड़े हुये कुछ निम्न प्रश्नों के उत्तर ढूंढने होंगे।

1. विद्यालय शिक्षा के रूप में कार्यरत प्रणाली या व्यवस्था अपने किन निश्चित उद्देश्यों तथा प्रयोजनों की पूर्ति चाहती है?

नोट

2. इस प्रणाली के सफल एवं प्रभावी संचालन में किन-किन व्यक्तियों तथा समूह विशेष के पारस्परिक हित जुड़े रहते हैं?
3. इस प्रणाली के सफल एवं प्रभावी संचालन द्वारा इन व्यक्तियों के किस प्रकार के पारस्परिक हितों की आपूर्ति की जा सकती है?
4. प्रणाली के प्रभावी संचालन एवं अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इन व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे के प्रति किस प्रकार की जिम्मेदारियाँ निभाई जानी चाहियें?
5. अपने-अपने उत्तरदायित्वों का वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से भलीभाँति निर्वहन करने हेतु व्यक्तियों को पारस्परिक सहयोग देना तथा आपसी तालमेल बिठाना क्यों आवश्यक होता है?

विद्यालय शिक्षा रूपी तन्त्र के सफल संचालन से जुड़े हुये उपरोक्त प्रश्नों के उत्तरों के संदर्भ में निम्न बातें हमारे सामने आ सकती हैं।

(*i*) विद्यालय शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य इस तरह निर्धारित किये जाते हैं कि विद्यालय शिक्षा से जुड़े हुये सभी व्यक्तियों के हितों की पारस्परिक हित चिन्तन सिद्धान्त पर चलते हुये भलीभाँति आपूर्ति हो जाये।

(*ii*) विद्यालय को एक प्रणाली या व्यवस्था के रूप में सफलतापूर्वक संचालित होने में जिन-जिन के हित जुड़े रहते हैं उनके मुख्य रूप से जो नाम लिखे जा सकते हैं वे हैं, विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थी, उनके माता-पिता तथा अभिभावक, समुदाय और समाज के सदस्य, शिक्षा विद्यालय प्रधानाध्यापक या प्रिंसीपल, विद्यालय में सेवारत अन्य कर्मचारीगण, विद्यालय प्रबन्ध समिति के सदस्य तथा अधिकारी गण, शिक्षा अधिकारी, विद्यालय को वित्तीय सहायता देने तथा उसके प्रबन्ध एवं प्रशासन के लिये उत्तरदायी विभिन्न राज्य एवं केन्द्रीय शिक्षा विभाग तथा एजेन्सी, एनसीईआरटी तथा एससीईआरटी जैसी विद्यालयों के कल्याण से जुड़ी संस्थायें, विद्यालयों के लिये सार्वजनिक परीक्षायें आयोजित तथा सर्टीफिकेशन करने संस्थान।

(*iii*) विद्यार्थियों की प्रगति और कल्याण अच्छी से अच्छी शिक्षा के इन्तजाम करना इस तरह किसी भी विद्यालय शिक्षा प्रणाली प्रयोजन होता है।

(*iv*) अपने वृहत् उद्देश्य–विद्यार्थियों को सर्वोत्तम शिक्षा का इन्तजाम करने के लिए विद्यालय उन सभी व्यक्तियों एवं समूहों का उचित सहयोग लेने का प्रयत्न करता है जो विद्यालय शिक्षा से जुड़े रहते हैं।

(*v*) विद्यालय प्रणाली के संपादन हित से जुड़ी हुई सभी सहयोगी पार्टियों (व्यक्ति विशेष एवं विशेष) से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे एक दूसरे के प्रति जवाबदेह बनी रहें। पारस्परिक जवाबदेयता के निम्न रूप देखने को मिल सकते हैं।

- शिक्षकगणों की अपने विद्यार्थियों के माता-पिता तथा अभिभावकों, शिक्षा एवं अधिकारियों, प्रशासकों, तथा उनको वेतन प्रदान करने वाली सरकारी तथा प्रबंधकारी एजेन्सियों के प्रति जवाबदेही बनती है।
- माता-पिता तथा अभिभावक गणों की शिक्षकों, विद्यालय अधिकारियों, विद्यालय की प्रबंध समितियों तथा आर्थिक रूप से सहायता और प्रबन्ध करने वाली सरकारी एजेन्सियों के प्रति उनके बालकों को शिक्षा प्रदान करने के संदर्भ में अपेक्षित रूप से आवश्यक जवाबदेही बनती है।
- समुदाय, समाज तथा समूचा राष्ट्र अपनी प्रगति और विकास के संदर्भ में भावी नागरिकों को अच्छी से अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिये जवाबदेह होता है।

(*vi*) विद्यालय शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हुये सभी व्यक्तियों तथा समूह विशेषों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उन्हें सौंपी गई जिम्मेदारियों को अधिक से अधिक निष्ठा और शक्ति से इस प्रकार निभायेंगे कि विद्यालय शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की अच्छे से अच्छे ढंग से उपलब्धि संभव हो सके। अगर इन सभी के द्वारा एक दूसरे के हितों की रक्षा करते-करते अपने उत्तरदायित्वों का पालन जितनी अच्छी तरह से किया जाता रहेगा विद्यालय शिक्षा व्यवस्था उतनी ही सुचारू रूप से चलती हुई अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति की और सफलतापूर्वक बढ़ती रहेगी। परन्तु किसी भी अवस्था में अगर विद्यालय शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हुये व्यक्तियों तथा वर्ग समूहों

नोट

द्वारा अपनी जवाबदेही ठीक प्रकार नहीं निभाई जाती अथवा उसके प्रति लापरवाही बरती जाती है तो विद्यालय शिक्षा प्रणाली और व्यवस्था डगमगा जाती है तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति में वांछित रूप से सफल नहीं हो पाती।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर अगर हम "विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही" पद को परिभाषित करना चाहें तो यह परिभाषा कुछ निम्न रूप ले सकती है।

*"विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही" से तात्पर्य ऐसी व्यवस्था या कार्यवाही से है जिसके अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति या समूह जिनके हित विद्यालय शिक्षा व्यवस्था के सुचारू रूप में चलने से जुड़े रहते हैं (जैसे विद्यार्थी, माता-पिता, समुदाय के सदस्य, शिक्षकगण, शिक्षा अधिकारी तथा विद्यालय को वित्तीय पोषण देने वाली सरकारी और गैर सरकारी एजेन्सियाँ आदि) विद्यालय शिक्षा के लिये निर्धारित उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर अपने-अपने उत्तरदायित्वों को इस सीमा तक निभाने का प्रयत्न करते रहते हैं कि वे एक दूसरे के प्रति पूरी तरह जवाबदेह (Accountable) बने रहें।*

*क्या आप जानते हैं* विद्यालय शिक्षा का सबसे प्रमुख यानि एक मात्र उद्देश्य विद्यालय में पढ़ने वाले बच्चों का हित चिन्तन करना ही होता है।

## 12.2 जवाबदेही निर्वहन की जाँच में प्रयुक्त विधियाँ (Methods used for Assessing the Observance of Accountability)

विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है किसी एक व्यक्ति या समूह विशेष की नहीं। बल्कि उन सभी की होती है जिनके हित किसी न किसी रूप में विद्यालय शिक्षा से जुड़े रहते हैं। दूसरी बात यह है कि जवाबदेही पारस्परिक तथा अन्त:निर्भर होती है क्योंकि कोई संगठन, प्रणाली या तन्त्र तभी अच्छी तरह काम करता रह सकता है जबकि उसे चलाने वाले सभी व्यक्ति या समूह एक दूसरे से सहयोग और तालमेल बिठाते हुये काम करें, उनकी एक दूसरे के प्रति जवाबदेही रहे क्योंकि जहाँ इनमें से किसी ने भी कोई ढील या लापरवाही की तथा जहाँ एक दूसरे के हित टकाराते या किसी ने भी अपने हितों और सर्वोपरि एक दूसरों के हितों की अनदेखी की वहीं प्रणाली या व्यवस्था डगमगा जाती है तथा उसमें जुगाड़ शुरू हो जाता है जिसके फलस्वरूप जिन उद्देश्यों के लिये वह संगठन या व्यवस्था कार्य कर रही होती है वे भलीभाँति पूरे नहीं हो पाते। प्रश्न उठता है कि यह सब कुछ कैसे रोका जाये? विद्यालय शिक्षा प्रणाली या व्यवस्था भलीभाँति चलती रही। इसके लिये किसकी जवाबदेही तय की जाये और उनके द्वारा यह जवाबदेही कैसे की जाये? दूसरे शब्दों में विद्यालय शिक्षा व्यवस्था के सफलतापूर्वक संचालन के लिये कौन जवाबदेह है और इस जवाबदेही के निर्वहन की जाँच कैसे की जा सकती है इस बात पर विचार करना काफी आवश्यक हो जाता है। जवाबदेही निर्वहन की जाँच में प्रयुक्त विधियों की इस तलाश के लिये हमें क्रमबद्ध रूप से सीढ़ी आगे बढ़ाना होगा। जिसे इस प्रकार किया जा सकता है–

1. विद्यालय शिक्षा प्रणाली के सफल संचालन में जिनके पारस्परिक हित जुड़े हुये है या जिनका कुछ न कुछ दाव पर लगा है उन सभी व्यक्तियों या समूहों की सूची बनाना।
2. उपरोक्त सूची में शामिल व्यक्तियों या समूह विशेष से विद्यालय शिक्षा व्यवस्था या तन्त्र के सफल संचालन हेतु किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा की जाती है उसके बारे में निर्णय लेना तथा फिर इसके आधार पर इनके द्वारा निभाई जाने वाली जिम्मेदारियों की सूची तैयार कर सभी को उनकी इन जिम्मेदारियों से भलीभाँति अवगत कराना।

नोट

3. दी जाने वाली जिम्मेदारियाँ उनके द्वारा कैसे निभाई जा रही है यानी वे किस रूप में विद्यालय शिक्षा प्रणाली के संचालन में पारस्परिक जवाबदेही निभाते हुये प्रणाली के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति में अपना योगदान दे रहे हैं इसकी जाँच के लिये उपयुक्त विधियों एवं तकनीकों की तलाश करना।

इस तरह अगर क्रमबद्ध रूप से भलीभाँति सोचकर आगे बढ़ा जाए तो विद्यालय में जवाबदेही निर्वहन की जाँच हेतु निम्न विधियों एवं तकनीकों के प्रयोग की बात सामने उभर कर आती है।

1. स्व मूल्यांकन विधि (Method of Self Appraisal)
2. प्रत्यक्ष विधि-जवाबदेह व्यक्तियों से सीधे ही जानकारी लेना
   (Direct Method-Collecting information directly from the Accountables)
3. अप्रत्यक्ष विधि–जवाबदेह व्यक्ति के बारे में अन्य से जानकारी लेना।
   (Indirect Method-Collecting information about one's Accountables from others)

## 1. स्व मूल्यांकन विधि (Method of Self Appraisal)

इस विधि में जिसकी जवाबदेही जिन बातों के लिये बनती है वे कैसी जवाबदेही उन बातों के लिए विद्यालय शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु निभा रहे हैं इसकी जाँच और मूल्यांकन उसी व्यक्ति पर छोड़ दिया जाता है। वह स्वयं आत्म निरीक्षण करता है और यह बताता है कि उसके द्वारा सौंपे उत्तरदायित्वों को किस सीमा तक निभाया जा रहा है यानी अपनी जवाबदेही का निर्वहन उसके द्वारा हो रहा है। इस विधि में स्व-मूल्यांकन हेतु प्राय: एक स्व:मूल्यांकन प्रोफार्मा जवाबदेह व्यक्ति समूह विशेष को सौंपा जाता है। इस प्रोफार्मा में निहित प्रश्नों के विधिवत उत्तर अब जवाबदेह व्यक्ति देते हैं। उन उत्तरों के विश्लेषण के आधार पर फिर यह निर्णय लिया जाता है कि व्यक्ति विशेष समूह विशेष के द्वारा अपेक्षित जवाबदेही का निर्वहन किस रूप में हो रहा है। इस स्व-मूल्यांकन प्रोफार्मा में इस दृष्टि से ऐसे प्रश्न होते हैं जिनसे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से यह जानकारी मिलती है कि विभिन्न व्यक्ति द्वारा अपनी जिम्मेदारियाँ विद्यालय शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में किस ढंग से निभाई जा रही है एक दूसरे के प्रति जवाबदेह रहते हुये विद्यालय शिक्षा व्यवस्था के उचित संचालन में किसी तरह का योगदान दे रहे हैं, ऐसे कौन से क्षेत्र या कार्य हैं जिन्हें संपादित करने या किसके प्रति अपनी जवाबदेही के निर्वहन में उनको कठिनाईयां आ रही हैं तथा दूसरों से उनकी जो अपेक्षाएँ हैं वे पूरी नहीं हो रही हैं आदि-आदि तरह के स्व-मूल्यांकन प्रोफार्मा को जवाबदेही निर्वहन की जाँच में प्रयुक्त करने में कुछ निम्न बातों पर देना अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकता है।

- इस प्रकार के स्व-मूल्यांकन का बहुत कुछ दारोमदार इस बात पर निर्भर करता है कि स्व-मूल्यांकन प्रोफार्मा के तैयार करने में ज्यादा से ज्यादा सावधानी बरती जाये। इसके प्रति उसमें उन सभी प्रश्नों का समावेश किया जाना चाहिये जिनके उत्तरों के विश्लेषण के द्वारा अनुमान लगाने में आसानी हो कि व्यक्ति या समूह विशेष को जो भी जिम्मेदारियाँ विद्यालय शिक्षा व्यवस्था को ठीक तरह संचालित रखने के संदर्भ में सौंपी गई हैं वे उनका निर्वाह किस सीमा तक किस रूप में कर रहे हैं?
- व्यक्ति या समूह विशेष को यह अच्छी तरह बता देना चाहिये कि उनकी विद्यालय शिक्षा व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालन के संदर्भ में किस प्रकार की जिम्मेदारियाँ बनती हैं तथा इस व्यवस्था से जुड़े हुये अन्य सभी पक्षों के प्रति उनसे किस रूप में अपनी जवाबदेही निभाने की अपेक्षा की जाती है ताकि वे यह अपने बारे में यह निर्णय ले सकें कि इस जवाबदेही निभाने के संदर्भ में उनकी क्या स्थिति और स्तर है।
- इस प्रोफार्मा को भरने वाले व्यक्तियों से यह आपेक्षा की जाती है और यह बात उन्हें स्पष्ट रूप से बता भी देनी चाहिये कि उन्हें प्रोफार्मा में पूछे गये सभी प्रश्नों का बड़ी ही ईमानदारी से वैसा ही उत्तर देना चाहिये जैसी कि जिम्मेदारी या जवाबदेही उनसे वास्तविक रूप में निभाई जा रही है। जितनी ईमानदारी से उनके द्वारा सभी प्रश्नों के पूरे-पूरे उत्तर दिये जायेंगे उतनी ही विश्वसनीयता, वस्तुनिष्ठता और वैधता इस प्रोफार्मा से किये गये स्व-मूल्यांकन के जरिये उनकी जवाबदेही निर्वहन का मूल्यांकन करने में लाई जा सकेगी।

नोट

## 2. प्रत्यक्ष विधि–जवाबदेह व्यक्तियों से सीधे ही जानकारी लेना (Direct Method–Collecting information directly from the Accountables)

यह विधि स्व–मूल्यांकन विधि से इस बात में अंतर रखती है कि यहाँ यद्यपि जानकारी जवाबदेह व्यक्ति से ही इकट्टी की जाती है परन्तु उस जानकारी का स्वरूप स्व–मूल्यांकन प्रोफार्मा से ली गई जानकारी से काफी कुछ अलग होता है। स्व–मूल्यांकन प्रोफार्मा के प्रश्नों के उत्तरों में व्यक्ति विशेष का अपेक्षित जवाबदेही के संदर्भ में स्व–मूल्यांकन छुपा हुआ होता है। वह स्वयं बताता है कि कहाँ उसने जिम्मेदारी ठीक निभाई और कहाँ उसने इस बारे में असावधानी या लापरवाही बरती। दूसरे शब्दों में किन बातों के संदर्भ में उसने अपनी जवाब देही किस सीमा तक तथा किस रूप में निभाई की स्वीकारोक्ति या इसका मूल्यांकन स्वयं उसके द्वारा किया जाता है, किसी अन्य के द्वारा नहीं। हाँ यह अलग है कि उसके द्वारा किये गये इस प्रकार के स्व–मूल्यांकन रिकार्ड की आगे फिर अधिकारी विशेष किन्हीं और साधनों से पुष्टि (verificaiton) कराने का प्रयत्न किया जाये। परन्तु एक बात स्पष्ट है कि मूल्यांकन प्रोफार्मा के जरिये जो सूचनायें जवाबदेह व्यक्तियों से ली जाती है उनमें उनका अपनी जिम्मेदारियों या जवाबदेही निर्वहन के सम्बन्ध में स्व–मूल्यांकन ही झलकता है जबकि यहाँ अब जिस विधि में चर्चा हम करने जा रहे हैं उसमें सूचनाएँ तो अवश्य ही जवाबदेह व्यक्तियों से इकठ्टी की जाती हैं परन्तु इस आधार पर व्यक्ति की जवाबदेही निर्वहन के स्तर का मूल्यांकन उस व्यक्ति के द्वारा या कमेटी विशेष द्वारा किया जाता है जिसे जवाबदेही निर्वहन के स्तर की जाँच करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। अत: जवाबदेही का यहाँ स्व–मूल्यांकन नहीं होता बल्कि जवाबदेह व्यक्ति से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर जवाबदेही निर्वहन की जाँच करने वाली एजेन्सी द्वारा यह मूल्यांकन किया जाता है। फलस्वरूप उस एजेन्सी को उस व्यक्ति विशेष या समूह विशेष से सीधे ही बात कर उससे ऐसी जानकारी एकत्रित करने का प्रयत्न करना होता है जिसका विश्लेषण कर वह एजेन्सी यह निर्णय ले सके कि व्यक्ति या समूह विशेष द्वारा निभाई जाने वाली जिम्मेदारियों या जवाबदेही के निर्वहन का स्तर कैसा है। जवाबदेह व्यक्तियों या समूह विशेष से सीधे ही इस प्रकार की जानकारी एकत्रित करने में जाँच एजेन्सी द्वारा सामान्यतया निम्न प्रकार के सर्वेक्षण साधनों को प्रयोग में लाने का प्रयत्न किया गया है।

**1. प्रश्नावली** (Questionnaire)–इस प्रश्नावली में ऐसे प्रश्नों की रचना की जाती है जिनके उत्तरों के माध्यम से ऐसी जानकारी जवाबदेह व्यक्तियों से प्राप्त हो सकें जिनके विश्लेषण के माध्यम से उनके जवाबदेही के स्तर का मूल्यांकन किया जा सके।

**2. चैक लिस्ट** (Check List)–यहाँ मूल्यांकनकर्त्ता के पास उन सभी विभिन्न उत्तरदायित्वों की सूची होती है जिनके निर्वहन की जवाबदेही की व्यक्ति या समूह विशेष से अपेक्षा की जाती है। इस लिस्ट से सम्बन्धित क्रियाकलापों के बारे में अब प्रश्नकर्त्ता या तो वांछित प्रश्न जवाबदेह व्यक्तियों से पूछता है या वह स्वयं उनके रिकार्ड देखकर अथवा उनके कामकाज को देखकर सूचीबद्ध सूचना सामग्री पर चिन्ह अंकित करने का प्रयत्न करता है।

**3. साक्षात्कार** (Interview)–इस सर्वेक्षण साधन के द्वारा मूल्यांकन जवाबदेह व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप में था सामूहिक रूप में आमने–सामने होकर ऐसे प्रश्न पूछता है जिनके उत्तर तथा जवाबदेह व्यक्तियों की अन्य अनुक्रियाओं के आधार पर वह उनकी जवाबदेही निर्वहन के स्तर के बारे में उचित निर्णय लें सके।

**4. निरीक्षण** (Observation)–यहाँ मूल्यांकनकर्त्ता स्वयं स्थलों पर जाकर जवाबदेह व्यक्तियों के व्यवहारगत क्रियाओं का उनकी स्वाभाविक परिस्थितियों में निरीक्षण कर यह पता लगाने की चेष्टा करता है कि जो जिम्मेदारियाँ उन्हें सौंपी गई हैं वे किस रूप में निभा रहे हैं। जैसे शिक्षकगण का विद्यार्थियों से किस प्रकार का व्यवहार है, उनको पढ़ाने के तरीके कैसे हैं, उनके द्वारा–आवश्यक रजिस्टर तथा रिकार्ड किस रूप में रखे जा रहे हैं, अधिकारीगण और उनके बीच किस स्तर का सहयोग तथा तालमेल है, इत्यादि इत्यादि।

नोट

### 3. अप्रत्यक्ष विधि–जवाबदेह व्यक्तियों के बारे में अन्य से जानकारी लेना (Indirect method–Collecting information about the accountables from others)

यह विधि पूर्ववर्णित दोनों विधियों से इस बात को लेकर भिन्न है कि इसमें जवाबदेही निर्वहन की जाँच हेतु सूचनायें जवाबदेह व्यक्तियों से नहीं एकत्रित की जातीं बल्कि उनसे ली जाती हैं जो जवाबदेह व्यक्तियों से व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक रूप से इस तरह की निकटता रखते हैं कि माँगने पर वे ऐसी जानकारी तथा आंकड़े मूल्यांकनकर्त्ता को प्रदान कर सकें जिनके उचित विश्लेषण द्वारा मूल्यांकनकर्ता जवाबदेह व्यक्तियों के जवाबदेही निर्वहन के स्तर के बारे में अधिक से अधिक वस्तुगत, विश्वसनीय एवं वैध निर्णय ले सके। इस संदर्भ में उनसे अपेक्षित जानकारी एकत्रित करने के लिये मूल्यांकनकर्ता द्वारा प्राय: निम्न सर्वेक्षण साधनों का उपयोग किया जाता है।

**1. प्रश्नावली** (Questionnaire)–यहाँ मूल्यांकनकर्त्ता ऐसी प्रश्नावली का निर्माण करता है जिनमें उत्तर जवाबदेह व्यक्तियों के व्यवहार एवं कार्यशैली से परिचित व्यक्तियों से इस रूप में प्राप्त हो सकें जिनके आधार पर व्यक्ति या समूह विशेष के जवाबदेही निर्वहन के स्तर का उचित मूल्यांकन किया जा सके

**2. साक्षात्कार** (Interview)–इस सर्वेक्षण साधन का प्रयोग करते हुये मूल्यांकनकर्त्ता उन सभी व्यक्तियों से प्रत्यक्ष रूप में आमने-सामने होकर जवाबदेह व्यक्तियों या संगठनों के बारे में जानकारी लेने का प्रयत्न करता है जिनके व्यवहार एवं कार्यशैली से वे भलीभाँति परिचित हों।

## विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही कैसे लागू की जाये? (How to enforce accountability in School education?)

जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि उन सभी व्यक्तियों या समूहों द्वारा जिनके हित किसी न किसी रूप में विद्यालय शिक्षा प्रणाली या व्यवस्था से जुड़े रहते हैं अपने-अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुये एक दूसरे के प्रति जिस प्रकार की जवाबदेही का निर्वहन किया जाता है उसके ऊपर ही इस प्रणाली व्यवस्था के उचित संचालन तथा अपेक्षित उद्देश्यों की प्रभावशील उपलब्धि का दारोमदार रहता है। जिस रूप में इन सभी के द्वारा उचित सहयोग एवं पारस्परिक तालमेल बिठाते हुये पारस्परिक जवाबदेही निभाई जाती है उसी अनुपात में विद्यार्थियों, समाज, राष्ट्र और मानवता के कल्याण का स्वप्न साकार हो सकता है। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकालना उचित ही होगा किसी भी विद्यालय शिक्षा प्रणाली या व्यवस्था की सफलता इसी एक बात में निहित होती है कि उस व्यवस्था से जुड़े हुये अथवा उसके कार्यरत सभी व्यक्तियों तथा समूहों को अपनी-अपनी जिम्मेदारियों के निभाने के संदर्भ में एक दूसरे के प्रति पूर्णरूपेण जवाबदेह बनाया जाये। कार्य उतना आसान नहीं है इसे बिना उन सभी व्यक्तियों या समूहों के पारस्परिक सहयोग; आपसी विश्वास तथा उचित तालमेल के पूरा नहीं किया जा सकता जिनके कंधों के ऊपर विद्यालय शिक्षा प्रणाली के संचालन और सफलता की जिम्मेदारी है अथवा जिनके पारस्परिक हित इस व्यवस्था से किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं जुड़े रहते हैं। प्रणाली के सफलता का श्रेय और उसका लाभांश अगर उनके हिस्से आता है तो इसकी असफलता या खराबी की जिम्मेदारी और जवाबदेही भी उन्हीं के ऊपर आनी चाहिये। प्रश्न उठता है कि विद्यालय शिक्षा में इस प्रकार की जवाबदेही को कैसे लागू किया जाये। सामान्यतया इस कार्य हेतु दो निम्न रास्ते अपनाने की सिफारिश की जाती है।

1. कानून का सहारा लेना (Use of Legal Course)
2. व्यावसायिक मानक तथा आचार संहिता का उपयोग (Use of Professional Norms and Ethics)

आइये इन दोनों की औचित्यता पर अलग-अलग विचार किया जाये।

## कानून का सहारा लेना (Use of Legal Course)

विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही और उसके निर्वहन के दो रूप हो सकते हैं एक तो नैतिक तथा दूसरा कानूनी। अपने कानूनी प्रारूप में जवाबदेही किसी भी व्यवस्था के सफल संचालन हेतु कानून का सहारा लेना चाहती है। यहाँ इसके लिये पहले कानून या नियम बनाये जाते हैं तथा व्यवस्था से जुड़े हुये व्यक्तियों से इन कानूनों का कड़ाई से पालन

नोट

कराया जाता है जो भी नियम या कानून भंग करता है उसके लिये विभिन्न प्रकार के दंड का प्रावधान किया जाता है। इस प्रकार कानून का सहारा लेकर जवाबदेही लागू करने की बात बहुत से व्यवसायों (Profession) तथा सेवाओं (Services) में चल रही है। कोई भी डाक्टर या नर्सिंगहोम जिसे चिकित्सा सेवायें प्रदान करने में लापरवाह पाया जाता है उसे कानूनी तौर पर सजा दिलाने का तथा मुआवजा वसूल करने का पीड़ित व्यक्ति या उसके परिवार को पूरा अधिकार है। इसी प्रकार एक व्यवसायी आडिटर, ठेकेदार, वकील इत्यादि की अपनी-अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जो जवाबदेही है उनकी इस जवाबदेही के क्रियान्वयन के लिए कानूनी दंड देने का पूरा प्रावधान है। परन्तु जब विद्यालय या उच्च शिक्षा की बात आती है तो यहाँ अन्य व्यावसायिक तथा सेवा क्षेत्रों की तरह कानून को लेकर जवाबदेही को लागू कराना कुछ युक्तिसंगत नहीं लगता। विद्यालय कोई फैक्ट्री नहीं है और न ही, शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों को फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूरों तथा कर्मचारियों की तरह किया जा सकता है। इन व्यक्तियों को तो नई पीढ़ी के निर्माण का कार्य सौंपा जाता है जिसमें उनसे बालकों का व्यक्तित्व विकास, व्यवहार परिमार्जन तथा चरित्र निर्माण करने की अपेक्षा की जाती है। यह तो तभी होगा जब स्वयं ऐसा करने वालों के व्यक्तित्व, व्यवहार तथा चरित्र में ये सभी विशेषतायें दिखाई देंगी और अगर इस प्रकार के गुण तथा विशेषताओं की अपेक्षा की जाती है तो फिर कानूनी दावपेंचों की जरूरत ही रह जाती है। कानून तो अपराधियों के लिये या अपराध जगत के हालातों को सुधारने के लिये होता है। विद्यालय की दुनिया अपराधी दुनिया नहीं है इसलिये यहाँ कर्त्तव्य पालन सुनिश्चित करने हेतु कानून की नहीं बल्कि नैतिक मूल्यों की स्थापना की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में यहाँ जवाबदेही को लागू करने हेतु कानून की नहीं बल्कि उस शाश्वत विचारधारा की लहर चाहिये जिसमें विद्यालय व्यवस्था से जुड़े सभी व्यक्ति अपने-अपने उत्तरदायित्वों की स्वेच्छा से ठीक प्रकार अनुपालना करें, अपनी-अपनी जिम्मेदारियों के प्रति तथा एक दूसरे के प्रति जवाबदेही निभायें। इस तरह विद्यालय शिक्षा व्यवस्था में जवाबदेही की अनुपालना कानूनी प्रावधानों से नहीं बल्कि इसे एक नैतिक जिम्मेदारी (Moral Consibility) मानते हुये ही होनी चाहिये।

## व्यावसायिक मानक तथा आचारसंहिता का उपयोग (Use of Professional Norms and Ethics)

जैसा कि ऊपर संकेत दिया गया है विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही की अनुपालना हेतु कानून का रास्ता नहीं है यहाँ तो नैतिक जिम्मेदारियों का अहसास कराने से ही काम ठीक तरह चल सकता है। इस तक राह पर चलने हेतु विद्यालय शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हुये सभी व्यक्तियों तथा वर्ग समूहों को इस व्यवस्था की सफलता के संदर्भ में पारस्परिक रूप में जवाबदेह बनकर अपने-अपने उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार से निभाने की नैतिक जिम्मेदारी लेनी होगी। इस प्रकार के नैतिक मार्ग पर चलना और भी अधिक सुगम हो सकता है कि यदि विद्यालय शिक्षा से जुड़े हुये प्रत्येक वर्ग समूह द्वारा पारस्परिक जवाबदेही बनाये रखने हेतु कुछ अपने व्यवसाय सम्बन्धी तथा कार्य एवं व्यवहार सम्बन्धी ऐसी मानक (Norms) आचार संहिता और नियमावली तैयार की जाये जो मन से सभी को स्वीकार्य हो तथा जिसकी अनुपालना की जिम्मेदारी सभी लोग अपनी स्वेच्छा से लें। इस काम में पहल शिक्षक संगठनों, विद्यार्थी पंचायत तथा परिषदों, अभिभावक संघ, शिक्षक-अभिभावक संघ, सामुदायिक संगठनों, विद्यालय कर्मचारी यूनियन आदि के द्वारा की जा सकती है। इन सभी के द्वारा अपने-अपने संगठनों के सदस्य को विश्वास में लेकर इस तरह की नियमावली और आचार संहिता तैयार की जा सकती है कि सभी की जवाबदेही सभी के प्रति बनी रहे तथा सभी के द्वारा अपने विशेष उत्तरदायित्वों तथा सामूहिक उत्तरदायित्वों को पूर्ण निष्ठा और सच्ची लगन से निभाने के प्रयत्न किये जायें। जो नियम एवं आचारण संहिता अपने-अपने संगठनों द्वारा लागू की जाये उसका कड़ाई से पालन करने के लिये सब स्वेच्छा से सहयोग करें। इनके समुचित पालन हेतु संगठनों द्वारा विशेष समितियों का गठन (स्थानीय, क्षेत्रीय एवं प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर) भी कर लिया जाये ताकि पारस्परिक सहयोग एवं तालमेल की अधिक से अधिक संभावना बनी रहे और नियम एवं आचरण संहिता का पालन कराने हेतु सभी साथियों पर पूरा नैतिक दबाव बना रहे। हाँ जहाँ आवश्यकता हो वहां इन समितियों को ऐसे अधिकार दिये जायें कि वे नियम भंग करने वाले व्यक्तियों को व्यवस्था की असफलता के लिये जवाबदेह मानते हुये उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही भी कर सकें।

नोट

इस संदर्भ में इसे एक सुखद संयोग ही कहा जाना चाहिये कि विद्यालय शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हुये व्यक्तियों एवं समूह विशेषों के अपने-अपने संगठनों ने इस प्रकार के व्यावसायिक मानक, नियमावली तथा आचरण संहिता अपने-अपने सदस्यों को अपने उत्तरदायित्वों के ठीक निर्वहन के सम्बन्ध में तैयार करने के विषय में उचित पहल की है। यह पहल किस रूप में की जा रही है इसका आभास कराने के लिए आगे पंक्तियों में हम शिक्षकों के लिये निर्मित एक नियमावली तथा आचार संहिता की कापी प्रस्तुत कर रहे हैं नियमावली या आचार संहिता को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के तत्वावधान में आयोजित कार्यशालाओं में प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक संघ तथा शिक्षाशास्त्रियों के विशेष समूह द्वारा काफी विचार-विमर्श के बाद तैयार किया गया है। इससे हमें यह अनुभव करने में आसानी होगी कि इस प्रकार की नियमावली तथा आचारसंहिता की हम सभी के लिये जो किसी न किसी रूप में विद्यालय शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हैं, अनुपालन करना क्यों आवश्यक हो जाता है।

## शिक्षकों के लिये व्यावसायिक आचार संहिता (Code of Professional Ethics for Teachers)

### विषय प्रवेश (Introduction)

सभी के द्वारा आज यह अच्छी तरह महसूस किया जा रहा है कि अगर शिक्षण व्यवसाय को अपनी प्रतिष्ठा और गरिमा बनाये रखनी है तो उसे अपने स्तर को ऊँचा उठाना होगा। फलस्वरूप यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक समुदाय द्वारा स्वयं अपने मार्गदर्शन हेतु एक आचार संहिता तैयार की जाये।

शिक्षक के कार्य को पाँच प्रमुख व्यावसायिक क्रिया क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है। इनमें से प्रत्येक के लिये कुछ ऐसे प्रनियमों की पहचान की गई है जिनसे शिक्षक व्यवहार को उचित दिशा मिल सकता परन्तु इससे पहले प्रस्तावना में इन सभी प्रनियमों के चयन के औचित्य को सामने रखा जायेगा।

### प्रस्तावना (Premable)

- सभी बालकों का यह मौलिक अधिकार है कि उनको अच्छी शिक्षा मिले।
- शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना चाहिये।
- लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय तथा धर्म निरपेक्षता हमारी राजनैतिक व्यवस्था के मार्गदर्शक सिद्धान्त हैं।
- शिक्षा के द्वारा हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, राष्ट्रीय चेतना, अन्तर्राष्ट्रीय समझ तथा विश्व शांति के विकास हेतु कार्य किया जाना चाहिये।
- सामाजिक विकास के अंग होने के नाते शिक्षकों का लोगों की आवश्यकताओं तथा आंकांक्षाओं को ध्यान रखना जरूरी है।
- शिक्षण को एक व्यवसाय के रूप में ही संगठित किया जाना चाहिये जिसके लिये विषय विशेषज्ञता, विशिष्ट कौशल की गुणवत्ता तथा शिक्षण व्यवसाय के प्रति शिक्षकों की सकारात्मक अभिवृत्ति पर ही शिक्षकों को समुदाय के आदर तथा सहयोग प्राप्त हो सकता है।
- शिक्षण समुदाय के सदस्यों को स्व-निदेशन तथा स्व-अनुशासन की आवश्यकता है।

उपरोक्त सभी बातों पर अपना विश्वास प्रकट करते हुए, हम भारत के सभी अध्यापक निम्न व्यावसायिक आचार संहिता को अपनाने हेतु अपनी पूर्ण सहमति प्रदान करते हैं।

## शिक्षक का विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility of Teachers towards Students)

1. शिक्षक विद्यालय में अपनी ड्यूटी देने में सदैव समय का पाबन्द रहेगा।
2. शिक्षक सदैव पढ़ाए जाने वाले पाठों को पूरी तरह तैयार कर पाठ्यक्रम को पूरा करेगा।
3. शिक्षक सभी विद्यार्थियों के साथ प्रेम और वात्सल्य रखेगा तथा जाति, नस्ल, लिंग, ऊँच-नीच, धर्म, भाषा और जन्म स्थान आदि को लेकर कोई भेदभाव न बरतता हुआ न्यायपूर्ण तथा पक्षपातरहित व्यवहार करेगा।

नोट

4. शिक्षक विद्यार्थियों को उनके शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक, संवेगात्मक; नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास हेतु मार्गदर्शन प्रदान करेगा।
5. शिक्षक विद्यार्थियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में उनमें निहित वैयक्तिक भेदों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अपने शिक्षण को उन्हीं के अनुरूप ढालेगा।
6. किसी मान्यताप्राप्त योजना के तहत उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करने के अतिरिक्त कोई भी शिक्षक अपने विद्यार्थियों को ट्यूशन या कोचिंग देने हेतु पैसा नहीं लेगा।
7. कोई भी शिक्षक सिवाय उनके जो वैधानिक रूप से इसे प्राप्त करने के अधिकारी हैं किसी अन्य को अपने विद्यार्थियों की गोपनीय सूचना प्रदान नहीं करेगा।
8. कोई भी शिक्षक विद्यार्थियों को अन्य विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा प्रशासकों के विरुद्ध नहीं भड़काएगा।
9. शिक्षक अपने विद्यार्थियों के लिये वेशभूषा, बातचीत और व्यवहार का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करेगा।
10. शिक्षक विद्यालय में अनुशासन स्थापित करने के संदर्भ में बालकों की मूलभूल मानवीय गरिमा का आदर करेगा।

### शिक्षक का माता-पिता/अभिभावकों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility of Teacher towards Parents/Guardians)

11. शिक्षक माता-पिता/ अभिभावकों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाने के प्रयत्न करेगा।
12. शिक्षक माता-पिता/ अभिभावकों को उनके अपने बालकों की उपलब्धियों तथा कमियों के बारे में नियमित रूप से अवगत कराता रहेगा।
13. शिक्षक कोई भी ऐसी बात नहीं करेगा जिससे अपने माता-पिता/ अभिभावकों के प्रति विद्यार्थियों का विश्वास डगमगाये।

### शिक्षक का समाज एवं राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility of Teacher towadrs Society and Nation)

14. शिक्षक शैक्षिक संस्थान को समुदाय तथा मानवीय संसाधन केन्द्र के रूप में विकसित करने के प्रयत्न करेगा तथा विकास हेतु वांछित ज्ञान और सूचनायें प्रदान करने तथा कौशल और अभिवृत्तियाँ विकसित करने के प्रयत्न करेगा।
15. शिक्षक सामाजिक समस्याओं को समझने में प्रयत्नशील रहेगा तथा उन समस्याओं के समाधान के लिये वांछित क्रियाकलापों में संलग्न होगा।
16. शिक्षक उन सभी क्रियाकलापों से दूर रहेगा जो विभिन्न समुदायों, धार्मिक या भाषा समूहों में किसी भी प्रकार की घृणा और शत्रुता के बीज बोते हों।
17. शिक्षक राष्ट्रीय एकता और मेल-मिलाप तथा अपनापन की भावना को पोषित करने हेतु सक्रिय रहेगा।
18. शिक्षक भारतीय संस्कृति का सम्मान करेगा तथा इसके प्रति विद्यार्थियों में सकारात्मक अभिवृद्धि का विकास करेगा।
19. शिक्षक विद्यालय, समुदाय, राज्य और राष्ट्र को सम्मान देगा और उनके प्रति निष्ठावान रहेगा।

### शिक्षक का अपने व्यवसाय, अपने साथियों तथा अन्य व्यावसायिक संगठनों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility of Teacher towars Profession, Colleagues and other Professional Organisation)

#### (A) शिक्षक के अपने साथियों तथा व्यवसाय के प्रति उत्तरदायित्व

20. शिक्षक शिक्षण व्यवसाय से सम्बन्धित सभी सदस्यों से उसी प्रकार व्यवहार करेगा जैसा कि वह अपने लिये चाहता है।

नोट

21. शिक्षक अपने साथियों तथा उच्च अधिकारियों के ऊपर आधारहीन अभियोग नहीं लगायेगा।
22. शिक्षक व्यावसायिक संवृद्धि से सम्बन्धित कार्यक्रमों जैसे सेवाकालीन शिक्षा और सेमीनारों, गोष्ठियों, कार्यशालाओं, सम्मेलनों तथा स्वाध्याय आदि में भाग लेगा।
23. शिक्षक अपने साथियों के बारे में कोई अभद्र बात खासकर विद्यार्थियों, अन्य शिक्षा अधिकारियों या माता-पिता के सामने नहीं कहेगा।
24. शिक्षक संस्था के प्राचार्य तथा अपने साथियों के साथ संस्था के भीतर और बाहर पाठ्य-पाठान्तर क्रियाओं के संपादन में सहयोग करेगा।
25. शिक्षक अपनी व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत जिम्मेदारी समझेगा कि वह उन सभी बातों जो विद्यार्थियों के हित तथा संस्था की प्रगति में आड़े आती हों सूचना सम्बन्धित अधिकारी को प्रदान करे।

**(B) शिक्षक के व्यावसायिक संगठनों के प्रति उत्तरदायित्व**

26. शिक्षक अपनी एक व्यावसायिक जिम्मेदारी मानते हुये व्यावसायिक संगठनों की सदस्यता ग्रहण करेगा।
27. शिक्षक अपना अधिकार मानते हुये व्यावसायिक संगठनों के नीति निर्माण तथा कार्यक्रमों में भाग लेगा और उनकी शक्ति, एकता और अखंडता के लिये कार्य करेगा।
28. शिक्षक सदैव सम्बन्धित संगठन के संविधान के दायरे के अन्तर्गत ही कार्य करेगा।

## शिक्षक का प्रबन्धन/प्रशासन के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility of Teacher towards Management/Administration)

29. शिक्षक प्रबन्धन (प्रबन्ध समिति इत्यादि) को अपने उत्तरोत्तर विकास का स्रोत समझेगा।
30. शिक्षक अपने व्यावसायिक क्रियाकलापों तथा उपलब्धियों द्वारा पारस्परिक आदरभाव तथा विश्वास में वृद्धि करेगा।

**संहिता नियमावली का अनुपालन (Observance of the Code)**

एक सही व्यावसायिक संगठन अपने सदस्यों की संगठन में भर्ती को नियमित करता है उन पर नियन्त्रण रखता है और उनके हित में बाधक सभी बातों के खिलाफ लड़ता है। यह इस तरह से अपने सभी सदस्यों की सम्मिलित आवाज को बुलन्द करता है। शिक्षकों के व्यावसायिक संगठनों को यह नैतिक जिम्मेदारी लेनी चाहिये कि इस संहिता या नियमावली (Code) के सभी अनुच्छेदों को ध्यान में रखकर शिक्षकों से इसकी अनुपालन सुनिश्चित करायी जाय। उन्हें इसे भलीभाँति लागू (Enforce) करने के बारे में उचित तरीके ढूंढने की जिम्मेदारी लेनी चाहिये।

*टास्क* शिक्षक के कार्य को कितने प्रमुख व्यावसायिक क्रिया क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है?

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**1. निम्नलिखित कथनों में 'सही' तथा 'गलत' का चुनाव कीजिए (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**

1. शिक्षक का उत्तरदायित्व है कि वह विद्यालय में अपनी ड्यूटी देने में सदैव समय का पाबन्द रहेगा।
2. शिक्षक अपने विद्यार्थियों में वेशभूषा, बातचीत और व्यवहार का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करेगा।
3. शिक्षक को माता-पिता/अभिभावकों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बंध बनाने की आवश्यकता नहीं होती।
4. शिक्षक का एक अहम उत्तरदायित्व है कि वह विद्यालय, समुदाय, राज्य और राष्ट्र को सम्मान देता है और उसके प्रति निष्ठावान रहता है।
5. शिक्षक प्रबंधन को अपने सतत् विकास के लिए एक स्रोत के तौर पर इस्तेमाल करता रहता है।

नोट

## 12.3 प्रबंधन प्रशिक्षण: अर्थ और आवश्यकता (Management Training: Meaning and Needs)

### प्रबंधन प्रशिक्षण का अर्थ (Meaning of Management Training)

किसी भी व्यवसाय अथवा क्षेत्र में कार्यरत लोगों को अत्यधिक कुशल बनाने तथा नई व आधुनिक तकनीकों से अवगत कराने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। यह प्रशिक्षण सेवारत होता है, अर्थात् नौकरी करते हुए प्रशिक्षण। प्रबंधन के क्षेत्र में भी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रबंधन प्रक्रिया से संबंधित सभी क्षेत्रों तथा कार्यों में विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे प्रबंधक सही दिशा में सुचारू रूप से कार्य कर सकें तथा किसी भी कठिनाई या दुरूह परिस्थिति में समस्या का समाधान कर सकें।

**प्रबंधन प्रशिक्षण की आवश्यकता**–आज के तकनीकी युग में हर समय किसी न किसी समस्या से प्रबंधकों को जूझना पड़ता है इसलिए प्रबंधन प्रशिक्षण अत्यंत आवश्यक है। ये आवश्यकताएँ हैं, जैसे–परिवर्तन, विकास इत्यादि।

**परिवर्तन**–जीवन तथा विश्व के बदलते परिवेश में जहाँ, प्रतिदिन नित–नई तकनीकें, समस्याएँ तथा उनके समाधान, प्रक्रियाएँ आ रही हैं। प्रबंधन को इन सब बातों का ज्ञान होना आवश्यक है, प्रबंधन में, विशेष रूप से शिक्षा प्रबंधन में इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है, अत: बदलते शिक्षण परिवेश में प्रबंधक का प्रशिक्षित होना एक आवश्यक योग्यता है।

**विकास**–प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य किसी भी संस्था का सही दिशा में विकास करना है, प्रशिक्षित प्रबंधकों द्वारा किसी भी संस्था को सफलता तथा गुणवत्ता के शिखर पर ले जाया जा सकता है, अत: प्रबंधन प्रशिक्षण की आवश्यकता है। स्टाफ़ में सामंजस्य बनाने तथा कर्मचारियों की व्यावसायिक तथा मानसिक कुशलताओं का पूर्ण उपयोग करने में भी प्रबंधन प्रशिक्षण आवश्यक है। समाज की आवश्यकता तथा शैक्षिक लक्ष्यों के सन्दर्भ में बालकों तथा अभिभावकों के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों का नियोजन करने के लिए भी प्रबंधन प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

प्रशिक्षण (Training) शब्द को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

"किसी दिये गये कार्य को उचित ढंग से संपादित करने के लिये किसी व्यक्ति विशेष के दृष्टिकोण (अभिवृत्ति), ज्ञान, कौशल एवम् व्यवहार के क्रमबद्ध विकास का नाम प्रशिक्षण है।"

### ज्ञान का अर्थ (Meaning of Knowledge)

इस पद की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। "अध्यापक के लिये उपयोगी तथ्य, प्रत्यय, पद, सिद्धान्त, सामान्यीकरण आदि का सम्मिलित रूप ज्ञान है।" अध्यापक को अपने विषय में पारंगत होना चाहिये, उसे अध्यापन की विधियों एवम् प्रविधियों तथा उन कारकों का भी ज्ञान होना चाहिये जो अध्यापन को प्रभावित करती हैं। उसके लिये बाल मनोविज्ञान का ज्ञान महत्त्वपूर्ण होता है। प्रशिक्षण के लिये यह जानना आवश्यक है कि कार्य की प्रकृति के अनुसार ज्ञान का कौन सा भाग आवश्यक है।

### शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)

शिक्षा का उद्देश्य पूर्व सूचनायुक्त तथा सुसज्जित नागरिकों का विकास करना है। यह केवल व्यक्ति का वैयक्ति विकास ही नहीं बल्कि कुछ सामान्य प्रकृति के गुणों का भी विकास है जिनकी हर व्यक्ति को उसके व्यवसाय के सम्बन्ध में आवश्यकता होती है। कुछ शिक्षा के द्वारा ऐसे गुण भी विकसित किये जाते हैं जिनकी प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आवश्यकता होती है और उन्हीं के द्वारा वह समायोजित एवम् सामन्जस्ययुक्त जीवन जीता है।

यह विस्तृत समुदाय एवम् समाज के दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा व्यवहार में सुधार एवम् परिमार्जन पर बल देती है, तथा व्यक्तित्व का विकास करती है। वह ऐसे व्यक्ति का विकास करती है जो अपने वातावरण में रुचि रखता है। शिक्षा ज्ञान, बोध, मूल्य एवम् व्यवहार का विकास करती है जोकि जीवन के सभी क्षेत्रों में आवश्यक होते हैं।

नोट

## प्रशिक्षण और शिक्षा में अन्तर

ग्लैसर ने अपनी पुस्तक 'प्रशिक्षण अनुसंधान एवं शिक्षा में मनोवैज्ञानिक अनुदेशन तकनीकी' में यह संकेत किया है कि निम्नलिखित दो कसौटियों के आधार पर शिक्षा एवम् प्रशिक्षण में अन्तर किया जा सकता है–

(अ) उद्देश्य की विशिष्टता की मात्रा।

(ब) व्यक्तिगत भेदों की अल्पता एवं अधिकता।

प्रशिक्षण के उद्देश्य अति विशिष्ट होते हैं तथा भेदों को कम करने का प्रयास करते हैं। दूसरी ओर शैक्षिक उद्देश्य अति सामान्य होते हैं, और व्यक्तिगत विभेदों को बढ़ावा देते हैं। जब लोगों को शिक्षित किया जाता है तो उनके मध्य अन्तर बढ़ता है, लेकिन जब प्रशिक्षित किया जाता है तो उनके मध्य का अन्तर कम होता है। दोनों में अन्तर निम्नलिखित है–

**1. प्रकृति का अन्तर**–शिक्षा जीवन के प्रत्येक कार्य के लिये आवश्यक ज्ञान तथा नैतिक मूल्यों के विकास से सम्बन्धित क्रियाओं पर अधिक बल देती है। प्रशिक्षण किसी कार्य के उचित सम्पादन के लिये आवश्यक विशिष्ट ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल एवम् व्यवहार के विकास पर बल देता है। प्रशिक्षण से व्यवहार एक कार्य से दूसरे कार्य के लिये अलग-अलग होते हैं। यदि हम किसी व्यक्ति को अध्यापक के रूप में प्रशिक्षित करते हैं तो हम उस व्यक्ति के कौशलों का विकास करते हैं, जो अच्छा अध्यापक होने के लिये आवश्यक है।

**2. उद्देश्य का अन्तर**–शिक्षा का उद्देश्य बच्चों एवम् प्रौढ़ों को ऐसी आवश्यक परिस्थितियाँ प्रदान करना है, जो उन्हें उन सामाजिक परम्पराओं एवं विचारों का बोध कराए, जो उस समाज को प्रभावित करते हैं, दूसरी संस्कृतियों तथा प्राकृतिक नियमों का ज्ञान कराये तथा उनमें भाषायी ज्ञान एवं अन्य कौशलों को विकसित कर सके जोकि अधिगम तथा व्यक्तिगत विकास और सृजनात्मकता का आधार है। प्रशिक्षण का उद्देश्य किसी व्यवसाय विशेष में निपुणता प्राप्त करना है, जिसके लिये व्यक्ति को प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षित का सम्बन्ध जन अधिगम से होता है ताकि कार्य का सम्पादन उचित प्रकार से विशिष्टता के साथ किया जा सके।

## प्रशिक्षण की आवश्यकता

किसी विशेष कार्य एवं व्यवसाय में प्रभावी रूप से कार्य करने के लिये प्रशिक्षण आवश्यक होता है। यदि किसी व्यक्ति को कुछ दिन के प्रशिक्षण के उपरान्त, किसी व्यवसाय में नियुक्त किया जाता है, तो वह व्यवसाय के लिये योग्य सिद्ध होता है। यदि किसी व्यक्ति को नियुक्ति के पूर्व किसी कार्य में प्रशिक्षित किया जाता है तो इसे पूर्व प्रशिक्षण की संज्ञा दी जाती है, जो बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। यदि किसी व्यक्ति को बिना किसी प्रशिक्षण के किसी कार्य पर नियुक्त किया जाता है तो यह एक जोखिम भरा कार्य होता है, क्योंकि उसे यन्त्रों के बारे में कोई ज्ञान नहीं होता है। जब एक व्यक्ति किसी कार्य में असफल हो जाता है तो उस कार्य के प्रति उसमें नकारात्मक अभिवृत्ति का उदय होता है, और वह उस कार्य के लिये योग्य नहीं है। प्रशिक्षण के उपरान्त उसे अपने कार्य में सफलता मिलती है तथा सन्तुष्टि प्राप्त होती है। सामान्यत: प्रशिक्षण की आवश्यकता निम्नलिखित है–

1. कार्य को सफलतापूर्वक प्रभावी ढंग से सम्पादित करने के लिये।
2. प्रशिक्षित व्यक्ति थोड़े समय में प्रभावी ढंग से सीख लेते हैं। अप्रशिक्षित व्यक्तियों की तुलना में एक व्यक्ति उन कार्यों को बिना प्रशिक्षण के सीख लेता है, जिनमें वह लगा हो।
3. अति जटिल कार्यों के लिये विशिष्ट ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल एवम् व्यवहार की आवश्यकता होती है। इसलिये अधिक विशिष्टता के लिये प्रशिक्षण का महत्त्व बढ़ जाता है। यदि कोई व्यक्ति कार्य या व्यवसाय में ही सब कुछ सीखता हो तो उसमें जोखिम का खतरा बना रहता है, और उसके जीवन के लिये भी खतरा उत्पन्न हो सकता है। प्रयास और त्रुटि का परिणाम समय और शक्ति की बर्बादी के रूप में होता है। प्रशिक्षण के द्वारा अध्यापक के प्रयत्नों को व्यर्थ जाने से बचाया जा सकता है।

नोट

4. सुव्यवस्थित एवम् प्रणालीबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम कम समय में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य का ज्ञान कराते हैं। यदि किसी कार्य के लिये विशिष्ट ज्ञान (Knowledge), प्रयोग (Application), कौशल (Skill) तथा व्यवहार (Behaviour) (KASB) की आवश्यकता नहीं है तो प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन प्रत्येक कार्य के लिए कुछ विशिष्ट ज्ञान, प्रयोग, कौशल और व्यवहार की आवश्यकता होती है। इसलिए प्रत्येक कार्य या व्यवसाय के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है।

*नोट्स* शिक्षा एक व्यापक शब्द है जिसे किसी व्यवसाय विशेष की सीमा में बांधा नहीं जा सकता। यह ज्ञान, कौशल और अभिवृत्ति पर बल देती है, जो सामान्य प्रकृति से सम्बन्धित है तथा जिसका उपयोग एक से अधिक व्यवसाय में किया जा सकता है।

## शिक्षक को प्रशिक्षण की आवश्यकता

जो लोग प्रशिक्षण के पक्ष में नहीं होते, उनका विचार है कि अध्यापक प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है, उन्हें केवल विषय में निपुणता प्राप्त करनी चाहिये क्योंकि प्रशिक्षित एवम् अप्रशिक्षित अध्यापकों के शिक्षण में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता। यह सत्य नहीं है। प्रत्येक अध्यापक के लिये प्रशिक्षण आवश्यक है। अप्रशिक्षित अध्यापक की तुलना में प्रशिक्षित अध्यापक अधिक प्रभावी सिद्ध होता है। सूचनाओं का प्रभावी ढंग से छात्रों तक प्रेषण कई कौशलों पर निर्भर करता है जैसे–प्रश्न पूछने का कौशल, स्पष्टीकरण, प्रदर्शन तथा व्याख्या। विषयवस्तु के व्यवस्थापन एवम् उनके तर्कपूर्ण शृंखलाबद्ध प्रस्तुतीकरण के लिये संचार कौशल की आवश्यकता होती है।

**1. ज्ञान** (Knowledge)–शिक्षण दूसरों को केवल कथन अथवा विषयवस्तु का ज्ञान प्रदान करना ही नहीं है, बल्कि व्यापक अर्थ में शिक्षण का उद्देश्य छात्र के व्यक्तित्व का समग्र विकास है। अध्यापक में अध्यापक के दायित्वों और कर्त्तव्यों के विकास के लिये क्रमबद्ध प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। उसके कौशलों एवम् अभिवृत्ति की प्राप्ति के लिये प्रणालीबद्ध ज्ञान की आवश्यकता होती है और इसके लिये प्रशिक्षण आवश्यक है।

**2. अभिवृत्ति** (Attitude)–जब तक किसी अध्यापक का अपने विद्यार्थियों तथा अपने व्यवसाय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है, तब तक उसके लिये उपरोक्त वस्तुओं का ज्ञान पूर्णरूपेण सार्थक नहीं हो पाता जोकि अध्यापक के लिये आवश्यक है। अभिवृत्ति का ज्ञान अनुभवों से होता है। प्रशिक्षण कार्यक्रम में छात्र अध्यापकों को बहुत सुखकारी अनुभव प्रदान किये जाते हैं, जिसके द्वारा वह अपने छात्रों और अपने व्यवसाय के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति विकसित करता है।

**3. कौशल** (Skill)–कौशलों के लिये अधिक अभ्यास की आवश्यकता होती है। कुछ विशिष्ट कौशल ऐसे हैं, जो अध्यापक प्रशिक्षार्थियों में विकसित किये जाने आवश्यक होते हैं। इनका विकास अध्यापक प्रशिक्षण के क्रमबद्ध कार्यक्रम के द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है। प्रशिक्षण के द्वारा अध्यापकों में तकनीकी ज्ञान तथा कौशल या विकास किया जा सकता है। इसलिये प्रत्येक प्रकार के शिक्षक के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

## महाविद्यालय के अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण की आवश्यकता

कई आयोगों एवम् कमेटियों ने प्राथमिक एवम् माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण पर अपनी संस्तुति दी है।

आज भी हाई स्कूल, जूनियर हाईस्कूल एवम् प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था आवश्यक मानी जाती है, परन्तु महाविद्यालयों के अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई। वर्तमान समय में कुछ उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्रियों में महाविद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की अवधारणा क्रमशः पनप रही है। यह विचार विशेषतया एन.सी.ई.टी. राष्ट्रीय अध्यापक प्रशिक्षण द्वारा शुरू किया गया। इसके पूर्व विश्वविद्यालय

नोट

अनुदान आयोग द्वारा भी महाविद्यालयी अध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु कुछ कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये थे। प्रारम्भ के इस विचार का विरोध किया गया परन्तु आज विश्वविद्यालयों एवम् महाविद्यालयों में कार्यरत अनेक अध्यापक इस विचार को स्वीकार कर रहे हैं, तथा अध्यापक प्रशिक्षण की वकालत कर रहे हैं। भारत का सम्पूर्ण शिक्षक संकाय दो भागों में विभाजित है। ऐसे लोग हैं जिनका विश्वास है कि प्रशिक्षण व्यक्ति को अधिक प्रभावी नहीं बना सकता। अन्य ऐसे लोग हैं जिनका प्रशिक्षण में पूर्ण विश्वास है। वे कहते हैं कि यदि प्रशिक्षण के द्वारा व्यक्ति को अधिक प्रभावी न बनाया गया तो इसका कारण प्रशिक्षण न होकर कुछ और है। यदि प्रशिक्षण का संगठन किया जाता है तो इसके द्वारा अवश्य उच्च कोटि के अध्यापक तैयार किये जाने चाहिये। इन लोगों ने विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्यापक प्रशिक्षण पर विचार गोष्ठियाँ आयोजित की हैं।

सन् 1971 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अभिविन्यास शिक्षण कार्यक्रम पर काफी खर्च किया। इस सम्बन्ध में विभिन्न विश्वविद्यालयी अध्यापकों के लिए ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम आयोजित किये गये। पंचवर्षीय योजनाओं में महाविद्यालयों के अध्यापकों में वास्तविक सुधार के लिये पुनर्बोधात्मक पाठ्यक्रम, विचारगोष्ठी, सायंकालीन पाठ्यक्रम तथा ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम आयोजित करने के लिये मोटी रकम स्वीकार की गई। इसके परिणामस्वरूप कई विश्वविद्यालयों ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से कुछ अल्पकालीन पाठ्यक्रम 1973-75 में 3 वर्ष तक चलाये। इसी के फलस्वरूप बड़ौदा विश्वविद्यालय में शिक्षण में स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी शुरू किया गया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से कुछ विश्वविद्यालयों में 40 दिन का ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम भी शुरू किया गया।

प्रशिक्षण एवम् व्यवसाय में गहरा सम्बन्ध पाया गया। यदि व्यवसाय के लिये आवश्यक ज्ञान और कौशल को व्यक्ति में विकसित किया जाये तो व्यवसाय की सफलता की भविष्यवाणी सफल सिद्ध हो सकती है। शिक्षण एक व्यवसाय है, जिसमें प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रत्येक स्तर पर शिक्षण का उद्देश्य ज्ञान प्रदान करना होता है। विभिन्न स्तरों पर उद्देश्यों में परिवर्तन नहीं होता केवल पाठ्यवस्तु तथा प्रक्रिया में परिवर्तन होता है। विषय में विशेषता के साथ-साथ प्रशिक्षण द्वारा कई अन्य कौशल विकसित किये जाते हैं। प्रभावी अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण कई आश्चर्यजनक गुणों को विकसित करता है। इसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया है कि महाविद्यालय के अध्यापकों के लिये भी प्रशिक्षण आवश्यक है। कॉलेज में अध्यापकों के लिये भी प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. निरन्तर बदलते परिवेश में विशेषकर ..... में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
2. प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य किस भी संस्था का ..... करना होता है।
3. प्रशिक्षण के उद्देश्य अति ..... होते हैं।
4. शैक्षिक उद्देश्य अति सामान्य होते हैं और ..... को बढ़ावा देते हैं।
5. व्यापक अर्थ में शिक्षण का उद्देश्य छात्र के ..... का समग्र विकास है।

## 12.4 सारांश (Summary)

- विद्यालय शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य इस तरह निर्धारित किये जाते हैं कि विद्यालय शिक्षा से जुड़े हुये सभी व्यक्तियों के हितों की पारस्परिक हित चिन्तन सिद्धान्त पर चलते हुये भलीभाँति आपूर्ति हो जाये।
- विद्यालय को एक प्रणाली या व्यवस्था के रूप में सफलतापूर्वक संचालित होने में जिन-जिन के हित जुड़े रहते हैं उनके मुख्य रूप से जो नाम लिखे जा सकते हैं वे हैं, विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थी, उनके माता-पिता

नोट

तथा अभिभावक, समुदाय और समाज के सदस्य, शिक्षा विद्यालय प्रधानाध्यापक या प्रिंसीपल, विद्यालय में सेवारत अन्य कर्मचारीगण, विद्यालय प्रबन्ध समिति के सदस्य तथा अधिकारी गण, शिक्षा अधिकारी, विद्यालय को वित्तीय सहायता देने तथा उसके प्रबन्ध एवं प्रशासन के लिये उत्तरदायी विभिन्न राज्य एवं केन्द्रीय शिक्षा विभाग तथा एजेन्सी, एनसीईआरटी तथा एससीईआरटी जैसी विद्यालयों के कल्याण से जुड़ी संस्थायें, विद्यालयों के लिये सार्वजनिक परीक्षायें आयोजित एवं सर्टीफिकेशन करने वाले संस्थान।

- अपने वृहत् उद्देश्य–विद्यार्थियों को सर्वोत्तम शिक्षा का इन्तजाम करने के लिए विद्यालय उन सभी व्यक्तियों एवं समूहों का उचित सहयोग लेने का प्रयत्न करता है जो विद्यालय शिक्षा से जुड़े रहते हैं।
- "विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही" से तात्पर्य ऐसी व्यवस्था या कार्यवाही से है जिसके अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति या समूह जिनके हित विद्यालय शिक्षा व्यवस्था के सुचारू रूप में चलने से जुड़े रहते हैं (जैसे विद्यार्थी, माता-पिता, समुदाय के सदस्य, शिक्षकगण, शिक्षा अधिकारी तथा विद्यालय को वित्तीय पोषण देने वाली सरकारी और गैर सरकारी एजेन्सियाँ आदि) विद्यालय शिक्षा के लिये निर्धारित उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर अपने-अपने उत्तरदायित्वों को इस सीमा तक निभाने का प्रयत्न करते रहते हैं कि वे एक दूसरे के प्रति पूरी तरह जवाबदेह (Accountable) बने रहें।
- विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही और उसके निर्वहन के दो रूप हो सकते हैं एक तो नैतिक तथा दूसरा कानूनी। अपने कानूनी प्रारूप में जवाबदेही किसी भी व्यवस्था के सफल संचालन हेतु कानून का सहारा लेना चाहती है। यहाँ इसके लिये पहले कानून या नियम बनाये जाते हैं तथा व्यवस्था से जुड़े हुये व्यक्तियों इन कानूनों का नियमों का कड़ाई से पालन कराया जाता है जो भी नियम या कानून भंग करता है उसके लिये विभिन्न प्रकार के दंड का प्रावधान किया जाता है।
- किसी भी व्यवसाय अथवा क्षेत्र में कार्यरत लोगों को अत्यधिक कुशल बनाने तथा नई व आधुनिक तकनीकों से अवगत कराने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। यह प्रशिक्षण सेवारत होता है, अर्थात नौकरी करते हुए प्रशिक्षण। प्रबंधन के क्षेत्र में भी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रबंधन प्रक्रिया से संबंधित सभी क्षेत्रों तथा कार्यों में विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे प्रबंधक सही दिशा में सुचारू रूप से कार्य कर सकें।
- जीवन तथा विश्व के बदलते परिवेश में जहाँ, प्रतिदिन नित-नई तकनीकें, समस्याएँ तथा उनके समाधान, प्रतिक्रियाएँ आ रही हैं। प्रबंधन को इन सब बातों का ज्ञान होना आवश्यक है, प्रबंधन में, विशेष रूप से शिक्षा प्रबंधन में इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अत: बदलते शिक्षण परिवेश में प्रबंधक का प्रशिक्षित होना एक आवश्यक योग्यता है।
- "किसी दिये गये कार्य को उचित ढंग से संपादित करने के लिये किसी व्यक्ति विशेष के दृष्टिकोण (अभिवृत्ति), ज्ञान, कौशल एवम् व्यवहार के क्रमबद्ध विकास का नाम प्रशिक्षण है।"
- शिक्षा का उद्देश्य पूर्व सूचनायुक्त तथा सुसज्जित नागरिकों का विकास करना है। यह केवल व्यक्ति का वैयक्तिक विकास ही नहीं बल्कि कुछ सामान्य प्रकृति के गुणों का भी विकास है जिनकी हर व्यक्ति को उसके व्यवसाय के सम्बन्ध में आवश्यकता होती है।
- शिक्षा जीवन के प्रत्येक कार्य के लिये आवश्यक ज्ञान तथा नैतिक मूल्यों के विकास से सम्बन्धित क्रियाओं पर अधिक बल देती है। प्रशिक्षण किसी कार्य के उचित सम्पादन के लिये आवश्यक विशिष्ट ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल एवम् व्यवहार के विकास पर बल देता है।
- शिक्षा का उद्देश्य बच्चों एवम् प्रौढ़ों को ऐसी आवश्यक परिस्थितियाँ प्रदान करना है, जो उन्हें उन सामाजिक परम्पराओं एवं विचारों का बोध कराए, जो उस समाज को प्रभावित करते हैं, दूसरी संस्कृतियों तथा प्राकृतिक नियमों का ज्ञान कराये तथा उनमें भाषायी ज्ञान एवं अन्य कौशलों को विकसित कर सके जोकि अधिगम तथा व्यक्तिगत विकास और सृजनात्मकता का आधार है।

नोट

- किसी विशेष कार्य एवं व्यवसाय में प्रभावी रूप से कार्य करने के लिये प्रशिक्षण आवश्यक होता है। यदि किसी व्यक्ति को कुछ दिन के प्रशिक्षण के उपरान्त, किसी व्यवसाय में नियुक्त किया जाता है, तो वह व्यवसाय के लिये योग्य सिद्ध होता है। यदि किसी व्यक्ति को नियुक्ति के पूर्व किसी कार्य में प्रशिक्षित किया जाता है तो इसे पूर्व प्रशिक्षण की संज्ञा दी जाती है, जो बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है।

## 12.5 शब्दकोश (Keywords)

- **अनुकरणीय**–अनुसरण करने योग्य, अर्थात् आदर्श।
- **सौहार्दपूर्ण**–सद्भावनापूर्ण व्यवहार।

## 12.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. जवाबदेही से आप क्या समझते हैं? विद्यालय शिक्षा प्रणाली को सुचारू रूप से संचालन के लिए आवश्यक जवाबदेही के संदर्भ में व्याख्या कीजिए।
2. "विद्यालय शिक्षा में जवाबदेही" पद से क्या अभिप्राय है? यहाँ हमें किस प्रकार की जवाबदेही चाहिए तथा वह किस प्रकार लागू हो सकती है।
3. विद्यालय शिक्षा के संदर्भ में प्रबंधन प्रशिक्षण का क्या अर्थ है? विद्यालयों में प्रबंधन प्रशिक्षण की आवश्यकता का विश्लेषण कीजिए।
4. शिक्षा का क्या अर्थ है? प्रशिक्षण एवं शिक्षा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

**1.** 1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य
4. सत्य 5. सत्य।

**2.** 1. शिक्षा प्रबंधन 2. विकास 3. विशिष्ट
4. व्यक्तिगत विभेदों 5. व्यक्तित्व।

## 12.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–13: पीईआरटी तथा सीपीएम की अवधारणा (Concept of PERT and CPM)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 कार्यक्रम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक की अवधारणा एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Concept and Historical Background of Program Evaluation and Review Technique–PERT)

13.2 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक की विशेषताएँ और लाभ (Characteristics and Advantages of PERT)

13.3 क्रांतिक पथ विधि की अवधारणा, विशेषताएँ और प्रक्रिया (Concept, Characteristics and Process of Critical Path Method–CPM)

13.4 क्रांतिक पथ विधि के लाभ और सीमाएँ (Advantages and Limitations of CPM)

13.5 सारांश (Summary)

13.6 शब्दकोश (Keywords)

13.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- पीईआरटी तथा सीपीएम की अवधारणा, विशेषताएँ, लाभ और सीमाओं की व्याख्या एवं विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

मूलत: क्रांतिक पथ विधि (CPM) तथा कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) प्रोजेक्ट प्रबंधन तकनीकें हैं। जोकि पश्चिमी औद्योगिक तथा सैन्य स्थापना के लिए नियोजित की गई किन्तु अब इनका उपयोग शैक्षिक प्रबंधन में भी किया जा रहा है। इस इकाई में हम इन तकनीकों के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

## 13.1 कार्यक्रम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक की अवधारणा एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Concept and Historical Background of Program Evaluation and Review Technique–PERT)

कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक, प्रबंधन की एक विधि है, जिसमें संगठन में कार्यरत लोगों के क्रियाकलापों अधिकतम लागत तथा कम से कम समय में योजना को कार्यान्वित किया जाता है। पीईआरटी प्रत्येक क्रियाकलापों में व्यय होने वाले समय, उसमें लगने वाली लागत तथा शेष कार्यक्रम को पूरा करने में लगने वाले समय तथा लागत पर विशेष बल देता है।

नोट

### कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of PERT)

कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) का उपयोग सर्वप्रथम 1958 में पोलेरिस मिसाइल प्रणाली में अमरीकी नेवी के विशिष्ट प्रोजेक्ट कार्यालय में किया गया। परम्परागत तकनीकें जैसे–लाइन ऑफ बेलेन्स, गाँट चार्ट्स तथा अन्य प्रणालियाँ विशेष सुरक्षा कारणों से हटा दी गईं तथा कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) का उपयोग आरम्भ किया गया।

*क्या आप जानते हैं* कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (पीईआरटी) एक समाकलित प्रोजेक्ट प्रबंधन प्रणाली है।

## 13.2 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक की विशेषताएँ और लाभ (Characteristics and Advantages of PERT)

कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) किसी भी प्रोजेक्ट में उपयोग होने वाली गतिविधियों में लगने वाले समय पर केन्द्रित होती है। एक जटिल कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) नेटवर्क में बहुत से क्रियाकलाप तथा घटनाएँ सम्मिलित होती हैं। इवेंट का अर्थ है, किसी निश्चित समय में एक कार्यक्रम को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करना जबकि क्रियाकलाप से अभिप्राय है एक इवेंट को पूरा करने में उपयोग किये गए संसाधन तथा समय। अत: जब क्रियाकलाप तथा इवेंट पूर्ण रूप से ज्ञात हों, तो इवेंट की प्रक्रिया तथा प्रगति उचित तरीके से मूल्यांकित की जा सकती है तथा प्रोजेक्ट ठीक प्रकार से कार्यान्वित हो सकता है।

कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) के उपयोग का प्रमुख अंग है तीन पूर्वानुमान। ये तीन पूर्वानुमान (*i*) ऑप्टिमिस्टिक (*ii*) पेसिमिस्टिक (*iii*) मोस्ट लाइकली।

सामान्यत: ऑप्टिमिस्टिक पूर्वानुमान वह न्यूनतम समय है, जो क्रियाकलाप को पूरा करने में लगता है, वहीं दूसरी ओर पैसिमिस्टिक पूर्वानुमान वह अधिकतम समय है, जो इवेंट को पूरा करने में लगेगा। तीसरा और अंतिम पूर्वानुमान है, मोस्ट लाइकली, जो वास्तविकता में एक इवेंट को पूरा करने में लगने वाला समय है। इसके अतिरिक्त दो अन्य तत्व भी कार्यक्रम मूल्यांकन समीक्षा तकनीक (PERT) में सम्मिलित हैं, जो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं (*i*) स्लैक समय तथा (*ii*) क्रान्तिक पथ। कार्यक्रम मूल्यांकन समीक्षा तकनीक (PERT) का फॉर्मूला निम्नलिखित है:–

T = प्रोजेक्ट को पूर्ण होने में लगने वाला समय

A = ऑप्टिमिस्टिक पूर्वानुमान

M = मोस्ट लाइकली पूर्वानुमान

B = पैसिमिस्टिक पूर्वानुमान

कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) फॉर्मूले में यदि अंकों का प्रयोग किया जाये तो प्रोजेक्ट को पूर्ण होने में लगने वाले वास्तविक समय का पता लगाया जा सकता है। जैसे–A = 7 सप्ताह, मोस्ट लाइकली समय = 11 सप्ताह, B पैसिमिस्टिक समय = 15 सप्ताह।

एक बार जब अनुमानित समय की गणना हो जाती है, तो क्रान्तिक पथ भी आसानी से निकाला जा सकता है। बहुत से कारक जैसे–कार्यरत लोगों की अनुपस्थिति, बीमारी, अवकाश, हड़ताल तथा कार्यक्षमता पर प्रभाव डालते हैं। कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) के नेटवर्क द्वारा इन परिस्थितियों में भी कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) नेटवर्क बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

नोट

नोट्स क्रान्तिक पथ समस्त घटनाओं तथा क्रियाकलापों का समग्र रूप है जो दिये हुए समय अंतराल में प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए आवश्यक है, जबकि स्लैक समय, प्रोजेक्ट को पूरा करने वाले समस्त क्रियाकलापों में लगने वाले समय तथा पूरे प्रोजेक्ट को पूरा करने वाले समय के अंतर को कहते हैं।

### कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक के लाभ (Advantages of PERT)

कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) के निम्नलिखित लाभ हैं–

(*i*) कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि इसमें तीन पूर्वानुमान समय प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं, जो प्रोजेक्ट में आ रही कठिनाइयों को पहचानने में सहायता करती हैं।

(*ii*) प्रबंधक PERT नेटवर्क के नवीनतम कम्प्यूटर तकनीक का उपयोग करके यह जान लेते हैं, किस प्रोजेक्ट को किस प्रकार नियोजित करना है।

(*iii*) जब प्रबंधक एक बार कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) तकनीक की सहायता से एक प्रोजेक्ट में प्रयुक्त समय तथा लागत का पूर्वानुमान कर लेते हैं, उन्हें दूसरे प्रोजेक्ट के लिए अनुभव तथा आँकड़े प्राप्त हो जाते हैं वे उसे आसानी से कार्यान्वित कर लेते हैं।

## 13.3 क्रांतिक पथ विधि की अवधारणा, विशेषताएँ और प्रक्रिया (Concept, Characteristics and Process of Critical Path Method – CPM)

क्रांतिक पथ विधि (CPM) प्रोजेक्ट प्रबंधन के नियोजन तथा शिड्यूलिंग का गणितीय क्रमिक नेटवर्क है। यह सर्वप्रथम 1957 में 'ई.आई. डू पॉण्ट दि नेमॉर्स एण्ड कम्पनी' द्वारा प्रयुक्त किया गया। यह एक नेटवर्क चित्र है जो प्रोजेक्ट के सभी क्रियाकलापों को चित्रित करता है। क्रांतिक पथ विधि (CPM) प्रोजेक्ट के क्रांतिक क्रियाकलापों को पहचानकर, उन्हें प्रोजेक्ट को दिये हुए समय के अंदर समाप्त करने में सहायता करता है।

### क्रांतिक पथ विधि की विशेषताएँ (Characteristics of CPM)

क्रांतिक पथ विधि (CPM) किसी प्रोजेक्ट की गतिविधियों तथा घटनाओं को प्रबंधक के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(*i*) यह प्रोजेक्ट का ग्राफिकल व्यू उपलब्ध कराता है।

(*ii*) प्रोजेक्ट विशेष को पूरा करने में लगने वाले समय का पूर्वानुमान करता है।

(*iii*) कौन सा क्रियाकलाप किस स्थिति पर आवश्यक है और किस पर नहीं, पूर्ण जानकारी देता है।

### क्रांतिक पथ विधि की प्रक्रिया (Process of CPM)

(*i*) प्रत्येक क्रियाकलाप को पहचानना।

(*ii*) इन क्रियाकलापों को क्रमिक रूप से व्यवस्थित करना।

(*iii*) नेटवर्क डायग्राम बनाना।

(*iv*) प्रत्येक क्रियाकलाप के पूरे होने में लगने वाले समय का पूर्वानुमान लगाना।

(*v*) क्रांतिक पथ को पहचानना तथा बनाना।

(*vi*) प्रोजेक्ट को पूरा होने के प्रत्येक चरण पर क्रांतिक पथ विधि (CPM) डायग्राम को अपडेट करना।

***(i)*** **प्रत्येक क्रियाकलाप को पहचानना**–क्रांतिक पथ विधि (CPM) प्रोजेक्ट का पहला चरण प्रोजेक्ट की प्रत्येक गतिविधि तथा क्रियाकलाप की सूची तैयार करना होता है। यह सूची आगे के चरणों में समय सीमा तथा प्रत्येक गतिविधि को पूर्ण करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

नोट

(*ii*) **इन क्रियाकलापों को क्रमिक रूप से व्यवस्थित करना**–कुछ क्रियाकलाप एक दूसरे पर निर्भर होते हैं, अर्थात् एक क्रियाकलाप पहले वाले क्रियाकलाप के बाद ही आरम्भ किया जा सकता है। इसलिए इन कार्यों का क्रम बनाना नितान्त आवश्यक होता है। क्रांतिक पथ विधि (CPM) नेटवर्क बनाने में इनका क्रम बनाना उपयोगी सिद्ध होता है।

(*iii*) **नेटवर्क डायग्राम बनाना**–एक बार जब क्रियाकलापों की सूची बन जाती है तथा उन्हें क्रमिक रूप में व्यवस्थित कर लिया जाता है, तो नेटवर्क डायग्राम बनाया जाता है। क्रांतिक पथ विधि (CPM) मूलत: AON नेटवर्क द्वारा विकसित किया जाता है, किन्तु कुछ नियोजन (Activity on Network) पर भी इसे विकसित करते हैं।

(*iv*) **प्रत्येक क्रियाकलापों के पूरे होने में लगने वाले समय का पूर्वानुमान लगाना**–प्रत्येक क्रियाकलाप को पूरा करने में अलग-अलग समय लगता है, अल्पावधि क्रियाकलापों में कम समय तथा दीर्घावधि क्रियाकलापों में अधिक समय लगता है। यह समय पूर्वानुमान अनुभवी व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। क्रांतिक पथ विधि (CPM) एक निर्धारिक मॉडल होता है, जिसमें एक बार एक क्रियाकलाप को पूरा करने में लगने वाले समय में बार-बार परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, इसलिए समय निर्धारण के लिए एक बार समय सैट किया जाता है।

(*v*) **क्रांतिक पथ को पहचानना तथा बनाना**–क्रांतिक पथ विधि (CPM) दीर्घावधि पथ है। क्रांतिक पथ द्वारा प्रत्येक क्रियाकलाप को चार पैरामीटर में विभाजित किया जा सकता है।

(*i*) *ES-अरलिएस्ट स्टार्ट टाइम (सबसे आरंभिक समय)*–यह वह समय है, जिसमें क्रियाकलाप को आरंभ किया जा सकता है।

(*ii*) *EF-अरलिएस्ट फिनिश टाइम*– इसमें आरंभिक समय में वह समय जोड़ दिया जाता है, जो क्रियाकलाप को पूरा करने में लगता है।

(*iii*) *LF-लेटेस्ट फिनिश टाइम*–यह तत्काल समय है जो प्रोजेक्ट को बिना देर किये समय पर करने के लिए आवश्यक है।

(*iv*) *LS-लेटेस्ट स्टार्ट टाइम*–इस समय में लेटेस्ट फिनिश समय में से वह समय घटा दिया जाता है, जो क्रियाकलाप को पूर्ण होने में लगता है।

(*vi*) **CPM डायग्राम को अपडेट करना**–जैसे-जैसे प्रोजेक्ट प्रगति की ओर बढ़ता है तो क्रियाकलाप को पूर्ण होने में लगने वाला वास्तविक समय पता चल जाता है, तथा जो गतिविधि समाप्त हो जाती है, वहाँ तक कि सूचना से क्रांतिक पथ विधि को अपडेट कर दिया जाता है। यदि प्रोजेक्ट में नए परिवर्तन आते हैं, तो क्रांतिक पथ विधि में भी परिवर्तन आवश्यक होते हैं।

## 13.4 क्रांतिक पथ विधि के लाभ और सीमाएँ (Advantages and Limitations of CPM)

क्रांतिक पथ विधि (CPM) के निम्नलिखित लाभ हैं–

(*i*) क्रांतिक पथ विधि प्रोजेक्ट के नियोजन तथा प्रबंधन में एक तर्कपूर्ण नियंत्रण स्थापित करता है।

(*ii*) CPM की दीर्घावधि तथा विस्तृत नियोजन को प्रेरित करता है।

(*iii*) क्रांतिक पथ विधि (CPM) की सहायता से सभी प्रोजेक्ट विशेषज्ञ पूरे प्रोजेक्ट का पूर्ण ब्यौरा जान लेते हैं।

(*iv*) CPM पूरे प्रोजेक्ट योजना को नियंत्रित ढंग से पूर्ण करने, समय तथा लागत को ठीक ढंग से कार्यान्वित करने की एक मानक विधि है।

नोट

(*v*) इसकी सहायता से पूरे प्रोजेक्ट संरचना को प्रभावित करने वाले तकनीकी परिवर्तनों के मूल्यांकन में सहायता करता है।

(*vi*) यह प्रोजेक्ट को पूरा करने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण तथा सस्ती विधि है।

### क्रांतिक पथ विधि की सीमाएँ (Limitations of CPM)

क्रांतिक पथ विधि (CPM) की सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

क्रांतिक पथ विधि कम रूटीन प्रोजेक्ट्स के कारण, प्रोजेक्ट को पूर्ण होने में लगने वाले समय में काफी अनिश्चितता रहती है, जिससे कि क्रांतिक पथ विधि (CPM) मॉडल द्वारा एक सीमा तक ही लाभ उठाया जा सकता है।

*टास्क* कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) का फार्मूला क्या है?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment )

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. पीईआरटी नेटवर्क का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि इसमें तीन ..... प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।
2. पीईआरटी नेटवर्क के नवीनतम तकनीक का उपयोग करके ..... जान लेते हैं कि किस प्रोजेक्ट को किस प्रकार नियोजित करना है।
3. जब एक बार प्रबंधक ..... का प्रयोग कर लेते हैं तो दूसरे प्रोजेक्ट में काम करना उनके लिए आसान हो जाता है।
4. क्रांतिक पथ विधि (Critical Path Method – CPM) प्रोजेक्ट का ..... दृष्टिकोण उपलब्ध कराता है।
5. किसी प्रोजेक्ट विशेष में लगने वाले ..... का पूर्वानुमान सीपीएम द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

## 13.5 सारांश (Summary)

- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक, प्रबंधन की एक विधि है, जिसमें संगठन में कार्यरत लोगों के क्रियाकलापों अधिकतम लागत तथा कम से कम समय में योजना को कार्यान्वित किया जाता है। पीईआरटी प्रत्येक क्रियाकलापों में व्यय होने वाले समय, उसमें लगने वाली लागत तथा शेष कार्यक्रम को पूरा करने में लगने वाले समय तथा लागत पर विशेष बल देता है।
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) किसी भी प्रोजेक्ट में उपयोग होने वाली गतिविधियों में लगने वाले समय पर केन्द्रित होती है। एक जटिल कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) नेटवर्क में बहुत से क्रियाकलाप तथा घटनाएँ सम्मिलित होती हैं। इवेंट का अर्थ है, एक निश्चित समय में एक कार्यक्रम को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करना जबकि क्रियाकलाप से अभिप्राय है एक इवेंट को पूरा करने में उपयोग किये गए संसाधन तथा समय। अत: जब क्रियाकलाप तथा इवेंट पूर्ण रूप से ज्ञात हों, तो इवेंट की प्रक्रिया तथा प्रगति उचित तरीके से मूल्यांकित की जा सकती है तथा प्रोजेक्ट ठीक प्रकार से कार्यान्वित हो सकता है।
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) के उपयोग का प्रमुख अंग हैं तीन पूर्वानुमान। ये तीन पूर्वानुमान (*i*) ऑप्टिमिस्टिक (*ii*) पेसिमिस्टिक (*iii*) मोस्ट लाइकली।
- सामान्यत: ऑप्टिमिस्टिक पूर्वानुमान वह न्यूनतम समय है, जो क्रियाकलाप को पूरा करने में लगता है, वहीं दूसरी ओर पैसिमिस्टिक पूर्वानुमान वह अधिकतम समय है, जो इवेंट को पूरा करने में लगेगा। तीसरा और अंतिम पूर्वानुमान है, मोस्ट लाइकली, जो वास्तविकता में एक इवेंट को पूरा करने में लगने वाला समय है। इसके अतिरिक्त दो अन्य तत्व भी कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) में सम्मिलित हैं, जो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं (*i*) स्लैक समय तथा (*ii*) क्रान्तिक पथ।

नोट

- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) फॉर्मूले में यदि अंकों का प्रयोग किया जाये तो प्रोजेक्ट को पूर्ण होने में लगने वाले वास्तविक समय का पता लगाया जा सकता है। जैसे–A = 7 सप्ताह, मोस्ट लाइकली समय = 11 सप्ताह, B पैसिमिस्टिक समय = 15 सप्ताह।
- एक बार जब अनुमानित समय की गणना हो जाती है, तो क्रान्तिक पथ भी आसानी से निकाला जा सकता है।
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि इसमें तीन पूर्वानुमान समय एवं प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं, जो प्रोजेक्ट में आ रही कठिनाइयों को पहचानने में सहायता करती हैं।
- जब प्रबंधक एक बार कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (PERT) तकनीक की सहायता से एक प्रोजेक्ट में प्रयुक्त समय तथा लागत का पूर्वानुमान कर लेते हैं उन्हें दूसरे प्रोजेक्ट के लिए अनुभव तथा आँकड़े प्राप्त हो जाते हैं वे उसे आसानी से कार्यान्वित कर लेते हैं।
- क्रांतिक पथ विधि (CPM) प्रोजेक्ट प्रबंधन के नियोजन तथा शिड्यूलिंग का गणितीय क्रमिक नेटवर्क है। यह सर्वप्रथम 1957 में 'ई.आई. डू पॉण्ट दि नेमॉर्स एण्ड कम्पनी' द्वारा प्रयुक्त किया गया। यह एक नेटवर्क चित्र है जो प्रोजेक्ट के सभी क्रियाकलापों को चित्रित करता है। क्रांतिक पथ विधि (CPM) प्रोजेक्ट के क्रांतिक क्रियाकलापों को पहचानकर, उन्हें प्रोजेक्ट को दिये हुए समय के अंदर समाप्त करने में सहायता करता है।
- क्रांतिक पथ विधि (CPM) प्रोजेक्ट का पहला चरण प्रोजेक्ट की प्रत्येक गतिविधि तथा क्रियाकलाप की सूची तैयार करना होता है। यह सूची आगे के चरणों में समय सीमा तथा प्रत्येक गतिविधि को पूर्ण करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

## 13.6 शब्दकोश (Keywords)

- **आबल्य**–निर्बलता, कमजोरी।
- **डिगना**–डोलना, हिलना, वचन भंग करना।

## 13.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (पीईआरटी) की अवधारणा तथा पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।
2. पीईआरटी की क्या विशेषताएँ हैं? इससे होने वाले लाभों को समझाइए।
3. क्रांतिक पथ विधि की अवधारणा क्या है? इसकी प्रक्रिया और विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. क्रांतिक पथ विधि के लाभ को समझाते हुए इसकी सीमाओं का विवेचन कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1.पूर्वानुमान समय 2. प्रबंधक 3. पीईआरटी तकनीक 4. ग्रॉफिकल 5. समय

## 13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–14: शिक्षा में लागत लाभ तथा लागत प्रभाविता विश्लेषण (Cost-benefit and Cost-efficiency Analysis in Education)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 लागत लाभ विश्लेषण की अवधारणा (Concept of Cost-benefit Analysis)

14.2 लागत लाभ विश्लेषण की प्रक्रिया (Process of Cost-benefit Analysis)

14.3 लागत प्रभाविता विश्लेषण की अवधारणा (Concept of Cost-efficiency Analysis)

14.4 लागत प्रभाविता विश्लेषण का उद्देश्य (Aims of Cost-efficiency Analysis)

14.5 लागत प्रभाविता विश्लेषण का शैक्षिक उपयोग (Educational Application of Cost-efficiency Analysis)

14.6 सारांश (Summary)

14.7 शब्दकोश (Keywords)

14.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

14.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा में लागत लाभ विश्लेषण और लागत प्रभाविता विश्लेषण की अवधारणा, प्रक्रिया, उपयोग एवं उद्देश्य की व्याख्या एवं विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

लागत लाभ विश्लेषण तथा लागत लाभ प्रभाविता विश्लेषण दोनों ही प्रणालीगत प्रविधियाँ हैं, जिनके द्वारा कम से कम लागत में अधिक से अधिक लाभ तथा प्रभाविता प्राप्त की जा सकती है। विविध क्षेत्रों में उपयोग करने के बाद शैक्षिक क्षेत्र में भी इसका उपयोग होने लगा है। विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों में लागत तथा उससे प्राप्त होने वाली उपलब्धि का विश्लेषण करके इन योजनाओं तथा कार्यक्रमों का न केवल सफलतापूर्वक संचालन किया जा सकता है बल्कि उनसे अधिकतम लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है।

## 14.1 लागत लाभ विश्लेषण की अवधारणा (Concept of Cost-benefit Analysis)

लागत लाभ विश्लेषण किसी भी प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम के मापन की प्रक्रिया है। इसे कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए इस प्रकार नियोजित किया जाता है कि लागत से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। यह कुशलता के मूल्यांकन का प्रभावी तरीका है।

नोट

## 14.2 लागत लाभ विश्लेषण की प्रक्रिया (Process of Cost-benefit Analysis)

लागत लाभ विश्लेषण अर्थव्यवस्था पर आधारित तकनीक है। इसकी प्रक्रिया निम्नलिखित है–

(*i*) यह शैक्षिक कार्यक्रम के मूल्यांकन के मापन विकसित करता है।

(*ii*) यह कार्यक्रम के लिए वैकल्पिक नीति विकसित करता है।

(*iii*) यह कार्यक्रम प्रभावों की पहचान करता है।

(*iv*) प्रत्येक नीति विकल्प के बनाये गए प्रत्येक कार्यक्रम के प्रभावों का पूर्वानुमान करता है।

(*v*) प्रत्येक कार्यक्रम की प्रत्येक नीति विकल्प के लागत तथा लाभ की तुलना करता है, जिससे ऐसे विकल्प सामने आ सके जिसमें लाभ, लागत से अधिक हो।

(*vi*) मूल्यांकन की अनिश्चितता पूर्वानुमान लाभ तथा लागत अथवा संवेदनशीलता विश्लेषण को संचालित करता है।

### लागत लाभ विश्लेषण के लाभ

1. लागत लाभ विश्लेषण का प्रमुख लाभ है कि यह विश्लेषण समझने में आसान है। इसमें केवल इस बात को देखना है कि लाभ, लागत से कितना ज्यादा या कम है। जब हम एक बार इसे परिणात्मक रूप से मूल्यांकित कर लेते हैं तो लागत और लाभ का विश्लेषण भली भाँति कर लेते हैं।
2. लागत लाभ विश्लेषण द्वारा प्रोजेक्ट के सभी क्षेत्रों को अच्छी तरह से मूल्यांकित किया जाता है। कुछ चीजों की लागत पहले से पता होती है, तथा दूसरे पक्षों की लागत आसानी से पता लगाई जा सकती है। इस विधि द्वारा उन पक्षों जिनके बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं है, या जिन पर शोध चल रहा है, उनकी लागत का भी पूर्वानुमान हो जाता है।
3. लागत लाभ विश्लेषण की विधि सरल होने के कारण इसे किसी भी उद्देश्य के लिए उस रूप में ढाला जा सकता है। जैसे कुछ प्रबंधन क्षेत्र प्रोजेक्ट की धनार्जन क्षमता पर ध्यान देते हैं, जबकि कुछ संगठन धन से अधिक लोगों की कार्यक्षमता तथा कुशलता तथा बाहरी परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठा पर ध्यान देते हैं। लागत लाभ विश्लेषण सभी परिप्रेक्ष्यों में लाभकारी है।

*क्या आप जानते हैं* लागत लाभ विश्लेषण कार्यान्वयन के लिए लागत प्रभावी नीति की सिफारिश करता है।

## 14.3 लागत प्रभाविता विश्लेषण की अवधारणा (Concept of Cost-efficiency Analysis)

लागत प्रभाविता विश्लेषण आर्थिक विश्लेषण का एक प्रकार है जो दो या दो से अधिक कार्यों की सापेक्ष लागत तथा प्रभावों की तुलना करता है। लागत प्रभाविता विभिन्न प्रकार के संगठनों में नियोजन तथा प्रबंधन गतिविधियों तथा क्रियाकलापों में उपयोग की जाती है। शिक्षण प्रबंधन के क्षेत्र में लागत प्रभाविता विश्लेषण का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक निर्णय-निर्धारण की उपयोगी प्रविधि है, जिसके द्वारा एक विशेष शैक्षिक लक्ष्य सबसे सस्ते तथा कम लागत द्वारा प्राप्त किया जाता है। उदाहरण के लिए गणित सीखने तथा पठन क्षमता को विकसित करने के लिए कई प्रविधियाँ उपलब्ध हैं, जिसमें पाठ्यक्रम, शिक्षण प्रशिक्षण, शैक्षिक टी.वी., कम्प्यूटर अनुदेशन, कक्षा का छोटा आकार आदि। इन सभी प्रविधियों में यह देखा जाएगा कि कौन सी ऐसी प्रविधि या तकनीक है, जो कम से कम लागत में अधिक से अधिक गणित समझाने तथा पठन क्षमता को बढ़ाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

नोट

## 14.4 लागत प्रभाविता विश्लेषण का उद्देश्य (Aims of Cost-efficiency Analysis)

शिक्षा में लागत प्रभाविता विश्लेषण का उद्देश्य कम से कम लागत वाले कार्यक्रम या कार्यक्रमों के समूह द्वारा विशिष्ट उद्देश्य प्राप्त करना है। यह सर्वविदित है कि शिक्षा के विभिन्न विकल्पों के विभिन्न परिणाम होते हैं। सबसे कम लागत वाली तकनीक का ही सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। 1960 में इसे आयुद्ध निर्माण से अलग क्षेत्रों में कार्यक्रमों की प्रभाविता का विश्लेषण करने के लिए प्रयोग किया गया। शिक्षा के क्षेत्र में इसका विकास अभी बहुत कम है किन्तु यह धीरे-धीरे विकसित हो रहा है।

### लागत प्रभाविता का मापन

लागत प्रभाविता विश्लेषण द्वारा परिणाम निकालने या मापन करने की मूल विधि मानक मूल्यांकन प्रविधि या अध्ययन है। इस प्रकार प्राप्त सूचना को जब लागत आँकड़ों के साथ समागम किया जाता है तो परिणाम तत्त्व उपागम (Ingredient approach) द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। तत्त्व उपागम, सामाजिक मध्यस्थता की लागत को मूल्यांकित करने के लिए एक प्रणालीगत तरीके के रूप में विकसित हुई। यह केवल लागत प्रभाविता की समस्याओं को हल करने के लिए नहीं बल्कि राज्य तथा स्थानीय नियोजन के विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की लागत का विश्लेषण भी करती है।

*नोट्स* लागत प्रभाविता विश्लेषण 1950 में संयुक्त राज्य अमेरिका के आयुध निर्माण विभाग में विश्लेषण विधि के तौर पर प्रयोग किया गया।

### प्रभाविता मापन

लागत प्रभाविता विश्लेषण को प्रारम्भ करने से पहले, निर्णय समस्या के बारे में जानना आवश्यक है कि उसके कितने विकल्प हैं और उनके प्रभाव क्या हैं। एक बार जब समस्या को पहचान लिया जाता है तो उसके बाद विकल्प की प्रभाविता के मापन तथा मूल्यांकन की प्रक्रिया आरंभ की जाती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रभाविता के मापन की सभी विमाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। दी गई समस्या तथा मानदण्ड के प्रस्तावित हल ही प्रभाविता को मूल्यांकित करने के लिए विभिन्न विकल्पीय कार्यक्रमों को सामने रखना बहुत आवश्यक है। इस प्रकार के कार्यक्रम की संख्या जितनी अधिक हो, उतना लाभप्रद है। फिर विकल्पीय कार्यक्रम की प्रभाविता को मूल्यांकित करने के लिए प्रविधि निर्धारित की जाती है। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्रभाविता का मूल्यांकन करना लागत के मूल्यांकन करने से अलग है।

### लागत अनुमान

इन्टरवेंशन (मध्यस्थता) की लागत का अर्थ है समाज द्वारा दिये गये संसाधनों के मूल्य जो मध्यस्थता पर प्रभाव डालते हैं इन्हें मध्यस्थता के तत्त्व कहा जाता है। लागत अनुमान के निर्धारण के लिए तत्त्व उपागम के तीन चरण हैं–(*i*) तत्त्वों की पहचान; (*ii*) तत्त्वों के लागत तथा मूल्य का निर्धारण या सम्पूर्ण मध्यस्थता की लागत (*iii*) उपयुक्त निर्णय-निर्धारण फ्रेमवर्क की लागत का विश्लेषण।

लागत अनुमान का पहला कदम है मध्यस्थता के लिए आवश्यक तत्त्वों को निश्चित करना। तत्त्वों की पहचान के लिए आंकड़े तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार के डाटा का प्राथमिक स्रोत लिखी हुई रिपोर्ट, निरीक्षण तथा साक्षात्कार होते हैं। लिखित रिपोर्ट में मध्यस्थता से संबंधित, संक्षिप्त इतिहास तथा वर्णन होता है। यह इन्टरवेंशन से संबंधित आंकड़े इन्टरनेट साइट्स पर उपलब्ध हों तो यहां से भी इन्हें एकत्रित किया जा सकता है तथा तीसरा बहुमूल्य स्रोत साक्षात्कार है, जहां लोगों से बातचीत के द्वारा आंकड़े एकत्र किये जाते हैं। इस प्रकार रिपोर्ट, निरीक्षण तथा साक्षात्कार सूचना के तीन मुख्य स्रोत हैं।

नोट

एक बार जब तत्त्वों की पहचान कर ली जाती है, तो इनका मूल्य निर्धारण या लागत निश्चित करना आवश्यक हो जाता है। सामान्यत: लागत निर्धारण के उद्देश्य के लिए तत्त्व का मूल्य ही इसका बाजार मूल्य है। इस प्रकार की लागत में न केवल वेतन बल्कि अन्य रोजगार लागत भी शामिल हैं, जो कि एम्पलॉयर को ही देना पड़ता है। इन कीमतों में, उपकरण, पदार्थ तथा अन्य उपयोगी संसाधन भी सम्मिलित होते हैं।

एक बार जब तत्त्वों की लागत का निर्धारण हो जाता है तो इन कीमतों को मध्यस्थता की कुल लागत को प्राप्त करने के लिए जोड़ा जाता है। फिर इन लागतों का विश्लेषणात्मक फ्रेमवर्क तैयार किया जाता है। लागत तथा इसके विश्लेषण की दो प्रमुख चुनौतियाँ हैं–

(a) लागत को प्रदर्शित करने की उचित इकाई (b) लागत को कौन कीमत देता है।

लागत को प्रदर्शित करने की उचित इकाई इस बात पर निर्भर करती है कि प्रभाविता को किस प्रकार से मूल्यांकित किया गया है, तथा निर्णय की प्रकृति क्या है।

सामान्यत: शैक्षिक प्रभाविता के मापन का अर्थ प्रति छात्र या छात्रों के समूह द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धि है। अत: इस क्षेत्र में यह आवश्यक हो जाता है कि कुल लागत को प्रति छात्र लागत में परिवर्तित कर दिया जाए। लागत प्रभाविता अनुपात, औसत प्रभावों तथा प्रति छात्र लागत पर आधारित होता है। दूसरी चुनौती लागत या कीमत कौन अदा करता है। सम्पूर्ण लागत प्रभाविता अनुपात निर्णय निर्धारक से भिन्न हो सकता है, जो केवल एक इन्टरवेंशन के लिए कीमत अदा करता है, इस कारण एक इन्टरवेंशन की कुल लागत तथा निर्णय निर्धारक द्वारा बनाये गए इन्टरवेंशन का अलग-अलग मूल्य निर्धारण करना आवश्यक हो जाता है। लागत प्रभाविता का सबसे सामान्य मापक लागत प्रभाविता अनुपात है, जिसमें एक विकल्प की प्रभाविता को इसकी कीमत से विभाजित किया जाता है।

जब किसी विकल्प के लिए यह प्रक्रिया अपनाई जाती है, तो इसकी सहायता से यह मूल्यांकित करना आसान हो जाता है कि कौन-सा विकल्प प्रति इकाई लागत पर कितना अधिक उत्पादन तथा प्रभाविता उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए छात्रों की उपलब्धि को बढ़ाने के लिए विभिन्न विकल्पों की तुलना की जाती है। सिद्धांत सबसे अधिक उस विकल्प को माना जाएगा जो सबसे कम लागत पर सबसे अधिक लाभ देगा। हालांकि यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि लागत प्रभाविता अनुपात में विभिन्नताएँ कम अथवा अधिक हैं यदि विभिन्नताएँ कम हैं।

*टास्क* लागत अनुमान के निर्धारण के लिए तत्त्व उपागम के कितने चरण होते हैं?

## 14.5 लागत प्रभाविता विश्लेषण का शैक्षिक उपयोग (Educational Application of Cost-efficiency Analysis)

**शैक्षिक उपयोग**–लागत प्रभाविता की उपयोगिता, शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षक चयन, शैक्षिक टेलिविजन तथा रेडियो गणित के पाठ्यक्रम के विकल्प, कम्प्यूटर अनुदेशन तथा विद्यालय के दिन में वृद्धि, कक्षा के आकार में कमी आदि में देखने को मिलती है।

**पाठ्यक्रम**–लागत प्रभाविता विश्लेषण के लिए पाठ्यक्रम सबसे उचित क्षेत्र है। शैक्षिक सुधार के लिए विद्यालय बहुत से उपाय अपनाता है जिसमें वे विषयवस्तु तथा अनुदेशन की प्रविधियों को व्यवस्थित करते हैं। इनमें से कुछ दूसरों से अधिक प्रभावी होते हैं। उदाहरण के लिए पाँचवीं कक्षा के गणित पाठ्यक्रम की लागत प्रभाविता विश्लेषण का अध्ययन करने के लिए दो प्रकार के शैक्षिक उपागमों का प्रयोग किया जाता है, एक परम्परागत शिक्षण प्रणाली तथा दूसरा कोई भी अन्य विकल्प। तत्त्व प्रविधि का उपयोग करते हुए शोधकर्ताओं ने पाया कि गणित के अध्ययन तथा प्रशिक्षण की दूसरी प्रविधि की लागत परम्परागत प्रविधि की लागत से 50 प्रतिशत अधिक है, किन्तु दूसरी

नोट

प्रविधि परम्परागत विधि कई गुना अधिक प्रभावशाली है, प्रति छात्र उपलब्धि का मापन करने पर ज्ञात हुआ कि दूसरी प्रविधि 60 से 300 प्रतिशत तक प्रभावी है जिससे कि इस पर लगने वाली लागत अधिक होने पर भी उपलब्धि तथा भविष्य परिणामों की दृष्टि से अधिक लागत प्रभावी है।

**अध्यापक प्रशिक्षण**–अध्यापक प्रशिक्षण में भी लागत प्रभाविता विश्लेषण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उदाहरण के लिए अध्यापक शिक्षा के संस्थागत तथा नियमित कॉलेजों तथा दूरस्थ शिक्षा से किये गए अध्यापक प्रशिक्षण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया जिसमें अध्यापक का शैक्षिक प्रदर्शन तथा छात्र की उपलब्धि प्रभाविता के मानक हैं, जिन छात्र अध्यापकों ने दूरस्थ शिक्षा से अध्यापक प्रशिक्षण किया उनका अध्यापन प्रदर्शन नियमित कॉलेजों के छात्र अध्यापकों से लगभग बराबर था।

अत: शिक्षा में लागत प्रभाविता विश्लेषण के तीन चरण हैं–(a) विकल्प की लागत का अच्छी तरह से मापन करना आवश्यक है जैसे अध्यापकों का वेतन, पुस्तकें तथा प्रत्येक विद्यालय के अधिगम सामग्री जो प्रत्येक विद्यालय में प्रयुक्त की जाती है। (b) विकल्प की शिक्षा प्रभाविता के परिणाम का मापन करना चाहिए। उदाहरण के लिए प्रत्येक विद्यालय के छात्रों के मानक प्राप्तांकों द्वारा शैक्षिक प्रभाविता का मापन किया जा सकता है। (c) लागत तथा प्रभाविता मानकों को लागत प्रभाविता अनुपात गणना करने के लिए एकत्र किया जाता है, उदाहरण के लिए प्रत्येक विकल्प की प्रभाविता को लागत से विभाजित करके एक विशेष उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इकाई लागत की गणना की जाती है। जैसे छात्र की उपलब्धि में 1 प्रतिशत वृद्धि। इस प्रविधि से सबसे कम लागत में सबसे अधिक प्रभाविता प्राप्त करने का उचित विकल्प प्राप्त होता है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. लागत प्रभाविता विश्लेषण के लिए ..... सबसे उचित क्षेत्र है।
2. ..... में भी लागत प्रभाविता विश्लेषण का महत्त्वपूर्ण योगदान है।
3. शिक्षा में लागत प्रभाविता विश्लेषण के ..... होते हैं।
4. लागत प्रभाविता विश्लेषण संयुक्त राज्य अमेरिका के ..... निर्माण विभाग विश्लेषण विधि के तौर पर प्रयोग किया गया।

## 14.6 सारांश (Summary)

- लागत लाभ विश्लेषण किसी भी प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम के मापन की प्रक्रिया है। इसे कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए इस प्रकार नियोजित किया जाता है कि लागत से अधिक लाभ प्राप्त हो सके।
- लागत लाभ विश्लेषण का प्रमुख लाभ यह है कि यह विश्लेषण समझने में आसान है। इसमें केवल इस बात को देखना है कि लाभ, लागत से कितना ज्यादा या कम है। जब हम एक बार इसे परिणामात्मक रूप से मूल्यांकित कर लेते हैं तो लागत और लाभ का विश्लेषण भली भाँति कर लेते हैं।
- लागत लाभ विश्लेषण द्वारा प्रोजेक्ट के सभी क्षेत्रों को अच्छी तरह से मूल्यांकित किया जाता है। कुछ चीजों की लागत पहले से पता होती है, तथा दूसरे पक्षों की लागत आसानी से पता लगाई जा सकती है। इस विधि द्वारा उन पक्षों जिनके बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं है, या जिन पर शोध चल रहा है, उनकी लागत का भी पूर्वानुमान हो जाता है।
- लागत लाभ विश्लेषण की विधि सरल होने के कारण इसे किसी भी उद्देश्य के लिए उस रूप में ढाला जा सकता है। जैसे कुछ प्रबंधन क्षेत्र प्रोजेक्ट की धनार्जन क्षमता पर ध्यान देते हैं, जबकि कुछ संगठन धन से अधिक लोगों की कार्यक्षमता तथा कुशलता तथा बाहरी परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठा पर ध्यान देते हैं। लागत लाभ विश्लेषण सभी परिप्रेक्ष्यों में लाभकारी है।

नोट

- लागत प्रभाविता विश्लेषण आर्थिक विश्लेषण का एक प्रकार है जो दो या दो से अधिक कार्यों की सापेक्ष लागत तथा प्रभावों की तुलना करता है। लागत प्रभाविता विभिन्न प्रकार के संगठनों में नियोजन तथा प्रबंधन गतिविधियों तथा क्रियाकलापों में उपयोग की जाती है। शिक्षण प्रबंधन के क्षेत्र में लागत प्रभाविता विश्लेषण का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक निर्णय-निर्धारण की उपयोगी प्रविधि है, जिसके द्वारा एक विशेष शैक्षिक लक्ष्य सबसे सस्ते तथा कम लागत द्वारा प्राप्त किया जाता है।
- शिक्षा में लागत प्रभाविता विश्लेषण का उद्देश्य कम से कम लागत वाले कार्यक्रम या कार्यक्रमों के समूह द्वारा विशिष्ट उद्देश्य प्राप्त करना है। यह सर्वविदित है कि शिक्षा के विभिन्न विकल्पों के विभिन्न परिणाम होते हैं। सबसे कम लागत वाली तकनीक का ही सर्वाधिक उपयोग किया जाता है।
- लागत प्रभाविता विश्लेषण को प्रारम्भ करने से पहले, निर्णय समस्या के बारे में जानना आवश्यक है कि उसके कितने विकल्प हैं और उनके प्रभाव क्या हैं। एक बार जब समस्या को पहचान लिया जाता है तो उसके बाद विकल्प की प्रभाविता के मापन तथा मूल्यांकन की प्रक्रिया आरंभ की जाती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रभाविता के मापन की सभी विमाओं का ज्ञान होना आवश्यक है।
- इन्टरवेंशन (मध्यस्थता) की लागत का अर्थ है समाज द्वारा दिये गये संसाधनों के मूल्य जो मध्यस्थता पर प्रभाव डालते हैं इन्हें मध्यस्थता के तत्त्व कहा जाता है।
- लागत अनुमान का पहला कदम है मध्यस्थता के लिए आवश्यक तत्त्वों को निश्चित करना। तत्त्वों की पहचान के लिए आंकड़े तैयार किये जाते हैं, इस प्रकार के डाटा का प्राथमिक स्रोत लिखी हुई रिपोर्ट, निरीक्षण तथा साक्षात्कार होते हैं। लिखित रिपोर्ट में मध्यस्थता से संबंधित, संक्षिप्त इतिहास तथा वर्णन होता है। यह इन्टरवेंशन से संबंधित आंकड़े इन्टरनेट साइट्स पर उपलब्ध हों तो यहां से भी इन्हें एकत्रित किया जा सकता है तथा तीसरा बहुमूल्य स्रोत साक्षात्कार है, जहां लोगों से बातचीत के द्वारा आंकड़े एकत्र किये जाते हैं। इस प्रकार रिपोर्ट, निरीक्षण तथा साक्षात्कार सूचना के तीन मुख्य स्रोत हैं।
- सामान्यत: शैक्षिक प्रभाविता के मापन का अर्थ प्रति छात्र या छात्रों के समूह द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धि है। अत: इस क्षेत्र में यह आवश्यक हो जाता है कि कुल लागत को प्रति छात्र लागत में परिवर्तित कर दिया जाए। लागत प्रभाविता अनुपात, औसत प्रभावों तथा प्रति छात्र लागत पर आधारित होता है। दूसरी चुनौती लागत या कीमत कौन अदा करता है। सम्पूर्ण लागत प्रभाविता अनुपात निर्णय निर्धारक से भिन्न हो सकता है, जो केवल एक इन्टरवेंशन के लिए कीमत अदा करता है, इस कारण एक इन्टरवेंशन की कुल लागत तथा निर्णय निर्धारक द्वारा बनाये गए इन्टरवेंशन का अलग-अलग मूल्य निर्धारण करना आवश्यक हो जाता है।
- लागत प्रभाविता की उपयोगिता, शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षक चयन, शैक्षिक टेलिविजन तथा रेडियो गणित के पाठ्यक्रम के विकल्प, कम्प्यूटर अनुदेशन तथा विद्यालय के दिन में वृद्धि, कक्षा के आकार में कमी आदि में देखने को मिलती है।
- लागत प्रभाविता विश्लेषण के लिए पाठ्यक्रम सबसे उचित क्षेत्र है। शैक्षिक सुधार के लिए विद्यालय बहुत से उपाय अपनाता है जिसमें वे विषयवस्तु तथा अनुदेशन की प्रविधियों को व्यवस्थित करते हैं। इनमें से कुछ दूसरों से अधिक प्रभावी होते हैं।
- अध्यापक प्रशिक्षण में भी लागत प्रभाविता विश्लेषण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उदाहरण के लिए अध्यापक शिक्षा के संस्थागत तथा नियमित कॉलेजों तथा दूरस्थ शिक्षा से किये गए अध्यापक प्रशिक्षण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया जिसमें अध्यापक का शैक्षिक प्रदर्शन तथा छात्र की उपलब्धि प्रभाविता के मानक हैं, जिन छात्र अध्यापकों ने दूरस्थ शिक्षा से अध्यापक प्रशिक्षण किया उनका अध्यापन प्रदर्शन नियमित कॉलेजों के छात्र अध्यापकों से लगभग बराबर था।

नोट

- अत: शिक्षा में लागत प्रभाविता विश्लेषण के तीन चरण हैं–(a) विकल्प की लागत का अच्छी तरह से मापन करना आवश्यक है जैसे अध्यापकों का वेतन, पुस्तकें तथा प्रत्येक विद्यालय के अधिगम सामग्री जो प्रत्येक विद्यालय में प्रयुक्त की जाती है। (b) विकल्प की शिक्षा प्रभाविता का परिणाम का मापन करना चाहिए। उदाहरण के लिए प्रत्येक विद्यालय के छात्रों के मानक प्राप्तांकों द्वारा शैक्षिक प्रभाविता का मापन किया जा सकता है। (c) लागत तथा प्रभाविता मानकों को लागत प्रभाविता अनुपात गणना करने के लिए एकत्र किया जाता है।

## 14.7 शब्दकोश (Keywords)

- **तनकीद**–आलोचना, पहचान।
- **दुनियाबी**–सांसारिक।

## 14.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. लागत लाभ विश्लेषण की क्या अवधारणा है? विवेचना कीजिए।
2. लागत लाभ विश्लेषण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
3. लागत प्रभाविता विश्लेषण की अवधारणा को समझाइये।
4. लागत प्रभाविता विश्लेषण के उद्देश्य की व्याख्या कीजिए।
5. लागत प्रभाविता विश्लेषण के उपयोग की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. पाठ्यक्रम 2. अध्यापक प्रशिक्षण 3. तीन चरण 4. आयुध

## 14.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–15: शैक्षिक प्रबंधन में पणधारियों (दबाव समूहों) की सहभागिता (Participation of Stakeholders in Educational Management)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 शैक्षिक नियंत्रण और पणधारी अथवा दबाव समूह (Educational Controlling and Stakeholders or Pressuregroup)

15.2 पणधारियों अथवा दबाव समूहों की भूमिका (Role of Stakeholders or Pressure groups)

15.3 सारांश (Summary)

15.4 शब्दकोश (Keywords)

15.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

15.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शैक्षिक प्रबंधन में पणधारियों की सहभागिता और उनकी महत्वपूर्ण भूमिका की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा पर किसका कितना नियंत्रण हो हमेशा से यह विवाद का विषय रहा है। प्रारंभ में अधिकांश देशों में शिक्षा पर धार्मिक संस्थाओं का नियंत्रण रहा तथा शिक्षा और धर्म अविभाज्य अंग के रूप में कार्य करते रहे। प्राचीन काल में भारत में शिक्षा जहाँ गुरुकुलों अथवा मकतबों आदि के नियंत्रण में रही, वहीं इंग्लैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों में शिक्षा चर्च के नियंत्रण में रही।

## 15.1 शैक्षिक नियंत्रण और पणधारी (दबाव समूह) (Educational Controlling and Stakeholders or Pressure group)

शिक्षा के महत्व और प्रभाव को देखते हुए शासन धीमे-धीमे हस्तक्षेप करने लगा। वस्तुतः धार्मिक संस्थाएँ और राज्य, शिक्षा के नियंत्रण को लेकर काफी समय तक संघर्षरत रहे। धीरे-धीरे चर्च या मंदिरों का प्रभाव कम होता गया तथा राज्य का शिक्षा पर नियंत्रण बढ़ता चला गया। आज संसार के अधिकांश देशों में शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण है।

यह बात भी जानना आवश्यक है कि प्रत्येक देश की संस्कृति, इतिहास तथा परम्पराएँ भिन्न-भिन्न होती हैं, अतः शिक्षा के नियंत्रण का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न प्रकार का देखने को मिलता है। समाजवादी देशों में यथा पूर्व-रूस

नोट

तथा वर्तमान चीन में शिक्षा पर केन्द्रीय कम्युनिस्ट पार्टी का नियंत्रण है, वहीं अमेरिका एवं भारत आदि जनतंत्रीय देशों में जनसत्ता का नियंत्रण है। भारत में शिक्षा समवर्ती सूची में है, अत: केन्द्र व राज्य सरकारें दोनों ही शिक्षा पर नियंत्रण रखती हैं। ये दोनों सरकारें ही शिक्षा सम्बन्धी नीति तय करती हैं तथा कानून बनाती हैं।

शिक्षा की नीति पर पणधारी अथवा दबाव समूहों (Pressure groups) का भी प्रभाव पड़ता है। ये पणधारी प्रत्येक समाज, देश व संगठन में पाये जाते हैं। इन पणधारियों अथवा दबाव समूहों में राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद, शिक्षक संगठन, अभिभावक समूह, विद्यार्थी-संगठन, धार्मिक संगठन, सार्वजनिक शिक्षा संगठन, औद्योगिक संगठन आदि होते हैं। इन दबाव समूहों का प्रभाव एक देश से दूसरे देश में भिन्न होता है। इसके लिए वहाँ की परम्पराएँ और सामाजिक प्रभाव उत्तरदायी होते हैं।

भारत में शिक्षा पर राजनीतिज्ञों का सर्वाधिक प्रभाव देखा जा सकता है। यूँ शिक्षा के बारे में शिक्षक, विद्यार्थी, अभिभावक, शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ, उद्योगपति आदि सभी की रुचि देखी जा सकती है। पणधारियों में शिक्षा की अनेक ज्वलंत समस्याओं पर विचार होता है, परन्तु अन्तिम निर्णय संसद लेती है और उसमें भी सत्तापक्ष की ही बात मान्य होती है। स्थिति तो यहाँ तक होती है कि नीतिगत निर्णय के संसद में शिक्षाविदों, शिक्षक संगठनों, उपकुलपतियों और केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् की बात भी अमान्य कर दी जाती है। इस प्रकार शिक्षानीति बजाय शिक्षाविदों के, राजनीतिज्ञों द्वारा निर्धारित व निर्देशित होती है। अनेक अच्छी-अच्छी संस्तुतियाँ बिना विचारे रह जाती हैं। यही कारण है कि शिक्षा आयोगों की भी अनेक सिफारिशें मात्र सिफारिश ही बनकर रह गई हैं।

शिक्षक, किसी राष्ट्र की शिक्षा के स्वरूप के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड के शिक्षक परिषद् के अध्यक्ष ने 1949 में कहा–

हमें उद्योगों के लिए, नागरिकता के लिए, यहाँ तक कि आन्तरिक राज्य के लिए भी शिक्षा नहीं चाहिए। हमें बालकों के लिए शिक्षा चाहिए, ताकि वे समग्र जीवन जी सकें तथा अन्य लोगों की उपयोगी सेवा कर सकें।

आज भी ब्रिटेन की शिक्षा पर इस कथन का प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन की शिक्षा परिषद् को शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण पणधारी अथवा दबाव समूह के रूप में देखा जाता है।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन व नियंत्रण का साधन मानी जाती है, अत: शिक्षा की नीतियों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दबाव समूह अथवा पणधारी अपने हित में प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका में जहाँ सीनेट के सदस्यों को शिक्षा की आधारभूत नीतियों को निश्चित करने व प्रभावित करने का अधिकार है, वहीं सोवियत रूस में कम्युनिस्ट पार्टी को यह प्रमुख अधिकार प्राप्त रहा है। भारत में भी संसद तथा विधान सभा शिक्षा नीतियों को निश्चित करने में प्रमुख भूमिका निभाती हैं।

इनके अतिरिक्त भी प्रत्येक देश में अनेक दबाव समूह अपने-अपने हित में शिक्षा की नीतियों को प्रभावित करने में सक्रिय रहते हैं। दबाव समूह अनेक राजनीतिज्ञों शिक्षाविदों, व्यवसाइयों, संगठनों, (शिक्षक-विद्यार्थी) धार्मिक संगठनों, प्रशासकों, अभिभावकों, उद्योग समूहों आदि के होते हैं तथा अपने-अपने हित में केन्द्र व राज्यों की राजधानियों में नीतियाँ तय करने के लिए सक्रिय रहते हैं जैसा कि हायल लिखते हैं–राज्य तथा केन्द्र की राजधानियों में अपने-अपने हितों के संवर्धन हेतु अनेक अभिकरण सक्रिय रहते हैं। तात्कालिक समस्याएँ अनेक उपयुक्त प्रचार-अभिकरणों को अस्तित्व में ला देती हैं।

शिक्षा सम्बन्धी नीतियों के अनुकूल प्रभाव लाने के लिए तथा प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए पणधारियों अथवा दबाव समूहों का जन्म होता है। इन्हें अनेक नामों से पुकारा जाता है। इन्हें 2 श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।–

(1) रुचि-समूह, (2) दबाव समूह

रुचि समूह ऐसे व्यक्ति-समुदाय को कहते हैं जिनमें व्यक्ति समान लक्ष्यों के लिए पूर्ण बोध के साथ कार्य निष्पत्ति में एक दूसरे का समर्थन व सहयोग करते हैं।

नोट

इन सन्दर्भ में एम.टी. जॉन्स. इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन के लिए लिखे गए लेख में लिखते हैं कि अनेक वृत्त अध्ययन इस तथ्य को उजागर करते हैं कि व्यक्ति विद्यालयों के कार्यों पर नियन्त्रण के लिए राजनीतिक साधनों का आश्रय लेने का यन्त्र करते हैं। कोगन का तो यहाँ तक मानना है कि शिक्षा स्वभाव से ही राजनीति है।

इस प्रकार शिक्षा की नीति को प्रभावित करने में राजनीतिज्ञों अथवा जनप्रतिनिधियों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। भारत के लिए तो यह निष्कर्ष सर्वथा सही है। राजनीतिक प्रभाव न केवल शिक्षा की नीतियों वरन् सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। जब अनेक समूह अपने-अपने हितों के कारण मिलकर कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं, तब एक परस्पर साझेदारी की भूमिका तय करनी होती है और एक 'कोएलिशन' बन जाता है तथा यह कोएलिशन शिक्षा की नीतियों को प्रभावित करने में अधिक सक्षम होता है।

जब यही समूह अपने हित में निर्णयों को प्रभावित करने के लिए प्रचार, सम्पर्क, दबाव आदि का प्रयोग करने लग जाते हैं तो लॉबी कहलाते हैं।

प्राय: इन समूहों में तीन प्रकार के प्रभाव देखने में आते हैं–(1) वैयक्तिक (2) व्यावसायिक (3) राजनीतिक। वैयक्तिक हित व्यक्ति की स्वायत्तता, प्रस्थिति एवं पारितोषिक आदि के साथ जुड़े होते हैं, जो व्यक्ति को पहल करने के लिए अग्रसर करते हैं। इसके फलस्वरूप व्यक्ति दबाव समूह का सदस्य बन जाता है।

व्यावसायिक हित–इसके अन्तर्गत शिक्षा के सम्बन्ध में पाठ्यचर्या, प्रशिक्षण कार्यक्रम, संरचना आदि में परिवर्तन कारण हो सकते हैं।

राजनीतिक हित के अन्तर्गत-पार्टियों को राजनीतिक नीति एक प्रमुख कारण हो सकती है।

उपर्युक्त तीनों श्रेणियों में इन समूहों के अनेक नाम गिनाए जा सकते हैं। इन पणधारियों अथवा दबाव समूहों में सर्वाधिक प्रभावी समूह राजनीतिज्ञों का होता है।

### दबाव समूहों अथवा पणधारियों का महत्व

भारत के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के क्षेत्र में दबाव समूहों की सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार की भूमिका देखने में आती है। केन्द्रीय स्तर पर संसद व राज्य पर विधान सभा की मुख्य भूमिका है। सांसद व विधायकों द्वारा शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ तय करने से पहले विभिन्न शिक्षक संगठन, भावी नीति के गुण और दोषों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर जनमत तैयार करने में योग देते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर विरोध भी करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को तय करने में अनेक शिक्षक संगठनों की सकारात्मक भूमिका रही है। वस्तुत: प्रत्येक राष्ट्रीय शिक्षक संगठन एक महत्वपूर्ण दबाव समूह है।

हमारे देश में भी विविध शिक्षा स्तरों पर अनेक शिक्षक संगठन सक्रिय हैं परन्तु इनकी शक्ति प्राय: वेतन, महंगाई भत्ता बढ़वाने में व्यय होती है। श्रेयस्कर हो कि ये समूह राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से भी अपने प्रभाव का उपयोग करें।

स्थानीय सांसद, विधायक तथा प्रधान अपने राजनीतिक वर्चस्व के लिए विद्यालय के संगठन व संचालन में राजनीतिक हस्तक्षेप करते देखे गये हैं, जिनमें स्थानान्तरण एवं नियुक्तियाँ प्रमुख हैं। श्रेयस्कर हो कि वे विद्यालय के भौतिक व शैक्षिक विकास में सार्थक भूमिका निभारकर योग दें। इनकी सकारात्मक भूमिका से न केवल विद्यालय वरन् समग्र क्षेत्र का विकास हो सकता है। स्थानीय शिक्षक संगठन, छात्र संगठन व अभिभावक संगठन, विद्यालय के शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं भौतिक विकास में निश्चित रूप से योग दे सकते हैं। प्रधानाध्यापक को चाहिए कि वे उनसे सम्पर्क रखते हुए उनकी सकारात्मक भूमिका के लिए प्रयत्नशील रहें।

नोट

## 15.2 पणधारियों अथवा दबाव समूहों की भूमिका (Role of Stakeholders or Pressure Groups)

वस्तुत: समुचित भूमिका के लिए पणधारियों पर एक सीमा तक नियन्त्रण भी आवश्यक है। किसी भी पणधारी को विद्यालय के शैक्षिक पर्यावरण को प्रदूषित करने का अधिकार नहीं है। इस सन्दर्भ में मार्फेट तथा रेलर के विचार बहुत स्पष्ट हैं। इन समूहों को किन-किन क्षेत्रों में अपनी भूमिका निर्वाह करनी चाहिए ताकि उनका सकारात्मक योग मिल सके, इस संबंध में मार्फेट व रेलर ने निम्न प्रकार कहा है–

"कुछ देशों में पणधारी समूहों को सक्रिय नहीं होने दिया जाता अथवा उनकी क्रियाएँ इतनी सीमित कर दी जाती हैं कि शैक्षिक कार्यक्रमों पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे कुछ अन्य देशों में पणधारी समूहों पर तब तक कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता, जब तक कि वे विचारों को प्रचारित करते हैं तथा शैक्षिक कार्यकलापों को वैधानिक तरीके से प्रभावित करते हैं।"

शिक्षा पर नियंत्रण को मुख्यतया दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. आन्तरिक नियंत्रण
2. बाह्य नियंत्रण

### आन्तरिक तथा बाह्य नियंत्रण

शिक्षा पर नियंत्रण की समस्या का अभिप्राय है शिक्षा पर किसका कितना नियंत्रण हो? कोई भी शैक्षिक संगठन अपनी अनुदेशीय आवश्यकताओं की पूर्ति के द्वारा ही विकसित होता है। वस्तुत: शैक्षिक प्रशासन अनुदेशीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही होती है, जिसमें शिक्षक तथा प्रशासक के मध्य परस्पर सहयोग परमावश्यक है। अत: प्रशासन को निरन्तर अनुदेशों का संचालन, उनकी गुणवत्ता, प्रगति, परीक्षण, तत्संबंधी अनुसंधान आदि विषयों के बारे में शिक्षकों का वांछित सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

आज के शैक्षिक प्रबंधन का एक अन्य लक्ष्य शिक्षा की नीतियों का क्रियान्वयन करना होता है। ये नीतियाँ केन्द्र या राज्य सरकारें निर्धारित करती हैं तथा शिक्षा विभाग उन्हें लागू करता है। योजना ठीक प्रकार से बने, इसकी क्रियान्विति ठीक प्रकार से हो तथा कम से कम व्यय में अधिकाधिक दक्षता प्राप्त हो यह प्रयास होना चाहिए। नीति-निर्माताओं तथा विद्यालय के मध्य परस्पर समन्वय हो। विद्यालय उन लक्ष्यों और नीतियों को लागू करे। उच्च बाह्य अधिकृतियाँ विद्यालय को आवश्यक सहयोग दें, तभी कोई योजना सफलता के साथ लागू की जा सकती हैं। इस प्रकार किसी भी शैक्षिक अध्यवसाय की सफलता के लिए, मुख्यतया आन्तरिक व बाह्य दोनों ही स्तरों के योगदान की आवश्यकता होती है। आंतरिक स्तर का अर्थ विद्यालय के आन्तरिक प्रबंध प्रशासन से है, जिसमें शिक्षक, विद्यार्थी, समय चक्र आदि नीति क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं तथा बाह्य प्रशासन से अभिप्राय उन बाह्य अभिकरणों से है जो समग्र शिक्षा प्रणाली सहित स्थानीय प्रबंध प्रशासन को नियंत्रित करते हैं, तथा राज्य स्तर पर राज्य सरकार का शिक्षा विभाग, शिक्षा बोर्ड, शिक्षाधिकारी तथा अन्य अभिकरण। केन्द्रीय स्तर पर केन्द्रीय सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, एन.सी.ई.आर.टी., पार्लियामेंट, राज्य सभा तथा राजनीतिक दल आदि का पणधारी समूहों के रूप में उल्लेख किया जा सकता है।

### आन्तरिक नियंत्रण

इसके अन्तर्गत व्यवस्थापिका या प्रधानाध्यापक का नियन्त्रण होता है, जिनमें दैनिक कार्यक्रमों तथा विद्यालय के कार्यकलापों से संबंधित नियंत्रण होते हैं। इसके अन्तर्गत दोनों प्रकार के व्यक्ति (शिक्षण से सम्बन्ध रखने वाले तथा सम्बन्ध न रखने वाले) आते हैं। विद्यालय में मुख्य कार्य हैं-समय तालिका निर्माण, पाठ्य तथा पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों का संचालन, विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का निरीक्षण, खेलकूद व उत्सव का आयोजन आदि सभी कार्य सीधे

नोट

विद्यालय प्रधानाध्यापक के प्रबंधन में होते हैं, जिन्हें व्यवस्थापिका, शिक्षक, विद्यार्थी, कार्यालय अभिभावक आदि के सहयोग से पूरा किया जाता है।

*क्या आप जानते हैं* जनतंत्रीय प्रबंधन परस्पर सम्बन्ध, विश्वास, सहयोग तथा स्वतंत्रता के आधार पर चलता है।

अत: प्रशासक के लिए विद्यालयी कार्यकलापों में इन सिद्धान्तों को अपनाने की आवश्यकता होती है। जनतंत्रीय मूल्यों में प्रत्येक शिक्षक या कार्यकर्ता को उचित सम्मान तथा अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाना चाहिए।

इसी प्रकार प्रधानाध्यापक को भी पर्याप्त स्वतंत्रता मिलनी चाहिए ताकि यह अपने दायित्वों की पूर्ति कर सके, वह अपने साहस तथा कार्यकुशलता का परिचय दे सके तथा छात्रों के समग्र व्यक्तित्व के विकास में योग दे सके।

इस सन्दर्भ में आधुनिक अवधारणा यह है कि कार्य करने में पूर्ण स्वतंत्रता दी जाये। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रबंधक यह भी देखे कि स्थिति नियंत्रण से बाहर न हो। आवश्यकता पड़ने पर नियंत्रणात्मक कदम भी उठाए जाने आवश्यक हैं।

वस्तुत: प्रबन्धक की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका यह होती है कि उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि विद्यालय या संस्थान के विकास के लिए क्या किया जाए और क्या नहीं किया जाए? उसे यह आना चाहिए कि विभिन्न समस्याओं को कैसे सुलझाया जा सकता है? स्थिति यह है कि अनेकानेक व्यवस्थापक, सचिव तथा प्रबंधन अधिकारी भी व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी को नहीं रखते।

मुखर्जी के अनुसार प्रबंधक के रूप में प्रधानाध्यापक को अधोलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–

(1) संस्था व्यवस्थापकों को प्रबन्ध व्यवस्था का प्रशिक्षण दिया जाये।

(2) मानवीय सम्बन्ध कैसे ठीक रखे जा सकते हैं, यह ध्यान रखा जाये।

(3) विद्यार्थियों के साथ बड़ी ही सावधानी से व्यवहार किया जाए।

उसे अपना व्यवहार इस प्रकार समझकर करना चाहिए कि वह उस अणु बम की तरह है, जो सृजन व विध्वंस दोनों ही कर सकता है। यदि विद्यार्थियों को उचित ढंग से नहीं समझा गया व उनकी युवा शक्ति का उचित मार्गान्तरीकरण नहीं किया गया तो वह शक्ति सृजन के स्थान पर विध्वंस भी कर सकती है।

### बाह्य नियन्त्रण

बाह्य नियन्त्रण का अर्थ है, विद्यालय या संस्थान से परे अन्य अभिकरणों का विद्यालय या संस्थान पर उनकी नीतियों का नियंत्रण तथा उनसे प्रभावित होना अर्थात् विद्यालयी कार्यक्रमों पर उन अन्य अभिकरणों का प्रभाव हो।

विद्यालय में बाह्य नियंत्रण करने वाले प्रभावी अभिकरण अधोलिखित हो सकते हैं–

(1) सरकार–केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार।

(2) शिक्षा संबंधी–शिक्षा विभाग, राज्य बोर्ड।

(3) स्थानीय समुदाय, जातिगत समुदाय, शिक्षक–अभिभावक संघ।

(4) राजनीतिक दबाव समूह–स्थानीय विधायक अथवा संसद सदस्य।

(5) विविध संघ–राजनीतिक पार्टियाँ, स्थानीय नेतृत्व–शिक्षक संघ, विद्यार्थी संघ।

(6) अन्य पत्र–पत्रिकाएँ, पुस्तकें/संचार माध्यम।

नोट

## सरकार

सरकार सर्वाधिक शक्तिशाली नियन्त्रणकारी अभिकरण है, यह बात न केवल हमारे देश के लिए, वरन् सभी देशों के लिए उतनी ही सत्य है। समाजवादी देश इसे स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं। ब्रूबेकर के अनुसार विद्यालय कम्युनिस्ट प्रसार के लिए युद्ध क्षेत्र है, जहाँ शिक्षक रूपी योद्धाओं के माध्यम से विद्यार्थी रूपी दुश्मन पर साम्यवाद के बीज बोकर विजयश्री प्राप्त की जाती है।

इस प्रकार राज्य शिक्षा का सबसे प्रभावशाली नियंत्रणकर्ता है। भारत जैसे जनतंत्रीय देशों में भी सरकारें शिक्षा पर नियन्त्रण रखना चाहती ही हैं। आपातकालीन स्थिति में सत्तारूढ़ कांग्रेस ने भी इस देश में शिक्षा पर नियन्त्रण के लिए पूर्व संवैधानिक स्थिति में परिवर्तन करके 1975 में शिक्षा को राज्य सूची से निकाल कर समवर्ती सूची में रख दिया है। इस परिवर्तन से केन्द्रीय सरकार का शिक्षा संबंधी नियन्त्रण कहीं अधिक हो गया है। यों पहले से भी शिक्षा सम्बन्धी नीति भारतीय संसद ही निश्चित करती रही है। उदारहणार्थ देश में शिक्षा का स्वरूप 10 + 2 + 3 हो अथवा 8 + 4 हो। केन्द्रीय स्तर पर ही तय हुआ है। शिक्षा के विभिन्न आयोगों की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा ही हुई है। पुनः केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय विभिन्न केन्द्रीय शैक्षिक अभिकरणों, परिषदों व बोर्डों के माध्यम से शिक्षा पर अपनी पकड़ बनाए रखता है। यही नहीं केन्द्रीय अनुदान द्वारा राज्य सरकारों को विभिन्न शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति में योगदान के माध्यम से केन्द्रीय नीति को लागू किया जाता है। उदाहरणार्थ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का देश के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों पर नियन्त्रण है। त्रिभाषा फामूला, प्रौढ़ शिक्षा आदि कार्यक्रम सभी राज्यों में समान रूप से क्रियान्वित हो रहे हैं। केन्द्रीय स्तर पर ही योजना आयोग भी शिक्षा पर विचार करता है तथा इस प्रकार शिक्षा सम्बन्धी विकास कार्यों के लिए निर्देश देता है।

केन्द्र, तकनीकी, विशिष्ट बालकों, सांस्कृतिक विकास, शैक्षिक नेतृत्व, राष्ट्रभाषा विकास आदि अनेक संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से राज्यों की शिक्षा पर प्रभावी नियन्त्रण रखता है। यद्यपि राज्यों को अपनी आवश्यकता तथा अपने विवेक से शिक्षा व्यवस्था बनाए रखने का अधिकार है, परन्तु उपर्युक्त स्थिति के कारण वे केन्द्र से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

## स्वतंत्रता पूर्व तथा वर्तमान स्थिति

ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा ब्रिटिश सरकार की नीति के अनुरूप होती थी, क्योंकि हमने चुनौती देने की बात नहीं सीखी थी। स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ-साथ हमारे मन में ब्रिटिश शिक्षा नीति के प्रति शंका उत्पन्न होने लगी। यही कारण था कि लार्ड कर्जन की शिक्षा नीतियों का घोर विरोध किया गया। तिलक तथा गोखले ने इन नीतियों का प्रमुख रूप से विरोध किया। आज भी केन्द्रीय सरकार की शिक्षा योजना या नीति आसानी से स्वीकार नहीं की जाती। त्रिभाषा फार्मूला अभी तक सभी राज्यों ने विशेष रूप से तमिलनाडु राज्य ने स्वीकार नहीं किया है।

## राज्य सरकार

राज्य सरकार शिक्षा पर दूसरा सबसे अधिक शक्तिशाली नियंत्रक है। सच तो यह है कि प्रत्येक राज्य अपने राज्य की शिक्षा के विकास के लिए आज भी पूरी तरह जिम्मेदार है। जो राज्य सरकारें शिक्षा में अधिक रुचि रखती हैं, वे अधिक वित्तीय भार वहन करती हैं। उदाहरणार्थ केरल, महाराष्ट्र या केन्द्रशासित चंडीगढ़, दिल्ली आदि में तुलनात्मक दृष्टि से अधिक शिक्षा का प्रसार, संबद्ध राज्य सरकारों की शिक्षा में अधिक रुचि के परिणाम हैं।

राज्य शिक्षा मंत्रालय या सचिवालय द्वारा राज्य की शिक्षा की नीति निश्चित की जाती है। कौन सी शैक्षिक संरचना स्वीकार की जाए? कौन सी विशिष्ट आयोजन या आयाम शिक्षा में जोड़े जायें? शिक्षा पर किसका, कितना नियंत्रण हो, यह शिक्षा प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। यही कारण है कि देश में कहीं-कहीं शिक्षा का पूरा सरकारीकरण है, तो कहीं सरकारी तथा निजी शिक्षण व्यवस्था दोनों ही शिक्षा प्रबंधन में भागीदार हैं। उदाहरणार्थ राजस्थान में जहाँ माध्यमिक स्तर पर शिक्षा पर अधिकांश 96.5 प्रतिशत सरकारी नियंत्रण है, वहीं उत्तर प्रदेश में शिक्षा व्यवस्था पर लगभग शत-प्रतिशत नियंत्रण निजी संस्थाओं का है।

नोट

### शिक्षा विभाग

राज्य शिक्षा में दक्षता लाने का कार्य शिक्षा निदेशक या जन शिक्षा निदेशक का होता है। यह राज्य की शिक्षा नीति के अनुरूप अपने अधीनस्थ अधिकारियों, उपनिदेशकों, जिला शिक्षाधिकाारियों के माध्यम से विद्यालयी स्तर तक नीति के अनुरूप शिक्षा कार्यक्रम लागू कराता है।

### राज्य शिक्षा बोर्ड

राज्य शिक्षा पर एक और प्रभावकारी नियंत्रण शिक्षा बोर्ड द्वारा होता है। बोर्ड ही राज्य के लिए पाठयक्रम तैयार करता है। यह स्वायत्त अधिकरण है, परन्तु राज्य सरकारों द्वारा मनोनीत अध्यक्ष व सचिव होने के कारण राज्य का उस पर नियन्त्रण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष: बना ही रहता है।

### स्थानीय समुदाय

वस्तुत: स्थानीय समुदाय का शिक्षा पर महत्वपूर्ण नियंत्रण होना चाहिए, क्योंकि शिक्षा स्थानीय समुदाय की आवश्यकता तथा आकांक्षा की पूर्ति करने वाली होनी चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो स्थानीय समुदाय ही लगभग पूरी तरह से शिक्षा पर नियंत्रण रखता है। यह नियंत्रण की नियुक्ति, विद्यालय में चलाए जाने वाले पाठ्यक्रम आदि सभी पर लागू होता है। यही कारण है कि सामुदायिक विद्यालयी सरकार (Community Schools) का विकास वहाँ हो सका। भारत में स्थिति इसके विपरीत है। यहाँ राज्य की स्वीकृति से विद्यालय खुलते हैं। शिक्षकों की नियुक्ति भी राज्य सेवा के लिए होती है। अत: संयुक्त राज्य की स्थिति की कल्पना हम यहाँ नहीं कर सकते। गुजरात में अवश्य समुदाय की ओर से शिक्षा में काफी पहल व रुचि प्रदर्शित की गई है। व्यावसायिक संस्थान एक पैसा प्रति रुपया शिक्षा के विकास के लिए एकत्रित करते हैं, परन्तु अन्य राज्यों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। केवल शिक्षा में रुचि रखने वाले कुछ लोग अवश्य भवन आदि के लिए सहयोग प्रदान करते हैं।

शिक्षा में विकेन्द्रीकरण का प्रयोग बलवन्तराय मेहता कमेटी की संस्तुति पर अनेक राज्यों में लागू किया गया। प्राथमिक शिक्षा (मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों की) पंचायत समितियों को सौंप दी गई। यह इस आशा में कि स्थानीय नेतृत्व स्थानीय सहयोग से शिक्षा व्यवस्था में योगदान दे सके, परन्तु पंचायती राज प्रशासन में शिक्षक असंतुष्ट हैं तथा शिक्षा की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। प्रधानों, सरपंचों, पंचों एवं समिति पदाधिकारियों के हस्तक्षेप से विद्यालय प्रशासन में कठिनाई पैदा होने लगी है तथा शिक्षा के गुणात्मक स्तर पर भी विपरीत प्रभाव पड़ने लगा है।

### आन्तरिक समुदाय

शिक्षक-अभिभावक संघ एक महत्वपूर्ण दबाव समूह है जो विद्यालय-विकास के लिए कार्य कर सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो यह बहुत ही प्रभावकारी है। सोवियत रूस में भी माता-पिता को उनके बालकों की प्रगति का अवलोकन करने के लिए स्कूल में आमंत्रित किया जाता है, परन्तु हमारे देश में स्थिति ठीक नहीं है। प्राय: अभिभावक-शिक्षक सम्मेलन एक औपचारिकता मात्र है, जो विद्यार्थी-प्रवेश तथा सत्रान्त में परीक्षा परिणाम के समय आयोजित किए जाते हैं। विद्यालय विकास के लिए इनका योगदान नगण्य है।

### अन्य दबाव समूह

स्थानीय विधायक व संसद-सदस्य भी महत्वपूर्ण दबाव समूह का कार्य करते हैं। भारत की राजनीति में ये दबाव-समूह शिक्षा प्रशासन में काफी दखलंदाजी कर रहे हैं। परिणाम यह है कि विश्वविद्यालय तथा विद्यालयों का पर्यावरण विषाक्त बन गया है। प्रवेश से लेकर शिक्षकों की नियुक्ति में भी इनका हस्तक्षेप हो गया है। यह स्थिति संतोषजनक नहीं है। यदि ये दबाव समूह विद्यालयों के विकास के लिए करें, तो महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। आवश्यकता है कि इन्हें (जन-प्रतिनिधियों) सही योगदान देने की दिशा में शिक्षित किया जाये।

शिक्षक-संगठन भी महत्वपूर्ण दबाव समूह हैं। यदि वे प्रशासन व गुणात्मक शिक्षा के लिए कार्य करें तो बहुत अच्छा कार्य कर सकते हैं, परन्तु आपसी विवाद तथा अनेक क्षेत्रीय उप संगठनों के कारण इनकी शक्ति आपस में लड़ने में ही व्यय होती है। केवल स्वयं के वेतनमानों के बढ़ाने में अवश्य इनकी रुचि है।

नोट

*नोट्स* ब्रिटेन में शिक्षक संगठन आज भी महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। ब्रिटिश सरकार शिक्षा के क्षेत्र में कोई बात थोप नहीं सकती। यह शिक्षक संगठन ही है, जो वहाँ की शिक्षा की स्थिति को ठीक किए हुए है।

छात्र संगठन भी आज एक महत्वपूर्ण दबाव समूह है। देश में इनके दबाव को आज स्वीकार किया जा रहा है, परन्तु गलत दबाव शिक्षा की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डाल रहा है। आए दिन छात्रों की हड़तालों, परीक्षा बायकाट आदि से पाठ्यक्रम पूर्ण होने की दो वर्षीय अवधि चार-चार वर्ष की बन गई है। उचित तो यह होगा कि इनका प्रशिक्षण हो। इनकी बातों पर सहानुभूति से विचार किया जाये। इनके साथ शटल कॉक की तरह व्यवहार नहीं किया जाये। नहीं तो यह शक्ति जो सृजनकारी हो सकती है, विस्फोटकारी भी हो सकती है।

### भारत के सन्दर्भ में

हमारे देश में प्रायः प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभागों में न केवल पाठ्यक्रम निश्चित कर दिया है, वरन् प्रत्येक विषय के कालांशों की संख्या, मूल्यांकन प्रणाली आदि भी निश्चित कर दी है। इससे शिक्षकों की सृजनशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। वे स्थानीय अथवा बालकों की आवश्यकतानुरूप पाठ्यक्रम आदि में परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। इससे विद्यालयों की स्वतंत्रता का भी हनन होता है, जो जनतंत्रीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। यदि हमें एक अच्छा शैक्षिक स्तर प्राप्त करना है तो हमें विद्यालयों तथा शिक्षकों को स्वतंत्रता देनी होगी। शिक्षकों के स्वयं के द्वारा पहल करने को बढ़ावा देना होगा ताकि वे अपनी सूझबूझ, साहस तथा कार्यकुशलता का परिचय दे सकें।

*टास्क* शिक्षा पर आन्तरिक नियंत्रण से आप क्या समझते हैं?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. शिक्षा में विकेन्द्रीकरण का प्रयोग ..... कमेटी की संतुति पर अनेक राज्यों में लागू किया गया।
2. राज्य सरकार शिक्षा पर दूसरा सबसे अधिक शक्तिशाली ..... है।
3. समाजवादी देशों में यथा पूर्व रूस तथा वर्तमान चीन में शिक्षा पर केन्द्रीय ..... का नियंत्रण है।
4. भारत में शिक्षा ..... में है।

## 15.3 सारांश (Summary)

- शिक्षा पर नियंत्रण किसका हो, यह सदैव विवाद का विषय रहा है। प्रारंभिक काल में शिक्षा गुरुकुलों द्वारा दी जाती थी, राज्य सहायता देते थे, पर शिक्षा पर उनका नियंत्रण नहीं था। मध्य युग में शिक्षा धर्म से जुड़े होने के कारण धार्मिक संगठनों यथा मंदिर, मस्जिदों से नियंत्रित रही। अंग्रेजों के शासनकाल में शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण प्रारंभ हुआ, जो आज तक देखा जा सकता है। परन्तु आज भी यह विवाद है कि शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण समाप्त किया जाये। पणधारी वस्तुतः ऐसे व्यक्तियों के समूह है जो समान शैक्षिक लक्ष्य बोध को लेकर कार्य निष्पत्ति के लिए एक दूसरे का समर्थन व सहयोग करते हैं।
- शिक्षा पर राज्य के अतिरिक्त अन्य पणधारी अथवा दबाव समूह जिनमें राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद्, शिक्षक निहित, अभिभावक समूह, छात्र संगठन, धार्मिक संगठन व औद्योगिक संगठन आदि अपने निहित स्वार्थों से नियंत्रण बनाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। भारत में राजनीतिज्ञों का विशेष प्रभाव देखा जा सकता है। चूंकि शिक्षा सामाजिक

नोट

परिवर्तन का साधन है, अत: कोई भी शासन इसे अपने नियंत्रण से बाहर नहीं जाने देना चाहता। भारत में शिक्षा के नियंत्रण के लिए नीति संबंधी निर्णय संसद ही लेती है। उसमें भी सत्ता पक्ष की बात मान्य होती है। शिक्षाविद्, शिक्षक संगठन एवं प्रशासकों की बात अमान्य कर दी जाती है।

- शिक्षा प्रबंधन में प्रमुख पणधारी समूहों में राजनीतिज्ञ, शैक्षिक संगठनों (शिक्षक विद्यार्थी) धार्मिक संगठनों, प्रशासकों, अभिभावक समूहों, प्रकाशकों, लेखकों आदि के नाम का उल्लेख किया जा सकता है।
- पणधारी समूह के प्रमुखत: तीन प्रकार के प्रभाव देखने में आते हैं: वैयक्तिक, व्यावसायिक एवं राजनीतिक। पणधारी समूहों का शिक्षा में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार का ही प्रभाव देखने में आता है।
- शिक्षा पर नियंत्रण–दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–1. आंतरिक नियंत्रण, 2. बाह्य नियंत्रण। आंतरिक नियंत्रण में प्रबंधन के विविध स्तरों पर विविध स्वरूप हैं। उदाहरणार्थ विद्यालय प्रबंधन में–प्रशासक, शिक्षक, विद्यार्थी, कार्यालय, अभिभावक होंगे, जबकि बाह्य प्रबंधन में सरकार, राज्य शिक्षा बोर्ड, शिक्षा विभाग, राज्य शैक्षिक व अनुसंधान संस्थान, केन्द्रीय मानव संसाधन शिक्षा विभाग एवं एन.सी.ई. आर. टी. आदि होंगे।

## 15.4 शब्दकोश (Keywords)

- **समवर्ती सूची**–शिक्षा व्यवस्था को समवर्ती सूची में रखा गया है इसलिए शिक्षा के विषय में संघ एवं राज्य दोनों कानून बना सकते हैं।
- **दखलंदाजी**–किसी मामले में हस्तक्षेप करना।

## 15.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शैक्षिक प्रबंधन में पणधारी समूह अथवा दबाव समूह की सहभागिता का उल्लेख कीजिए।
2. शैक्षिक नियंत्रण से आप क्या समझते है? पणधारी समूह अथवा दबाव समूह के महत्व को समझाइये।
3. शैक्षिक प्रबंधन में पणधारी समूहों की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
4. शिक्षा के क्षेत्र में पणधारी समूहों की क्या भूमिका है?
5. देश की शिक्षा के नियंत्रण की दृष्टि से प्रमुख पणधारी अथवा दबाव समूह कौन-कौन से हैं? वे शिक्षा की नीतियों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
6. शिक्षा के विविध स्तरों पर कौन-कौन से पणधारी समूह सक्रिय रहते हैं तथा शैक्षिक प्रबंधन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
7. पणधारी समूह की सकारात्मक भूमिका के लिए क्या कदम उठाना अपेक्षित है?

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. बलवंतराय मेहता 2. नियंत्रक 3. कम्युनिस्ट पार्टी 4. समवर्ती सूची

## 15.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–16: जरूरतमंदों के लिए शैक्षिक कार्यक्रम का प्रोत्साहन (Promoting Need Based Educational Programmes)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 विकलांगों के लिए शिक्षा (Education for Disabled)

16.2 प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा (Adult or Social Education)

16.3 स्त्री शिक्षा (Women Education)

16.4 सारांश (Summary)

16.5 शब्दकोश (Keywords)

16.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

16.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विकलांगों के लिए शिक्षा व्यवस्था का विवेचन करने में।
- प्रौढ़ शिक्षा एवं स्त्री शिक्षा व्यवस्था की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

जरूरतमंदों की शिक्षा के लिए स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा सही दिशा में प्रयास किया गया। सरकार ने अलग-अलग शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से जैसे–विकलांगों के लिए शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा आदि, शिक्षा जरूरतमंदों तक पहुँचाने का प्रयास कर रही है।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में विभिन्न प्रकार के विकलांगों के लिये शिक्षा के क्षेत्र में जो भी प्रयास किये जा रहे थे, वे प्रमुख रूप से मानव सेवा संघों तथा संस्थाओं द्वारा ही किये जा रहे थे। स्वतन्त्रता से पूर्व मानसिक न्यूनता से ग्रसित बालकों की शिक्षा के लिये बंगाल में दो विद्यालय एक झारग्राम में तथा एक कुरस्यौंग में तथा एक विद्यालय मुम्बई में था। इस प्रकार, स्वतन्त्रता से पूर्व, सम्पूर्ण देश में मानसिक न्यूनता ग्रसित बालकों की शिक्षा के लिये केवल तीन विद्यालय थे।

## 16.1 विकलांगों के लिए शिक्षा (Education for Disabled)

विकलांग बालक विशिष्ट बालकों की ही एक श्रेणी है व सामान्य बालकों से इनका विचलन है। इनके शरीर में कोई न कोई कमी होने के कारण इन्हें विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है।

नोट

## भारत में विकलांगों की शिक्षा (Education for Disabled in India)

शारीरिक रूप से विकलांगों के लिये सम्पूर्ण देश में केवल 28 विद्यालय अन्धों की शिक्षा के लिये, 33 विद्यालय गूंगों-बहरों के लिये तथा केवल 2 विद्यालय कोढ़ियों के लिये थे। देश में शिक्षा-आयु के बालकों को देखते हुये विद्यालयों की यह संख्या बहुत ही कम थी। स्वतन्त्रता से पूर्व देश में केवल 13 सुधार-गृह थे। देश की आवश्यकताओं को देखते हुये यह संख्या बहुत ही कम थी।

1. **अंध विद्यालय**—स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा-विभाग तथा समाज-कल्याण विभाग को स्वतन्त्रता के पश्चात् विकलांगों की शिक्षा का भार सौंपा गया। सबसे पहले देहरादून में अन्धों के लिये एक विद्यालय खोला गया। विकास-योजनाओं के अन्तर्गत इसे केन्द्रीय विद्यालय का रूप प्रदान किया गया। इसमें एक मुद्रण-प्रेस की स्थापना की गयी, अंधों के केन्द्रीय पुस्तकालय की स्थापना की गयी तथा नेत्रहीनों के लिये समुचित साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था की गयी। कालान्तर में लेडी नोयस विद्यालय का विकास किया गया, जिसमें बहरों तथा गूंगों की व्यवस्था की जाती है।

   सन् 1959 ई. में देहरादून के विद्यालय के साथ एक आदर्श विद्यालय (Model School) सम्बन्धित किया गया। आजकल देहरादून विद्यालय के साथ नेत्रहीन स्त्री-शिक्षा विभाग और सम्बन्धित कर दिया गया है। 1955 ई. में देहरादून के ब्रैले प्रेस का विकास किया गया। इस प्रेस ने अब तक 273 नवीन प्रकाशन किये हैं, तथा 83 प्रकाशनों का पुनर्मुद्रण किया है।

2. **भारतीय बाल कल्याण बोर्ड**—सन् 1952 ई. में 'भारतीय बाल कल्याण बोर्ड' की स्थापना की गयी, जो विभिन्न प्रकार के विकलांगों की अनेक शैक्षिक तथा व्यावसायिक समस्याओं का समाधान करता है। विकलांग बालकों के लिये कल्याणकारी कार्य करने की दृष्टि से 'समाज कल्याण बोर्ड' भी अनेक सराहनीय कार्य कर रहा है। इसकी स्थापना 1953 ई. में की गयी थी।

3. **राष्ट्रीय सलाहकार परिषद**—केन्द्रीय सरकार को शिक्षा, प्रशिक्षण तथा नियोग सम्बन्धी मामलों पर परामर्श प्रदान करने हेतु एक 'राष्ट्रीय सलाहकार परिषद' का भी गठन किया गया। विकलांगों की रोजगार सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने हेतु दिल्ली, हैदराबाद, मद्रास, जालन्धर, कानपुर, अहमदाबाद बंगलौर तथा कोलकाता में विशेष नियोजन कार्यालय स्थापित किये गये।

4. **मन्द बुद्धि बालकों को शिक्षा**—मानसिक रूप से दुर्बल बालकों की शिक्षा व्यवस्था के लिये बंगाल के दोनों ही विद्यालयों का विकास किया गया। इन बालकों के बुद्धि-स्तर का पता लगाने हेतु इलाहाबाद की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला ने अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ तैयार कीं। 1952 के बाद से इन बालकों को विशेष छात्रवृत्तियाँ देने की व्यवस्था की गयी। सन् 1955-56 तक विकलांगों की शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का 50 प्रतिशत भार केन्द्रीय सरकार तथा शेष राज्य सरकार वहन करती थी, किन्तु इसके बाद समस्त भार केन्द्रीय सरकार वहन करने लगी।

5. **राज्य सरकारों का प्रयास**—इस दिशा में केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त अनेक राज्य सरकारों तथा अनेक मानव-सेवा संघ भी उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। पंजाब में चण्डीगढ़ में विकलांगों के लिये एक गृह (Home) की स्थापना की है, उत्तर प्रदेश ब्यूरो ऑफ साइकोलोजी भी व्यवस्था कर रहा है। मुम्बई की 'अन्धों के लिये राष्ट्रीय संघ', 'अन्ध-कल्याण' (Blind Welfare) एक पत्रिका प्रकाशित करती है, कोलकाता के बहरे तथा गूंगे बालकों का विद्यालय 'बहरे' नामक पत्रिका प्रकाशित करता है। प्राय: प्रत्येक राज्य सरकार ने रैन बसेरे तथा बाल-अवकाश गृह स्थापित कर रखे हैं।

6. **बहरे-गूंगों की शिक्षा**—हैदराबाद में बहरे तथा गूंगों के लिये ठीक उसी स्तर के विद्यालय का विकास हो रहा है, जैसा कि देहरादून में अन्धों का विद्यालय है। इन बालकों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था में अनेक परमार्थ सेवा संघों ने भी सराहनीय कार्य किये हैं। इन कार्यों में फॉर दी ब्लाइन्ड की स्थापना उल्लेखनीय है।

नोट

*नोट्स* वर्तमान भारत में अंधों के लिये अनेक विद्यालय तथा प्रशिक्षण केन्द्र हैं। देहरादून के प्रशिक्षण केन्द्र में 150 पुरुष तथा 35 महिलाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। कई विद्यालय बहरे तथा गूंगों को शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं। हैदराबाद का प्रशिक्षण केन्द्र 6 प्रमुख उद्योगों में प्रशिक्षण प्रदान करता है। देश में अन्धों के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षित करने हेतु दिल्ली, मुम्बई तथा नरेन्द्रपुर में एक-एक प्रशिक्षण विद्यालय है।

## विकलांगों के लिये किये गये उपाय (Measure taken for Disabled)

1. **भारतीय संविधान**–भारतीय संविधान में प्रावधान किया गया है कि संविधान लागू होने के पश्चात् से 10 वर्षों के अन्तर्गत सभी राज्य 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेंगे। अपनी आर्थिक क्षमता के अन्तर्गत राज्य विकलांग बालकों के लिये जीवनयापन, शिक्षा एवं रोजगार की व्यवस्था करेगा।
2. **राष्ट्रीय शिक्षा-नीति**–इसके अन्तर्गत बालकों व विकलांग बालकों के लिये किये गये प्रावधान का वर्णन किया गया। "जो बच्चे विकलांग हों या विक्षिप्त भावनाओं वाले हों या जिनका मानसिक विकास कम हुआ हो, उनको विशेष उपचार, शिक्षा पुन: स्थापन और देखभाल की सुविधायें प्रदान की जायेंगी।"

   नई राष्ट्रीय शिक्षा-नीति में बालकों व विकलांग बालकों के लिये प्रावधान के अन्तर्गत भारतीय संसद ने मानवतावादी आदर्शों की पुन: स्थापना करने का निश्चय दोहराया है। अनुमानत: 5 प्रतिशत विकलांग बच्चे ही विशेष विद्यालयों में शिक्षा एवं रोजगार हेतु सुविधायें पाते हैं, अत: इस नीति के अनुसार इन्हें सामान्य बालकों के साथ सहभागी के रूप में समन्वयन करके उन्हें सामान्य विकास के लिये तैयार करना है, जिससे वह "शिक्षा की मुख्यधारा में सबके साथ तैर सकें।"
3. **बालकों के अधिकारों का घोषणापत्र**–20 नवम्बर, 1959 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में 78 देशों के प्रतिनिधियों की एक वृहद सभा के बालकों के अधिकारों के घोषणा पत्र को पारित किया व 9 दिसम्बर 1975 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने विकलांग व्यक्तियों के घोषणा पत्र को पारित किया।
4. **विकलांग वर्ष**–सन् 1981 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष घोषित किया था। विकलांगों की आवश्यकताओं व समस्याओं की गहनता एवं विस्तार को ध्यान में रखते हुये वर्ष 1981 को विकलांगों के अन्तराष्ट्रीय वर्ष के हित में सरकार व समाजसेवी संस्थाओं द्वारा अनेक योजनायें व कल्याणकारी कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये।
5. **विश्व विकलांग दिवस**–विकलांगों की बहुमुखी समस्याओं एवं आवश्यकताओं के प्रति समस्त विश्व में चेतना लाने के उद्देश्य से 20 दिसम्बर, 1959 में ज्यूरिक सम्मेलन में "विश्व विकलांग दिवस" का शुभारंभ हुआ। तब से **मार्च के तृतीय रविवार** को यह दिवस विश्व के अनेक राष्ट्रों में मनाया जाता है। इसके प्रमुख उद्देश्य विकलांग बालकों की उपलब्धियों व विकास पर ध्यान देना व भावी योजनाओं पर प्रकाश डालना है। भारत में यह दिवस सर्वप्रथम General Rehabilitation In India द्वारा वर्ष 1982 में मनाया गया था। तब से यह प्रत्येक वर्ष सरकार द्वारा मनाया जाता है।

*क्या आप जानते हैं* भारत में अन्धों के लिये ब्रैले-लिपि (Braille Code) का प्रचलन सन् 1949 ई. में किया गया। इससे पूर्व अन्धों की शिक्षा कुछ हस्तशिल्पों के प्रशिक्षण तक ही सीमित थी।

नोट

## विकलांगों की शिक्षा के उद्देश्य

भारत में करीब 25 लाख अन्धे, लँगड़े-लूले, बहरे-गूँगे तथा अविकसित मस्तिष्क वाले बालक हैं। इनकी शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्य निम्नांकित हैं–

1. **सामान्य शिक्षा**–विकलांगों की शिक्षा-व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य विकलांग बालकों के लिए सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करना है। इसके द्वारा वे ही उपन्यासकार, कहानीकार, संगीतज्ञ आदि बन सकते हैं। सामान्य शिक्षा से आज अनेक नेत्र-ज्योतिहीन शिक्षित युवक सामान्य विद्यालयों में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।
2. **व्यावसायिक प्रशिक्षण**–विकलांगों को इस प्रकार का व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना है कि वे शिक्षोपरान्त अपना जीविकोपार्जन कर सकें। इसके लिए विकलांगों को विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्प जैसे–कताई, बुनाई, कुर्सी बुनना, लेथ मशीन पर कार्य करना, चित्रकारी आदि का प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है।
3. **अवकाश के समय का सदुपयोग**–अपने विभिन्न अंगों की विफलता के कारण विकलांग अपने समय को उपयोगी विधि से व्यतीत नहीं कर सकते। अत: उनमें कुछ इस प्रकार की विशेषताओं, योग्यताओं तथा क्षमताओं का विकास करना चाहिए कि वे अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कर सकें। इसके लिए उन्हें संगीत, चित्रकला आदि की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।
4. **विफल अंगों के अतिरिक्त अन्य अंगों का विकास**–बालकों के कुछ अंग पूर्णरूपेण विफल हो गये हैं तथा जिन्हें नहीं सुधारा जा सकता है, परन्तु उनके अन्य अंगों का इस प्रकार से विकास किया जा सकता है कि जिससे विकल अंगों की यथासम्भव क्षतिपूर्ति हो सके। उदाहरण के लिए नेत्रहीन बालकों में स्पर्श तथा घ्राण शक्ति का विकास किया जा सकता है, गूँगे तथा बहरों के कान तथा जीभ के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों का विकास किया जा सकता है।

## विकलांग शिक्षा के पाठ्यक्रम

हम सभी प्रकार के विकलांगों के लिए एक ही प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्धारण नहीं कर सकते हैं–

1. **अन्धों के लिए पाठ्यक्रम**–डॉ. फ्रैम्पटन के अनुसार अन्धों के पाठ्यक्रम के वही उद्देश्य होने चाहिए जो सामान्य दृष्टि वालों के लिए होते हैं। नेत्रहीनों के लिए भी वही पाठ्यक्रम निर्धारित करना चाहिए जो सामान्य दृष्टिवालों के लिए होता है, किन्तु अन्धों की कुछ न्यूनताओं को ध्यान में रखकर निम्नांकित विषयों को अतिरिक्त रूप से सम्मिलित करना चाहिए–

   1. गृह विज्ञान,
   2. संगीत,
   3. शारीरिक कलाएँ, तथा
   4. गतिशीलता।

   इस पाठ्यक्रम के हेतु विद्यालयों को विशिष्ट पाठन विधियों को अपनाना पड़ेगा। जैसे श्रवण इन्द्रियों द्वारा अनुभवार्जन कराना, स्पर्श तथा घ्राण शक्तियों का विकास करने के उपायों को अपनाना, ग्रामोफोन तथा रेडियो जैसी श्रव्य सहायक साम्रगी का प्रयोग करना था स्वक्रियाओं द्वारा करके सीखना।
2. **बहरों के लिए पाठ्यक्रम**–श्रवण इन्द्रियाँ निष्क्रिय होती हैं, परन्तु अन्य सभी इन्द्रियाँ पूर्णरूपेण विकसित होती हैं। कोई-कोई बालक दोहरे अंगों से विफल होते हैं जैसे किसी के कान दूषित होने के साथ ही साथ उसकी जीभ भी विकृत होती है। इन दोनों ही क्षेत्रों में पृथक्-पृथक् पाठ्यक्रम निर्धारित करने की आवश्यकता है। इन दोनों ही प्रकार के बालकों के लिए केवल दृश्य साधनों से ही शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इनको ऐसी शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है, जो सामान्य गुणों का विकास करने के अतिरिक्त उन्हें कुछ व्यावसायिक निपुणता प्रदान कर सके।
3. **लँगड़े-लूलों की शिक्षा**–इन बालकों के पैरों में दोष होते हैं, यद्यपि ये ठीक प्रकार से देख तथा सुन सकते हैं। अत: इनके लिए सामान्य बालकों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम ही होना चाहिए। इनकी शिक्षा के सम्बन्ध में विद्यालय को अग्रांकित व्यवस्थाएँ और करनी चाहिए–

नोट

(*i*) घुमावदार कुर्सियों की व्यवस्था,

(*ii*) हाथ-दूषित बालकों के लिए बिजली के टंकण-यंत्र,

(*iii*) विद्यालय भवन के उपयुक्त फर्शों का निर्माण आदि।

4. **मन्दबुद्धि बालकों के लिए पाठ्यक्रम**–मन्दबुद्धि बालकों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–(*i*) जड़ बुद्धि, (*ii*) निम्न बुद्धि तथा (*iii*) सामान्य से निम्न। इन सबकी पृथक्-पृथक् बौद्धिक विशेषताओं के अनुरूप इन सबके लिए पृथक्-पृथक् पाठ्यक्रम निर्धारित करने की आवश्यकता है।

   **(*i*) जड़ बुद्धि**–ये किसी भी प्रकार की सामान्य शिक्षा सरलतापूर्वक ग्रहण करने के योग्य नहीं होते हैं, अत: इनके पाठ्यक्रम में हस्तशिल्प के प्रमुखता दी जानी चाहिए। ये किसी भी प्रकार का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं, अत: उन्हें केवल स्थूल रूप में ही ज्ञान देना चाहिए।

   **(*ii*) निम्न बुद्धि बालक**–ये विशेष प्रयासों से किसी स्तर विशेष तक सामान्य शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, किन्तु इनके लिए विशेष विद्यालयों तथा पाठन-विधियों की आवश्यकता होती है। इनके पाठ्यक्रम में सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त हस्तशिल्प भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। पाठन विधि में 'करके सीखने' को अपनाना उपयुक्त है। इनको पढ़ाने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग करना चाहिए।

   **(*iii*) सामान्य से निम्न**–इस श्रेणी के बालकों को विशेष प्रयासों से उनके ही विद्यालयों में शिक्षा दी जा सकती है, अत: इनके समान पाठ्यक्रम हो सकते हैं, किन्तु इन बालकों से तार्किक चिन्तन की आशा नहीं करनी चाहिए।

### स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

**1. सही विकल्प का चयन कीजिये–(Choose the correct option)**

1. अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष घोषित हुआ था–

   (*a*) 1959 (*b*) 1975 (*c*) 1981 (*d*) 1980

2. भारत में विकलांग दिवस प्रतिवर्ष मनाया जाता है–

   (*a*) 2 मार्च (*b*) 10 अप्रैल

   (*c*) 7 मई (*d*) मार्च का तृतीय रविवार।

3. विकलांगता की दृष्टि से सन् 1975 क्यों प्रसिद्ध है?

   (*a*) विकलांगों का घोषणा-पत्र (*b*) संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बाल अधिकार घोषणा-पत्र

   (*c*) विकलांगों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष (*d*) विकलांगों के लिए ज्यूरिक सम्मेलन।

## 16.2 प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा (Adult or Social Education)

### प्रौढ़ शिक्षा शिक्षा का अर्थ (Meaning of Adult Education)

प्रौढ़ शिक्षा को भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे–सामाजिक शिक्षा, आधारभूत शिक्षा, ग्रामोपयोगी शिक्षा तथा जन समूह की शिक्षा। सबसे पहले प्रौढ़ शिक्षा का संकुचन पढ़ना-लिखना तथा गणित का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना था, किन्तु वर्तमान समय में प्रौढ़ शिक्षा का यह संकीर्ण रूप समाप्त हो चुका है। अब प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के बौद्धिक विकास के साथ ही उसका सामाजिक विकास करना भी है। प्रौढ़ शिक्षा कोई भी रोजगार करने वाला व्यक्ति प्राप्त कर सकता है।

समाज शिक्षा के निम्नलिखित दो प्रकार हैं–

(*i*) औपचारिक शिक्षा,

नोट

(*ii*) अनौपचारिक शिक्षा।

इस सम्बन्ध में **महात्मा गाँधी** का विचार है कि–"प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ जीवन से, जीवन द्वारा तथा जीवन भर की शिक्षा से है।"

**के. जी. सैयदेन** के शब्दों में–"प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ जीवन से, जीवन द्वारा तथा जीवन भर की शिक्षा निहित है।"

**प्रौढ़ शिक्षा की नवीन धारणा**–स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त प्रौढ़ शिक्षा की नवीन धारणा का उदय हुआ। सन् 1949 ई. में शिक्षा सलाहकार बोर्ड के अधिवेशन में उस समय के शिक्षा मन्त्री श्री अबुल कलाम आजाद ने अपने वक्तव्य में सामाजिक शिक्षा को एक नवीन रूप प्रदान करते हुए बताया कि–"प्रौढ़ शिक्षा का केवल लोगों को साक्षर बनाने तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिये, जो कि प्रत्येक नागरिक को जनतन्त्रीय सामाजिक व्यवस्था में भाग लेने के लिए तैयार करें।" इस समय से प्रौढ़ शिक्षा का परिवर्तन सामाजिक शिक्षा में हो गया।

प्रौढ़ शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए डॉ. एन. एन. मुखर्जी के द्वारा प्रौढ़ शिक्षा के दो पहलू बतलाये गये हैं–

(1) प्रौढ़ साक्षरता अर्थात् उन प्रौढ़ों को शिक्षा प्रदान करना जिनको विद्यालय में किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई, तथा

(2) साक्षर प्रौढ़ों को लगातार शिक्षा प्रदान करना।

सामाजिक अथवा प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत निम्न तीन बातें मुख्य रूप से परिलक्षित होती हैं–

(1) अनपढ़ को साक्षर बनाती है।

(2) सामाजिक शिक्षा वह शिक्षा है जो लोगों को नागरिकता के आधारों तथा कर्त्तव्यों का ज्ञान कराती है, तथा

(3) साहित्य कला के अभाव में शिक्षित मस्तिष्क का विकास करती है।

**सामाजिक शिक्षा के उद्देश्य**–सामाजिक शिक्षा के उद्देश्यों को निम्न दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) सामाजिक उद्देश्य,

(ख) व्यक्तिगत उद्देश्य।

**(क) सामाजिक उद्देश्य**–प्रौढ़ों को समाज का उत्तम नागरिक बनाने के लिए सामाजिक शिक्षा उनमें निम्न गुणों को विकास करती है–

(1) सामाजिक शिक्षा लोगों में सामाजिक एकता की भावना का विकास करती है। हमारे देश में अनेक धर्मों, मतों तथा जातियों के लोग निवास करते हैं। यहाँ पर लोगों में जातिगत, धर्मगत तथा वर्गगत भेदभाव को व्यापक रूप से देखा जा सकता है। इसके साथ-साथ मजदूर-पूँजीपति, गरीब तथा अमीर के बीच एक दूरी है। सामाजिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इस दूरी को समाप्त करना है।

(2) सामाजिक शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य शिक्षित व्यक्तियों का बौद्धिक विकास करके, राष्ट्र के साधनों की सुरक्षा तथा प्रगति करना है।

(3) सामाजिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य लोगों में समाज कल्याण के लिए अपने स्वार्थों तथा हितों का त्याग करने की क्षमता का विकास करना है। इस भावना के द्वारा ही उत्तम समाज का निर्माण सम्भव है। सामाजिक शिक्षा के द्वारा ही नागरिक आदर्शों का समावेश होता है।

(4) राष्ट्रीय साधनों की सुरक्षा तथा प्रगति अनेक वर्गों में एकता स्थापित करने के लिए सरकारी समुदायों तथा संस्थाओं एवं समुदायों के अन्तर्गत ही व्यक्ति अपनी सामूहिक समस्याओं को निर्मित कर सकता है। सामाजिक शिक्षा व्यक्ति को सहकारी संस्थानों तथा समुदायों को निर्मित करने में सहायता देती है। अत: सामाजिक शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य व्यक्ति में सहकारी संस्थाओं तथा समुदायों के निर्माण के लिए चेतना का विकास करना है, जिसमें समाज की उन्नति में सभी व्यक्ति अपना पूर्ण सहयोग दे सकें।

नोट

**( ख ) व्यक्तिगत उद्देश्य**–सामाजिक शिक्षा के व्यक्तिगत उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(1) सामाजिक शिक्षा व्यक्ति में सामाजिक कुशलता के विकास में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। सामाजिक शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति परस्पर सहयोग से मिल-जुलकर रहना सीखते हैं। पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने की जानकारी व्यक्तियों को देती है। इसके साथ-साथ उन्हें वर्तमान समस्याओं का ज्ञान कराकर उनके समाधान के लिए उपाय बताती है।

(2) सामाजिक शिक्षा प्रौढ़ों के सांस्कृतिक विकास में भी अपना योगदान करती है।

(3) कई व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के फलस्वरूप औपचारिक शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते जिससे उनका मानसिक विकास रुक जाता है। सामाजिक शिक्षा द्वारा ऐसे व्यक्तियों का मानसिक विकास किया जाता है।

(4) सामाजिक शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य शारीरिक विकास भी करना है। यह शिक्षा उन व्यक्तियों को स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों तथा रोगों के बचाव हेतु विधियों आदि का ज्ञान कराती है जिन्होंने औपचारिक शिक्षा समय पर प्राप्त नहीं की।

## भारत में प्रौढ़ शिक्षा का विकास

पहले समाजिक शिक्षा को प्रौढ़ शिक्षा के नाम से जाना जाता था। भारत में प्रौढ़ शिक्षा या समाज के क्रमिक विकास तथा उन्नति का अध्ययन दो भागों में बाँटकर सरलतापूर्वक किया जा सकता है–

(1) स्वतंत्रता से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा का विकास,

(2) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में प्रौढ़ शिक्षा का विकास।

### ( 1 ) स्वतंत्रता से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा का विकास

**( अ ) स्वतंत्रता से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा की प्रगति**–20वीं शताब्दी से 18 वर्षों तक भारत में प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। यद्यपि 20वीं शताब्दी के शुरू में हुए राष्ट्रीय आन्दोलन ने समस्त भारतवासियों में देशप्रेम की भावना का विकास कर दिया था। इसी भावना से प्रेरित होकर देश के नेताओं ने अंग्रेज सरकार से राष्ट्रीय शिक्षा की माँग करते हुए समाज शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया। सन् 1910 से प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कई प्रयास होने के पश्चात् भी सन् 1912 में इस शिक्षा के प्रसार के लिए कोई भी एक निश्चित योजना को क्रियान्वित नहीं किया गया। सन् 1910 से 1912 के बीच बड़ौदा में सन् 1910 में सबसे पहले सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित किये गये तथा सन् 1910 में ही मैसूर में ग्रामीण प्रौढ़ों के लिए रात्रि पाठशालायें प्रारम्भ की गयीं।

**( ब ) सन् 1919 से 1937 तक समाज शिक्षा की प्रगति**–सन् 1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा भारतीयों को मतदान का अधिकार प्राप्त होने के बाद उनकी प्रौढ़ शिक्षा में रुचि उत्पन्न हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप देश में प्रौढ़ शिक्षा के लिए अनेक कार्य किये गये। पंजाब, बंगाल, मध्य प्रान्त आदि प्रान्तों में अनेक रात्रि विद्यालयों की स्थापना की गयी। सन् 1919 में इस अधिनियम को क्रियान्वित किया गया और हस्तान्तरित विषयों को मन्त्रियों को सौंपा गया। शिक्षा विभाग इन मन्त्रियों के हाथ में आने के परिणामस्वरूप शिक्षा प्रसार के लिए अनेक कदम उठाये गये। सन् 1919 में पंजाब में 'निरक्षरता निवारण आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ और रात्रि विद्यालय खोले गये। सन् 1921 में ही संयुक्त प्रान्त की सरकार ने 6 नगरपालिकाओं को रात्रि पाठशालाओं की स्थापना के लिए अनुदान दिया। सन् 1927 में समाज शिक्षा अभियान तेजी से चलता रहा, परन्तु सन् 1929 में विश्वव्यापी आर्थिक संकट के कारण समाज शिक्षा का कार्य ढीला पड़ गया। इस समय मुम्बई तथा पंजाब में ही प्रौढ़ शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया गया। सन् 1937 में प्रौढ़ शिक्षा विद्यालयों की कुल संख्या 2,207 थी। इनके अलावा 11 विद्यालय स्त्रियों के लिए थे।

**( स ) सन् 1937 से 1947 तक प्रौढ़ शिक्षा**–सन् 1937 में स्वायत्त शासन कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के हाथ में आ गया था। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने प्रौढ़ शिक्षा के विकास कार्यक्रम में बहुत मदद की। सन् 1939 में केन्द्रीय सरकार द्वारा वयस्क शिक्षा समिति की स्थापना की गयी। इस समिति के अध्यक्ष डॉ. सैयद महमूद थे।

नोट

सन् 1947 से पूर्व अर्थात् स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तों में, प्रौढ़ शिक्षा क्षेत्र में किये गये कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

(1) **असम**–असम के प्रौढ़ों को शिक्षित करने हेतु एक शिक्षा विभाग का गठन किया गया है। इस शिक्षा विभाग ने अपने अधीन कार्यालयों की मदद से निरक्षरता उन्मूलन तथा शिक्षा का प्रसार किया। सन् 1947 तक यहाँ 580 प्रौढ़ पाठशालायें हो गयी थीं।

(2) **बंगाल**–कांग्रेस के मन्त्रिमण्डलों ने सन् 1939 तक बंगाल में प्रौढ़ शिक्षा के लिए अनेक कदम उठाये। परन्तु सन् 1939 में इसकी गति अत्यधिक धीमी हो गयी। प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार की गति मन्द होने के उपरान्त सन् 1947 तक यहाँ प्रौढ़ विद्यालयों की संख्या 417 थी।

(3) **बिहार**–कांग्रेस के मन्त्रिमण्डलों ने बिहार में प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार सबसे अधिक किया। बिहार में 'परिवार शिक्षित बनाओ' नामक आन्दोलन चलाया और बिहार के कई गाँवों में भी प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के बहुत-सी बाधायें आने के बाद भी सन् 1947 तक यहाँ अनेक प्रौढ़ विद्यालय खोले गये।

(4) **उत्तर प्रदेश**–सन् 1930 में उत्तर प्रदेश की सरकार ने यहाँ प्रौढ़ शिक्षा विभाग की स्थापना की और अगले 18 वर्षों में स्त्रियों के लिए 62 प्रौढ़ विद्यालय एवं पुरुषों के लिए 100 प्रौढ़ विद्यालयों की स्थापना की। साथ ही 1,319 पुस्तकालयों की भी स्थापना की गयी। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के समय प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ, इसके लिए अनेक केन्द्र स्थापित किये गये, परन्तु इन मन्त्रिमण्डलों के त्यागपत्र के बाद यह कार्य रुक गया। सन् 1947 तक उत्तर प्रदेश में कुल 9,825 प्रौढ़ विद्यालय थे।

(5) **पंजाब**–यहाँ प्रौढ़ शिक्षा के लिए कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं किये गये। यहाँ पर सन् 1947 तक केवल 96 प्रौढ़ विद्यालयों की स्थापना की गयी।

(6) **मुम्बई**–सन् 1939 में बम्बई में "प्रौढ़ शिक्षा परिषद्" की स्थापना की गयी। इस परिषद् ने प्रौढ़ शिक्षा क्षेत्र में तीव्र गति से प्रयास किये। यहाँ प्रौढ़ों को शिक्षित बनाने के लिए "मुम्बई नगर वयस्क शिक्षा समिति" का गठन किया गया। सन् 1938 में मुम्बई सरकार ने निरक्षरता की समाप्ति के लिए एक बोर्ड का गठन किया। सन् 1939 में प्रौढ़ शिक्षा की पद्धति बहुत धीमी हो गयी, क्योंकि कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ने त्याग-पत्र दे दिया था। सन् 1947 तक मुम्बई में 2,740 प्रौढ़ विद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी।

भारत में सन् 1947 तक 51,617 विद्यालयों की स्थापना की गयी थी। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ने अपने अल्प शासन काल में ही प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशंसनीय कार्य किये।

## (2) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में प्रौढ़ शिक्षा का विकास

**(क) प्रान्तीय शिक्षा मन्त्रियों का सम्मेलन**–21 मई सन् 1948 में केन्द्रीय सरकार ने, निरक्षर प्रौढ़ों की शिक्षा हेतु अपनी "बारह सूत्रीय योजना" प्रस्तुत की। सन् 1949 में दिल्ली में, प्रान्तीय शिक्षा मन्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 3 वर्ष के भीतर 12 वर्ष से 50 वर्ष तक की आयु वाले निरक्षरों में से कम-से-कम 50% प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया, परन्तु आर्थिक समस्याओं के कारण इस लक्ष्य की प्राप्ति न हो सकी।

**(ख) समाज शिक्षा का पंचमुखी कार्यक्रम**–भारत सरकार द्वारा समाज शिक्षा के लिए एक कार्यक्रम बनाया गया, जिसे पंचमुखी कार्यक्रम कहा जाता है। इस कार्यक्रम के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(*i*) समाज तथा व्यक्तियों का आवश्यकतानुसार स्वस्थ मनोरंजन का प्रबन्ध।

(*ii*) वयस्कों को आर्थिक उन्नति के लिए उद्योग-धन्धों की शिक्षा देना।

(*iii*) स्वास्थ्य तथा शिक्षा से सम्बन्धित नियमों की जानकारी देना।

(*iv*) साक्षरता के लिए प्रयास करना।

(*v*) प्रौढ़ों में अधिकार तथा जागरूकता उत्पन्न करना।

नोट

**(ग) प्रौढ़ शिक्षा समाज शिक्षा के रूप में**–स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रौढ़ शिक्षा को समाज शिक्षा के नाम से जाना गया। समाज शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य प्रौढ़ों को शिक्षित बनाने के साथ-ही-साथ उनको नागरिकता ही शिक्षा प्राप्त करना भी था।

हमारा देश एक प्रजातांत्रिक देश है। इस प्रजातांत्रिक देश में प्रत्येक नागरिक को अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का ज्ञान कराने तथा अनपढ़ व्यक्तियों को साक्षर बनाने के लिए समाज शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में **कोठारी आयोग** के अनुसार–"प्रजातन्त्र में प्रौढ़ शिक्षा का कार्य प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक को इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर देना है कि जिससे वह वैयक्तिक तथा व्यावसायिक उन्नति द्वारा सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग ले सके।"

## राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (NAEP)

गोखले इंस्टीट्यूट, पुणे के **श्री ए.आर. कामथ** के शब्दों में "इस वर्ष गाँधीजी की जन्मतिथि के शुभावसर पर 'राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम' (NAEP) प्रारम्भ किया जा रहा है। प्राय: एक वर्ष पूर्व संगठित प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड ने प्रौढ़ साक्षरता एवं प्रौढ़ शिक्षा को उच्च प्राथमिकता देने का निश्चय किया था। इसके लिए प्रौढ़ निरक्षरता का उन्मूलन करने हेतु एक पंचवर्षीय योजना बनाई गई है। इस योजना के अनुसार विशिष्ट रूप से 15-35 आयु-वर्ग के करोड़ों निरक्षरों को साक्षर बनाने का विधान रखा गया। सन् 1978-79 में 15 लाख निरक्षरों को साक्षर बनाने के लक्ष्य को लेकर यह कार्यक्रम निश्चित किया गया। इसलिए इस वर्ग को 'राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम का वर्ष' कहा गया और धीरे-धीरे इस लक्ष्य को बढ़ाकर सन् 1983-84 के लिए तीन करोड़ पचास लाख कर दिया गया तथा पूरे पाँच वर्ष में दस करोड़ निरक्षरों को साक्षर बनाने का विशाल लक्ष्य निर्धारित किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना में इस कार्य हेतु दो अरब रुपये (सम्पूर्ण शिक्षा पर अठारह अरब रुपयों में से) व्यय करने का प्रावधान रखा गया। अब तक की किसी भी पंचवर्षीय योजना में प्रौढ़ शिक्षा के लिए निश्चित की गई धनराशि की तुलना में यह धनराशि दस गुना से भी अधिक है।"

गत वर्ष इस सम्बन्ध में अनेक संगोष्ठियाँ आयोजित की गईं, कार्यशालायें संचालित की गईं, समितियाँ तथा कार्य-समूह गठित किये गये, स्त्रोत साधन स्थापित किये गये, आवश्यक सामग्री के उत्पादन हेतु प्रयास किये गये, राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम का परिचय देने हेतु पर्याप्त प्रचार किया गया तथा इसके लिए बड़ी भारी मात्रा में साहित्य वितरित किया गया। इस साहित्य के द्वारा ही राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम के उद्देश्य, ध्येय, मान्यताएँ, पद्धतियाँ, प्रशिक्षण-प्रविधियाँ तथा कार्यक्रम संचालन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया। प्रस्तुत लेख में राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम के प्रमुख मुद्दों का मूल्यांकनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

निरक्षरता के समस्त कारणों में एक कारण–प्रेरणा का अभाव है। निर्धन तथा परम्पराओं की जंजीरों से जकड़े करोड़ों व्यक्ति सीखने के लिए प्रेरणा नहीं प्राप्त कर पाते। सीखकर वे क्या करेंगे, अक्षर-ज्ञान से उन्हें क्या लाभ होगा, ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर पाये बिना वह रुचि और प्रेरणा विकसित नहीं कर सकेगा।

निरक्षरता के विरुद्ध संग्राम निर्धनता, बेरोजगारी, सामाजिक पिछड़ापन, हीन भावना तथा शोषण के विरुद्ध भी संग्राम होगा, जबकि इनके पहलू पर्याप्त मात्रा में भिन्न हैं। प्रौढ़ शिक्षा का कोई भी कार्यक्रम उसी समय प्रभावशाली हो सकता है, जबकि वह अनपढ़ प्रौढ़ों को आर्थिक न्याय, राजनीतिक महत्व तथा सामाजिक स्वतंत्रता प्रदान करने में उनकी सहायता करे।

**श्री कामथ** के शब्दों में, "प्रगतिशील शैक्षिक चिन्तन, जो हमें तृतीय विश्व के देशों–और विशेषकर लैटिन अमेरिकी शैक्षिक नवाचारों–से प्राप्त हुआ, उसने हमारे इस शैक्षिक चिन्तन को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया। हमारे स्वयं के पूर्व-स्वतंत्रता अनुभव तथा गत दशकों में किये गये कुछेक प्रयोगों के निष्कर्षों ने भी हमारे इस शैक्षिक चिन्तन को नई दिशा प्रदान करने में सहायता की। चीन, क्यूबा तथा वियतनाम ने जिस सरलता के साथ इन कार्यक्रमों का संचालन किया और यह बता दिया कि किस प्रकार समाज का सामाजिक-आर्थिक नवजागरण किया जा सकता है, आज भी हमारे लिए एक सजीव उदाहरण है।"

नोट

*टास्क* केन्द्रीय सरकार ने निरक्षर प्रौढ़ों की शिक्षा हेतु बारह सूत्रीय योजना कब प्रस्तुत की?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. जन शिक्षा, ..... का अन्य नाम है।
2. ..... को राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम औपचारिक रूप में शुरू किया गया।
3. ..... या इससे अधिक आयु के व्यक्तियों को प्रौढ़ कहा जाता है।
4. ..... में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' आरम्भ किया गया।
5. ..... में दिल्ली विश्वविद्यालय ने पत्राचार पाठ्यक्रमों द्वारा समाज शिक्षा प्रदान करने का कार्य आरम्भ किया।

## 16.3 स्त्री शिक्षा (Women Education)

1. **स्त्रियोचित एवं सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास**–स्वतन्त्र भारत में स्त्री जाति को अबला से सबला बनाने के लिए उनके शारीरिक बौद्धिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक विकास करने के लिए उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था की गई। स्त्रियोचित खेल-कूद, व्यायाम, आसनों की व्यवस्था, विविध बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का विकास करने के विषयों का शिक्षण दिया जाता है। चूँकि उपर्युक्त शिक्षा का प्रबन्ध एकमात्र महिला विद्यालयों में ही सम्भव है, इसलिये इनका विकास और प्रसार किया जा रहा है।
2. **स्त्रीत्व को बनाये रखने की दीक्षा, शिक्षा और वातावरण की व्यवस्था**–स्त्री का स्त्रीत्व उसकी लज्जा-शीलता, कौमार्य और विनम्रता परन्तु निर्भीकता में सन्निहित होता है। यह सब तभी सम्भव है, जब उन्हें स्त्रियोचित कर्त्तव्यों से परिचित कराया जाए। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति महत्वपूर्ण है। वह माता (जननी) है, पत्नी है, बहिन है, पुत्री है। उनके अपने-अपने स्थान पर क्या कर्त्तव्य हैं, क्या अधिकार हैं, उन्हें समाज में कैसे व्यवहार करना चाहिए। उन्हें इन बातों का ज्ञान कराना आवश्यक है।
3. **योग्य माता, गृहिणी, पत्नी और कार्यकर्त्ता बनाना**–भारतीय संस्कृति में माता बालक की सबसे पहली आचार्य (गुरु) होती है। वह बालक के संस्कारों को निर्धारित करती है और समुचित वातावरण, सीख, लालन-पालन और स्नेह देकर उसका सामाजिक तथा मानवीय विकास करती है। गृहस्थ जीवन में स्त्री माता, गृहिणी तथा पत्नी-तीनों के रूप में कर्त्तव्य पालन करती है। उनकी शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो कि स्त्रियाँ कुशलतापूर्वक माता, गृहिणी, पत्नी और सहयोगी बन सकें।
4. **धार्मिकता, नैतिकता, चरित्र-निर्माण और शान्ति-स्थापना का स्त्रोत बनाना**–धार्मिक भावनाओं का प्रसार करके स्त्री बालकों का नैतिक आचरण सुधारती हैं। वह दया की देवी है, क्षमा-शीलता उसका धर्म है, वह सहिष्णु, उदार और सहकारी है। स्त्री बालकों में योग्य नागरिक के इन गुणों की स्थापना करती है। शिक्षा द्वारा स्त्री का धार्मिक, नैतिक और चारित्रिक मार्ग-दर्शन करना आवश्यक है।
5. **संस्कृति प्रसार का स्त्रोत बनाना**–समाज में विविध सांस्कृतिक परम्पराएँ स्त्रियों द्वारा ही संस्थापित होती हैं। ये उनकी रक्षक, पोषक और प्रसारक हैं। वे परिवार से लेकर समाज के क्षेत्र में अपने व्यवहारों द्वारा संस्कृति का विकास करने में योग देती हैं। वस्त्र-विन्यास, रहन-सहन, धार्मिक प्रथाएँ, रीति-रिवाज, सामाजिक मान्यताएँ, मातृभाषा-विकास, पारिवारिक शिक्षा द्वारा सामाजीकरण के आदर्श प्रस्तुत करके वे ही पुरुष वर्ग का मार्ग दर्शन करती है। इसलिए स्त्री-शिक्षा में भारतीय संस्कृति का समन्वय करना चाहिए, जिससे वह उस संस्कृति का प्रसार करने का उत्तरदायित्व निर्वाह कर सके।

नोट

6. **व्यावसायिक, जीविकोपार्जन एवं कला में दक्षता**–यदि किसी परिवार के कर्त्तव्यों के निर्वाह की पूर्ति करने के उपरान्त स्त्री के पास अवकाश का समय बचता है तो वह उसका सदुपयोग व्यावसायिक एवं जीविकोपार्जन के कार्यों द्वारा कर सकती है। इस प्रकार स्त्री परिवार की आर्थिक स्थिति में भारी योग दे सकती है। जब किसी परिवार का मुखिया नहीं रहता तो परिवार के लालन-पालन का भार स्त्री पर ही आ जाता है। अस्तु, स्त्री जाति को सशक्त बनाना चाहिए और शिक्षा-क्रम में उपयोगी पाठ्यक्रम सँजोना चाहिए।
7. **प्रजातन्त्र की सुरक्षा और गणतन्त्र में विश्वास रखने की भावना का प्रसार**–बालक के प्रशिक्षण एवं शिक्षण की सबसे पहली सीढ़ी परिवार है। माता-पिता और परिवार के लोग बालक को नागरिकता की शिक्षा देते हैं। यदि स्त्री प्रजातन्त्र की प्रणालियों से परिचित है तो वह अपने घर का वातावरण भी प्रजातन्त्रतात्मक बना सकती है। ऐसे वातावरण में पलने वाले बालक प्रजातन्त्र में आस्था रखने वाले और उसमें योग देने वाले बन सकेंगे। इसलिए स्त्री-शिक्षा पाठ्यक्रम में नागरिकता की शिक्षा और प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों की जानकारी का समावेश करना चाहिए।
8. **नेतृत्व और उत्तरदायित्व की क्षमता का विकास**–भारतीय स्त्री ने विविध क्षेत्रों में मार्गदर्शन और नेतृत्व किया है। लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी), सरोजिनी नायडू, ऐनी बेसेन्ट, कमला नेहरू, कस्तूरबा, इन्दिरा गाँधी जैसी विदुषी महिलाओं ने युद्ध-कौशल, सामाजिक सुधार, राजनीतिक सुधार और आर्थिक नियोजन में भारी योग दिया है। आज भी भारत को ऐसे नेताओं की आवश्यकता है। इसलिए आधुनिक स्त्री-छात्राओं को पुरुषों के समान विकास की सुविधाएँ और अवसर देकर प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व का शिक्षण देना चाहिए, जिससे वे योग्य चिकित्सक, योग्य अभियन्ता, योग्य अध्यापक और समाज सुधारक बनकर राष्ट्र की सेवा कर सकें।

## स्वतन्तत्रता के पश्चात् स्त्री-शिक्षा (Women Education After Independence)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (1), 16 (1), 16 (2) में उल्लिखित है कि किसी भी नागरिक से लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। भारतीय संविधान की धारा-15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। सरकार ने नारी उत्थान के लिए श्रीमती जयन्ती पटनायक की अध्यक्षता में नेशनल कमीशन ऑफ वीमेन की स्थापना की। ऐसी आशा की गयी कि स्त्रियों के उत्थान के लिए यह कमीशन एक अच्छा अस्त्र साबित होगा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्री-शिक्षा के सन्दर्भ में आयोगों एवं समितियों ने निम्न कार्य किये–

**1. राधाकृष्णन् कमीशन** (1948-49)–स्त्री शिक्षा पर बल देते हुए कहा कि "शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते।" इस आयोग ने स्त्री शिक्षा के विकासार्थ कुछ सुझाव दिये।

(*i*) नारी को सुमाता तथा सुगृहणी बनाने की शिक्षा दी जाए।

(*ii*) स्त्रियों के लिए शिक्षा सुविधाओं का विस्तार किया जाए।

(*iii*) स्त्रियों को गृह-प्रबन्ध अध्ययन की प्रेरणा और अवसर दिये जायें।

(*iv*) अध्यापिकाओं को समान कार्यों के लिए अध्यापकों के बराबर वेतन दिया जाए।

(*v*) ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाए, जो बालिकाओं को समाज में समान स्थान दिला सके।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने नारी शिक्षा के प्रसार के लिए अधिक उत्साह का प्रदर्शन किया। नये संविधान की संरचना करना है, जो सब द्वारा स्त्री शिक्षा के लिए प्रभावशाली कदम उठाये गये। वर्ष 1949-50 के प्राथमिक स्कूलों में बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत मात्र 28 था।

**2. राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति ( 1958 )**–इसको दुर्गाबाई देशमुख समिति के नाम से भी जानते हैं। महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी, जिसका उद्देश्य स्त्री शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए सुझाव देना था। 1959 में समिति ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये–

नोट

(*i*) कुछ वर्षों तक बालिका शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता तथा स्त्रियों के लिए अलग से प्रशासनिक व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

(*ii*) ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री-शिक्षा के विकास हेतु सरलीकृत अनुदान किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(*iii*) उपलब्ध धनराशि का उपयोग बालिकाओं के मिडिल तथा माध्यमिक स्तर के विद्यालयों, शिक्षक प्रशिक्षण, स्कूलों, छात्रावास तथा महिला अध्यापिकाओं हेतु छात्रावास बनाये जाने के लिए अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।

(*iv*) राज्यों में बालिकाओं एवं स्त्री शिक्षा की राज्य परिषदों का निर्माण किया जाए।

(*v*) बालक तथा बालिका शिक्षा के लिए विषमता को शीघ्र समाप्त किया जाए।

**3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986**–इसमें निम्नलिखित उपाय सुझाये गये–

(*i*) बालिकाओं की शिक्षा के लिए परिवेश का निर्माण करना।

(*ii*) औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए सुविधाएँ बढ़ाना।

(*iii*) वर्तमान कार्यक्रम का विस्तार एवं अनेक सहायता कार्यक्रम को प्रारम्भ किया जाये, जिससे बालिकाओं का स्तर बढ़ाया जा सके।

(*iv*) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुपूरक पाठ्यक्रम तैयार करना।

(*v*) निरक्षर स्त्रियों के लिए युद्ध स्तर पर कार्य करके निरक्षरता दूर करने के उपाय किये जायें, जिससे स्वयंसेवी संगठन, सम्पूर्ण मानव शक्ति का सहयोग लिया जाये।

**4. राष्ट्रीय महिला आयोग** (National Women Commission)–सन् 1990 में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम पारित किया गया। इसमें एक अध्यक्ष, एक सचिव एवं पाँच पूर्णकालिक सदस्य थे। यह आयोग 31 जनवरी 1992 से प्रभावी हुआ। इस आयोग को निम्न कार्य सौंपे गये–

(*i*) महिलाओं को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गयी है। उन्हें कारगर ढंग से लागू करने के उपाय सुझाना।

(*ii*) महिलाओं को प्रभावित करने वाले कानूनों में कमी, अपर्याप्त या त्रुटि पर संशोधन के सभी सुझाव देना।

(*iii*) महिलाओं की शिकायतों पर ध्यान देना एवं जहाँ कानूनों का उल्लंघन होता है। समस्याओं को सम्बन्धित अधिकारी तक पहुँचाना।

(*iv*) महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए योजनाएँ बनाने के लिए प्रक्रिया में भाग लेना।

(*v*) सुधार गृहों, जेलखानों व अन्य स्थानों पर उनके पुनर्वास तथा दशा सुधारने के बारे में सिफारिशें करना।

**5.** आयोग ने 7-8 अक्टूबर, 1992 को बालिकाओं से बलात्कार विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गयी थी, जिसमें घृणित अपराध की घटनाओं की रोक-थाम के उपायों, पर विचार किया गया था। मार्च 1993 में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए महिला परिपेक्ष्य पर गोष्ठी हुई, जिससे समाचार पत्रों व मुद्रित सामग्री के बारे में जागरुकता पैदा करना है।

## स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

**3. सही विकल्प का चयन कीजिये–(Choose the correct option)**

1. सन् 1958 में महिला शिक्षा से सम्बन्धित कौन-सी समिति थी?

   (*a*) माध्यमिक शिक्षा समिति (*b*) कोठारी समिति

   (*c*) दुर्गाबाई देशमुख समिति (*d*) हंसा मेहता समिति।

2. सन् 1975 को किस वर्ष के रूप में मनाया जाता है–

   (*a*) बाल वर्ष (*b*) मजदूर वर्ष

   (*c*) महिला वर्ष (*d*) इनमें से कोई नहीं

नोट

3. राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद की स्थापना कब हुई?

(*a*) सन् 1955 (*b*) सन् 1958

(*c*) सन् 1956 (*d*) सन् 1959

## 16.4 सारांश (Summary)

- स्वतन्त्रता से पूर्व देश में केवल 13 सुधार-गृह थे। देश की आवश्यकताओं को देखते हुये यह संख्या बहुत ही कम थी।
- सबसे पहले देहरादून में अन्धों के लिये एक विद्यालय खोला गया। विकास-योजनाओं के अन्तर्गत इसे केन्द्रीय विद्यालय का रूप प्रदान किया गया। इसमें एक मुद्रण-प्रेस की स्थापना की गयी, अंधों के केन्द्रीय पुस्तकालय की स्थापना की गयी तथा नेत्रहीनों के लिये समुचित साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था की गयी। कालान्तर में लेडी नोयस विद्यालय का विकास किया गया, जिसमें बहरों तथा गूंगों की व्यवस्था की जाती है।
- 1955 ई. में देहरादून के ब्रैले प्रेस का विकास किया गया। इस प्रेस द्वारा अब तक 273 नवीन प्रकाशन किये हैं, तथा 83 प्रकाशनों का पुनर्मुद्रण किया है।
- सन् 1952 ई. में 'भारतीय बाल कल्याण बोर्ड' की स्थापना की गयी, जो विभिन्न प्रकार के विकलांगों की अनेक शैक्षिक तथा व्यावसायिक समस्याओं का समाधान करता है।
- केन्द्रीय सरकार को शिक्षा, प्रशिक्षण तथा नियोग सम्बन्धी मामलों पर परामर्श प्रदान करने हेतु एक 'राष्ट्रीय सलाहकार परिषद' का भी गठन किया गया।
- मानसिक रूप से दुर्बल बालकों की शिक्षा व्यवस्था के लिये बंगाल के दोनों ही विद्यालयों का विकास किया गया। इन बालकों के बुद्धि-स्तर का पता लगाने हेतु इलाहाबाद की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला ने अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ तैयार कीं।
- नई राष्ट्रीय शिक्षा-नीति में बालकों व विकलांग बालकों के लिये प्रावधान के अन्तर्गत भारतीय संसद ने मानवतावादी आदर्शों की पुन: स्थापना करने का निश्चय दोहराया है। अनुमानत: 5 प्रतिशत विकलांग बच्चे ही विशेष विद्यालयों में शिक्षा एवं रोजगार हेतु सुविधायें पाते हैं, अत: इस नीति के अनुसार इन्हें सामान्य बालकों के साथ सहभागी के रूप में समन्वयन करके उन्हें सामान्य विकास के लिये तैयार करना है, जिससे वह "शिक्षा की मुख्यधारा में सबके साथ तैर सकें।"
- विकलांगों की बहुमुखी समस्याओं एवं आवश्यकताओं के प्रति समस्त विश्व में चेतना लाने के उद्देश्य से 20 दिसम्बर, 1959 में ज्यूरिक सम्मेलन में "विश्व विकलांग दिवस" का शुभारंभ हुआ। तब से **मार्च के तृतीय रविवार** को यह दिवस विश्व के अनेक राष्ट्रों में मनाया जाता है।
- भारत में यह दिवस सर्वप्रथम General Rehabilitation In India द्वारा वर्ष 1982 में मनाया गया था। तब से यह प्रत्येक वर्ष सरकार द्वारा मनाया जाता है।
- स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त प्रौढ़ शिक्षा की नवीन धारणा का उदय हुआ। सन् 1949 ई. में शिक्षा सलाहकार बोर्ड के अधिवेशन में उस समय के शिक्षा मन्त्री श्री अबुल कलाम आजाद ने अपने वक्तव्य में सामाजिक शिक्षा को एक नवीन रूप प्रदान करते हुए बताया कि–"प्रौढ़ शिक्षा का केवल लोगों को साक्षर बनाने तथा सीमित नहीं रखा जाना चाहिये, जो कि प्रत्येक नागरिक को जनतन्त्रीय सामाजिक व्यवस्था में भाग लेने के लिए तैयार करें।"
- 21 मई सन् 1948 में केन्द्रीय सरकार ने, निरक्षर प्रौढ़ों की शिक्षा हेतु अपनी "बारह सूत्रीय योजना" प्रस्तुत की। सन् 1949 में दिल्ली में, प्रान्तीय शिक्षा मन्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 3 वर्ष के भीतर 12 वर्ष से 50 वर्ष तक की आयु वाले निरक्षरों में से कम-से-कम 50% प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया, परन्तु आर्थिक समस्याओं के कारण इस लक्ष्य की प्राप्ति न हो सकी।

नोट

- प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा व्यक्ति सामाजिक आवश्यकता को पूर्ण करता है। इसके अलावा समाज में शान्ति तथा भाईचारे का वातावरण बनाये रखने के लिए भी आपसी सहयोग की आवश्यकता होती है, परन्तु वर्तमान में मानव ईर्ष्या, द्वेष, संघर्ष तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को समाज में फैल रहा है। इस प्रकार की भावनाओं के कारण सामाजिक अस्तित्व समाप्त होने की सम्भावना बन जाती है।
- हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की अधिकतर जनसंख्या गाँवों में रहने के कारण अशिक्षित है। आज हमारे देश की अनेको आवश्यकताओं को देखते हुए, देश के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित करना नितान्त आवश्यक है। इसीलिए भारत में प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं, क्योंकि निरक्षर व्यक्ति देश के लिए एक अभिशाप होता है।
- निरक्षरता के समस्त कारणों में एक कारण–प्रेरणा का अभाव है। निर्धन तथा परम्पराओं की जंजीरों से जकड़े करोड़ों व्यक्ति सीखने के लिए प्रेरणा नहीं प्राप्त कर पाते। सीखकर वे क्या करेंगे, अक्षर-ज्ञान से उन्हें क्या लाभ होगा, ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर पाये बिना वह रुचि और प्रेरणा विकसित नहीं कर सकेगा।
- निरक्षरता के विरुद्ध संग्राम निर्धनता, बेरोजगारी, सामाजिक पिछड़ापन, हीन भावना तथा शोषण के विरुद्ध भी संग्राम होगा, जबकि इनके पहलू पर्याप्त मात्रा में भिन्न हैं। प्रौढ़ शिक्षा का कोई भी कार्यक्रम उसी समय प्रभावशाली हो सकता है, जबकि वह अनपढ़ प्रौढ़ों को आर्थिक न्याय, राजनीतिक महत्व तथा सामाजिक स्वतंत्रता प्रदान करने में उनकी सहायता करे।
- स्वतन्त्र भारत में स्त्री जाति को अबला में सबला बनाने के लिए उनके शारीरिक बौद्धिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक विकास करने के लिए उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था की गई। स्त्रियोचित खेल-कूद, व्यायाम, आसनों की व्यवस्था, विविध बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का विकास करने के विषयों का शिक्षण दिया जाता है।
- स्त्री का स्त्रीत्व उसकी लज्जा-शीलता, कौमार्य और विनम्रता परन्तु निर्भीकता में सन्निहित होता है। यह सब तभी सम्भव है, जब उन्हें स्त्रियोचित कर्त्तव्यों से परिचित कराया जाए। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति महत्वपूर्ण है। वह माता (जननी) है, पत्नी है, बहिन है, पुत्री है। उनके अपने-अपने स्थान पर क्या कर्त्तव्य हैं, क्या अधिकार हैं, उन्हें समाज में कैसे व्यवहार करना चाहिए। उन्हें इन बातों का ज्ञान कराना आवश्यक है।
- भारतीय संस्कृति में माता बालक की सबसे पहली आचार्य (गुरु) होती है। वह बालक के संस्कारों को निर्धारित करती है और समुचित वातावरण, सीख, लालन-पालन और स्नेह देकर उसका सामाजिक तथा मानवीय विकास करती है।
- समाज में विविध सांस्कृतिक परम्पराएँ स्त्रियों द्वारा ही संस्थापित होती है। ये उनकी रक्षक, पोषक और प्रसारक हैं। वे परिवार से लेकर समाज के क्षेत्र में अपने व्यवहारों द्वारा संस्कृति का विकास करने में योग देती हैं। वस्त्र-विन्यास, रहन-सहन, धार्मिक प्रथाएँ, रीति-रिवाज, सामाजिक मान्यताएँ, मातृभाषा-विकास, पारिवारिक शिक्षा द्वारा सामाजीकरण के आदर्श प्रस्तुत करके वे ही पुरुष वर्ग का मार्ग दर्शन करती है। इसलिए स्त्री-शिक्षा में भारतीय संस्कृति का समन्वय करना चाहिए, जिससे वह उस संस्कृति का प्रसार करने का उत्तरदायित्व निर्वाह कर सके।

## 16.5 शब्दकोश (Keywords)

- **जीविकोपार्जन**–आजीविका के लिए आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था।
- **विकासार्थ**–विकास के लिए।

नोट

## 16.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में विकलांगों की शिक्षा व्यवस्था की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
2. विकलांग शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए विकलांग शिक्षा के पाठ्यक्रम का विवेचन कीजिए।
3. प्रौढ़ शिक्षा का क्या अर्थ है? इसके उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
4. भारत में प्रौढ़ शिक्षा के विकास पर टिप्पणी लिखिए।
5. स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा के विकास पर प्रकाश डालिए।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

**1.** 1. (*c*) 2. (*d*) 3. (*a*)

**2.** 1. प्रौढ़ शिक्षा, 2. 2 अक्टूबर सन् 1978, 3. 40 वर्ष,
4. सन् 1952, 5. सन् 1962।

**3.** 1. (*c*) 2. (*c*) 3. (*d*)

## 16.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–17: शैक्षिक पर्यवेक्षण : अर्थ, प्रकृति तथा प्रकार (Educational Supervision : Meaning, Nature and Types)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 पर्यवेक्षण का अर्थ एवं संकल्पना (Meaning and Assumption of Supervision)

17.2 शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रकृति (Nature of Educational Supervision)

17.3 पर्यवेक्षण के प्रकार (Types of Supervision)

17.4 सारांश (Summary)

17.5 शब्दकोश (Keywords)

17.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

17.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शैक्षिक पर्यवेक्षण के अर्थ, प्रकृति तथा प्रकार की व्याख्या एवं विश्लेषण करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षक के व्यावसायिक उन्नयन के लिए 19वीं सदी में अनेक यत्न किये गये। पर्यवेक्षण में सुधार भी उन्हीं प्रयासक्रमों में से एक है। प्रारंभ में पर्यवेक्षण के तरीके एक प्रकार से निर्देशन मात्र थे, जो निरीक्षण के अन्तर्गत ही आते थे। प्राय: त्रुटियों की ओर ही इंगित करना इनका उद्देश्य होता था। गत कुछ दशकों में निरीक्षण का स्थान पर्यवेक्षण ने ले लिया है। पर्यवेक्षण को अब एक ऐसी प्रक्रिया माना जाता है जिसमें शिक्षक और अधिकारी के मध्य सहयोग की भावना को अधिक महत्व दिया जाता है और छिद्रान्वेषण के दृष्टिकोण को उपयुक्त नहीं समझा जाता। वस्तुत: अब पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया माना जाता है, जिसमें शिक्षक का सर्वोन्मुखी विकास सन्निहित है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पर्यवेक्षण का विकास निरीक्षण अनुवीक्षण व प्रवर्तन (Enforcement) कार्यों से हुआ है। इसके चिन्तन पर भी प्रभाव पड़ा है। प्रारम्भ में जहां पर्यवेक्षण की संकल्पना आधिकारिक दृष्टिकोण पर आधारित थी, वहीं अब जनतंत्रीय उपागम आधारित हो गयी है। तदानुसार परस्पर सहयोग, साहचर्य, समता का व्यवहार पर्यवेक्षण में दृष्टिगत होता है। पर्यवेक्षण सम्बन्धी निरीक्षण में तकनीकी विकास का भी प्रभाव देखा जा सकता है। प्रारंभ में पर्यवेक्षण का मुख्य आधार पारम्परित कक्षा निरीक्षण व मोटे-मोटे दोषों का प्रतिवेदन तैयार करना मुख्य था, वहां अब पर्यवेक्षण विश्वसनीय व वैध निरीक्षण उपकरणों के द्वारा होता है जिसमें निरीक्षण की स्थिति की

नोट

बार-बार पुष्टि की जा सकती है। इस क्षेत्र में भी अनेक पर्यवेक्षण कौशलों का विकास हुआ है। पर्यवेक्षण का लक्ष्य जहां प्रारम्भ में विद्यार्थी, संसाधन व संगठन था, वहां अब शिक्षक व उसका अध्ययन, प्रमुख केन्द्र बिन्दु हैं।

## 17.1 पर्यवेक्षण का अर्थ व संकल्पना (Meaning of Assumption of Supervision)

पर्यवेक्षण शब्द अंग्रेजी के शब्द 'सुपरविजन' का हिन्दी रूपान्तर है जिसका अर्थ होता है कि वह श्रेष्ठ दृष्टि जो स्थिति का सही आंकलन कर सम्बन्धित क्षेत्र का भावी विकास कर सके। सूक्ष्म श्रेष्ठ निरीक्षण के आधार पर प्राप्त तथ्यों के विवेचन से भावी शैक्षणिक गुणवत्ता का विकास करना। विद्यालयों को ज्ञान का केन्द्र स्वीकार किया जाता है। अत: इनसे उचित अध्यापन व अधिगम की अपेक्षा है। यह आश्वस्त होने के लिए कि विद्यालयों में समुचित अध्ययन अध्यापन होता है, शिक्षक अध्यापन के योग्य है, अधिगम के लिए समुचित पर्यावरण है, विद्यार्थियों की प्रगति पर समुचित ध्यान दिया जाता है, पर्यवेक्षण की आवश्यकता स्वत: स्पष्ट हो जाती है। प्रभावी पर्यवेक्षण के बिना शिक्षा के लक्ष्य को पूरा करना सम्भव नहीं है। अत: प्रभावी पर्यवेक्षण राष्ट्रीय शैक्षिक विकास के लिए अपरिहार्य आवश्यकता है। निरन्तर बढ़ते हुए विद्यालयों और उनमें विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या व वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास ने पर्यवेक्षण कार्य को अत्यंत जटिल बना दिया है। अत: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रभावी पर्यवेक्षण व कुशल पर्यवेक्षक दोनों ही शैक्षिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

**पर्यवेक्षण की आधुनिक संकल्पना–**आधुनिक युग के लगभग सभी शिक्षाशास्त्री यथा–क्रासबी (1957) हैरिस (1963) कुर्टिन (1964) विल्स (1967) हैराल्ड एवं मूर (1968) इस बात को स्वीकार करते हैं कि पर्यवेक्षण का लक्ष्य शिक्षण में सुधार से सम्बन्ध रखता है। नीगेल एवं इवांस इनसे और भी एक कदम आगे चलकर स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार पर्यवेक्षण के क्षेत्र के अन्तर्गत न केवल शिक्षक एवं विद्यार्थी, वरन् प्रशासक एवं अभिभावक के शैक्षिक विकास को भी सम्मिलित करते हैं। विलियम मेकाइवर भी लगभग इन्हीं के समर्थक हैं।

विल्स लिखते हैं कि "आधुनिक पर्यवेक्षण, अध्यापन व अधिगम के श्रेष्ठ विकास में सहायक है।"

लगभग यही राय हैराल्ड एवं मूर की है। वे स्वीकारते हैं कि पर्यवेक्षण में वे प्रवृत्तियां आती हैं जिनका मूलत: सम्बन्ध उन परिस्थितियों के अध्ययन व सुधार से होता है जो प्रत्यक्षत: अधिगम, छात्र व शिक्षक के विकास से जुड़ी होती हैं।

शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र में हुए अनुसंधान इस बात पर एकमत हैं कि पर्यवेक्षण मुख्य रूप से अनुदेशों में सुधार से सम्बन्ध रखता है। बारबर्टन तथा ब्रूकनर ने आधुनिक पर्यवेक्षण की परिभाषा दी है जो अधिक व्यापक है। उन्होंने पर्यवेक्षण में निम्न तथ्यों को सम्मिलित किया है–

(1) यह एक विशेष तकनीकी सेवा है, जिसका मुख्य उद्देश्य उन सभी तथ्यों का सामूहिक रूप से अध्ययन करना है, जिससे बालक की प्रगति व विकास हो सके।

(2) पर्यवेक्षक शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों के अनुरूप निर्देशन देता है।

(3) पर्यवेक्षण समग्र अधिगम-अध्ययन प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में योग देता है, तथा इसमें

(4) सभी शिक्षक सहयोगी की भांति अधिगम में सुधार के लिए परस्पर सहयोग करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पर्यवेक्षण समग्र अध्यापन व अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है। इसमें विद्यार्थी, शिक्षक व प्रशासक (पर्यवेक्षक) सभी का विकास सन्निहित है।

*क्या आप जानते हैं* शिक्षा पर्यवेक्षण का अर्थ शिक्षा के क्षेत्र में भावी अपेक्षाओं के अनुरूप विकास की दृष्टि से है। हिन्दी शब्द पर्यवेक्षण, दो शब्दों से मिलकर बना है, परिवीक्षण अर्थात् श्रेष्ठ निरीक्षण। अर्थात् शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ होगा, शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ सूक्ष्म निरीक्षण।

नोट

## 17.2 शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रकृति (Nature of Educational Supervision)

अमेरिका के राष्ट्रीय शिक्षा संगठन (NEA) के प्राचार्यों के संगठन के अनुसार शिक्षा पर्यवेक्षण में निम्नलिखित बातों का समावेश किया जाता है।

(1) शिक्षण की कुशलता तथा बालकों की आवश्यकताओं का ज्ञान व सीखने की संस्थितियों का मूल्यांकन (2) शिक्षकों के शिक्षण में सुधार (3) बालकों की जांच (4) सहायक सामग्री का निर्माण (5) पाठ्यक्रम सुधार तथा निर्माण के लिए शोध, तथा (6) शिक्षकों का व्यावसायिक नेतृत्व व सहयोग।

इस प्रकार पर्यवेक्षण, शिक्षा प्रशासन का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अंग है, जो समग्र अध्यापन व अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है। यही कारण है कि राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने इसे रीढ़ की हड्डी स्वीकार किया है। इसका आशय यह है कि यदि पर्यवेक्षण पर ध्यान दिया जाये तो समग्र शिक्षण परिस्थितियों में सुधार हो सकता है और इसके विपरीत यदि ध्यान नहीं दिया गया तो समग्र शैक्षिक ढांचा लड़खड़ा सकता है, क्योंकि पर्यवेक्षक (प्रशासक) के स्तर से लेकर बालक के स्तर तक सभी इस प्रक्रिया से प्रभावित होते हैं।

### आधुनिक पर्यवेक्षण की मुख्य विशेषताएँ

(1) पर्यवेक्षण में परस्पर उचित मानवीय सम्बन्ध आवश्यक हैं।

(2) यह जनतन्त्रीय दर्शन पर आधारित है अत: जनतंत्रीय मूल्यों यथा-समानता, सहकार, व्यक्ति का सम्मान, सहयोग, तथा सहभागिता का पर्यवेक्षण में ध्यान रखना आवश्यक है।

(3) यह वैज्ञानिक है अत: पर्यवेक्षण में वैधता, विश्वसनीयता तथा तथ्यों में क्रमबद्धता आवश्यक है। पर्यवेक्षण निष्कर्ष संदेह से परे होने आवश्यक हैं।

(4) यह आधुनिक टैक्नोलॉजी पर आधारित है, अत: निरीक्षण आदि में आधुनिक तकनीकों एवं शैक्षिक टैक्नोलॉजी का प्रयोग आवश्यक है तथा पर्यवेक्षण के विविध कौशलों का ज्ञान पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक है।

(5) इसमें परस्पर सहयोग आवश्यक है अत: प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए कोई न कोई पर्यवेक्षण का दायित्व स्वीकार करना आवश्यक है।

(6) इसका क्षेत्र मात्र कक्षा-कक्ष तक नहीं है, वरन् व्यापक है।

(7) प्रभावी परिणाम के लिए उचित प्रशिक्षण व नेतृत्व आवश्यक है।

(8) स्टाफ की नयी शिक्षण तकनीकों में अनुस्थापना आवश्यक है।

(9) नियमित प्रगति के लिए क्रियात्मक अनुसंधान अनवरत आवश्यक होते हैं।

**विद्यालय पर्यवेक्षण–** विद्यालय पर्यवेक्षण, शैक्षिक पर्यवेक्षण का ही एक भाग है। इसके अन्तर्गत विद्यालय के अध्यापन-अधिगम संस्थितियों के पर्यवेक्षण के साथ-साथ विद्यालय की अनुप्रवृत्तियों यथा–खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यकलाप, विद्यालय, कार्यालय, भवन आदि विद्यालय से सम्बन्धित सभी भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का पर्यवेक्षण सम्मिलित है।

### विद्यालय पर्यवेक्षण के उद्देश्य

(1) बृहत समाज की विद्यालय से अपेक्षाओं के अनुरूप विद्यालय के उद्देश्यों से शिक्षकों को परिचित कराना।

(2) विद्यालय संसाधनों के प्रभावी अध्यापन व अधिगम प्रवृत्तियों में लगाना।

(3) शिक्षकों एवं छात्रों की समस्याओं से निकट का परिचय प्राप्त करना।

(4) छात्रों की समस्याओं (आधुनिक, बाल-विकास, समायोजना आदि) के निदान व उपकरण के लिए कदम उठाना।

(5) शिक्षकों की समस्याओं का सहानुभूतिपूर्वक समाधान खोजना तथा शैक्षिक विकास में योग देना।

नोट

(6) शिक्षकों की विशेष योग्यताओं के विकास के अवसर प्रदान करना।

(7) मानवीय सम्बन्धों में परस्पर विश्वास उत्पन्न करना व सहयोग को बढ़ावा देना।

(8) भावी अधिगम सम्बन्धी चुनौतियों के लिए छात्रों को तैयार करना।

(9) शिक्षकों को व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान करना।

(10) विद्यालय विकास की योजनाओं में तथा कार्यक्रमों में शिक्षकों का नियमित सहयोग प्राप्त करना।

(11) नवीन शिक्षण कौशलों एवं विधियों से परिचित कराना तथा उनमें अनुस्थापना करना।

(12) सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियमित आयोजन करना।

(13) विद्यालय व उसके कार्यों के प्रति निष्ठा जगाने के लिए उचित पर्यावरण सृजित करना।

(14) विद्यालय, समुदाय तथा राष्ट्र के प्रति शिक्षक की स्वयं की भूमिका के प्रति सचेत करना।

## शिक्षकों द्वारा छात्रों को कक्षा में दिये गये कार्य का पर्यवेक्षण

यह कार्य भी पर्यवेक्षण की निदानात्मक भूमिका से आता है। इसके अन्तर्गत जो कार्य शिक्षक कक्षा में कराता है, यथा अध्यापन के समय पाठ का सारांश देना, गृह कार्य देना, प्रायोगिक कार्य करवाना आदि का समावेश होता है। इन कार्यों के रिकार्ड से किसी भी शिक्षक की योग्यता, कार्य के प्रति निष्ठा, विषय के प्रति तैयारी विद्यार्थियों को दिये गये कार्यों की जांच आदि का पता लग सकता है।

बड़े विद्यालयों में समयाभाव के कारण प्रधानाध्यापक प्रत्येक कक्षा में नहीं जा सकता। परन्तु इन्हीं कार्यों के लेखे-जोखे से वह शिक्षक एवं उसके विद्यार्थियों के कार्य का मूल्यांकन कर सकता है। इस सम्बन्ध में नमूने के तौर पर जांच भी संभव है। प्रधानाध्यापक चाहे तो अपने प्रथम सहायक या पारी प्रबन्धक को अधिकार देकर भी यह जांच कार्य करा सकता है।

## प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षकों को दिये गये कार्य का पर्यवेक्षण

शिक्षक का कार्य न केवल बालक का मानसिक विकास करना है, वरन् उसे शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक, संवेगात्मक आदि के विकास का भी ध्यान रखना होता है, ताकि वह बालक का सर्वांगीण विकास कर सके। विकास के इन विविध क्षेत्रों में उसे अनेक पाठ्य सहगामी या पाठ्येतर प्रवृत्तियों का संचालन करना पड़ता है यथा–साहित्यिक, सांस्कृतिक, खेल-कूद, शैक्षिक, भ्रमण, हॉबी आदि। यही नहीं, कक्षा अध्यापन के अतिरिक्त पाठ्य, प्रवृत्तियों में भी विषय संगोष्ठियाँ, स्टडी सर्किल आदि आयोजित करने होते हैं। कभी-कभी ऐसे कार्य भी प्रदत्त किये जाते हैं यथा–विज्ञान मेला, सामाजिक केम्प आदि। कक्षोन्नयन के भी अनेक कार्यक्रम हो सकते हैं। ये सभी कार्य वस्तुतः शैक्षिक ही हैं, जो बालक की विभिन्न योग्यताओं का विकास करते हैं।

दक्षता से इन कार्यकलापों को करने वाले शिक्षकों को प्रोत्साहित करने के लिए तथा ठीक प्रकार से इन प्रवृत्तियों का संचालन नहीं करने वाले शिक्षकों का समुचित मार्गदर्शन करने के लिए अथवा उचित कार्यवाही करने के लिए प्रधानाध्यापक इन कार्यों का भी पर्यवेक्षण करता है। सत्य तो यह है कि जहां शैक्षिक कार्य कक्षा तक ही सीमित रहते हैं, ये कार्य विद्यालय को समुदाय के साथ जोड़ते हैं। अतः प्रधानाध्यापक का इन कार्यों में रुचि लेकर आवश्यक मूल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में प्रायः प्रधानाध्यापक शिक्षकों की रुचि तथा समान कार्यभार वितरण के आधार पर कार्य विभाजन करते हैं। ये कार्य बारी-बारी से शिक्षकों में बदलते रहते हैं। ताकि अधिकाधिक क्षेत्रों में शिक्षक निपुणता प्राप्त कर सकें। अस्तु, इन कार्यों का समय-समय पर पर्यवेक्षण तथा आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन प्रत्येक प्रधानाध्यापक के लिए परमावश्यक है।

नोट

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में 'सही' तथा 'गलत' का चुनाव कीजिए। (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**
   1. कक्षा शिक्षक निरीक्षण में शिक्षक को कक्षा-शिक्षण संबंधी कठिनाइयों का ज्ञान होता है।
   2. कक्षा शिक्षण निरीक्षण द्वारा शिक्षक की प्रगति का मूल्यांकन सही नहीं होता।
   3. कक्षा शिक्षक निरीक्षण से विद्यार्थियों के स्तर का ज्ञान होता है।
   4. विद्यालय पर्यवेक्षण का उद्देश्य विद्यालय के संसाधनों को प्रभावी अध्यापन व अधिगम प्रवृत्तियों में लगाना है।
   5. विद्यालय पर्यवेक्षण का प्रमुख उद्देश्य शिक्षकों की समस्याओं का सहानुभूतिपूर्वक समाधान खोजना तथा शैक्षिक विकास में योगदान देना।

## 17.3 पर्यवेक्षण के प्रकार (Types of Educational Supervision)

पर्यवेक्षण के अनेक प्रकार हैं यहां कुछ प्रकारों का वर्णन किया जा रहा है–

**1. व्यक्तिगत पर्यवेक्षण–**यह पर्यवेक्षण प्राय: संगठन के अधिकारी द्वारा होता है। विद्यालयों में यह कार्य प्रधानाध्यापक को स्वयं करना पड़ता है। प्रधानाध्यापक के अकेले पर्यवेक्षण करने के अनेक कारण हैं उनमें से प्रमुख हैं कि प्राय: अन्य व्यक्ति के पर्यवेक्षण करने पर शिक्षक आपत्तियां उठाते हैं।

**2. विषय विशेषज्ञों द्वारा पर्यवेक्षण–**यह पर्यवेक्षण वहीं सम्भव होता है, जहां एक विषय के अनेक शिक्षक हों। यह कार्य केवल उसी को प्रदत्त किया जाता है, जो विषय का अध्यक्ष भी है तथा साथ-साथ वह अकादमिक दक्षता भी रखता हो। इस प्रकार के पर्यवेक्षण बड़े विद्यालयों में सम्भव हो पाते हैं।

**पर्यवेक्षण की कठिनाइयां–**हमारे विद्यालयों में प्राय: यह देखने में आता है कि पर्यवेक्षण का कार्य नियमित एवं सुचारू रूप से नहीं चल पाता है। कभी-कभी तो यह औपचारिकता मात्र ही रह जाता है। पर्यवेक्षण करने में क्या-क्या कठिनाइयां आती हैं, इस सम्बन्ध में मुखर्जी के अध्ययन से दो निम्नांकित तथ्य सामने आते हैं–

1. स्वयं प्रधानाध्यापक का पर्यवेक्षण के क्षेत्र में अयोग्य होना।
2. प्रधानाध्यापक के पास अधिक प्रशासनिक कार्यों का होना। 'वर्मा' के शोध अध्ययन के अनुसार पर्यवेक्षण की मुख्य कठिनाइयाँ अधोलिखित पाई गईं–
   (1) प्रशासनिक कार्यों की अधिकता से पर्यवेक्षण की आवृत्ति बहुत कम हो पाती है।
   (2) प्रधानाध्यापक सभी विषयों का पर्यवेक्षण करने में अपने आप को योग्य नहीं पाता।
   (3) जो सुझाव शिक्षकों को दिये जाते हैं वे अमल में नहीं आते। इसका एक कारण यह भी है कि कार्यभार अधिक है। एक शिक्षक को आठ में से 7 कलांश प्रति दिवस लेना पड़ता है।
   (4) शिक्षकगण पर्यवेक्षण का स्वागत नहीं करते। उनका सहयोगात्मक रुख नहीं होता।
   (5) पर्यवेक्षण अधिकारियों का रुख बजाए सहयोग के आलोचनात्मक होता है।
   (6) प्रधानाध्यापक के अतिरिक्त कमेटी, पैनल अथवा किसी भी प्रकार के अन्य पर्यवेक्षण का विरोध होता है, अत: प्रगतिशील पर्यवेक्षण की विधियाँ काम में नहीं आती हैं।

मुखर्जी एवं वर्मा दोनों के ही अध्ययन इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि अकेला प्रधानाध्यापक प्रशासनिक कार्यों में उलझे रहने के कारण पर्यवेक्षण प्रभावशाली ढंग से नहीं कर पाता। इसी कारण गुजरात और महाराष्ट्र सरकारों ने 10 कक्षाओं पर एक पर्यवेक्षक की नियुक्ति का मानदण्ड निर्धारित किया है। वास्तव में यदि हमें प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण करना है तो विद्यालयों में आवश्यक सुविधाएं प्रदान करनी होंगी। देश के शेष राज्यों में भी गुजरात और महाराष्ट्र शिक्षा विभाग का अनुकरण करना होगा।

नोट

## पर्यवेक्षण के अन्य प्रकार

शैक्षिक शब्दकोष (डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन) में पर्यवेक्षण के प्रकारों का उल्लेख है। जैसे–निरंकुश, सहयोगी, समन्वयात्मक, रचनात्मक,लोकतंत्रीय, राज्य निर्देशित आदि। यहां भूमिका और दृष्टिकोण के आधार पर कतिपय पर्यवेक्षण प्रकारों का वर्णन किया जा रहा है।

**1. भूमिका और दृष्टिकोण के आधार पर–**पर्यवेक्षण के दृष्टिकोण एवं भूमिकाओं में अन्तर के आधार पर पर्यवेक्षण के कई प्रकार किये जा सकते हैं। बर्टकी के अनुसार पर्यवेक्षण का प्रकार, आयोजन के उद्देश्य एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक सैनिक पर्यवेक्षण के कार्यकलाप, प्रधानाध्यापक के कार्यकलाप से सदैव भिन्न होंगे। यहां हम बर्टकी के ही पर्यवेक्षण के प्रकारों का उल्लेख कर रहे हैं–

(1) क्लिनिकल पर्यवेक्षण

(2) निरीक्षणात्मक पर्यवेक्षण

(3) नियंत्रणात्मक अथवा निरोधात्मक पर्यवेक्षण

(4) सहयोगी लोकतंत्रीय पर्यवेक्षण

(5) वैज्ञानिक पर्यवेक्षण

(6) रचनात्मक पर्यवेक्षण।

## (1) क्लिनिकल पर्यवेक्षण

पर्यवेक्षण का यह संप्रत्यय मेडीकल साइन्स से लिया गया है। इस संप्रत्यय में एक कक्षा को 'क्लिनिक' समझा जाता है। कोगन 1950 ने सर्व प्रथम इस शब्द का प्रयोग किया तथा संप्रत्यय का विकास किया। कोगन तथा एन्डरसन ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय में क्लिनिकल पर्यवेक्षण प्रक्रिया को और सशक्त किया। बाद में गोल्डामेर एन्डरसन तथा क्रेजेविस्को (1980) ने इस संप्रत्यय को और समृद्ध किया। आज यह शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अनुशासन बनकर उभरा है।

विद्यालयी परिप्रेक्ष्य में एक क्लिनिकल पर्यवेक्षण की प्रक्रिया में तीन अंग होते हैं–पर्यवेक्षण की योजना, क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन योजनान्तर्गत विद्यालय के लक्ष्य, लक्ष्यों की वरीयता (प्रायोरिटी) शिक्षकों के निष्पत्ति का मानदंड, शिक्षक की योजना तथा अनुदेशन प्रणाली को लिया जाता है। क्रियान्वयन में लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की निश्चित उत्कृष्ट शिक्षण के मानदण्ड के अनुरूप शिक्षण की क्रियान्विति तथा अन्त में निष्पत्ति-निष्कर्ष लिये जाते हैं।

## क्लिनिकल पर्यवेक्षण की विशेषताएँ

एन्डर्सन तथा क्रेजेवस्की ने क्लिनिकल पर्यवेक्षण संप्रत्यय की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है–

(1) यह अनुदेशन सुधार की तकनीक है।

(2) यह लक्ष्य आधारित कार्यक्रम है जिसमें विद्यालय और पर्यवेक्षक की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को मिलाकर चला जाता है।

(3) एक कार्यकारी सम्बन्ध पर्यवेक्षक व शिक्षकों के सम्पर्क में स्थापित किये जाते हैं।

(4) शिक्षक और पर्यवेक्षक के मध्य परस्पर विश्वास की अपेक्षा की जाती है।

(5) यह प्रणालीबद्ध प्रक्रिया है जिसमें लचीली तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

(6) यह मानकर चला जाता है कि पर्यवेक्षक, शिक्षकों से अनुदेशन व अधिगम के सम्बन्ध में अधिक जानता है।

(7) इस प्रणाली में पर्यवेक्षक के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है।

क्लिनिकल पर्यवेक्षण विधि का एक आब्जर्वेशन चक्र है जिसे क्लिनिकल आब्जर्वेशन चक्र कहा जाता है। इस चक्र में पाँच चरण होते हैं–

नोट

1. **पर्यवेक्षण/आब्जर्वेशन से पूर्व विचार-विमर्श कॉन्फ्रेन्स**–इसमें पर्यवेक्षण से पूर्व पर्यवेक्षक व शिक्षक, पर्यवेक्षण के निश्चित उद्देश्यों के बारे में बात करते हैं।
2. **पर्यवेक्षण ( ओब्जर्वेशन )** के अन्तर्गत कक्षा शिक्षण-विषय के अन्तर्गत होने वाले क्रिया-प्रतिक्रिया सम्बन्धी दत्तों को एकत्रित किया जाता है।
3. **विश्लेषण संव्यूहन निर्माण सत्र**–इसके अन्तर्गत एकत्रित दत्तों की समीक्षा, विश्लेषण किया जाता है तथा इन्हें शिक्षण सिद्धान्तों और अनुसन्धानों की पृष्ठभूमि में देखा जाता है।
4. **विचार-विमर्श ( कॉन्फ्रेन्स )** के अन्तर्गत निरीक्षण और प्राप्त तथ्यों के आधार पर पुनर्वलन (Feed back) दिया जाता है।
5. **निरीक्षण के बाद की समालोचना**–इसके अन्तर्गत पर्यवेक्षण की उपयोगिता पर अनुदेशन पर पड़ने वाले प्रभाव पर शिक्षक व पर्यवेक्षक मिलकर चर्चा करते हैं।

*टास्क* क्लिनिकल पर्यवेक्षण से आप क्या समझते हैं?

### ( 2 ) निरीक्षणात्मक पर्यवेक्षण

यह पर्यवेक्षण का परम्परागत स्वरूप है, जिसमें यह मानकर चला जाता है कि पर्यवेक्षण अधिकारी सर्व ज्ञाता होता है, उसका उद्देश्य केवल त्रुटियों का पता लगाना होता है। इस पर्यवेक्षण में यह भी माना जाता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों व विषयों की भिन्न विधियां हैं, जिनके प्रयोग से शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

अधिकारियों का दृष्टिकोण छिद्रान्वेषण का होता है, अत: इसे अधिकारिक पर्यवेक्षण भी कहते हैं। इस पर्यवेक्षण में आज्ञा, निर्देश, नियमों पर विशेष बल होता है। पर्यवेक्षण की एक पारम्परिक कार्य विधि होती है। इस पर्यवेक्षण में पूर्व नियोजित, निश्चित विशेष शिक्षण विधियों के क्रियान्वयन पर अधिक जोर होता है, अत: शिक्षक पर्यवेक्षण के समय उन्हीं विधियों को अपनाते देखे जाते हैं। पर्यवेक्षण के बाद, पर्यवेक्षक निर्धारित मानदण्डों व विधियों के आधार पर शिक्षण की सफलता या प्रशासन की सफलता को आंकता है। निश्चित विधियों और कार्य प्रणालियों में दक्ष शिक्षकों की प्रशंसा की जाती है। उन कार्य विधियों की निन्दा की जाती है, जिन्हें पर्यवेक्षक उपयुक्त नहीं समझते।

### इस पर्यवेक्षण के लाभ

(1) निश्चित कार्यविधि, कार्य-व्यवस्था की दृष्टि से उपयुक्त होती है।

(2) अधिकारी के आने के भय से कार्यक्रम नियमित व विधिपूर्वक सम्पन्न होते हैं।

(3) दण्ड के भय से तथा सेवा में उन्नति के अवसरों में विपरीत निरीक्षण रिपोर्ट के परिणामस्वरूप विकास में बाधा के कारण शिक्षक पूर्ण निष्ठा और लगन से कार्य करते हैं।

(4) समय व साधनों की बचत होती है।

(5) कार्य प्रणाली में सुधार शीघ्रता से होता है।

**दोष**–इस पर्यवेक्षण प्रकार की आज के युग में सर्वाधिक आलोचना की जाती है। उसका मुख्य कारण इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि है। अत: इसके प्रमुख दोष निम्नानुसार हैं–

(1) यह छिद्रान्वेषी है

(2) संकुचित मनोवृत्ति पर आधारित है।

(3) अविश्वास पर आधारित है।

नोट

(4) वैयक्तिक सृजनशीलता में बाधक है।

(5) मानवीय मूल्यों के विपरीत है।

(6) इसमें शिक्षकों की मौलिकता व स्वत्व का ह्रास होता है।

(7) विद्यालय में नीरस पर्यावरण को जन्म देता है।

(8) शिक्षकों के मनोभावों को दबाया जाता है, उनकी अभिव्यक्ति में बाधक है।

(9) आधुनिक जनतंत्रीय मूल्यों यथा–समानता, सहकार, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति आदि में बाधक है।

(10) आत्मविश्लेषण, समालोचना का अभाव है।

(11) संकीर्ण मनोवृत्ति पर आधारित है।

(12) मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के विपरीत है।

**3. निरोधात्मक पर्यवेक्षण**–यह पर्यवेक्षण, प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक दोनों की कठिनाइयाँ जानने के लिए होता है। पर्यवेक्षक शिक्षकों की कठिनाइयों के निराकरण में योग देता है। पर्यवेक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने क्षेत्र में पर्याप्त अनुभवी हो। यह पर्यवेक्षण भी आधिकारिक पर्यवेक्षण के समान है। अन्तर सिर्फ इतना है कि पर्यवेक्षण शिक्षकों की कठिनाइयों को जानकर, उनके आधार पर सुधारों के लिए कार्य करता है। इसके लिए वैयक्तिक पर्यवेक्षक या निश्चित उपकरणों का भी प्रयोग किया जा सकता है। अत: पर्यवेक्षक न केवल अनुभवी परन्तु निरीक्षण/पर्यवेक्षण तकनीकों में भी दक्ष होना चाहिए।

**4. लोकतन्त्रीय पर्यवेक्षण**–इस पर्यवेक्षण को सहयोगी पर्यवेक्षण भी कहा जाता है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण में प्रधानाध्यापक, शिक्षक, विशेषज्ञ आदि सभी संबद्ध व्यक्ति परस्पर सहयोग से योजनानुसार एक-दूसरे की समस्या निदान एवं सुलझाने में योग देते हैं। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि शिक्षक यह जानता है कि पर्यवेक्षण उसके शैक्षिक एवं व्यावहारिक विकास के लिए है, उसका उद्देश्य मात्र त्रुटि निकालने के लिए और उनका उपयोग उसके विरुद्ध करने के लिए नहीं है।

वस्तुत: यह पर्यवेक्षण आधुनिक दर्शन के अनुरूप है जिसमें हर व्यक्ति को सम्मान से देखा जाता है। जनतंत्रीयता दर्शन में समानता, सहकार, सहयोग, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मुख्य रूप से आते हैं। अत: स्वाभाविक है कि इस प्रकार के पर्यवेक्षण में लोकतन्त्र के आदर्शों का ध्यान दिया जाए।

इस पर्यवेक्षण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

(1) यह पर्यवेक्षण नेतृत्व के गुणों का विकास करता है।

(2) इस पर्यवेक्षण में समग्र शिक्षण, प्रशिक्षण सम्बन्धी परिस्थितियों का व्यापक मूल्यांकन होता है।

(3) अध्यापन सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण सम्भव होता है।

(4) सामूहिक सहयोग से लिये गये निर्णयों की क्रियान्विति सम्भव होती है, क्योंकि वे निर्णय स्वयं उनके ही होते हैं।

(5) लोकतंत्रीय मूल्यों का सम्मान किया जाता है।

(6) शिक्षक के व्यक्तित्व का सम्मान किया जाता है।

यों तो यह पर्यवेक्षण सर्वोत्तम माना जाता है, किन्तु फिर भी इसकी कतिपय सीमाएं हैं–

(1) पर्यवेक्षकों का कम योग्य होना,

(2) अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या अधिक होना,

(3) अल्पकालीन प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापक,

(4) अध्यापकों के ज्ञान और मौलिकता में कमी का होना एवं

(5) कुशल पर्यवेक्षकों की तुलना में अध्यापकों की संख्या अधिक होना।

नोट

**5. वैज्ञानिक पर्यवेक्षण**–आधुनिक पर्यवेक्षण वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक पर्यवेक्षण का अर्थ हुआ कि यह क्रमबद्ध, वैध तथा अविश्वसनीय है। इसकी आधुनिक तकनीक, पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर विकसित हुई है क्योंकि विज्ञान की उपलब्धियों का प्रभाव पर्यवेक्षण की तकनीक पर भी पड़ा है।

अय्यर ने इस पर्यवेक्षण के बारे में कहा है कि "वैज्ञानिक पर्यवेक्षण वह है जिसमें अनुदेशों में सुधार के लिए मापने योग्य नियन्त्रित विधियों का प्रयोग होता है तथा ये विधियां वैध एवं विश्वसनीय हैं।"

**वैज्ञानिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ–**

(1) व्यवस्थित, क्रमबद्ध, वैध तथा विश्वसनीय विधियों का प्रयोग होता है।

(2) निष्कर्ष विश्वसनीय होते हैं, अत: सभी को मान्य होते हैं।

(3) निष्कर्ष पर्यवेक्षण सिद्धान्तों के विकास में योग देते हैं।

(4) अविश्वास की स्थिति में प्रक्रिया की पुनरावृत्ति की जा सकती है।

(5) सर्वमान्य शैक्षिक विकास के लिए आधार प्रस्तुत करते हैं।

**परिसीमाएँ–**

(1) अध्यापकों एवं पर्यवेक्षकों का इन विधियों में दक्ष न होना।

(2) अनेक परिस्थितियों का यथा बातचीत के अतिरिक्त व्यवहार के बारे में निर्णय न दे पाना।

(3) अनेक उपकरण तथा विडियो टेप, सी. सी. टी. वी., कम्प्यूटर का आसानी से उपलब्ध न होना, आदि अनेक बाधाएं हैं, जो सामान्य स्तर पर पर्यवेक्षण में इन विधियों के प्रयोग को रोकती हैं।

(4) अभी तक इन विधियों का प्रयोग परीक्षण के तौर पर ही हुआ है।

**6. रचनात्मक पर्यवेक्षण**–निरीक्षणात्मक अथवा आधिकारिक पर्यवेक्षण में जहां वैयक्तिक सृजनता, उसके कार्य की मौलिकता को आघात पहुँचता है, इसके विपरीत रचनात्मक पर्यवेक्षण वैयक्तिक सृजनता व मौलिकता के विकास का आधार प्रस्तुत करता है। इस पर्यवेक्षण में परिवीक्षण अधिकारी स्टाफ के कर्मचारियों के उन गुणों का पता लगाकर जो किसी क्षेत्र विशेष में उल्लेखनीय हैं, उन गुणों के विकास के लिए समुचित पर्यावरण, सुविधाएं तथा प्रोत्साहन प्रदान करता है।

उदाहरणार्थ नवीन शैक्षणिक विधियों शैक्षणिक प्रयोगों को प्रशंसा के भाव से देखा जाता है। इससे उसके स्टाफ में उच्च रचनात्मकता का विकास होता है।

*नोट्स* रचनात्मक पर्यवेक्षण यह स्वीकार करता है कि हर व्यक्ति में कुछ न कुछ श्रेष्ठ गुण होते हैं और उनका समुचित अवसर देने से विकास किया जा सकता है। अत: पर्यवेक्षक/प्रशासक अपनी सूक्ष्म दृष्टि से गुणों को परख कर, आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करता है। इससे उसके विद्यालय में अनेक मौलिक कार्यों का विकास होता है।

**रचनात्मक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ–**

(1) शिक्षकों और छात्रों के सृजनशील गुणों का विकास होता है।

(2) नई-नई शिक्षण विधियों के प्रयोग परीक्षण के अवसर प्राप्त होते हैं।

(3) शिक्षकों को अपनी नवीनता के कार्य के प्रति सन्तोष होता है, जब उसके कार्य को सराहा जाता है।

(4) छात्रों और शिक्षकों की रुचियों में संशोधन होता है। उनके सृजनशील गुणों का विकास होता है।

नोट

(5) नवीन कार्य करने के प्रति एक स्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता का विकास होता है।

(6) नवीन प्रयोग, विधियां, शिक्षक समुदाय तथा शिक्षा जगत के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं।

**सीमाएँ–**

(1) विद्यालय, शिक्षा विभाग और बोर्ड के नियम और निदेशों के अनुरूप चलते हैं जिसमें नवीन प्रयोगों के लिए अवसर प्राप्त नहीं है।

(2) हर नया प्रयोग चाहे शिक्षण विधियाँ ही क्यों नहीं, भौतिक व वित्तीय संसाधनों की मांग करता है, जिसका अभाव प्राय: विद्यालय में रहता है।

(3) सृजनशील नेतृत्व के बिना इस प्रकार का पर्यवेक्षण संभव नहीं है।

(4) नेतृत्व परिवर्तन के साथ, नये प्रयोग, रचनाएं समाप्त हो जाती हैं।

(5) प्रशासन में तानाशाही प्रभाव व्याप्त होने से सार्थक सहयोग का अभाव ही रहता है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. क्लिनिकल पर्यवेक्षण का संप्रत्यय ..... से लिया गया है।
2. क्लिनिकल पर्यवेक्षण विधि का एक आब्जर्वेशन चक्र है जिसे ..... कहा जाता है।
3. निरोधात्मक पर्यवेक्षण ..... दोनों कठिनाइयाँ जानने के लिए होता है।
4. लोकतंत्रीय पर्यवेक्षण को ..... पर्यवेक्षण भी कहा जाता है।
5. ..... क्रमबद्ध, वैध तथा विश्वसनीय है।

## 17.4 सारांश (Summary)

- पर्यवेक्षण का संबंध शैक्षिक विकास से है। प्रभावी पर्यवेक्षण शैक्षिक गुणवत्ता विकास में सहायक है। परन्तु वर्तमान में पर्यवेक्षण की स्थिति संतोषजनक नहीं है। इसका एक प्रमुख कारण पर्यवेक्षण की पुरानी अवधारणा है जिसके अनुसार पर्यवेक्षण छिद्रान्वेषी माना जाता है। अत: शिक्षकों द्वारा इसका स्वागत नहीं किया जाता। आधुनिक पर्यवेक्षण सकारात्मक जनतन्त्रीय व सहयोगी है और उसका प्रमुख लक्ष्य शिक्षा या शिक्षण में विकास लाना है। विद्यालयी पर्यवेक्षण का अभिप्राय विद्यालय शैक्षिक संस्थतियों में सुधार करना है। विद्यालय पर्यवेक्षण की प्रमुख रूप से दो भूमिकाएं हैं–

  (1) निदानात्मक भूमिका (2) मार्गदर्शन सम्बन्धी भूमिका।
- निदानात्मक भूमिका के अन्तर्गत कक्षा शिक्षण का अवलोकन, शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को दिए गए कार्य का अवलोकन तथा प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षकों को दिए गए कार्य का पर्यवेक्षण आता है, जबकि मार्गदर्शन सम्बन्धी भूमिकायें शिक्षकों की व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करना, शैक्षिक त्रुटियों को दूर करना तथा सशक्त पक्षों का विकास करना एवं अन्य शिक्षेत्तर क्षेत्रों में शिक्षकों का विकास आता है।
- पर्यवेक्षण के मुख्य प्रकारों में–(1) क्लिनिकल पर्यवेक्षण, (2) निरीक्षात्मक पर्यवेक्षण (3) नियन्त्रणात्मक या निरोधात्मक पर्यवेक्षण (4) सहयोगी तथा लोकतन्त्रीय पर्यवेक्षण (5) वैज्ञानिक पर्यवेक्षण (6) रचनात्मक पर्यवेक्षण हैं–प्रधानाध्यापक को स्थिति के अनुसार पर्यवेक्षण का प्रकार अपनाना चाहिए। व्यक्तियों की संख्या के आधार पर दो प्रकार का पर्यवेक्षण होता है। वैयक्तिक पर्यवेक्षण व पैनल पर्यवेक्षण।
- शिक्षा प्रबन्ध प्रशासन व पर्यवेक्षण के संदर्भ में विशेषकर विद्यालय पर्यवेक्षण के क्षेत्र में लगभग 15% अनुसंधान हुए हैं। इन अनुसंधानों में पर्यवेक्षण की स्थिति अत्यंत निराशाजनक पाई गई है इस स्थिति में सुधार के लिए पर्यवेक्षण को, प्रशासन व प्रबन्ध से अलग किया जाये तभी इस स्थिति में सुधार सम्भव है।

नोट

- यह निर्विवाद स्वीकार किया जाता है कि शिक्षक मानवीय विकास के कार्यक्रमों से सम्बद्ध है। उसे राष्ट्र के भाग्य का निर्माता तथा सामाजिक परिवर्तन का अभिकर्ता माना जाता है। अत: इतने महत्वपूर्ण कार्य के लिए आवश्यक है कि शिक्षण व्यवसाय में आने से पूर्व तथा बाद में सेवारत रहने पर उसके कार्यों में नियमित पर्यवेक्षण द्वारा उत्तरोत्तर सहयोग किया जाये जिससे एक ओर स्वयं उसका विकास होगा दूसरी ओर भावी पीढ़ी के शैक्षिक स्तर में सुधार होगा।
- आधुनिक युग के लगभग सभी शिक्षाशास्त्री यथा–क्रासबी (1957) हैरिस (1963) कुर्टिन (1964) विल्स (1967) हैराल्ड एवं मूर (1968) इस बात को स्वीकार करते हैं कि पर्यवेक्षण का लक्ष्य शिक्षण में सुधार से सम्बन्ध रखता है नीगेल एवं इवांस इनसे और भी एक कदम आगे चलकर स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार पर्यवेक्षण क्षेत्र के अन्तर्गत न केवल शिक्षक एवं विद्यार्थी, वरन् प्रशासक एवं अभिभावक के शैक्षिक विकास को भी सम्मिलित करते हैं।
- विद्यालय पर्यवेक्षण, शैक्षिक पर्यवेक्षण का ही एक भाग है। इसके अन्तर्गत विद्यालय के अध्यापन-अधिगम संस्थितियों के पर्यवेक्षण के साथ-साथ विद्यालय की अनुप्रवृत्तियों यथा–खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यकलाप, विद्यालय, कार्यालय, भवन आदि विद्यालय से सम्बन्धित सभी भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का पर्यवेक्षण सम्मिलित है।
- यह पर्यवेक्षण का परम्परागत स्वरूप है, जिसमें यह मानकर चला जाता है कि पर्यवेक्षण अधिकारी सर्व ज्ञाता होता है, उसका उद्देश्य केवल त्रुटियों का पता लगाना होता है। इस पर्यवेक्षण में यह भी माना जाता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों व विषयों की भिन्न विधियां हैं, जिनके प्रयोग से शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
- यह पर्यवेक्षण, प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक दोनों की कठिनाइयां जानने के लिए होता है। पर्यवेक्षक शिक्षकों की कठिनाइयों के निराकरण में योग देता है। पर्यवेक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने क्षेत्र में पर्याप्त अनुभवी हो। यह पर्यवेक्षण भी आधिकारिक पर्यवेक्षण के समान है। अन्तर सिर्फ इतना है कि पर्यवेक्षण शिक्षकों की कठिनाइयों को जानकर, उनके आधार पर सुधारों के लिए कार्य करता है। इसके लिए वैयक्तिक पर्यवेक्षक या निश्चित उपकरणों का भी प्रयोग किया जा सकता है।
- इस पर्यवेक्षण को सहयोगी पर्यवेक्षण भी कहा जाता है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण में प्रधानाध्यापक, शिक्षक, विशेषज्ञ आदि सभी संबद्ध व्यक्ति परस्पर सहयोग से योजनानुसार एक-दूसरे की समस्या निदान एवं सुलझाने में योग देते हैं।
- आधुनिक पर्यवेक्षण वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक पर्यवेक्षण का अर्थ हुआ कि यह क्रमबद्ध, वैध तथा विश्वसनीय है। इसकी आधुनिक तकनीक, पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर विकसित हुई है क्योंकि विज्ञान की उपलब्धियों का प्रभाव पर्यवेक्षण की तकनीक पर भी पड़ा है।
- निरीक्षणात्मक अथवा आधिकारिक पर्यवेक्षण में जहां वैयक्तिक सृजनता, उसके कार्य की मौलिकता को आघात पहुँचता है, इसके विपरीत रचनात्मक पर्यवेक्षण वैयक्तिक सृजनता व मौलिकता के विकास का आधार प्रस्तुत करता है।

## 17.5 शब्दकोश (Keywords)

- **क्रमोन्नति**–क्रमश: उन्नति।
- **संकीर्ण**–संकुचित, निम्नकोटि।

नोट

## 17.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आधुनिक पर्यवेक्षण की संकल्पना को समझाइए। यह संकल्पना अपने पुराने संप्रत्यय से किस प्रकार भिन्न है?
2. पर्यवेक्षण का क्या अर्थ है? इसकी प्रकृति का विवेचन कीजिए।
3. पर्यवेक्षण की जनतांत्रिक शैली व नियंत्रणात्मक पर्यवेक्षण में से आप किसे पसंद करेंगे और क्यों?
4. भारत में पर्यवेक्षण क्षेत्र में अनुसंधानों की क्या स्थिति है?

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

**1.** 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य
4. सत्य 5. सत्य

**2.** 1. मेडिकल साइन्स 2. क्लिनिकल आब्जर्वेशन चक्र 3. प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक
4. सहयोगी 5. वैज्ञानिक पर्यवेक्षण।

## 17.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–18: प्रभावी पर्यवेक्षक के गुण (Qualities of an effective Supervisor)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

18.1 प्रभावी पर्यवेक्षण एवं पर्यवेक्षक के गुण (Qualities of Effective Supervision and Supervisor)

18.2 शिक्षा पर्यवेक्षण का क्षेत्र (Scope of Educational Supervision)

18.3 पर्यवेक्षण और निरीक्षण में अन्तर (Difference between Supervision and Inspection)

18.4 सारांश (Summary)

18.5 शब्दकोश (Keywords)

18.6 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

18.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रभावी पर्यवेक्षक के गुणों का विवेचन करने में।
- शिक्षा पर्यवेक्षण के क्षेत्र और पर्यवेक्षण व निरीक्षण के बीच अन्तर की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

'पर्यवेक्षण' शब्द अंग्रेजी भाषा के Supervision शब्द का पर्याय है। पर्यवेक्षण दो शब्दों परि (Super) + अवेक्षण (vision) से मिलकर बना है। Super का अर्थ 'असाधारण', 'अलौकिक' अथवा 'दिव्य' होता है तथा vision का अर्थ 'दृष्टि' अर्थात् ऐसी दृष्टि जो दिव्य अथवा अत्यन्त सूक्ष्म हो, यह पर्यवेक्षण के अंतर्गत आती है।

अतएव पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा दूसरे के कार्यों का अवलोकन करके उन्हें उचित निर्देशन भी प्रदान करना है।

## 18.1 प्रभावी पर्यवेक्षण एवं पर्यवेक्षक के गुण (Qualities of Effective Supervision and Supervisor)

आधुनिक पर्यवेक्षण द्वारा छात्रों एवं अध्यापकों के व्यक्तित्व का सर्वाधिक विकास किया जा सकता है। आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषतायें जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुकूल हैं। इनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षा विकास की प्रक्रिया** (Process) **है**–आधुनिक प्रत्यय के द्वारा शिक्षा का पूर्ण विकास पर्यवेक्षण द्वारा ही सम्भव है। इसकी नवीन विधियों, प्रविधियों, उपकरणों एवं आयामों द्वारा शिक्षा की सभी क्रियाओं को विकसित किया जाता है।

नोट

2. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय प्रजातान्त्रिक** (Democratic) **है**–पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय के अन्तर्गत पर्यवेक्षण एक सहयोगी, निर्देशक, परामर्शदाता तथा मैत्रीपूर्ण रूप से अपने सुझाव शिक्षकों को दिए जाते हैं। अतएव पर्यवेक्षण का आधार प्रजातांत्रिक है।
3. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय एक तकनीकी** (Technical) **सेवा है**–शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा मौलिक, रचनात्मक एवं वस्तुनिष्ठ शैक्षिक क्रियाओं को पूरा किया जाता है। अतएव इसको एक तकनीकी सेवा द्वारा सम्बोधित किया गया है।
4. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय एक परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है**–शैक्षिक पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय के अन्तर्गत पर्यवेक्षक का प्रत्येक कार्य एक सहयोगी एवं मैत्रीपूर्ण परामर्शदाता के रूप में होता है। उसके सुझाव उपयोगी होते हैं।
5. **इसके द्वारा वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय पर्यवेक्षण पर बल** (Emphasis on Objective and Relative Supervision) **दिया जाता है**–शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रत्येक क्रिया वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय रूप में सम्पन्न की जाती है। पर्यवेक्षण के द्वारा दिये गये सुझाव एवं विधियाँ पूर्णत: विश्वसनीय होते हैं।
6. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय विद्यालय अन्त:क्रिया का गत्यात्मक** (Dynamic) **रूप है**– इसके द्वारा विद्यालय की सभी अन्त:क्रियाओं को निरन्तर आगे बढ़ाया जाता है तथा समाज के अनुरूप परिवर्तित किया जाता है।
7. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय योजनाबद्ध पर्यवेक्षण** (Emphasis on Planned Supervision) **पर बल देता है**–पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षा के सभी कार्यों को नियोजित रूप प्रदान करता है तथा इसकी रूपरेखा को सुनिश्चित करता है।
8. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय वैज्ञानिक विधि** (Scientific Method) **प्रदान करता है**– इसके द्वारा जो विधि अथवा नवीन पद्धति अपनाई जाती है वह पूर्णतया परीक्षित एवं विश्वसनीय होती है। आधुनिक पर्यवेक्षण में वैज्ञानिक विधि को अपनाया जाता है। इस पर्यवेक्षण में विभिन्न कार्यक्रमों में समस्या का चयन, तथ्यों का संकलन तथा वर्गीकरण, परिकल्पना का निर्माण, व्याख्या एवं सामान्यीकरण, सम्भावित विधियों का चयन आदि वैज्ञानिक विधियों के सोपानों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके द्वारा प्रत्येक कार्य को गहन परीक्षण तथा गम्भीर विचार करके किया जाता है।

*क्या आप जानते हैं* आधुनिक पर्यवेक्षण प्राचीन तथा परम्परागत विधियों में विश्वास नहीं रखता।

## 18.2 शिक्षा पर्यवेक्षण का क्षेत्र (Scope of Educational Supervision)

वर्तमान समय में शिक्षा विकास की नींव माना जाता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण उत्तम शिक्षण प्रक्रिया में पूर्णरूपेण सहायक सिद्ध हुई है। अतएव देश की सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया को समृद्ध बनाने के लिए शैक्षिक पर्यवेक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है यह निम्न प्रकार है–

1. **शिक्षकों के निरन्तर विकास में सहायक** (Continuous Assistance for the Growth of the Teachers)–शिक्षण क्षेत्र में निरन्तर नवीन विधियों, अनुसंधानों तथा आयामों का प्रादुर्भाव होता रहता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा आयोजित विचार गोष्ठियों के परिणामों से भी शिक्षकों को अवगत कराया जाता है। सामाजिक परिवर्तन के साथ शिक्षण व्यवसाय में क्या परिवर्तन किये जाएँ, इसके लिए भी शैक्षिक पर्यवेक्षण सदैव सहायक होता है।
2. **शैक्षिक कार्यकर्त्ताओं की कार्यक्षमता में सुधार करना** (Improvement in the efficiency of the Educational workers)–पर्यवेक्षण शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। पर्यवेक्षण द्वारा विद्यालय सम्बन्ध सभी कार्यकर्त्ताओं के कार्य की रूपरेखा निश्चित की जाती है ताकि उनकी कार्यक्षमता को उन्नत किया जा सके।

नोट

3. **शिक्षक के कार्यों में सुधार लाना** (Improvement in Teacher activities)—पर्यवेक्षण के माध्यम से शिक्षक के कार्यों को सुनिश्चित एवं प्रभावपूर्ण किया जाता है। साथ ही पर्यवेक्षण शिक्षण स्तर के विकास तथा शिक्षण की उचित व्यवस्था हेतु भी आवश्यक होता है।
4. **कक्षा शिक्षण को उन्नत व प्रभावशाली बनाना** (To make the effective class room teaching)—शिक्षक के कक्षा-शिक्षण को प्रभावशाली व आकर्षक बनाने हेतु पर्यवेक्षक की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसमें शिक्षक की कमियों का पता लगाकर उनमें सुझाव प्रदान किये जाते हैं।
5. **विद्यालय की अन्तःक्रिया में सुधार करना** (Improvement for the interactivity of the school)—पर्यवेक्षण विद्यालय क्रियाओं का केन्द्र माना जाता है। प्रत्येक कार्य हेतु इसकी नितान्त आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में रेम्सीयर महोदय का कथन अधिक उपयुक्त है—

   "पर्यवेक्षण विद्यालय प्रक्रिया का गत्यात्मक रूप लिये हुये है। क्या होना चाहिए तथा क्या है? इसमें कौन-कौन सी खामियाँ हैं? इसका संकेत केवल शैक्षिक पर्यवेक्षण ही प्रदान करता है।
6. **शैक्षिक नीतियों का निर्धारण करना** (To determine the Educational Policies)—पर्यवेक्षण द्वारा शैक्षिक नीतियों का निर्धारण किया जाता है। साथ ही प्रत्येक नीति सम्बन्धित आवश्यक कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जाती है।
7. **व्यावसायिक समस्याओं का निराकरण** (Removal of professional problems)—विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के उपरान्त उन्हें अनेक सामयिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उत्तम पर्यवेक्षण इन सभी समस्याओं के निराकरण में सक्षम होता है।
8. **विद्यालय संगठन व प्रशासकीय कार्यों हेतु** (For the schoolnization and Administration activities)— विद्यालय की नीव संगठनात्मक तथा प्रशासकीय कार्यों पर रखी जाती है जबकि उसको आगे बढ़ाने का कार्य पर्यवेक्षण द्वारा किया जाता है। वास्तव में किन-किन प्रशासकीय कार्यों को किया जाए, इसका सम्पूर्ण भाग शैक्षिक पर्यवेक्षण पर ही निर्भर करता है। अत: पर्यवेक्षण विद्यालय संगठन हेतु अत्यन्त आवश्यक है।
9. **नवीन शिक्षण विधियों व सामग्री के विकास हेतु** (Development for the new teaching methods and materials)—शिक्षण के अन्तर्गत नवीन विधियों, प्रविधियों तथा सहायक सामग्री हेतु पर्यवेक्षण की अत्यन्त आवश्यकता होती है। पर्यवेक्षण द्वारा नये-नये उपकरणों के प्रयोग पर बल दिया जाता है ताकि शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सके।
10. **शिक्षक वर्ग की तकनीकी सहायता** (For expert technical assistance to the teachers)—शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं जटिल है। वर्तमान युग में यह स्वीकार किया जाता है कि साधारण योग्यता वाले व्यक्ति पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकते।

शिक्षण के लिए विविध प्रकार के पाठ्यक्रम को तैयार करना होता है तथा शिक्षण कौशल को ठीक प्रकार से सीखना होता है। इसके लिए विशेष कौशल तथा तकनीकी सहायता की आवश्यकता होती है। यह सहायता कार्य उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण द्वारा ही सफल हो सकता है।

*नोट्स* अनुभवी अध्यापकों को अद्यतन बनाने के लिए शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत विविध पाठ्यक्रमों का संचालन किया जाता है जिससे उनकी शैक्षिक योग्यता में वृद्धि होती है।

नोट

## 18.3 पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण में अन्तर (Difference between Supervision and Inspection)

शिक्षा प्रशासन की प्रमुख क्रिया पर्यवेक्षण है जो एक सहायक प्रणाली के रूप में कार्य करती है। प्रशासन के अन्तर्गत जिन क्रियाओं तथा नीतियों का सम्पादन किया जाता है वे कहाँ तक सार्थक हैं अथवा सुचारू रूप संचालित की जा रही हैं उसके लिए पर्यवेक्षण किया जाता है। प्रधानाचार्य तथा कुलपति का उत्तरदायित्व होता है कि वह संचालित कार्यक्रमों का सर्वेक्षण करे और विकास हेतु सुझाव दे। प्रबन्ध समिति चाहे तो वह भी पर्यवेक्षण कर सकती है। इस प्रकार पर्यवेक्षण शिक्षा प्रशासन को प्रभावशाली बनाने में सहायक होता है।

निरीक्षण की क्रिया औपचारिक होती है। विद्यालयों का दो वर्ष बाद या तीन वर्ष बाद निरीक्षण होता है। शिक्षा विभाग द्वारा निरीक्षण किया जाता है राज्य स्तर पर अथवा जिला स्तर जो शिक्षा विभाग है उनके द्वारा निरीक्षण का आयोजन किया जाता है। साधारण जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा विद्यालयों का निरीक्षण किया जाता है। निरीक्षण हेतु विशिष्ट व्यक्तियों का पैनल नियुक्त किया जाता है जो अपने क्षेत्र के कार्य-कलापों का निरीक्षण करके आलेख तैयार करते हैं। प्रबन्धन तथा प्रशासन दोनों का ही निरीक्षण किया जाता है। जो अनुदान दिये गये हैं उनका सही उपयोग तथा प्रशासन ने किया है इसका निरीक्षण किया जाता है शिक्षण कार्यों, खेल-कूद, पुस्तकालय, वाचनालय आदि सुविधाओं का निरीक्षण किया जाता है। विद्यालय में अनियमितताओं को जानने का प्रयास किया जाता है। इस निरीक्षण का उद्देश्य जाँच करना होता है। पर्यवेक्षण अनौपचारिक होता है कभी-कभी तथा कितने ही बार किया जा सकता है।

(1) 'निरीक्षण' एक औपचारिक क्रिया है जिससे यथातथ्य जानकारी की जाती है पर्यवेक्षण एक अनौपचारिक क्रिया है जिससे दिन प्रतिदिन की होने वाली क्रियाओं की वास्तविक जानकारी की जाती है। तथा सुधार हेतु सुझाव दिये जाते हैं।

(2) 'निरीक्षण' शब्द से सतर्कता तथा आशंका व्याप्त होती है। इसके लिए बड़ी तैयारी की जाती है। पर्यवेक्षण से सहायता तथा सहानुभूति प्रकट होती है। इनमें अच्छे कार्यों हेतु पुनर्बलन भी दिया जाता है। कार्यकर्त्ता अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहते हैं।

(3) शिक्षा निरीक्षण के अन्तर्गत स्वामित्व तथा भय लगता है किन्तु पर्यवेक्षण में समानता का भाव प्रगट होता है। निरीक्षण के प्रभाव अक्सर अच्छे नहीं होते हैं। वित्तीय अनियमितताओं से अनुदान बन्द कर दिया जाता है।

(4) शिक्षा निरीक्षण में शिक्षकों के अध्यापन कार्यों की आलोचना ही की जाती है। सन्तोषजनक अध्यापन न होने पर उनकी प्रगति भी रोक दी जाती है। पर्यवेक्षण एक सुधारात्मक तथा रचनात्मक क्रिया है। अध्यापकों को शिक्षण तथा अन्य कार्यों हेतु सुझाव दिये जाते हैं, उत्तम कार्यों हेतु पर्यवेक्षण देते हैं।

(5) निरीक्षण की क्रिया का मुख्य कार्य आख्या तैयार करना है। उसकी प्रति जिला विद्यालय निरीक्षण तथा लेखा विभाग को भेज दी जाती है। अनियमितताओं के सम्बन्ध में आख्या मांगी जाती है। सन्तोषजनक उत्तर न मिलने पर अनुदान तथा अन्य प्रकार की सहायता रोक दी जाती है। अधिक अनियमितताओं की परिस्थिति में विद्यालय की मान्यता भी समाप्त कर देते हैं। परन्तु पर्यवेक्षण कार्य का उद्देश्य शिक्षा प्रशासन को प्रभावशाली बनाना होता है। यह सहायक प्रणाली का कार्य करती है। विद्यालय की कार्य-प्रणाली को सुचारू रूप से संचालित करने में सहायक होती है।

*टास्क* निरीक्षण प्रक्रिया के क्या उद्देश्य होते हैं?

नोट

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. पर्यवेक्षण एक ..... क्रिया है।
2. निरीक्षण एक ..... क्रिया है।
3. निरीक्षण शब्द से ..... व्याप्त होती है।
4. पर्यवेक्षण से ..... प्रकट होती है।
5. पर्यवेक्षण एक सुधारात्मक तथा ..... क्रिया है।

## 18.4 सारांश (Summary)

- आधुनिक पर्यवेक्षण द्वारा छात्रों एवं अध्यापकों के व्यक्तित्व का सर्वाधिक विकास किया जा सकता है। आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुकूल हैं।
- पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय के अन्तर्गत पर्यवेक्षण द्वारा एक सहयोगी, निर्देशक, परामर्शदाता तथा मैत्रीपूर्ण रूप से अपने सुझाव शिक्षकों को दिए जाते हैं। अतएव पर्यवेक्षण का आधार प्रजातांत्रिक है।
- शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रत्येक क्रिया वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय रूप में सम्पन्न की जाती है। पर्यवेक्षण के द्वारा दिये गये सुझाव एवं विधियाँ पूर्णत: विश्वसनीय होते हैं।
- इसके द्वारा जो विधि अथवा नवीन पद्धति अपनाई जाती है वह पूर्णतया परीक्षित एवं विश्वसनीय होती है। आधुनिक पर्यवेक्षण में वैज्ञानिक विधि को अपनाया जाता है। इस पर्यवेक्षण में विभिन्न कार्यक्रमों में समस्या का चयन, तथ्यों का संकलन तथा वर्गीकरण, परिकल्पना का निर्माण, व्याख्या एवं सामान्यीकरण, सम्भावित विधियों का चयन आदि वैज्ञानिक विधियों के सोपानों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
- शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा आयोजित विचार गोष्ठियों के परिणामों से भी शिक्षकों को अवगत कराया जाता है। सामाजिक परिवर्तन के साथ शिक्षण व्यवसाय में क्या परिवर्तन किये जाएँ, इसके लिए भी शैक्षिक पर्यवेक्षण सदैव सहायक होता है।
- पर्यवेक्षण के माध्यम से शिक्षक के कार्यों को सुनिश्चित एवं प्रभावपूर्ण किया जाता है। साथ ही पर्यवेक्षण शिक्षण स्तर के विकास तथा शिक्षण की उचित व्यवस्था हेतु भी आवश्यक होता है।

## 18.5 शब्दकोश (Keywords)

- **आख्या**–विवरण।
- **खामियाँ**–कमजोरियाँ, कमी।

## 18.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रभावी पर्यवेक्षक की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. शिक्षा पर्यवेक्षण के क्षेत्र का विवेचन कीजिए।
3. पर्यवेक्षण की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
4. पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण में क्या अंतर है? स्पष्ट कीजिए।

नोट

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. अनौपचारिक
2. औपचारिक
3. सतर्कता एवं आशंका
4. सहायता तथा सहानुभूति
5. रचनात्मक।

## 18.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
4. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–19: विद्यालय निरीक्षण (School Inspection)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 विद्यालय निरीक्षण का अर्थ (Meaning of School Inspection)

19.2 विद्यालय निरीक्षण का इतिहास (History of School Inspection)

19.3 विद्यालय निरीक्षण के उद्देश्य (Objectives of School Inspection)

19.4 विद्यालय निरीक्षण के प्रकार (Types of School Inspection)

19.5 विद्यालय निरीक्षण की विधियाँ (Methods of School Inspection)

19.6 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति (Current Situation of School Inspection in India)

19.7 प्रचलित निरीक्षण प्रणाली में सुधार के सुझाव (Suggestions for Improvement of Current Inspection System)

19.8 भारत में निरीक्षण सुधार के प्रयास (Efforts for Improvement Inspection in India)

19.9 सारांश (Summary)

19.10 शब्दकोश (Keywords)

19.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

19.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विद्यालयी निरीक्षण का अर्थ, उद्देश्य, प्रकार एवं विधियों की व्याख्या करने में;
- भारत में प्रचलित निरीक्षण प्रणाली की वर्तमान स्थिति एवं उसमें सुधार के सुझावों का विश्लेषण करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

निरीक्षण का शाब्दिक अर्थ किसी वस्तु का अवलोकन होता है। शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक कार्यों के अवलोकन को निरीक्षण कहा जा सकता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो आधुनिक पर्यवेक्षण ही निरीक्षण का परिष्कृत स्वरूप है। प्रारंभिक दर्शन के अनुरूप निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यालयों में उपस्थित विद्यार्थी, शिक्षक और प्रशासकों का विकास है। इसमें विद्यालय और समाज का विकास भी सम्मिलित है।

नोट

## 19.1 विद्यालय निरीक्षण का अर्थ (Meaning of School Inspection)

वेब्स्टर (Webster) अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार निरीक्षण का अर्थ विद्यालय के कार्यों का निरीक्षण विद्यालय-निरीक्षण कहा जा सकता है। डॉ. मुखर्जी के अनुसार–वरिष्ठ अध्यापक अथवा प्रधानाध्यापक द्वारा किये गये मूल्यांकन को निरीक्षण कहा जाता है।

वास्तव में निरीक्षण की भूमिका देश, समय और परिस्थिति के अनुसार बदलती रही है। उपरोक्त परिभाषाओं में निरीक्षण को उत्प्रेरक विकास, शिक्षकों की सहायक प्रक्रिया, शिक्षण सुधार तथा विकास, शिक्षण में सहायता, शिक्षकों की शक्ति को विकसित करना, शिक्षकों की समस्याओं को हल करना, सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन आदि के रूप तथा अर्थ में ही शिक्षा निरीक्षण को मान्य किया गया है।

*क्या आप जानते हैं* यूनेस्को रिपोर्ट के अनुसार, शिक्षा निरीक्षण का उद्देश्य शिक्षण में उन्नति करना है। निरीक्षण ही आधार है जिस पर शिक्षण में उन्नति के सभी कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए।

## 19.2 विद्यालय निरीक्षण का इतिहास (History of School Inspection)

भारत में निरीक्षण के इतिहास की शुरूआत 'बुड के घोषणा-पत्र' 1854 की संस्तुति के बाद होती है, जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य में एक 'डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' की नियुक्ति हुई थी। पुनः इन डाइरेक्टरों के लिए शिक्षा की स्थिति का सही चित्र प्रस्तुत करने के लिए योग्य 'इन्स्पेक्टरों की आवश्यकता सुझायी गई। इन्स्पेक्टर का कार्य सामाजिक रूप से स्कूली और कॉलेजों की स्थिति का विवरण सरकार को भेजना होता था। इनका कार्य परीक्षा कराना व उनमें सहयोग देना भी था। अतः प्रारंभ से इन्स्पेक्टर का कार्य एक प्रकार से नियमों को लागू करने तथा त्रुटियों का निर्धारण करने के लिए ही हुआ।

1858 में स्कूलों को डाइरेक्टर की ओर से अनुदान की शर्तें प्रस्तुत की गई, जिसके अनुसार इन्स्पेक्टर को स्कूलों का निरीक्षण एवं अनुदान राशि की मात्रा निश्चित करने का भी अधिकार दिया गया। इस प्रकार इन्स्पेक्टर शिक्षा प्रशासन की एक उच्च अधिकृति के रूप में सामने आया। 1882 में 'हन्टर कमीशन' की सिफारिश पर इन्स्पेक्टर का कार्य शिक्षण की प्रभावहीनता को इस प्रकार देखता था कि जो अनुदान सरकार की ओर से दिया जा रहा है, उसका उपयोग किसी सीमा तक समुचित रूप से हो रहा है? बाद में इन्स्पेक्टरों को अनुशासन सम्बन्धी अधिकार भी दिये गये।

1908 में बंगाल के स्कूलों में राष्ट्रीय आन्दोलनों को हतोत्साहित करने के लिए और भी अधिकार दिये गये।

1928 में साइमन कमीशन की स्थापना हुई। उसने तत्कालीन विद्यालय निरीक्षण की कमियों की ओर ध्यान दिया। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी निरीक्षण की कमियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो समय इन्स्पेक्टर, इन्स्पेक्शन पर बिताते हैं, वह कम है, बल्कि अधिक समय वे प्रशासनिक कार्यों को देखने में लगाते हैं। आयोग ने कुछ कमियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया–

(1) निरीक्षण शाला में तानाशाह, सर्वेसर्वा बनकर आते हैं, जो केवल दोष ही ढूंढते हैं।

(2) अधिकतर निरीक्षक औपचारिकता निभाने के लिए आते हैं। वे न तो शैक्षिक विकास पर और न ही स्कूल के विकास पर जोर देते हैं।

(3) निरीक्षक का दृष्टिकोण रचनात्मक न होकर नकारात्मक होता है।

(4) स्कूलों की संख्या के अनुपात में निरीक्षकों की संख्या कम होती है, अतः वे पूरे स्कूलों को नियमित रूप से नहीं देख सकते।

नोट

'फोर्ड फाउण्डेशन' के तत्वावधान में एक अध्ययन दल ने भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में प्रयुक्त निरीक्षण प्रक्रिया का अध्ययन किया तथा सुधार हेतु निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किये।

(1) इन्स्पेक्टर को मानवीय सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए अपना कार्य पूरा करना चाहिए और अधिकारी की भावना दूर होनी चाहिए।

(2) इन्स्पेक्टर का कार्य बजाय निर्णय के, सुझाव देना है।

(3) इन्स्पेक्टरों के लिए विशेष प्रशिक्षण की जरूरत है।

(4) निरीक्षक को कई विधियों का ज्ञान होना चाहिए तथा उसको कई भाषाएँ आनी चाहिए।

नोट्स 1919 में सेडलर कमीशन ने निरीक्षण की आलोचना करते हुए लिखा कि निरीक्षण इन्स्पेक्शन अधिकांश जल्दबाजी में होता है तथा पाठन विधियों और व्यवस्था के सम्बन्ध में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों से रहित होता है, जो कि स्कूल, निरीक्षण के लिए महत्वपूर्ण है।

## 19.3 विद्यालय निरीक्षण के उद्देश्य (Objectives of School Inspection)

विद्यालय निरीक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं–

(1) निरीक्षण का प्रयोजन शिक्षकों के शिक्षण को प्रभावी बनाना है। निरीक्षण के माध्यम से शिक्षकों की कमियों को दूर करते हुए गुणों का विकास करके अच्छे शिक्षक तैयार किये जा सकते हैं।

(2) अध्यापकों को मार्गदर्शन देने का कार्य भी निरीक्षक का है। कोई भी मार्गदर्शक अब तक मार्गदर्शन नहीं दे सकता, जब तक वह अपने अधीन व्यक्ति की क्षमताओं को सूक्ष्मता से नहीं पहचानता। इन क्षमताओं को निरीक्षण से ही समझा जा सकता है। इस आधार पर ही सुधार के लिए सुझाव दिए जा सकते हैं।

(3) निरीक्षण द्वारा उनके सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन करना होता है। इसमें वह ज्ञात हो जाता है कि विद्यार्थी किन परिस्थितियों में अधिक सीखते हैं। इस आधार पर अधिकाधिक अधिगम की दृष्टि से पाठन विधियों में भी सुधार किया जा सकता है।

(4) निरीक्षण का कार्य शिक्षकों के विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान करने तथा उनकी योग्यता का मूल्यांकन करने में सहायता देना है।

(5) निरीक्षण का कार्य शिक्षकों को पाठ्यक्रम निर्माण करने का ज्ञान प्रदान करना तथा पाठ्यक्रम निर्माण में मुख्य उद्देश्य से अवगत कराना है।

निरीक्षण से शिक्षकों को अधिक अध्ययन की प्रेरणा मिलती है क्योंकि निरीक्षक निरन्तर शिक्षक के विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह शिक्षक के चहुंमुखी विकास के लिए यत्नशील रहता है अत: शिक्षकों का न केवल व्यावसायिक वरन् अकादमिक विकास भी निरीक्षण द्वारा होता है।

## 19.4 विद्यालय निरीक्षण के प्रकार (Types of School Inspection)

निरीक्षण के तीन प्रकार मिलते हैं–

(1) संशोधनात्मक (Corrective)

(2) निरोधात्मक (Preventive)

(3) रचनात्मक (Constructive)

**संशोधनात्मक**–इस उपागम में निरीक्षण के अन्तर्गत विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों, प्रवृत्तियों, कार्यालय की

नोट

गतिविधियों का अवलोकन करता है और प्रभावी निष्पत्ति के लिए आवश्यक सुधार के लिए संशोधन प्रस्तुत करता है। अवलोकन विश्वसनीय हों, इसके लिए आवश्यक रिकार्ड एकत्रित करता है तभी सुझाव विश्वसनीय हो सकते हैं।

इस प्रकार के निरीक्षण में कमियों तथा संस्था के अच्छे कार्यों के अवलोकन को नजरंदाज कर दिया जाता है। अत: इस प्रकार के निरीक्षण की आलोचना होती है।

**निरोधात्मक निरीक्षण**–निरोधात्मक निरीक्षण में निरीक्षणकर्ता निरीक्षण के बाद समस्याओं पर अपनी राय शिक्षकों, वरिष्ठ शिक्षकों तथा सम्बन्धितों को दे देते हैं ताकि वर्तमान संस्थितियों में सुधार हो सके। परन्तु इस निरीक्षण में निरीक्षक को पर्याप्त अनुभव होना चाहिए। भावी सुधार के परिणामों से परिचित होना चाहिए।

**रचनात्मक निरीक्षण**–यह जनतन्त्रीय मूल्यों पर आधारित होता है। निरीक्षक एक सहयोगी की भूमिका का निर्वाह करता है। जिसका निरीक्षण किया जाता है वह जानता है कि उसके निरीक्षण का उद्देश्य रचनात्मक है। शिक्षण व कार्यदक्षता में सुधार लाना है। अत: इससे परस्पर बढ़ता है। निरीक्षण के बाद सबल पक्षों की प्रशंसा से शिक्षकों का आत्मविश्वास बढ़ता है।

## 19.5 विद्यालय निरीक्षण की विधियाँ (Methods of School Inspection)

निरीक्षण सक्षम अधिकारी द्वारा होता है। यह निरीक्षण दो प्रकार का हो सकता है–(1) आन्तरिक (2) बाह्य। आन्तरिक निरीक्षण किसी विद्यालय संगठन की प्रबन्धकारिणी द्वारा, प्राचार्य द्वारा हो सकता है। परन्तु इस प्रकार के निरीक्षण को आन्तरिक होने से अधिक महत्व नहीं दिया जाता। बाह्य निरीक्षण को ही निरीक्षण की संज्ञा दी जाती है। यह निरीक्षण निदेशक, उपनिदेशक, शिक्षा, जिला शिक्षा अधिकारी, उप जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा होता है। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने जिला स्तर पर जिला शिक्षा अधिकारी प्रशासन व दूसरा निरीक्षण के लिए नियुक्त करने की अनुशंषा की है। कभी-कभी विद्यालय क्रमोन्नति के लिए सरकार द्वारा गठित टीम द्वारा भी निरीक्षण हो सकता है। कभी-कभी शिक्षा मंत्री भी निरीक्षण करते हैं। ये निरीक्षण दो प्रकार के होते हैं–

### 1. पूर्व सूचना के आधार पर

इसमें विद्यालय को निरीक्षण के लिए पूर्व में सूचित किया जाता है तथा किन-किन तथ्यों का निरीक्षण किया जाना है, इसकी पूर्व सूचना दी जाती है। इस प्रकार के निरीक्षण में प्राध्यापक शिक्षक तथा कार्यालय सभा निरीक्षण के लिए तैयार होते हैं। यों उपनिदेशक जिला शिक्षा अधिकारी उप जिला शिक्षा अधिकारी के लिए माह में 15 दिन विद्यालय निरीक्षण के निर्देश हैं। इन निरीक्षणों के बाद रिपोर्ट (सबल और निर्बल पक्षों की) विद्यालय को भेज दी जाती है, ताकि आवश्यक सुधार हो।

### 2. बिना पूर्व सूचना के आकस्मिक निरीक्षण

इसका उद्देश्य वास्तविक विद्यालय की चलती कार्यरत स्थिति को देखना है। क्या शिक्षक समय से आते हैं? गृह कार्य देते हैं? गृहकार्य का निरीक्षण करते हैं? शिक्षण पूर्व तैयारी से होता है? डायरी भरी जाती है या नहीं? प्राध्यापक द्वारा नियमित निरीक्षण होता है या नहीं? वित्तीय रिकार्ड का संधारण उचित होता है अथवा नहीं? विद्यार्थी सम्बन्धी कार्यक्रमों की निष्पति किस प्रकार की हैं? इस प्रकार के निरीक्षण से विद्यालय की सही स्थिति का आकलन होता है।

वस्तुत: निरीक्षण दोनों प्रकार के होने चाहिए, पूर्व सूचना आधारित एवं बिना सूचना आधारित।

### निरीक्षण के कार्यकलाप

सोद्देश्य निरीक्षण में बहुत स्पष्ट होता है कि निरीक्षक आखिर क्या देखना चाहते हैं परन्तु आम तौर पर निम्न तथ्यों पर निरीक्षण में ध्यान केन्द्रित होता है–

(1) अनुदेशन-निरीक्षण, शिक्षकों की तैयारी तथा छात्रों की अधिगम की स्थिति के लिए कक्षा शिक्षण या अनुदेशन का निरीक्षण किया जाता है। इससे विद्यालय के शैक्षिक स्तर का पता चलता है।

(2) शिक्षकों द्वारा दिए गए तथा जांचे गए गृह कार्य का निरीक्षण।

नोट

(3) अध्यापक डायरी का निरीक्षण ताकि शिक्षक पर कार्यभार तथा दायित्वों का पता चल सके।

(4) लेखा कार्यों का निरीक्षण।

(5) विशेष विद्यालयी योजना, प्रोजेक्ट्स, अनुसंधान प्रयोजनाओं का निरीक्षण।

(6) भवन, हॉस्टल, लेबोरेट्रीज, खेल के मैदान आदि के रख-रखाव का निरीक्षण।

(7) हॉस्टल कार्यकलापों, विद्यार्थी पाठ्य सहगामी प्रवृतियों का निरीक्षण।

विद्यालयी व्यापक निरीक्षण वर्ष में कम से कम तीन होने चाहिए। सत्र के प्रारंभ में निरीक्षण द्वारा आवश्यक निर्देश के लिए, सत्र के मध्य में विद्यालय के कार्यकलापों की प्रगति के लिए तथा सत्रान्त में विद्यालय के समग्र कार्यकलापों की निष्पत्ति के मूल्यांकन के लिए।

### निरीक्षण की वर्तमान विचारधारा तथा पर्यवेक्षण

वर्तमान विचारधारा के अनुसार निरीक्षक को निरीक्षण से हटकर एक पर्यवेक्षणकर्ता, सलाहकार और सहयोगी होना चाहिए। उसे केवल कमियों को ही नहीं देखना है वरन् अच्छे पहलुओं को प्रोत्साहन भी देना है। वर्तमान समय में निरीक्षण काफी टेक्नीकल होता जा रहा है। इसमें कोई भी निरीक्षक तभी सफल हो सकता है, जब वह आधुनिक पर्यवेक्षण की तकनीकों से परिचित हो, अत: वर्तमान निरीक्षक को स्वयं वर्तमान पर्यवेक्षण की विधियों से परिचित होना चाहिए। उसे अध्ययन सुधार की विधियों अथवा माइक्रोटीचिंग आदि के कौशलों का ज्ञान होना चाहिए तथा उन कौशलों के प्रदर्शन का भी अभ्यास होना चाहिए।

वर्तमान निरीक्षण एक सुनियोजित शैक्षिक गुणात्मक विकास की प्रक्रिया है, जिससे विद्यार्थी और शिक्षकों का क्रमश: उत्तरोत्तर विकास होता है। निरीक्षण जल्दबाजी में नहीं हो सकता। इसके लिए काफी सोच-विचार कर कार्यक्रम निश्चित करने की आवश्यकता है।

सीखने के लिए जो भी मानवीय एवं भौतिक साधन हैं, उनको सहयोगपूर्ण एवं सामंजस्यपूर्ण ढंग से जुटाना भी इसमें सम्मिलित है। आज निरीक्षण शिक्षकों एवं प्रधान के परस्पर सहयोग से होता है।

यह निरीक्षण मानवीय सम्बन्धों पर बल देता है, न कि शिक्षकों के मनोबल को गिराता है।

*टास्क* कौन-सा निरीक्षण जनतंत्रीय निरीक्षण पर आधारित होता है?

## 19.6 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति (Current Situation of School Inspection in India)

पहले अधिनायकवादी दृष्टिकोण से हाकिम बनकर अध्यापकों के कार्य का जायजा लिया जाता था अब उसके स्थान पर पर्यवेक्षण सम्प्रत्यय आने से कार्य पद्धति तथा उसकी भावना में अन्तर आ गया है।

संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य की शिक्षा व्यवस्था संचालित करने की जिम्मेदारी स्वयं राज्य पर है। इस व्यवस्था तथा नीति निर्धारण आदि कार्यों को सचिवालय करता है। इन नीतियों और व्यवस्थाओं की सही स्थिति की देखभाल के लिए शिक्षा विभाग ने प्रत्येक राज्य के जिले में एक निरीक्षण नियुक्त किया है, जो निरीक्षण के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन करता है। शिक्षा शास्त्रियों ने निरीक्षण सम्बन्धी नवीन धारणा को अभिव्यक्त करने के लिए एक नवीन शब्द का प्रयोग किया है जो पर्यवेक्षण (सुपरविजन) के नाम से जाना जाता है। यह केवल शब्दों का हेरफेर नहीं है वरन् उद्देश्य, क्षेत्र, विधि एवं दृष्टिकोण का भी बड़ा अन्तर है।

पहले प्राय: विद्यालय निरीक्षक एक ऑडीटर के समान कार्य करता था। सरकारी ऑडीटर वर्ष में दो-तीन दिन के लिए आता है और उस समय जितना हिसाब-किताब देख सकता है, उसकी अशुद्धियों एवं कमियों को अपनी रिपोर्ट में

नोट

लिखकर अपने उच्चाधिकारी के पास भेज देता है। इस रिपोर्ट के फलस्वरूप कुछ मास के पश्चात् विद्यालय को उन भूलों को ठीक करने का आदेश प्राप्त होता है। परन्तु जो त्रुटियां थोड़े समय के कारण उनकी दृष्टि में नहीं आई वे ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। निरीक्षक अपनी अल्पकालीन जांच में विद्यालय के समस्त अंगों व तत्वों का निरीक्षण नहीं कर सकता और न ही विद्यालय के कार्यकर्ताओं को रचनात्मक सुझाव ही दे सकता है।

एन.सी.ई.आर.टी. के एक सर्वेक्षण के आधार पर निरीक्षण अवधि निम्नलिखित प्रकार से पाई गई हैं–

(1) माध्यमिक या उच्च माध्यमिक विद्यालय में निरीक्षण अवधि 1 से 2 दिन (आकस्मिक निरीक्षण) मात्र पाई गई।

(2) 1/2 से 1 दिन शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य करने वाली संस्थाओं के निरीक्षण हेतु लगाया गया।

(3) वर्ष भर में एक इन्स्पेक्टर प्राय: 120 दिन निरीक्षण करता है।

(4) प्राय: विभिन्न राज्यों में एक इन्स्पेक्टर वर्ष में औसतन 100 स्कूलों को देखता है।

एन.सी.ई.आर.टी. के इस सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि निरीक्षण कम अवधि के कारण औपचारिक मात्र रह जाते हैं। जिला शिक्षा अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों के कारण कुछ विद्यालय ही एक वर्ष में देखे जा सकते हैं। अत: हर विद्यालय का नियमित निरीक्षण संभव नहीं हो पाता। जिला शिक्षा अधिकारी निरीक्षण के अतिरिक्त अनेक प्रशासनिक उत्तरदायित्वों में उलझा रहता है, जो उसके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण लगते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं–

(1) प्रत्येक जिला स्तर पर अलग से ही एक शिक्षा अधिकारी हो, जो केवल शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए कार्य करे। यही बात कोठारी आयोग ने भी सुझाई है।

(2) प्रशासनिक कार्य के लिए एक अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी हो सकता है।

(3) निरीक्षण के लिए निरीक्षणकर्ताओं की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

(4) निरीक्षण पूर्वसूचित व आकस्मिक दोनों हों और उनकी संख्या बढ़ाई जाए।

(5) निरीक्षण कार्य की अवधि बढ़ाई जाए, जिससे विद्यालय का व्यापक मूल्यांकन सम्भव हो सके।

## 19.7 प्रचलित निरीक्षण प्रणाली में सुधार के सुझाव (Suggestions for Improvement of Current Inspection System)

प्रचलित आदेशात्मक निरीक्षण पद्धति के दोषों व कमियों का निवारण सहयोगी व परामर्शदायी परिवीक्षण की नवीन धारणा से हो सकता है। इस विषय में यदि परिवर्तन किया जाय तो वर्तमान निरीक्षण पद्धति के बहुत से दोषों का निवारण ही नहीं होगा बल्कि उसकी उपयोगिता भी बढ़ जायेगी। विद्यालय के सामान्य निरीक्षण (प्रशासनिक) और विशेष शैक्षिक निरीक्षणों की बढ़ाई जा सकती है जिसमें व्यय में बहुत अधिक वृद्धि नहीं होगी। सामान्य प्रशासन से सम्बन्धित निरीक्षक विद्यालय संचालन के कार्यों का निरीक्षण करें तथा विशेषज्ञ परामर्शदाता शैक्षिक कार्यक्रमों की उन्नति के लिए अपनी सेवायें अर्पित करें तो शिक्षा का स्तर अवश्य उन्नत होगा।

इस प्रकार की व्यवस्था से शिक्षकों के विशिष्ट विधियों जैसे संगीत, कला, हस्तकला, गृहविज्ञान में भी कुशल सेवाएँ प्राप्त हो सकेंगी। विद्यालयों में विशेषज्ञों, निरीक्षकों या सलाहकारों तथा शिक्षकों के निकट सम्पर्क के फलस्वरूप स्वयं शिक्षकों में अपने विषय के लिए उत्साह उत्पन्न होगा और वे अपनी शिक्षा योग्यता को सुधारने में अधिक रुचि लेंगे।

उपर्युक्त सुझाव के अतिरिक्त विद्यालय निरीक्षण का कार्य आन्तरिक स्तर पर भी होना चाहिये।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी विशेषज्ञ निरीक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया है और शिक्षा आयोग ने प्रशासकीय तथा शैक्षिक कार्यों की देखभाल के लिए पृथक-पृथक अधिकारियों की नियुक्ति का सुझाव दिया है।

नोट

### निरीक्षण प्रक्रिया के दोष

निरीक्षण प्रक्रिया में आम दोष निम्नानुसार हैं–

(1) निरीक्षक अप्रशिक्षित होते हैं अत: सही आब्जर्वेशन नहीं होता।

(2) निरीक्षकों की संख्या कम है अत: संख्या बढ़ाई जाए।

(3) उपनिदेशक, शिक्षाधिकारी के निरीक्षण औपचारिक होते हैं तथा आधिकारिक होते हैं सुधार के लिए नहीं।

(4) निरीक्षण दिखावा मात्र रह जाते हैं।

(5) निरीक्षण एक निश्चित प्रारूप के आधार पर होते हैं, नवीन दिशा के द्योतक नहीं।

(6) निरीक्षण के प्रति विद्यालयों की नकारात्मक अभिवृत्ति है।

### व्याप्त दोषों को दूर करने के सुझाव

(1) निरीक्षण सकारात्मक दृष्टिकोण से होने चाहिए। उद्देश्य सुधारात्मक हो।

(2) निरीक्षण सहयोग के वातावरण में हो।

(3) निरीक्षक योग्य व प्रशिक्षित हों।

(4) यह सहज स्वाभाविक निरंतर प्रक्रिया होनी चाहिए।

(5) निरीक्षण प्रक्रिया केन्द्रित हो। अधिकारों का विकेन्द्रीकरण हो।

(6) निरीक्षण के बाद दिए गए सुझावों पर अमल के लिए फॉलोअप होना चाहिए।

(7) निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए जो विषयनिष्ठ तथा तकनीकी विशेषज्ञ हों।

## 19.8 भारत में निरीक्षण सुधार के प्रयास (Efforts for Improvement Inspection in India)

निरीक्षण के दोषों को दूर करके उसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए भारत में एक विशाल प्रोजेक्ट नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन (NIE) के द्वारा लिया गया था। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अध्ययन-अध्यापन की परिस्थिति का विश्लेषण करके हर क्षेत्र के लिए सभी विषयों के सम्पूर्ण क्षेत्र को लेते हुए प्रश्नावलियां तैयार की गई हैं।

आज के पर्यवेक्षण का पूर्व स्वरूप ही निरीक्षण था। तत्कालीन निरीक्षण का प्रमुख उद्देश्य छिद्रान्वेषण था, शिक्षण में उन्नति करना नहीं था। भारत में विद्यालय निरीक्षण का प्रारंभ 1854 में बुड्स डिस्पेच के बाद प्रारंभ हुआ जिसका उद्देश्य विद्यालयों को दिए जाने वाले अनुदान की शर्तों के पूरा करने को देखना होता था। धीमे-धीमे यह छिद्रान्वेशी हो गया और इसका विरोध किया जाने लगा। सैडलर कमीशन (1919), साइमन कमीशन (1928) आदि ने भी पारम्परिक निरीक्षण की आलोचना की तथा इसमें सुधार के लिए कहा। ये निरीक्षण आधिकारिक शैली में, दोष निकालने के लिए होते थे, औपचारिक होते थे तथा विद्यालयों विकास पर ध्यान कदाचित ही जाता था। निरीक्षण की त्रुटियों की ओर बार-बार आलोचना के परिणामस्वरूप इसमें सुधार के लिए कदम उठाए गए। सुधारात्मक निरीक्षण के तीन प्रकार हैं–संशोधनात्मक, निरोधात्मक व रचनात्मक। तीनों ही प्रकार शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षण सुधार तथा विद्यार्थी शैक्षिक विकास से सम्बन्धित हैं। निरीक्षण प्रकारों में पूर्व सूचना आधारित, आकस्मिक निरीक्षण प्रमुख हैं। निरीक्षण की स्थिति आज भी सन्तोषजनक नहीं है। अत: शिक्षकों द्वारा इसका विरोध होता है। सकारात्मक, रचनात्मक व सहयोगी निरीक्षण आज के सन्दर्भ में अपेक्षित हैं।

नोट

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. भारत में निरीक्षण के इतिहास प्रारम्भ ..... की संस्तुति के बाद हुई।
2. निरीक्षण का प्रयोजन शिक्षकों के ..... को प्रभावी बनाना है।
3. ..... में निरीक्षणकर्ता निरीक्षण के बाद समस्याओं पर अपनी राय शिक्षकों, वरिष्ठ शिक्षकों को दे देते हैं।
4. ..... जनतंत्रीय मूल्यों पर आधारित होता है।

## 19.9 सारांश (Summary)

- वेब्स्टर (Webster) अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार निरीक्षण का अर्थ विद्यालय के कार्यों का निरीक्षण ही विद्यालय-निरीक्षण कहा जा सकता है। डॉ. मुखर्जी के अनुसार–वरिष्ठ अध्यापक अथवा प्रधानाध्यापक द्वारा किये गये मूल्यांकन को निरीक्षण कहा जाता है।
- भारत में निरीक्षण के इतिहास की शुरूआत 'बुड के घोषणा-पत्र' 1854 की संस्तुति के बाद होती है, जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य में एक 'डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' की नियुक्ति हुई थी। पुनः इन डाइरेक्टरों के लिए शिक्षा की स्थिति का सही चित्र प्रस्तुत करने के लिए योग्य 'इन्स्पेक्टरों की आवश्यकता सुझायी गई। इन्स्पेक्टर का कार्य सामाजिक रूप से स्कूली और कॉलेजों की स्थिति का विवरण सरकार को भेजना होता था। इनका कार्य परीक्षा कराना व उनमें सहयोग देना भी था।
- 1928 में साइमन कमीशन की स्थापना हुई। उसने तत्कालीन विद्यालय निरीक्षण की कमियों की ओर ध्यान दिया। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी निरीक्षण की कमियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो समय इन्स्पेक्टर, इन्स्पेक्शन पर बिताते हैं, वह कम है, बल्कि अधिक समय वे प्रशासनिक कार्यों को देखने में लगाते हैं।
- अध्यापकों को मार्गदर्शन देने का कार्य भी निरीक्षक का है। कोई भी मार्गदर्शक अब तक मार्गदर्शन नहीं दे सकता, जब तक वह अपने अधीन व्यक्ति की क्षमताओं को सूक्ष्मता से नहीं पहचानता। इन क्षमताओं को निरीक्षण से ही समझा जा सकता है। इस आधार पर ही सुधार के लिए सुझाव दिए जा सकते हैं।
- निरीक्षण का कार्य शिक्षकों के विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान करने तथा उनकी योग्यता का मूल्यांकन करने में सहायता देना है।
- निरीक्षण का कार्य शिक्षकों को पाठ्यक्रम निर्माण करने का ज्ञान प्रदान करना तथा पाठ्यक्रम निर्माण में मुख्य उद्देश्य से अवगत कराना है।
- **संशोधनात्मक**–इस उपागम में निरीक्षण के अन्तर्गत विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों, प्रवृत्तियों, कार्यालय की गतिविधियों का अवलोकन करता है और प्रभावी निष्पत्ति के लिए आवश्यक सुधार के लिए संशोधन प्रस्तुत करता है। अवलोकन विश्वसनीय हों, इसके लिए आवश्यक रिकार्ड एकत्रित करता है तभी सुझाव विश्वसनीय हो सकते हैं।
- निरोधात्मक निरीक्षण में निरीक्षणकर्ता निरीक्षण के बाद समस्याओं पर अपनी राय शिक्षकों, वरिष्ठ शिक्षकों तथा सम्बन्धितों को दे देते हैं ताकि वर्तमान संस्थितियों में सुधार हो सके। परन्तु इस निरीक्षण में निरीक्षक को पर्याप्त अनुभव होना चाहिए। भावी सुधार के भावी परिणामों से परिचित होना चाहिए।
- यह जनतन्त्रीय मूल्यों पर आधारित होता है। निरीक्षक एक सहयोगी की भूमिका का निर्वाह करता है जिसका निरीक्षण किया जाता है वह जानता है कि उसके निरीक्षण का उद्देश्य रचनात्मक है।
- निरीक्षण सक्षम अधिकारी द्वारा होता है। यह निरीक्षण दो प्रकार का हो सकता है–(1) आन्तरिक (2) बाह्य। आन्तरिक निरीक्षण किसी विद्यालय संगठन की प्रबन्धकारिणी द्वारा, प्राचार्य द्वारा हो सकता है। परन्तु इस प्रकार

नोट

के निरीक्षण को आन्तरिक होने से अधिक महत्व नहीं दिया जाता। बाह्य निरीक्षण को ही निरीक्षण की संज्ञा दी जाती है। यह निरीक्षण निदेशक, उपनिदेशक, शिक्षा, जिला शिक्षा अधिकारी, उपजिला शिक्षा अधिकारी द्वारा होता है।

- वर्तमान विचारधारा के अनुसार निरीक्षक को निरीक्षण से हटकर एक पर्यवेक्षणकर्ता, सलाहकार और सहयोगी होना चाहिए। उसे केवल कमियों को ही नहीं देखना है वरन् अच्छे पहलुओं को प्रोत्साहन भी देना है। वर्तमान समय में निरीक्षण काफी टेक्नीकल होता जा रहा है। इसमें कोई भी निरीक्षक तभी सकता है, तब वह आधुनिक पर्यवेक्षण की तकनीकों से परिचित हो। अत: वर्तमान निरीक्षक को स्वयं वर्तमान पर्यवेक्षण की विधियों से परिचित होना चाहिए।
- संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य की शिक्षा व्यवस्था संचालित करने की जिम्मेदारी स्वयं राज्य पर है। इस व्यवस्था की तथा नीति निर्धारण आदि कार्यों को सचिवालय करता है। इन नीतियों और व्यवस्थाओं की सही स्थिति की देखभाल के लिए शिक्षा विभाग ने प्रत्येक राज्य के जिले में एक निरीक्षण नियुक्त किया है, जो निरीक्षण के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन करता है।

## 19.10 शब्दकोश (Keywords)

- **हतोत्साहित**–मनोबल का गिर जाना, निरुत्साहित होना।
- **क्रमोन्नति**–क्रमानुसार उन्नति।

## 19.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विद्यालय निरीक्षण का क्या आशय है?
2. विद्यालय निरीक्षण के क्या उद्देश्य हैं?
3. विद्यालय निरीक्षण का क्या इतिहास रहा है?
4. विद्यालय निरीक्षण की कौन-कौन सी विधियाँ प्रमुख हैं? इनमें से कौन सी विधि सर्वोत्तम है जो अपनाई जाये?
5. विद्यालयी निरीक्षण की वर्तमान स्थिति कैसी है? इसके दोषों को कैसे दूर किया जा सकता है?

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. 'वुड के घोषणा पत्र' 1854
2. शिक्षण
3. निरोधात्मक निरीक्षण
4. रचनात्मक निरीक्षण।

## 19.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *अध्यापक शिक्षा*–एन. आर. सक्सेना, बी. के मिश्रा, आर. के. मोहन्नती; विनय रखेजा पब्लिशर्स, राज प्रिन्टर्स (यू.पी.)
2. *पर्यावरण अध्ययन*–डा. बृजविलास पाण्डेय; प्रकाशन केन्द्र लखनऊ।
3. *भारत में शिक्षा का विकास*–प्रो. सुरेश भटनागर, डॉ. संजय कुमार; विनय रखेजा पब्लिशर्स, (यू.पी.)।
4. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबंधन*–डॉ. एस. के. मंगल, श्रीमती शुभ्रा मंगल; इण्टर नेशनल पब्लिशिंग हाउस (यू.पी.)।

नोट

# इकाई–20: अकादमिक क्षेत्र में शैक्षिक प्रबंधन की उपयोगिता (Application of Educational Management in Academic Areas)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 अनुदेशन प्रबंधन (Instructional Management)

20.2 पाठ्यक्रम प्रबंधन (Curriculum Management)

20.3 शिक्षक एवं विद्यालय प्रबंधन (Teacher and School Management)

20.4 सारांश (Summary)

20.5 शब्दकोश (Keywords)

20.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

20.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अनुदेशन और पाठ्यक्रम प्रबंधन की व्याख्या करने में।
- शिक्षक एवं विद्यालय प्रबंधन का विश्लेषण करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

विद्यालय दक्षता या प्रभाविता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी आन्तरिक प्रबन्ध प्रक्रिया किस प्रकार नियंत्रित होती है और निरन्तर सुधार की ओर अग्रसित होती है। इस आंतरिक प्रबंध प्रक्रिया में मुख्य कार्य अनुदेशन प्रबंध का होता है। अत: विद्यालय प्रभावी प्रबंध में प्रधानाध्यापक का अनुदेशन नेतृत्व केन्द्रीय महत्व का माना जाता है। शोध निष्कर्ष भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अनुदेशन सुधार में प्राचार्य का नेतृत्व प्रमुख होता है। इस सम्बन्ध में ट्रूँप के 1950 के एवं 1960 के अनुसंधान गोल्डहेमर द्वारा एन. ए. एस. पी. के लिए 1960 में किए गए शोध कार्य और हाल ही में ब्रुकोवर तथा एडमंड के प्रभावी विद्यालयों पर किए गए शोध कार्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि प्राचार्य ही सर्वोपरि व्यक्ति है जो प्रभावी विद्यालय के लिए उत्तरदायी है।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1962-64) ने भी इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा है कि 'राष्ट्र के भाग्य का निर्माण कक्षाओं में हो रहा है।' अत: यह निर्विवादित है कि अपेक्षित सामाजिक पुनर्निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व शिक्षक, उसके व्यक्तिगत गुण, उसकी शैक्षिक याग्यताएँ, उसका व्यावसायिक प्रशिक्षण और उसकी स्थिति है जो वह विद्यालय तथा समाज में ग्रहण करता है। विद्यालय की प्रतिष्ठा तथा समाज के जीवन पर उसका प्रभाव नि:संदेह रूप में उन शिक्षकों पर निर्भर है जो उस विद्यालय में कार्य कर रहे हैं।

नोट

## 20.1 अनुदेशन प्रबन्धन (Instructional Management)

अनुदेशन प्रबन्ध, विद्यालयी प्रबन्ध का एक मुख्य दायित्व है। इसके अन्तर्गत पाठ्य संरचना, लक्ष्यानुरूप पाठ्यक्रियाओं का निर्धारण उपयुक्त अनुदेशन संव्यूहन व उपयुक्त विधियों द्वारा अनुदेशन कार्य, अनुदेशन परिवीक्षण व निष्पत्ति-मूल्यांकन आता है। दूसरे शब्दों में अनुदेशन के अन्तर्गत विद्यार्थी की ज्ञानार्जन से सम्बन्धित सभी गतिविधियां अर्थात् कक्षा शिक्षण, शिक्षण सिद्धान्तों का अनुशीलन, विश्वविद्यालय या बोर्ड द्वारा अनुशंसित पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, मूल्यांकन व अन्य समग्र पाठ्य क्रियाएँ आती है। दूसरे शब्दों में इस प्रबंध के अन्तर्गत वस्तुतः वे सभी अनुभव सम्मिलित होते हैं जो विद्यार्थी शिक्षण के मार्गदर्शन में शाला के अन्तर्गत व बाहर प्राप्त करता है तथा जिसका प्रयोग कक्षा शिक्षण में किया जाता है।

माध्यमिक विद्यालय प्राचार्य संगठन की हेन्ड बुक के अनुसार प्रभावी अनुदेशन के अन्तर्गत प्राचार्य से निम्नलिखित अपेक्षाएँ हैं–

(1) अध्यापक व अन्य स्टाफ से उच्च अपेक्षाएँ,

(2) प्रबंधक (प्राचार्य) का दैनिक अधिकांश समय शिक्षकों के साथ अनुदेशन सुधार में लगाना,

(3) प्राचार्य व शिक्षक, अनुदेशन सम्बन्धी समस्याओं के निदान व समाधान के लिए मिलकर कार्य करते हैं।

(4) विद्यालय संस्कृति में तथा पर्यावरण में गहनता से जुड़कर इसे सकारात्मक ढंग से प्रभावित करते हैं।

*क्या आप जानते हैं* यूनेस्को द्वारा गठित डिलोर्स शिक्षा आयोग कहता है कि हर बालक में एक खजाना छिपा है, आवश्यकता इस खजाने की तलाश की है।

## 20.2 पाठ्यक्रम प्रबंधन (Curriculum Management)

पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी शब्द "करीक्युलम" (Curriculum) का रूपांतर है। करीक्युलम शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के कुरेरे (Currer) शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है दौड़ का मैदान। अर्थात् वह निश्चित सीमा जो दौड़ कर पूरी की जाये, या वह निश्चित स्थल जहाँ दौड़ कर लक्ष्य की प्राप्ति की जाये। आज पाठ्यक्रम का अर्थ पाठ्यवस्तु की सूची से अधिकांश लोग लगाते हैं। वस्तुतः पाठ्यक्रम का अर्थ कहीं अधिक व्यापक है।

### पाठ्यक्रम का अर्थ (Meaning of Curriculum)

पाठ्यक्रम के अर्थ के सम्बन्ध में आज अनेक परिभाषाएँ उपलब्ध हैं। वेन्त रुडियार्ड तथा हेनरी क्रोन वर्ग के अनुसार व्यापक अर्थों में पाठ्यक्रम विद्यालय के समग्र पर्यावरण को सम्मिलित करता है जिसमें सभी पाठ्यचर्चा प्रवृत्तियों का संगठन आता है। यह विद्यालयी पर्यावरण, विद्यालय एवं विद्यालय के भौतिक एवं मानवीय संसाधनों द्वारा अधिगम के लिए सृजित होता है जो विद्यालय के अन्दर और बाहर दोनों ही स्थानों पर हो सकता है। वस्तुतः वह समग्र अनुभव या ज्ञान जो औपचारिक या अनौपचारिक रूप से विद्यालयी भौतिक और मानवीय संसाधनों के माध्यम से विद्यार्थी अर्जित करता है, विद्यालय पाठ्यक्रम का ही अंग माना जाता है।

लगभग यही बात माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में कही गई है कि पाठ्यक्रम का अर्थ केवल अकादमिक विषयों से नहीं है जिन्हें विद्यालयों में परम्परागत रूप से पढ़ाया जाता है वरन् इसमें अनुभवों की सम्पूर्णता निहित है जिसे बालक अनेक प्रकार की क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है, जो विद्यालय, कक्षा, कक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्कशाप, खेल के मैदान तथा छात्रों व शिक्षकों के बीच होने वाले अगणित अनौपचारिक सम्पर्कों से होती रहती है।

नोट

इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार विद्यालय कार्यकलापों में समाज या समुदाय की आकांक्षाओं के अनुकूल शिक्षण प्रवृत्तियों की व्यवस्था (शिक्षण सिद्धान्तों सहित) पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियां, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का सुसंचालन, पाठ्यक्रम सुसंचालन है जो विद्यालय प्रशासन का अनिवार्य दायित्व है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का यदि विवेचन करें तो हम पाते हैं कि–

(1) वे समस्त अनुभव जो छात्र विद्यालय के निर्देशन में प्राप्त करता है तथा इसके अतिरिक्त

(2) वे सभी अनुभव जो अनौपचारिक संस्थितियों में विद्यालयी संसाधनों, कक्षा-कक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि के माध्यम से विद्यालयी पर्यावरण में अर्जित करता है।

(3) वे सभी अनुभव जो शिक्षेत्तर प्रवृत्तियों में सहभागिता से वह प्राप्त करता है, पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं।

## पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या

पाठ्यचर्या (सिलेबस) के अन्तर्गत वह विषय-वस्तु तथा वे कार्यकलाप आते हैं जिन्हें शिक्षा बोर्ड/विश्वविद्यालय विभिन्न विषयों के शिक्षण के लिए निश्चित करते हैं। वस्तुत: पाठ्यचर्या में वे लिखित विषय वस्तु व सम्बन्धित प्रवृतियां आती हैं जो विश्वविद्यालय या बोर्ड एक निश्चित कक्षा या विषय को निश्चित अवधि में पूरा करने की अपेक्षा करते हैं।

*नोट्स* "पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वे सभी संस्थितियाँ आती हैं जिनका चयन विद्यालय करता है तथा सुचिंतन के साथ बालकों के व्यक्तित्व में विकास करने हेतु तथा व्यवहार परिवर्तन लाने हेतु करता है।" अत: एक योग्य एवं कुशल विद्यालय प्रशासक, पाठ्यक्रम के माध्यम से व्यवस्थित पाठ्यवस्तु तथा शैक्षिक अनुभवों को विद्यालय परिसर में व्यवस्थित ढंग से विद्यार्थियों को प्रदान कराता है।

**पाठ्यक्रम निर्माण के उद्देश्य–** विद्यालयों/विश्वविद्यालयों की स्थापना व्यक्ति, सामाजिक व राष्ट्रीय शैक्षिक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिए की जाती है अत: कोई भी पाठ्यक्रम व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की शैक्षिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए होना चाहिए।

**व्यक्ति–** हर व्यक्ति में दूसरे से भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता उसकी शारीरिक क्षमता, मानसिक क्षमता, सृजन क्षमता में देखी जा सकती है। अत: एक पाठ्यक्रम के उद्देश्यों में वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति का विकास सम्मिलित होना चाहिए ताकि उसकी क्षमताओं का भरपूर विकास हो सके।

**समाज–** व्यक्ति की शैक्षिक व विकास की अपेक्षाओं के साथ-साथ समाज की आकांक्षाएँ भी पाठ्यक्रम द्वारा पूरी होनी चाहिए। यों भी व्यक्ति का विकास रिक्तता में नहीं होता। सामाजिक विकास के द्वारा ही जनतन्त्रीय उत्पादक नागरिक, चरित्रवान, नैतिक स्वस्थ व राष्ट्र भक्त व्यक्तित्व का विकास होता है।

हाल ही में युनेस्को (UNESCO) द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में शिक्षा के चार आधार (लक्ष्य) प्रस्तावित किए गए हैं–

1. **ज्ञानार्जन** (Learning to Know)–शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य ज्ञान का अर्जन है। विद्यालय/महाविद्यालय छात्र को इस प्रकार शिक्षित/प्रशिक्षित करे या संस्थितियां प्रदान करें जिससे छात्र ज्ञानार्जन कर सके।
2. **कार्य करना व सीखना** (Learning to do)–के अन्तर्गत प्रत्येक छात्र को जीविकोपार्जन के लिए कौशलों का सीखना आवश्यक है। अत: पाठ्यक्रम में उन कौशलों को स्थान दिया जाये जिन्हें सीखकर वे जीविकोपार्जन कर सकें।
3. **रहना सीखना** (Learning to Live)–जीवन जीना भी एक कला है। समाज के सदस्य के रूप में सहयोगी, उत्पादक, कर्त्तव्यपरायण, जनतांत्रिक मूल्यों में आस्था अपेक्षित है। अत: उपयुक्त गुणों को विद्यालय द्वारा सिखाना आवश्यक है।

नोट

4. **आत्मानुभूति** (Learning to Be)–शिक्षा का कार्य स्वयं व्यक्ति की शक्तियों की पहचान है। प्रत्येक व्यक्ति के पास एक खजाना ईश्वर ने दिया है। इस खजाने की खोज, स्वयं की शक्तियों को पहचान कर उसका विकास करना शिक्षा का प्रमुख कार्य है।

**पाठ्यक्रम निर्माण के आधार–** पाठ्यक्रम निर्माण के तीन प्रमुख आधार हैं–(1) दार्शनिक आधार, (2) मनोवैज्ञानिक आधार तथा (3) सामाजिक आधार।

**दार्शनिक आधार**–दार्शनिक आधार का सीधा सम्बन्ध जीवन के लक्ष्यों से है और दर्शन जीवन के लक्ष्य निर्धारित करता है। भारतीय दर्शन वेदान्त तथा पश्चिमी दर्शन आदर्शवाद जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मानते हैं, तदनुसार मानवीय जीवन में आध्यात्मिक व मानवीय मूल्य अत्यावश्यक है। इन्हीं मूल्यों के अनुसरण के द्वारा व्यक्ति जीवन के सर्वोपरि लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि शिक्षा दर्शन की अनुगामिनी है, अत: शिक्षा के लक्ष्य का पाठ्यक्रम द्वारा बालकों में मानवीय व आध्यात्मिक मूल्यों के पोषण करने का होगा। यदि जीवन का लक्ष्य भौतिक है (जैसा कि चार्वाक व प्रकृतिवाद कहते हैं) तब शैक्षिक लक्ष्य भी भौतिक होंगे और पाठ्यक्रम इन लक्ष्यों की पूर्ति में योग देगा।

**मनोवैज्ञानिक आधार**–मनोवैज्ञानिक आधार 'व्यक्ति' को सर्वोपरि महत्व देता है, अत: शिक्षा का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति का उसकी रुचि, क्षमता, भिन्नता के आधार पर व्यक्तित्व के विकास का होगा। इस आधार पर पाठ्यक्रम में वैयक्तिक भिन्नता, वैयक्तिक रुचियों का प्रावधान करना आवश्यक होगा। यही कारण है कि शिक्षा आयोगों ने भी विद्यालयी पाठ्यक्रम में बालक की क्षमताओं के आधार पर कम से कम तीन प्रकार के पाठ्यक्रम-प्रतिभाशाली छात्रों के लिए उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम, औसत स्तर के छात्रों के लिए औसत पाठ्यक्रम तथा मंद बुद्धि छात्रों के लिए निम्न स्तरीय पाठ्यक्रम क्रियान्विति की अनुशंसाएँ की हैं।

**सामाजिक आधार**–इस आधार के अन्तर्गत सामाजिक व राष्ट्रीय लक्ष्य प्रमुख होते हैं। अत: शिक्षा के लक्ष्य निर्धारित करने के लिए, इस आधार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यथा राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के लक्ष्य–

(1) उत्पादन के लिए शिक्षा (2) जनतन्त्रीय जीवन के लिए शिक्षा (3) राष्ट्रीय व सामाजिक एकता के लिए शिक्षा (4) धार्मिक व नैतिक शिक्षा आदि। इसी आधार को लेकर पाठ्यक्रम निश्चित किए गए थे। इन पाठ्यक्रम निर्माण के आधारों के अलावा (5) तकनीकी आधार व (6) वैज्ञानिक आधार भी हैं। **तकनीकी आधार** के अन्तर्गत शिक्षा में तकनीकी विकास यथा शैक्षिक तकनीकी का पाठ्यक्रम को हस्तान्तरण विधियों को अधुनातन बनाने में योग दे सकती है। **वैज्ञानिक आधार** में पाठ्यक्रम को वैज्ञानिक तरीके से विश्वसनीय, क्रमबद्ध व वैध बनाया जाता है। विषय-सामग्री का संग्रह वैज्ञानिक आधार पर होता है। निरर्थक, तथ्यहीन, अविश्वसनीय विषय-वस्तु को हटा दिया जाता है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में 'सही' एवं 'गलत' का चुनाव कीजिए (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**

   1. छात्रों को स्वयं नवीन ज्ञान के सृजन का अवसर मिलना चाहिए।
   2. मनोवैज्ञानिक आधार 'व्यक्ति' को सर्वोपरि महत्त्व देता है।
   3. दार्शनिक आधार का सीधा सम्बंध जीवन के लक्ष्यों से है न कि उसके निर्धारण से है।
   4. शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य ज्ञानार्जन है।
   5. शिक्षा का कार्य स्वयं व्यक्ति की शक्तियों की पहचान है न कि समाज की शक्तियों की पहचान।

## 20.3 शिक्षक एवं विद्यालय प्रबंधन (Teacher and School Management)

21वीं सदी में शिक्षक की भूमिका से समाज और राष्ट्र की अपेक्षाएँ और बढ़ गई हैं। 21वीं सदी की शिक्षा के लिए यूनेस्कों द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट (डिलोर्स कमीशन) 1 ने शिक्षों से चार बातों की अपेक्षा की हैं। ये शिक्षा के चार स्तंम्भ कह गए हैं–1. ज्ञानार्जन के लिए अधिगम (Learning to know) 2. कार्य के लिए अधिगम (Learning to do) 3.

नोट

जीने के लिए अधिगम (Learning to live) 4. आत्मानुभूति के लिए ज्ञानार्जन कराना नहीं है, जीवन के लिए अपेक्षित कौशलों की भी शिक्षा उसे विद्यार्थी को देनी है ताकि वह जीविकोपार्जन कर सके। मानव की तरह भाईचारे से रह सके, इसके लिए उसे सामुदायिक जीवन में वैसे रहना है, इसकी भी शिक्षा देनी है और अन्त में उसे मानव बनने की शिक्षा देनी है, जिसमें मूल्यों का संरक्षण सम्मिलित है।

इस प्रकार शिक्षा प्रणाली में वह अकेला ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिसके बिना शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षकों पर किए गए व्यय को महत्वपूर्ण निवेश माना। शिक्षकों का उत्तरदायित्व महत्त्वपूर्ण मानते हुए उनसे अपेक्षा की गई है कि वे एक ऐसा सुन्दर विद्यालयी पर्यावरण सृजित करें जिससे बालकों को विद्यालय में आने में प्रसन्नता का अनुभव हो। साथ ही आयोग ने शिक्षक की जवाबदेही (Accountability) पर भी जोर दिया।

**1. शिक्षक और वैयक्तिक विशेषताएँ**–शिक्षक को निरंतर अध्ययनशील रहना आवश्यक है। इस संदर्भ में रविन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि "शिक्षक सही मायने में तब तक शिक्षण नहीं कर सकता जब तक वह स्वयं अधिगम में संलग्न नहीं है। एक दीपक दूसरे दीपक को तब तक प्रकाशित नहीं कर सकता जब तक वह स्वयं नहीं जलता।"

**2. प्रभावी अनुदेशन योग्यता**–शिक्षक का प्रमुख कार्य अनुदेशन करना है। प्रभावी अनुदेशन का सीधा प्रशासन में सर्वाधिक महत्त्व है। अनुदेशन प्रक्रिया के मूल में शिक्षक प्रमुख होता है। भवन, पाठ्यवस्तु, उपकरण महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु शिक्षक कोई विकल्प नहीं है। ये सभी कारक शिक्षक के सहायक हैं। अत: आज देश को यदि किसी तत्व की आवश्यकता हे तो वह है योग्य समर्पित शिक्षक की। अत: शिक्षक का चयन पूरी सावधानी से होना चाहिए तथा चयन के बाद उसका उचित अभिस्थापन (ओरिएन्टेशन) भी। उसके बाद ही उसे शिक्षक का गुरूतर अनुदेशन दायित्व दिया जाना चाहिए।

**3. बौद्धिक, शारीरिक सामाजिक व भावात्मक योग्यताएँ**–सी.ई.एम.जॉड के कथनानुसार "शिक्षण" किसी भी व्यक्ति का चाय का प्याला नहीं है। वरन् इसके लिए उस व्यक्ति में कुछ निश्चित शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं भावात्मक योग्यताओं की आवश्यकता है जो किसी भी सफल शिक्षक के अनिवार्य गुण हैं।

**4. शिक्षकीय गुण व अनुसंधान**–एक अच्छा शिक्षक अपने उदाहरण से दूसरों को प्रकाशित करता है, उसके विचारों में बुद्धिमत्ता झलकती है तथा मौन से संयम। अब तक हुए अनुसंधानों के आधार पर सफल शिक्षक में अधोलिखित गुण अपेक्षित हैं–

1. **शिक्षक का व्यक्तित्व**–वैयक्तिक प्रस्तुति (Personal appearence) परिष्कृतता (Refinement) हंसमुख स्वभाव (Pleasant manners) (Industrious) साहसी (Enthusiasm) पहल (Initiative) खुला दिमाग (Open minded) उच्च आदर्श (Lofty ideals) कर्तव्य परायण (Dutiful) उच्च नैतिकता (High morality)
2. **व्यावसायिक क्षमता**–मनोविज्ञान का ज्ञान (Knowledge of Psychology) पाठ्यवस्तु का ज्ञान (Content knowledge) पाठ्यविधियों का ज्ञान (Knowledge of methods) सहायक सामग्रीव उपकरणों के उपयोग करने का कौशल (Skill of handling teaching aids and equipment)
3. **सांस्कृतिक एवं अकादमिक पृष्ठभूमि**–छात्रों के सांस्कृतिक परिवेश का ज्ञान (Knowledge of cultural back ground of students) उच्च अकादमिक केरीयर (Excellent academic carreer)
4. **शारीरिक क्षमता**–स्वास्थ्य (Health) शारीरिक ऊर्जा (Physical energy) शारीरिक अपंगता से मुक्त (Free from physical defects)
5. **मानसिक योग्यता**–बुद्धिमता (Intellegence) मानसिक सचेतनता (Mental alertness) न्याय (Judgement)
6. **संवेगात्मक स्थिरता**–आत्मनियंत्रण (Self control) मानसिक संतुलन (Mental balance) धैर्य (Tolerence) निष्पक्ष (Unprejudiced)

नोट

7. **सामाजिक समायोजन की योग्यता**–उपरोक्त शिक्षक की योग्यताऐं सम्भव है कि एक साथ सभी योग्यताऐं किसी भी व्यक्ति में न हों, परन्तु एक आदर्श प्रभावी शिक्षक के चयन के लिए इन योग्यताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

**शिक्षक का चयन–** उपर्युक्त गुणों के वर्णन के अनुरूप शिक्षक का मिलना सर्वथा कठिन है। प्राचीन ऋषि बिरले ही थे व शिक्षा भी सर्वसुलभ नहीं थी। केवल राजा अथवा उच्च वर्गीय शासक, ब्राह्मण ही शिक्षा के पात्र थे। परन्तु जब सारे देश के बालकों 'सभी को शिक्षा' व्यवस्था करनी हो, तो तब हजारों और लाखों शिक्षकों का चयन उपर्युक्त वर्णित गुणों के आधार पर करना संभव नहीं है। आम शिक्षा के प्रारम्भ के बाद जो अनुभव हुए हैं, तद्नुसार आजकल शिक्षक के चयन की प्रक्रिया निश्चित की गई है।

निश्चय ही शिक्षक जैसे महत्त्वपूर्ण पद पर चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। एतदर्थ समग्र देश में शिक्षक व्यवसाय में प्रवेश के चुनाव के लिए प्री. बी. एड. टेस्ट का प्रावधान किया गया है, ताकि शिक्षक, शिक्षण कार्य में प्रवेश लेने से पूर्व प्रशिक्षित हो और प्रशिक्षित वही व्यक्ति हो जिसमें शिक्षक होने की पात्रता हो। अत: प्राथमिक शिक्षक व माध्यमिक स्तर के शिक्षक के लिए प्री. टी. सी./प्री. बी. एड. जांच में मानसिक योग्यता, शिक्षक अभिवृत्ति व अभिक्षमता, सामान्य ज्ञान व भाषायी दक्षता की जांच का प्रावधान किया गया है। इस जांच में वरीयता क्रम में सफल आशार्थियों को ही शिक्षक प्रशिक्षण के लिए चयन किया जाता है। प्राथमिक स्तर पर दो वर्ष तथा माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के लिए एक वर्ष के प्रशिक्षण का प्रावधान है। प्रवेशार्थ प्राथमिक स्तर के शिक्षक के लिए 10+2 तथा माध्यमिक स्तर के शिक्षक के लिए स्नातक/अधिस्नातक योग्यता स्नातक स्तर पर कम से कम 45% अंक प्राप्त कराना आवश्यक हैं। अनुसूचित जाति व जनजाति के आशार्थियों को 5% कम अर्हता की गई है।

प्रशिक्षण के बाद राज्य में हुए रिक्त स्थानों पर पुन: मेरिट क्राइटेरिया पर साक्षात्कार के बाद तृतीय ग्रेड के लिए राज्य शिक्षा सेवा के लिए जिला शिक्षा अधिकारी तथा ग्रामीण क्षेत्र के पंचायत राज्य प्रावधानों के अन्तर्गत जिला परिषदें शिक्षकों का चयन करती हैं। द्वितीय ग्रेड के चयन उपशिक्षा संचालक के अधीन हैं। वरिष्ठ ग्रेड्स के लिए राजस्थान पब्लिक सर्विस कमीशन अधिकृत है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षा चयन के लिए निम्न संस्तुति की है–

(1) समस्त प्रकार के विद्यालयों में शिक्षकों के चयन व नियुक्ति के लिए एक ही नीति होनी चाहिए।

(2) स्थानीय एवं निजी संस्थाओं के लिए भी चयन समिति हो, जिसमें प्रधानाध्यापक एक सदस्य के रूप में अवश्य रहे।

(3) प्रशिक्षित शिक्षक की नियुक्ति एक वर्ष के प्रोवेशन पर होनी चाहिए।

(4) माध्यमिक स्तर तक के लिए स्नातक तथा उच्च माध्यमिक स्तर तक योग्यता अधिस्नातक होनी चाहिए।

*टास्क* शिक्षकों के चयन का क्या आधार होता है?

## शिक्षकों का व्यावसायिक प्रशिक्षण उन्नयन

अध्यापक के विशिष्ट महत्त्व को देखते हुए अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाने आवश्यक हैं–

(1) विषय आधारित सुनियोजित अभिन्यास कार्यक्रमों (ओरिएन्टेशन प्रोग्राम) का आयोजन किया जाये। हाल ही में सेवारत शिक्षकों के लिए नियमित प्रशिक्षण के लिए प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों-तृतीय ग्रेड के लिए डाइटस द्वितीय ग्रेड के शिक्षकों के लिए 'अध्यापक-शिक्षा कॉलेज' (CTES) तथा वरिष्ठ/जूनियर प्राध्यापकों के लिए उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थानों (IASES) की स्थापना की गई है।

(2) नवीन पाठ्य-विधियों, शिक्षण संव्यूहनों व शिक्षण प्रतिमानों से परिचय के साथ-साथ आवश्यकतानुसार उनके प्रयोग का अभ्यास कराया जाना चाहिए।

नोट

(3) शिक्षकों को स्वाध्याय व परिचर्चा के अधिकाधिक अवसर प्रदान करना।

(4) शैक्षिक तकनीकों, मल्टीमीडिया, हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर, श्रव्य दृश्य सामग्री सहित शिक्षण को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने में उपयोग का प्रशिक्षण देना।

(5) शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी बनाना तथा नवीन विकसित तकनीकों के अभ्यास शिक्षण में प्रयोग, इन्टर्नशिप को व्यापक बनाने के लिए प्रशिक्षण अवधि को बढ़ाना। हाल ही में 2 वर्षीय बी. एड. प्रशिक्षण प्रयोगात्मक रूप से प्रादेशिक शिक्षक, प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रारंभ किए गए हैं। यदि इन महाविद्यालयों के प्रशिक्षण से शिक्षक की गुणवत्ता बढ़ती है तो बी. एड. प्रशिक्षण अवधि दो वर्षीय की जानी उचित होगी।

## शिक्षक का विद्यालयी संगठन में स्थान

विद्यालय का मूल कार्य शिक्षा प्रदान करना है और यह कार्य शिक्षक का है। शिक्षक को समाज, शिक्षा विभाग, विभिन्न शिक्षा प्रयोगों में जो महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा है, उससे वह गरिमामंडित है तथा इस पुनीत कार्य के लिए गौरवान्वित है। अत: कक्षा में विद्यार्थियों के सम्पर्क में उन उत्तरदायित्वों की पूर्ति करते हुए उसे प्रसन्नता होनी चाहिए। शिक्षक-विद्यार्थी, प्रबंध तथा अभिभावकों के मध्य महत्त्वपूर्ण कड़ी होती है। वस्तुत: समग्र विद्यालय प्रबंधन उनके (शिक्षकों के) आधार पर ही गतिमान रहता है। विद्यालयी संगठन के विस्तार के साथ-साथ शिक्षकों पर परस्पर निर्भरता बढ़ जाती है। कोई भी शिक्षक अकेला सभी कार्य नहीं कर सकता फिर चाहे योजना बनाने का कार्य हो, निर्णय लेने का हो या इन्हें क्रियान्विति का हो।

विद्यालयी प्रबंधन में यह एक आम बात देखी जाती है कि बहुत से निर्णय विविध समूहों पर छोड़ दिये जाते हैं। उनके निर्णयों के अनुरूप कार्यों की क्रियान्विति होती है। अत: आज का शिक्षक जानता है कि किसी भी विद्यालय की उपलब्धि सामूहिक होती है, वैज्ञानिक नहीं। वह विद्यालय प्रणाली में एक घटक का अंशमात्र है। परन्तु प्रणाली की सक्रियता में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

## शिक्षक और प्रशासनिक अधिकृति सम्बन्ध

विद्यालयी प्रशासनिक शृंखला में नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अधिकृतियाँ कार्य करती है, जिसके आधार पर विद्यालय प्रबंध सम्भव होता है। निम्नलिखित रेखाचित्र में यह स्थिति स्पष्ट की गई है–

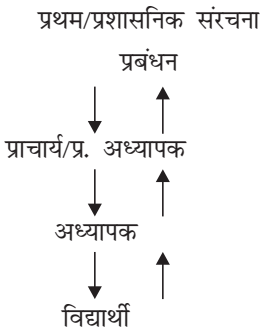


उपर्युक्त रेखा चित्र में शिक्षक अधिकृति के रूप में मध्य में अवस्थित है। कोई भी विद्यालय निर्णय न तो शिक्षक के बिना लिया जा सकता है और न ही लागू किया जा सकता है। कोई योजना भी उसके सहयोग के बिना न बन सकती है और न ही लागू की जा सकती है।

शिक्षक विद्यालय प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह वह आधार है जो राष्ट्रीय, राज्य व विद्यालयी सम्बन्धी नीतियों के निर्धारण व क्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है और भावी पीढ़ी को तदनुरूप तैयार करता है। अत: एक कुशल प्रधानाध्यापक शिक्षक को विद्यालय के लक्ष्य तय करने, तदनुसार योजना बनाने में वे क्रियान्वयन में उनकी भूमिका सुनिश्चित करता है। कोई भी निर्णय या योजना बिना शिक्षकों के सहयोग के पूरी नहीं हो सकती। योग्य प्रधानाध्यापक जानता है कि निर्णयों में उसकी सहभागिता से ही कार्य निष्पत्ति में सहभागिता बढ़ाई जा सकती

नोट

है और विद्यालयी लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। अत: शिक्षकों को विद्यालय के लक्ष्यों के निर्धारण, तदनुसार योजना निर्माण, प्रक्रिया में सम्मिलित करना आवश्यक है। कोई भी विद्यालयी लक्ष्य या योजना बिना शिक्षकों को सम्मिलित किए पूरी नहीं हो सकती है। जनतंत्रीय प्रबंधन में शिक्षकों की सहभागिता प्रधानाध्यापकीय पर्यवेक्षण से व्यापक बना टीम पर्यवेक्षण, विषय व तकनीकी विशेषज्ञ पर्यवेक्षण तक हो सकती है जिसमें विषय विशेषज्ञ व शैक्षिक तकनीकी विशेषज्ञ सम्मिलित किए जा सकते है परन्तु इस पर्यवेक्षण का उद्देश्य शिक्षक की कमजोरियों को दूर करते हुए उसके सकल पक्षों को दृढ़ करना है, छिद्रान्वेषण नहीं।

जनतांत्रिक पद्धति से विद्यालयी शैक्षिक समस्याओं व प्रबंधन समस्याओं के प्रावधान में शिक्षकों के योगदान पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) लिखता है शिक्षक, उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रधानाध्यापक के साथ जो अधिक अनुभवी व मूल्यवान है के साथ टीम की तरह मिलकर नई समस्याओं और कठिनाइयों को जो उपस्थित होगी, निरंतर आपस में परामर्श करते हुए सामूहिक बुद्धिमत्ता द्वारा उनका समाधान खोजेंगे।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. शिक्षकों एवं स्टाफ के मनोबल को बनाए रखने में ..... की मुख्य भूमिका होती है।
2. प्रधानाचार्य द्वारा अपने स्टाफ को ..... पर्यावरण मुहैया करवानी चाहिए।
3. विद्यालय की कार्यदक्षता पर जहाँ तक विपरीत प्रभाव नहीं पड़े, तो हर स्टाफ को ..... विकास की स्वतंत्रता होनी चाहिए।
4. ..... किसी भी संस्थान के प्राण हैं।
5. ..... शिक्षक विद्यालय की छवि खराब करते हैं।

## 20.4 सारांश (Summary)

- अनुदेशन प्रबन्ध, विद्यालयी प्रबन्ध का एक मुख्य दायित्व है। इसके अन्तर्गत पाठ्य संरचना, लक्ष्यानुरूप पाठ्यक्रियाओं का निर्धारण उपयुक्त अनुदेशन संव्यूहन व उपयुक्त विधियों द्वारा अनुदेशन कार्य, अनुदेशन परिवीक्षण व निष्पत्ति-मूल्यांकन आता है। दूसरे शब्दों में अनुदेशन के अन्तर्गत विद्यार्थी की ज्ञानार्जन से सम्बन्धित सभी गतिविधियां अर्थात् कक्षा शिक्षण, शिक्षण सिद्धान्तों का अनुशीलन, विश्वविद्यालय या बोर्ड द्वारा अनुशंसित पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, मूल्यांकन व अन्य समग्र पाठ्यक्रियाएँ आती हैं।
- अनुदेशन प्रभावशीलता के संदर्भ में विभिन्न देशों, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक शोध कार्य हुए हैं।
- इस नेतृत्व (प्रधानाध्यापक) को अनुदेशन कार्यक्रम का विकास करना चाहिए तथा सुनियोजित ढंग से इसकी (अनुदेशन) की क्रियान्विति करनी चाहिए। विद्यार्थी तथा शिक्षकों से शैक्षिक निष्पत्ति सम्बन्धी उच्च प्रत्याशाएँ होनी चाहिए ताकि वे दोनों शिक्षक व विद्यार्थी उन्हें पूरा करने के लिए तदनुसार प्रयत्न करें। विद्यालय प्रधानाध्यापक व शिक्षकों को यह मानकर चलना चाहिए कि प्रत्येक बालक, आधारभूत ज्ञान व कौशल हृदयंगम कर सकता है।
- अनुदेशन में निर्णय दक्षता को नेतृत्व के वैयक्तिक गुण, मूल्य, विश्वास, वैयक्तिक अनुदेशन सम्बन्धी सही परिकल्पना (Right perceptions) अनुभव भी प्रभावित करते हैं। एक योग्य विद्वान, समर्पित मानवीय मूल्यों के अनुशीलन करने वाला प्रधानाध्यापक, निश्चय ही सही अनुदेशनीय नेतृत्व दे सकता है।
- विद्यालय एक जटिल समाज है। इसके सदस्यों के साथ विशेषकर विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से अनेक घटनाएँ आए दिन होती रहती हैं, जिनका पाठ्यक्रम से सम्बन्ध नहीं होता, परन्तु विद्यार्थी पर इनका प्रभाव अवश्य पड़ता है। अधिगम के सकारात्मक पर्यावरण सृजन के लिए बालकों को प्रभावित करने वाली सभी बातों को नेतृत्व को जानना चाहिए।

नोट

- प्राचार्य को विद्यार्थियों की अनेक समस्याओं का सामना करना होता है। प्राय: इन समस्याओं का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सम्बन्ध समुदाय, जहां से विद्यार्थी आते हैं, उनसे होता है। अच्छा अनुदेशनीय नेतृत्व समुदाय का मुख्य मांग 'अच्छे शैक्षिक परिणाम' देकर सन्तुष्ट रखता है तथा उनकी रुचि व सहयोग विद्यालय विकास के लिए ले सकता है।
- पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी शब्द "करीक्युलम" (Curriculum) का रूपांतर है। करीक्युलम शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के कुररे (Currer) शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है दौड़ का मैदान। अर्थात् वह निश्चित सीमा जो दौड़ कर पूरी की जाये, या व निश्चित स्थल जहाँ दौड़ कर लक्ष्य की प्राप्ति की जाये। आज पाठ्यक्रम का अर्थ पाठ्य वस्तु की सूची से अधिकांश लोग लगाते हैं। वस्तुत: पाठ्यक्रम का अर्थ कहीं अधिक व्यापक है।
- विद्यालयों/विश्वविद्यालयों की स्थापना व्यक्ति, सामाजिक व राष्ट्रीय शैक्षिक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिए की जाती है अत: कोई भी पाठ्यक्रम व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की शैक्षिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए होना चाहिए।
- निश्चय ही शिक्षक जैसे महत्त्वपूर्ण पद पर चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। समग्र देश में शिक्षक व्यवसाय में प्रवेश के चुनाव के लिए प्री. बी. एड. टेस्ट का प्रावधान किया गया है, ताकि शिक्षक, शिक्षण कार्य में प्रवेश लेने से पूर्व प्रशिक्षित हो और प्रशिक्षित वही व्यक्ति हो जिसमें शिक्षक होने की पात्रता हो। अत: प्राथमिक शिक्षक व माध्यमिक स्तर के शिक्षक के लिए प्री. टी. सी./प्री. एड. जांच में मानसिक योग्यता, शिक्षक अभिवृत्ति व अभिक्षमता, सामान्य ज्ञान व भाषायी दक्षता की जांच का प्रावधान किया गया है।
- शिक्षक, शिक्षण व्यवस्था का अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटक हैं। यही नहीं वह सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक निर्माण का मुख्य अभिकर्ता हैं। अत: उसे राष्ट्र के भाग्य का निर्माता भी कहा जाता है। उसका स्थान इस दृष्टि से समाज के सभी वर्गों से श्रेष्ठ माना है। अत: इतने महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का शिक्षा में प्रवेश अत्यंत सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए। उसके व्यक्तित्व, व्यावसायिक क्षमता, व्यावसायिक पृष्ठभूमि, मानसिक व शारीरिक क्षमता, संवेगात्मक स्थिरता आदि पर विचार किया जाना चाहिए। चयन के बाद उचित प्रशिक्षण भी आवश्यक है।
- शिक्षक की विद्यालय प्रबंध में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वही विद्यार्थियों के सीधे सम्पर्क में रहता है तथा इस तरह अभिभावकों तक उसका संदेश, व्यवहार, मेहनत का प्रतिफल पहुँचता है। विद्यालयी प्रवृत्तियों के निर्धारण व क्रियान्वितियों में भी उसका महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। विद्यालयी नीतियों के निर्धारण व उनके महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। विद्यालयी नीतियों के निर्धारण व उनके सफलीभूत करने में उसकी भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अनुदेशन कार्य आधारभूत कार्य है, इसके लिए अधुनातन ज्ञान व विषय की प्रभावी प्रस्तुति, निरंतर कार्य मूल्यांकन व प्रतिपुष्टि, शिक्षण प्रक्रिया के अत्याज्य अंग बन जाते हैं। कोई भी प्रबंधक या प्रधानाध्यापक, विषय अध्यापक, आधारित शिक्षण कराए अथवा कक्षा आधारित, शिक्षण की भूमिका को नजरअंदाज नही कर सकता।
- शिक्षक की वर्तमान सामाजिक स्थिति से अब तक गठित शिक्षा आयोग संतुष्ट नहीं पाए गए हैं। अस्तु, माध्यमिक शिक्षा आयोग व राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने शिक्षकों के आर्थिक व सामाजिक स्तर से सुधार के लिए अनेक संस्तुतियाँ की हैं। वेतन व कार्य की दशाओं में सुधार के लिए सुझाव दिये हैं ताकि वे अपनी प्रभावी भूमिका संतुष्ट भाव से निष्पादित कर सकें। शिक्षक की प्रभावी भूमिका के लिए प्रेरणादायी पर्यावरण, शैक्षिक एवं वैयक्तिक स्वतंत्रता, मनोबल बढ़ाने के प्रयास, उचित कार्य भार पर भी विचार किया जाना आवश्यक है।

## 20.5 शब्दकोश (Keywords)

- **ज्ञानार्जन**–ज्ञान अर्जित करना।
- **सृजनकर्ता**–निर्माणकर्ता।

नोट

## 20.6 अभ्यास-प्रश्न ( Review Questions)

1. प्रभावी अनुदेशन व विद्यालय प्रभाविता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन-कौन से हैं?
2. अनुदेशन प्रबंधन की कौन-कौन सी प्रमुख समस्याएँ हैं, उनके समाधान के क्या उपाय हैं?
3. पाठ्यक्रम प्रबंधन का क्या अर्थ है? पाठ्यक्रम निर्माण के उद्देश्यों को समझाइये।
4. शिक्षक राष्ट्र निर्माता है, कैसे? स्पष्ट कीजिए।
5. शिक्षक के प्रभावी शैक्षिक योगदान के लिए कौन-कौन से कदम उठाया जाना अपेक्षित है?

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

**1.** 1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य
4. सत्य 5. असत्य।

**2.** 1. प्रधानाध्यापक 2. प्रेरणादायी 3. शैक्षणिक-व्यावसायिक
4. समर्पित शिक्षक 5. असंतुष्ट।

## 20.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–21: प्रशासनिक क्षेत्र में शिक्षण प्रबंधन का उपयोग (Application of Educational Management in Administrative Areas)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 प्रशासनिक कार्यों में शिक्षण प्रबंधन (Educational Management in Administrative Function)

21.2 प्रधानाध्यापक की विद्यालय प्रबंधन की दक्षताएँ (Efficiency of Principal in School Management)

21.3 विद्यालय में प्रधानाध्यापक का महत्त्व (Importance of Principal in School)

21.4 सारांश (Summary)

21.5 शब्दकोश (Keywords)

21.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रशासनिक कार्यों में शिक्षण प्रबंधन की व्याख्या करने में।
- विद्यालय में प्रधानाध्यापक के महत्त्व एवं प्रबंधन की दक्षताओं का विश्लेषण करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

यूनेस्को द्वारा प्रकाशित डिलोर्स आयोग प्रतिवेदन (1966) के अनुसार अनुसंधान तथा अनुभव आधारित निरीक्षण पर यह देखा गया है कि विद्यालय की प्रभावशीलता पर पड़ने वाले प्रभावों में प्रधानाध्यापक का कारक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक श्रेष्ठ प्रधानाध्यापक जो एक टीम के साथ कार्य करने की क्षमता रखता है, जो अपने क्षेत्र में दक्ष है व विचारों के लिए खुला दिमाग रखता है, बहुधा अपने विद्यालय में उपलब्धि अर्जित करता है। अतः प्रधानाध्यापक की नियुक्ति में यह सावधानी रखना चाहिए कि विद्यालय प्रधान, योग्य तथा व्यवसायी अभिरुचि वाला तथा जिसने विशेष रूप से प्रबंध में प्रशिक्षण लिया है, हो। तभी वह इसके बढ़ते हुए दायित्वों को पूरा कर सकता है। प्रधानाध्यापक की विद्यालयी शैक्षिक विकास प्रबंधन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यही कारण है कि विद्यालय प्रबंधन साहित्य में उसे 'शैक्षिक प्रक्रिया की धुरी' का स्थान दिया है। वह एक नेता होता है जो संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निर्देशन देता है।

उसका दायित्व न केवल विद्यालय तक सीमित है वरन् वह राष्ट्रव्यापी शिक्षा नीतियों के क्रियान्वित, राज्य शैक्षिक लक्ष्यों की पूर्ति, शिक्षा विभाग, शिक्षा बोर्ड के आदेशों की क्रियान्वित व अनुशीलन से भी सम्बन्धित है। वह विद्यार्थियों व

नोट

अभिभावकों, स्थानीय समाज व शिक्षा चिंतकों की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं के प्रति सजग है। वह विद्यालय के भौतिक व शैक्षिक विद्यार्थियों के व्यक्तित्व व शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के प्रति भी उत्तरदायी है। अत: वह विभिन्न वर्गों की अपेक्षाओं की पूर्ति करता हुआ शैक्षिक लक्ष्यों तक पहुँचता है अत: रायबर्न ने उसकी तुलना "जहाज के कैप्टन" से की है जो यात्रियों को निर्धारित गंतव्य तक पहुँचाता है। **पी.सी. रेन** के शब्दों में जो स्थान घड़ी में मुख्य स्प्रिंग का है, मशीन में फ्लाई हील का है, भाप के जहाज में इंजन का है, विद्यालय में वही स्थान प्रधानाध्यापक का है।

वस्तुत: प्रधानाध्यापक बहुआयामीय व्यक्तित्व का धनी होता है वह संगठनकर्ता है, नेता है, गवर्नर है, व्यावसायिक निर्देशक है, समन्वयकर्ता है, नियंत्रक है, अधीक्षक है, अध्यापक है, मार्गदर्शक है, दार्शनिक है।

विद्यालय में प्रधानाध्यापक की स्थिति अद्वितीय है। उसकी तुलना अन्य किसी से किया जाना तर्क संगत नहीं है। शैक्षणिक प्रक्रिया में कभी वह नेतृत्व करता है तो कभी वह स्वयं शिक्षक की भूमिका अदा करता हुआ निर्देशक के रूप में भी देखा जाता है अत: उसके दायित्व वैविध्यपूर्ण हैं।

## 21.1 प्रशासनिक कार्यों में शिक्षण प्रबंधन (Educational Management in Administrative Function)

प्रधानाध्यापक के मुख्य रूप से दो प्रकार के प्रशासनिक दायित्व हैं–बाह्य और अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार, राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान परिषद, शिक्षा विभाग, निदेशक राज्य शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्थान जिला शिक्षाधिकारी एवं अन्य शिक्षा सम्बन्धी अभिकरणों से संपर्क आते हैं।

**आन्तरिक प्रबंध में–** प्रबंधन मंडल अकादमिक स्टाफ, मंत्रालयीक स्टाफ, विद्यार्थी, अभिभावक के साथ सम्पर्क व स्थानीय समुदाय सम्बन्धी दायित्व आते हैं। इनके अतिरिक्त विद्यालयी कार्यकलाप व प्रवृत्तियां, विद्यालय भवन प्रबंध भी आते हैं। इन कार्यों को निम्नलिखित रेखाचित्र से भली प्रकार समझा जा सकता है।

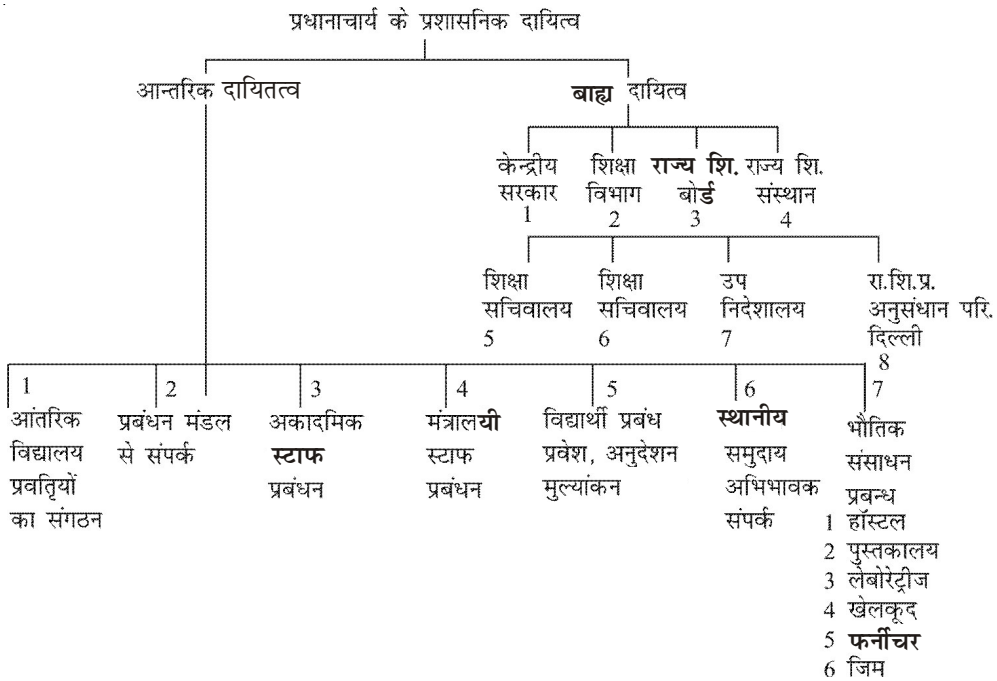


एक अन्य वर्गीकरण उव्वेन तथा हुफ्स के अनुसार प्रधानाध्यापक के कार्यों को दो भागों में पूर्व वर्गीकरण के अनुरूप बांटा गया है–1. आन्तरिक कार्य, 2. बाह्य कार्य।

नोट

1. **आन्तरिक कार्यों में**–स्टाफ की नियुक्ति, स्टाफ के सदस्यों का वैयक्तिक विकास विद्यार्थियों के सेवा कार्यक्रमों का संगठन, संसाधनों को उपलब्ध करना, भवन प्रबंध तथा वित्तीय प्रबंध आता है।
2. **बाह्य कार्यों में**–विद्यालय समुदाय सम्बन्ध, राज्य सम्बन्ध, राज्य के अभिकरणों यथा बोर्ड, शिक्षा विभाग, राज्य शिक्षक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान परिषद एवं अन्य शिक्षा से जुड़े कार्य आते हैं।

दोनों वर्गीकरणों में साम्यता है। आन्तरिक कार्यों को दूसरे वर्गीकरण में थोड़ा विस्तार दिया गया है

*क्या आप जानते हैं* सामान्य पर्यवेक्षण में गहन पर्यवेक्षण की तुलना में अधिक कार्य होता है।

**सत्रपर्यन्त प्रबंध कार्य–** सत्र की दृष्टि से, कार्य के महत्त्व की दृष्टि से विचार करने की भी आवश्यकता है। अत: इसकी कार्य योजना बनाई जानी चाहिए।

**अ. सत्र की कार्य योजना तैयार करना–** प्रधानाध्यापक की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए उसके सत्र पर्यन्त कार्यों का भी लेखा-जोखा रखने का प्रयास किया गया है। उसका मुख्य कार्य वर्ष पर्यन्त कार्यों की सुनिश्चित योजना बनाना है। यह योजना चार क्रमों में तैयार की जा सकती है।

1. विद्यालय खुलने से पूर्व
2. विद्यालय खुलने के दिन
3. सत्र के अन्तर्गत
4. सत्र की समाप्ति पर

**1. विद्यालय खुलने से पूर्व–** प्रधानाध्यापक को ग्रीष्मावकाश में आगामी वर्ष का कैलेंडर तैयार करना होता है, जिसमें विद्यालय खुलने की घोषणा, दिनांक, समय गत वर्ष के कार्यकलापों की समीक्षा, बैठकों का आयोजन, जिसमें संस्था के लक्ष्यों की पूर्ति की समीक्षा, अनुदेशन कार्यक्रम, व अन्य पाठ्य प्रवृत्तियों, पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों-खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, भौतिक विकास व स्टाफ विकास कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए समय निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि नए सत्र में उन त्रुटियों की पुनरावृत्ति न हो जो गत सत्र में हुई हैं।

अन्य अपेक्षित कार्यों में–

(*i*) आगामी

(*ii*) भवन मरम्मत, छात्रों के बढ़ते अनुमान के आधार पर भवनों की व्यवस्था।

(*iii*) फर्नीचर दुरुस्ती तथा बढ़ती छात्र संख्या के आधार पर नवीन फर्नीचर का निर्माण

(*iv*) उपकरणों की खरीद व पुराने उपकरणों की देखभाल।

(*v*) पुस्तकालय तथा स्टोर का भौतिक सत्यापन।

(*vi*) नवीन पुस्तकों के क्रय लिए शिक्षकों से पुस्तकों की सूची प्राप्त करना।

(*vii*) आगामी सत्र के लिए आवश्यक रजिस्टर, स्टेशनरी का अनुमान व क्रय योजना।

(*viii*) नए कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए संस्था स्तर व विभागीय स्तर पर स्वीकृति व नियुक्ति सम्बन्धी प्रक्रिया प्रारम्भ करना।

(*ix*) यदि विद्यालय में छात्रों में ड्रेस की अनिवार्यता है तब तत्सम्बन्धी उपलब्धता की तैयारी करना।

(*x*) कक्षा प्रोन्नति के नियमों के अनुसार छात्रों की प्रोन्नति तथा आगामी वर्ष के लिए आवश्यकता हो तो संशोधन करना।

**2. विद्यालय खुलने के प्रारंभिक दिनों में–** प्रधानाध्यापक को नवीन विद्यार्थियों के अभिभावकों के स्वागत व सम्पर्क हेतु बैठक व्यवस्था आदि के लिए समुचित कार्यालय निर्देश दिए जाने आवश्यक हैं–

(*i*) प्रत्येक कक्षा के लिए समय चक्र–शिक्षकवार तथा विषयवार तैयार कराना।

नोट

(*ii*) शिक्षकों का नवीन सत्र के लिए कार्य वितरण करना।

(*iii*) नवीन तथा नियमित विद्यार्थियों के लिए अपेक्षित सूचनाओं का नोटिस बोर्ड पर प्रदर्शन।

(*iv*) गणवेश, आवश्यक छात्र स्टेशनरी, पुस्तकों के वितरण की व्यवस्था।

**3. सत्र के अन्तर्गत**

(*i*) शिक्षण कार्य का संगठन, शिक्षकों की क्षमता, योग्यता व रुचि एवं पूर्व निर्णय के आधार पर कार्य भार सौंपना, कार्यों का पर्यवेक्षण आदि।

(*ii*) पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों के प्रभावी संचालन के लिए संचालन के लिए कैलेंडर घोषित करना तथा प्रवृत्ति प्रभारियों से पूरे वर्ष का कैलेंडर तैयार करा, लागू करना।

(*iii*) सत्र पर्यन्त विषय विशेषज्ञों के अभिभाषणों का प्रावधान।

(*iv*) नियमित कक्षा-निरीक्षण के लिए साप्ताहिक, मासिक कैलेंडर तदनुसार निरीक्षण।

(*v*) प्रत्येक छात्र के प्रगति के मूल्यांकन के लिए छात्र अभिलेखों का भरना, समीक्षा आवश्यक निर्देश प्रदान करना।

(*vi*) छात्र संघ की स्थापना व छात्र स्व-प्रशासन का प्रशिक्षण देना।

**सेवाएँ–** छात्र निर्देशन, स्वास्थ्य सेवाओं का संचालन व अवलोकन।

**4. सत्र की समाप्ति से पूर्व विशिष्ट आयोजन**

प्रधानाध्यापक को विद्यालय की उपलब्धियों के प्रदर्शन, छात्र व्यक्तित्व निर्माण के अन्य कार्यक्रमों का भी आयोजन करना होता है।

**वार्षिक खेलकूद कार्यक्रमों का आयोजन–** श्रेयस्कर होगा कि जब न अधिक गर्मी हो और न अधिक ठंड हो, तभी ये कार्यक्रम व प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाय।

**वार्षिकोत्सव की तैयारी–** इसके अन्तर्गत छात्रों की विविध शैक्षिक व सांस्कृतिक क्षमताओं का प्रदर्शन तथा श्रेष्ठ उपलब्धियों के लिए छात्र पुरस्कार वितरण होना चाहिए।

विद्यालय उपलब्धियों का वार्षिक वितरण समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

**विभिन्न प्रकार के दिवसों का आयोजन–** गांधी जयन्ती, महावीर जयन्ती, जन्माष्टमी, ईसा मसीह जयन्ती, गुरु नानक जयन्ती, मुहम्मद साहब जयन्ती, आदि को मनाकर सर्व धर्म समभाव का दृष्टिकोण छात्रों में पोषित करना चाहिए।

सत्य दिवस, मातृ दिवस, पितृ दिवस जैसे दिवसों के आयोजन से छात्रों को उन दिवसों की महत्ता से परिचित कराते हुए मूल्यों का पोषण करना चाहिए।

**प्रधानाध्यापक दक्षता–** शिक्षाविदों का अनेक वर्षों से विद्यालय दक्षता पर ध्यान गया है और अनेक अनुसंधान इस विषय को लेकर हुए हैं। एक दक्ष नेतृत्व और दक्षता को प्रभावित करने वाली उसकी कार्यशैली को भी देखा गया है। एक अच्छे नेतृत्व का प्रभावी प्रबंधन की दृष्टि से महत्त्व सभी ने स्वीकार किया है।

रयूटर तथा उसके सहयोगियों ने लंदन के 12 निर्धन पड़ौसी विद्यालयों का अध्ययन किया तथा पाया कि विद्यालय पर्यावरण का प्रभाव विद्यार्थियों की निष्पत्ति पर बहुत अधिक पड़ता है। इसमें अच्छा शिक्षण व विद्यालयी प्रबंध नेतृत्व जिसके द्वारा यह पर्यावरण सृजित किया जाता है, महत्त्वपूर्ण कारक हैं।

अत: यह आवश्यक है कि उन प्रबंधन कारकों अथवा दूसरे शब्दों में उन दक्षताओं का पता लगाया जाए तथा अध्यापक प्रशिक्षण में उन दक्षताओं का प्रशिक्षण दिया जाय ताकि भावी दक्ष प्रधानाध्यापक समाज व राष्ट्र को दिए जा सकें।

*टास्क* मानवीय प्रबंध से आप क्या समझते हैं?

नोट

## 21.2 प्रधानाध्यापक की विद्यालय प्रबंधन की दक्षताएँ (Efficiency of Principal in School Management)

केरोलीन स्निडर तथा राबर्ट एन्डर्सन ने विद्यालय प्रधानाध्यापक प्रबंधन दक्षता के अन्तर्गत 10 कारकों का उल्लेख किया है–

1. विद्यालयी लक्ष्यों का निर्धारण
2. कार्यकारी समूह शिक्षक, मंत्रालयिक स्टाफ की कार्य निष्पत्ति सुनिश्चित करना।
3. स्टाफ के कार्य लक्ष्य और कार्य निष्पत्ति का विवरण
4. स्टाफ विकास की योजना
5. पर्यवेक्षण
6. कार्यकारी समूहों की कार्य निष्पति योजना
7. गुणवत्ता नियंत्रण
8. प्रभावी अनुदेशन कार्यक्रम
9. संसाधन विकास
10. विद्यार्थी-शिक्षक उपलब्धि, मूल्यांकन।

**1. विद्यालय लक्ष्य निर्धारण–** प्रभावी विद्यालय प्रणाली में प्रधानाध्यापक समग्र स्टाफ के सहयोग से विद्यालय विकास के वास्तविक लक्ष्य तय करता है। ये लक्ष्य गत सत्र के कार्यों के मूल्यांकन व आवश्यकताओं पर आधारित होते हैं। सामूहिक निर्णय एक स्वस्थ विद्यालय पर्यावरण को जन्म देते हैं। सभी कार्यक्रमों की सफलता का श्रेय इस प्रकार विद्यालय स्टाफ पर आ जाता है।

**2. टीम/कार्यकारी समूहों के कार्य की निष्पत्ति–** विद्यालयी दक्षता के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालयी लक्ष्य के लिए एक टीम/ कार्यकारी समूह का गठन किया जाए। प्रभावी विद्यालय के शिक्षक आमतौर पर टीम भावना से सृजनपूर्ण उपागम अपनाते हैं और लक्ष्यों की पूर्ति में सहयोग करते हैं। टीम के कार्य सम्बन्धी अधिकार भी विकेन्द्रित किए जाते हैं। परस्पर विचार-विमर्श में नवीन विचार भी शिक्षकों से आते हैं जो विद्यालय में नवीन सृजनता का वातावरण सृजित करते हैं।

**विद्यालय प्रबंधन की दक्षताएँ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. विद्यालयी व्यापक लक्ष्य निर्धारण (School wide goal setting)<br>2. कार्य समूह निष्पत्ति (Work Group Performance)<br>3. वैयक्तिक स्टाफ (Individual Staff Performance) | 4. स्टाफ विकास (Staff growth)<br>5. क्लिनिकल पर्यवेक्षण (Clinical Super-vision)<br>6. कार्य समूह विकास (Work group development)<br>7. गुणवत्ता नियंत्रण (Quality Control) | 8. अनुदेशीय कार्यक्रम (Instructional programme)<br>9. संसाधन विकास (Resource development) | 10. निष्पत्ति मूल्यांकन (Assessing achievement)<br>(*i*) विधार्थी उपलब्धि (Student Achievement)<br>(*ii*) शिक्षक उपलब्धि (Teacher Achievement)<br>(*iii*) विद्यालय उपलब्धि (School achievement) |

नोट

**3. वैयक्तिक स्टाफ निष्पत्ति योजना–** किसी भी प्रभावी प्रबंधन में लक्ष्यानुरूप प्रत्येक सदस्य का निष्पत्ति से सम्बन्ध रखा जाता है। इसमें विद्यालय और शिक्षक के लक्ष्य शिक्षक के मार्गदर्शक होते हैं। एक प्रभावी विद्यालय में प्रत्येक व्यक्ति से उसकी भूमिका की अपेक्षाएँ बहुत स्पष्ट होती हैं तथा शिक्षक, विद्यार्थियों की निष्पत्ति के लिए उत्तरदायी (Accountable) होता है। एक सुस्पष्ट योजना का खाका जिसमें विद्यालयी लक्ष्य, शिक्षकों से अपेक्षाएँ, प्रवृत्तियाँ, पर्यवेक्षण, पुनर्बलन तथा निष्पत्ति व मूल्यांकन निर्दिष्ट हो, अत्यंत उपयोगी होता है।

**4. स्टाफ विकास–** विद्यालय के परिप्रेक्ष्य में स्टाफ के विकास की योजना प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, क्योंकि स्टाफ के विकास में ही विद्यालय की दक्षता व विकास निहित है। इसकी योजना प्रधानाध्यापक व शिक्षक दोनों को मिलकर बनानी चाहिए तथा इसमें उन कौशलों का विकास होना चाहिए जिनका कक्षा शिक्षण और उसकी निष्पत्ति पर प्रभाव पड़े। इस हेतु परीक्षण समूह विचार-विमर्श, विशेषज्ञों द्वारा अभिस्थापन (व्तपमदजंजपवद) व प्रशिक्षण उपयोगी होता है।

देश और राज्य के संस्थान विशेषकर केन्द्रीय स्तर पर एन.सी.ई.आर.टी. तथा राज्य स्तर पर एस.आई.आर.टी. शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए आयोजन करती रहती है। हाल ही में केन्द्रीय प्रायोजनाएँ: उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान व अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय भी सेवारत शिक्षकों के लिए अभिस्थापन कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

**5. पर्यवेक्षण–** एक प्रभावी विद्यालय में अनुदेशन की दक्षता के लिए शिक्षकों के अनुदेशन का निरंतर पर्यवेक्षण प्राचार्य/टीम द्वारा किया जाता है। इस पर्यवेक्षण का उद्देश्य कक्षा शिक्षण के प्रभावी बनाना होता है, शिक्षक की त्रुटियों को देखना नहीं। एक योग्य प्रधानाध्यापक शिक्षक की विषय योग्यता, पाठन विधियों, सहायक सामग्री का उपयोग तथा छात्र अधिगम की स्थिति प्रभावी पर्यवेक्षण द्वारा ही कर सकता है। विषयगत योग्यता के लिए वह विषय विशेषज्ञों का योगदान भी स्थानीय विश्वविद्यालय व प्रशिक्षण महाविद्यालयों से आमंत्रित कर ले सकता है। शिक्षक के शिक्षण की स्थिति के अनुसार शिक्षकों को प्रतिपुष्टि (थ्मकइंबा) दिया जा सकता है। आवश्यकतानुसार विशेषज्ञों से प्रदर्शन पाठों का आयोजन कर शिक्षकों से अनुकरण के लिए कहा जा सकता है।

**6. कार्यकारी समूह विकास–** प्रभावी विद्यालय में सभी शिक्षक प्राचार्य के साथ मिलकर कार्यक्रम तय करते हैं। विशिष्ट कार्य अथवा समस्या के आधार पर प्राचार्य समस्या की प्रस्तुति करता है, और समूह से उसके समाधान की अपेक्षा करता है। इससे समूह की समाधान खोजने के संव्यूहन तलाश करने में सक्रिय सहभागिता बढ़ जाती है।

*नोट्स* कार्यकारी समूह शिक्षकों के लिए अधिगम केन्द्र बन जाते हैं क्योंकि इसमें प्रत्येक विचार पर प्रतिक्रिया व कार्य सहमति पर सहभागिता का अवसर मिलता है।

इससे स्टाफ की परस्पर समझ, समान लक्ष्य तथा कार्यक्रमों की उत्कृष्टता के प्रति समर्पण के भाव पैदा होते हैं। यह स्थिति, किसी भी विद्यालय को श्रेष्ठता के स्तर पर पहुँचा सकती है।

**7. गुणवत्ता नियंत्रण–** प्रभावी संगठन में गुणवत्ता नियंत्रण प्रक्रिया आवश्यक है। लक्ष्य आधारित योजनाबद्ध कार्यक्रमों से संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति में सफलता मिलती है। विद्यालय की बढ़ती निष्पत्ति के लिए शिक्षकों का दायित्व निर्वाह, पुनर्वलयन (Reinforcement) तथा उनकी मान्यता, उत्प्रेरणा के महत्त्वपूर्ण प्रेरक हैं। इसके साथ ही सभी कार्यों के सम्बन्ध में लक्ष्य आधारित अनुवीक्षण करना (Monitioring), आवश्यकता पड़ने पर अन्तक्षेप (Intervention) प्रभावी निष्पत्ति प्रबंधन के प्रमुख आधार हैं।

**8. अनुदेशन प्रबंधन–** प्रभावी विद्यालय प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य विद्यार्थियों को प्रभावी अनुदेशन प्रदान कराना होता है। प्रधानाचार्य को अनुदेशन के उच्च स्तरीय मानक संप्रेषित करने चाहिए। तदनुसार ही विद्यालय में एक शैक्षिक

नोट

पर्यावरण सृजित होना चाहिए। अनुदेशन कार्यक्रम नियमित व समयबद्ध होना चाहिए। आवश्यकतानुसार सुधार के लिए प्रतिपुष्टि का प्रावधान होना चाहिए। प्रभावी अधिगम के लिए अनुदेशन उपागमों, प्रतिमानों में अधिकाधिक विद्यार्थियों की सहभागिता होना आवश्यक है।

एक प्रभावी विद्यालय का नेतृत्व व शिक्षकों को इतना जागरूक होना चाहिए कि वे पुरानी विधियों, उपागमों की अच्छाइयों को अपनाते हुए नए शिक्षण प्रतिमानों, शिक्षण तकनीकों, उपलब्ध शिक्षण सामग्रियों-श्रव्य, दृश्य, मल्टीमीडिया को भी अनुदेशन में प्रयुक्त करें।

**9. संसाधन विकास–** संसाधनों का अधिकतम उपयोगी उपयोग एक प्रभावी प्रबंधन का लक्षण होता है। अत: प्रभावी प्रधानाध्यापक उपलब्ध भौतिक व मानवीय संसाधनों को विद्यालयी लक्ष्यों के अनुरूप नियोजित करता है। आवश्यकता होने पर समुदाय के संसाधनों विशेषज्ञों, सामुदायिक भवनों, अभिकरणों के संसाधनों का भी उपयोग करता है। तदर्थ विद्यालयी कार्यक्रमों में अभिभावकों, समुदाय के सुधीजनों को सम्मिलित किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि समुदाय और विद्यालय के अच्छे सम्बन्ध बनते हैं तथा समुदाय को भी संतोष प्राप्त होता है और विद्यालय को समुदायिक विद्यालय बनने की मान्यता मिलती है।

**उपलब्धियों का मूल्यांकन–** एक सफल प्रधानाध्यापक को विद्यालय की उत्तम निष्पत्ति के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक कार्यकर्ता के कार्यकलापों की निष्पत्ति का लेखा-जोखा रखा जाता है। उपलब्ध रिकार्ड के आधार पर त्रुटियों व कमियों के लिए उपचारात्मक कार्यक्रमों का प्रावधान किया जाता है। इस मूल्यांकन के निम्नलिखित प्रकार हैं–

**1. टीम का मूल्यांकन–** संगठन के लक्ष्यों के प्रकाश में समूह की उत्पादकता (निष्पत्ति) की जांच, एक प्रभावी विद्यालय की आवश्यक प्रक्रिया है। टीम स्वयं अपनी प्रगति का मूल्यांकन करती है। अच्छी उपलब्धि के लिए उचित पारितोषिक व प्रशंसा भी की जाती है।

**2. अध्यापक मूल्यांकन–** सफल प्राचार्य, प्रत्येक शिक्षक के कार्य की निष्पत्ति के आधार पर कार्य की समीक्षा करता है। इस समीक्षात्मक मूल्यांकन का आधार संगठन-लक्ष्यों व वैयक्तिक लक्ष्यों के आधार पर होता है। इससे विद्यालय की निष्पत्ति में सकारात्मक अभिवृद्धि होता है। शिक्षक भी इस मूल्यांकन का स्वागत करते हैं। जब उन्हें यह विश्वास होता है कि उनका मूल्यांकन उनकी व विद्यालय प्रगति के लिए है वैयक्तिक छिद्रावेषण के लिए नहीं है। तब वे इसका स्वागत करते हैं। इससे शिक्षकों का मनोबल भी बढ़ता है।

**3. विद्यार्थी मूल्यांकन–** किसी भी विद्यालय की उपलब्धि वस्तुत: छात्रों की उपलब्धि है। अत: छात्रों की प्रगतिमान उपलब्धि का नियमित निरंतर मूल्यांकन अपेक्षित है। नियमित मूल्यांकन में छात्रों की जहाँ कमजोरियाँ हैं, उनको दूर करने का प्रयास किया जाता है। विद्यार्थियों का उच्च आत्मविश्वास निश्चय ही विद्यालय ही निष्पत्ति बढ़ाता है तथा शिक्षकों को भी संतोष व गौरव की अनुभूति होता है।

## 21.3 विद्यालय में प्रधानाध्यापक का महत्त्व (Importance of Principal in School)

प्रभावी विद्यालय पर हुए अनुसंधान एक आम निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राचार्य मात्र एक कारक ऐसा है जिसके आधार पर विद्यालय की प्रभाविता की भाविष्यवाणी की जा सकती है। वह विद्यालय उपलब्धियों के लिए विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण का महत्त्वपूर्ण कारक है।

**आदर्श प्रेरक उदाहरण–** स्टाफ और छात्रों के समक्ष संस्था के प्रति समर्पण प्रदर्शित करने के लिए प्राचार्य स्वयं कार्य की पहल कर आदर्श प्रस्तुत करता है। प्राय: वह प्रार्थना सभा, विविध प्रवृत्तियों सांस्कृतिक, सामाजिक, खेलकूद में उपस्थित रह कर विद्यालयी कार्यक्रम के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाता है। स्टाफ सम्बन्धी प्रवृत्तियों का संचालन कर या उपस्थित रहकर उन्हें प्रोत्साहित करता है।

नोट

**प्राचार्य एक आदर्श प्रतिमान–** एक प्रभावी प्रधानाध्यापक विद्यालय स्टाफ के लिए कठोर व समर्पित कार्य द्वारा सक्षम नेतृत्व का नमूना प्रस्तुत करता है।

**टीम की भावना–** टीम की भावना से कार्य कराने की प्रवृत्ति जनतंत्रीय प्रबंध की आवश्यक अपेक्षा है। अत: एक कुशल प्रधानाध्यापक आश्वस्त होता है कि प्रशासनिक समितियाँ नियमित रूप से मिलती हैं, बार-बार वह उनकी कार्यवाहियों में सम्मिलित होता है। सम्बन्धित कार्य में नियमित कार्य अनुभव के आधार पर सुझाव देता है तथा संगठन को आगे बढ़ाने में योग देता है, क्योंकि कोई व्यक्ति रिक्तता में सुझाव नहीं दे सकता। अत: टीम एप्रोच से प्राचार्य एक फोरम का सृजन करता है जिसके माध्यम से विचार प्राप्त करता है। तथा निर्णय लेने में योग प्राप्त करता है।

वह 'प्रधानाध्यापक' भी है और शिक्षक भी। वह विद्यालय का अध्यक्ष है व प्रशासक भी है अत: उसकी प्रधान की भूमिका है। मूलत: वह 'शिक्षक' है और शिक्षण में रुचि लेने के साथ प्रभावी आदर्श प्रस्तुत करता है यही नहीं वह आदर्श मानव है जो मानव निर्माण के कार्य में संलग्न है। प्रधानाध्यापक के अपेक्षित गुणों व उससे अपेक्षाओं के सन्दर्भ में, अपार साहित्य उपलब्ध है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–**

1. किसी भी विद्यालय की उपलब्धि वस्तुत: ..... की उपलब्धि है।
2. ..... शिक्षक के कार्य की निष्पत्ति के आधार पर कार्य की समीक्षा करता है।
3. विद्यालय में प्रधानाध्यापक की ..... स्थिति होती है।
4. प्रधानाध्यापक को अपने ..... दायित्वों के प्रति सचेत रहना चाहिए।
5. संसाधनों का अधिकतम प्रभावी उपयोग एक कुशल ..... का लक्षण होता है।

## 21.4 सारांश (Summary)

- विद्यालय में प्रधानाध्यापक की केन्द्रिय स्थिति होती है। जिसके माध्यम से विद्यालय कार्यक्रम संचालित होते हैं। अत: प्रधानाध्यापक के व्यक्तित्व में नेतृत्व गुण, प्रभावी जनतंत्रीय शिक्षा दर्शन, मौलिकता व्यावसायिक गुण, संगठन के प्रति निष्ठा जैसे गुण अपेक्षित हैं। प्रधानाध्यापक में विभिन्न दृष्टिकोणों से भिन्न-भिन्न गुणों की अपेक्षा की जा सकती है।
- प्रधानाध्यापक को अपने प्रशासनिक दायित्वों के प्रति सचेत रहना चाहिए। इन दायित्वों में मुख्यतया प्रशासनिक, शिक्षण पर्यवेक्षण छात्रों की प्रगति, विशिष्ट सेवा कार्य तथा कार्यालय सम्बन्धी कार्य प्रमुख हैं। सत्र की अवधि की योजना के दृष्टिकोण से उसके कार्यों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

  1. विद्यालय खुलने से पूर्व की योजना, 2. विद्यालय खुलने पर, 3. सत्र के अंतर्गत, 4. सत्र की समाप्ति पर।
- प्रधानाध्यापक के मुख्य रूप से दो प्रकार के प्रशासनिक दायित्व हैं–बाह्य और अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार, राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान परिषद, शिक्षा विभाग, निदेशक राज्य शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्थान जिला शिक्षाधिकारी एवं अन्य शिक्षा सम्बन्धी अभिकरणों के अंतर्गत आते हैं।
- प्रबंधन मंडल अकादमिक स्टाफ, मंत्रालयिक स्टाफ, विद्यार्थी, अभिभावक के साथ सम्पर्क व स्थानीय समुदाय सम्बन्धी दायित्व आते हैं।
- एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य व्यक्ति सम्बन्धी प्रबंध का है। यही वह आधार है जिसके कंधों पर प्रबंध खड़ा है। अत: मानवीय प्रबंध में एक प्रधानाध्यापक को निम्न तथ्यों सदैव विचार कर विद्यालय के लिए लेना चाहिए।
- व्यक्ति संगठन में कार्य करते हैं। संगठन के लक्ष्य व अपेक्षाएं, वास्तविक और कल्पित व्यक्ति के विश्वास और व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

नोट

- व्यक्ति की आंशिक शक्ति संगठन की वास्तविकताओं और कार्यरत अधिकृतियों, साथियों तथा अधीनस्थों की अपेक्षाओं के सामंजस्य में लगती है।
- कार्य सम्बन्धी पर्यावरण कार्य निष्पत्ति को प्रभावित करता है। विद्यालय के संदर्भ में विद्यालयी शिक्षा सम्बन्धी कार्य शैक्षिक निष्पत्ति को प्रभावित करता है। इसके लिए निम्न तथ्यों पर प्रधानाध्यापक को ध्यान देना चाहिए।
- पर्यवेक्षण व्यक्ति आधारित हो, उत्पादन केन्द्रित नहीं। व्यक्ति आधारित पर्यवेक्षण उत्पादन केन्द्रित पर्यवेक्षण से कही अधिक अच्छे परिणाम देता है।
- कर्मियों में उच्च मनोबल, उनका कार्य संतोष जो व्यक्ति संगठन की कार्यकारी दशाओं में प्राप्त करता है विद्यालय संगठन दक्षता व उच्च परिणाम देता है।
- वित्तीय उत्प्रेरणा से भी अधिक मनोबल बढ़ने वाला पर्यवेक्षण अधिक प्रतिफल देता है।
- एक प्रभावी विद्यालय में अनुदेशन की दक्षता के लिए शिक्षकों के अनुदेशन का निरंतर पर्यवेक्षण प्राचार्य/टीम द्वारा किया जाता है। इस पर्यवेक्षण का उद्देश्य कक्षा शिक्षण के प्रभावी बनाना होता है, शिक्षक की त्रुटियों को देखना नहीं। एक योग्य प्रधानाध्यापक शिक्षक की विषय योग्यता, पाठन विधियों, सहायक सामग्री का उपयोग तथा छात्र अधिगम की स्थिति प्रभावी पर्यवेक्षण द्वारा ही कर सकता है।
- प्रभावी विद्यालय में सभी शिक्षक प्राचार्य के साथ मिलकर कार्यक्रम तय करते हैं। विशिष्ट कार्य अथवा समस्या के आधार पर प्राचार्य समस्या की प्रस्तुति करता है, और समूह से उसके समाधान की अपेक्षा करता है। इससे समूह की समाधान खोजने के संव्यूहन तलाश करने में सक्रिय सहभागिता बढ़ जाती है।
- संसाधनों का अधिकतम उपयोगी उपयोग एक प्रभावी प्रबंधन का लक्षण होता है। अत: प्रभावी प्रधानाध्यापक उपलब्ध भौतिक व मानवीय संसाधनों को विद्यालयी लक्ष्यों के अनुरूप नियोजित करता है। आवश्यकता होने पर समुदाय के संसाधनों विशेषज्ञों, सामुदायिक भवनों, अभिकरणों के संसाधनों का भी उपयोग करता है।
- एक सफल प्रधानाध्यापक को विद्यालय की उत्तम निष्पत्ति के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक कार्यकर्ता के कार्यकलापों की निष्पत्ति का लेखा-जोखा रखा जाता है।
- प्रभावी विद्यालय पर हुए अनुसंधान एक आम निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राचार्य मात्र एक कारक ऐसा है जिसके आधार पर विद्यालय की प्रभाविता की भविष्यवाणी की जा सकती है। वह विद्यालय उपलब्धियों के लिए विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण का महत्त्वपूर्ण कारक है।
- स्टाफ और छात्रों के समक्ष संस्था के प्रति समर्पण प्रदर्शित करने के लिए प्राचार्य स्वयं कार्य की पहल कर आदर्श प्रस्तुत करता है। प्राय: वह प्रार्थना सभा, विविध प्रवृत्तियों सांस्कृतिक, सामाजिक, खेलकूद में उपस्थित रह कर विद्यालयी कार्यक्रम के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाता है।
- टीम की भावना से कार्य कराने की प्रवृत्ति जनतंत्रीय प्रबंध की आवश्यक अपेक्षा है। अत: एक कुशल प्रधानाध्यापक आश्वस्त होता है कि प्रशासनिक समितियाँ नियमित रूप से मिलती हैं, बार-बार वह उनकी कार्यवाहियों में सम्मिलित होता है। सम्बन्धित कार्य में नियमित कार्य अनुभव के आधार पर सुझाव देता है तथा संगठन को आगे बढ़ाने में योग देता है, क्योंकि कोई व्यक्ति रिक्तता में सुझाव नहीं दे सकता। अत: टीम एप्रोच से प्राचार्य एक फोरम का सृजन करता है जिसके माध्यम से विचार प्राप्त करता है तथा निर्णय लेने में सफलता प्राप्त करता है।

## 21.5 शब्दकोश (Keywords)

- **मार्गदर्शक**–उचित दिशा-निर्देश देने वाला।
- **पारितोषिक**–पुरस्कार।

नोट

## 21.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विद्यालय प्रधानाध्यापक की प्रबंधकीय भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. एक प्रभावी प्रधानाध्यापक के गुणों का वर्णन कीजिए।
3. एक दक्ष प्रधानाध्यापक के दायित्वों की विवेचना कीजिए।
4. प्रधानाध्यापक की अपेक्षित भूमिकाओं का वर्णन कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. छात्र 2. सफल प्राचार्य 3. केन्द्रीय 4. प्रशासनिक
5. प्रबंधन।

## 21.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–22: शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन : चुनौतियाँ (Quality Management in Education : Challenges)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन का अर्थ (Meaning of Quality Management in Education)

22.2 शिक्षा तथा गुणवत्ता के उद्देश्य (Objectives of Education and Quality)

22.3 शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन की चुनौतियाँ (Challenges in Quality Management in Education)

22.4 सारांश (Summary)

22.5 शब्दकोश (Keywords)

22.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

22.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन की चुनौतियों का विश्लेषण करने में।
- शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन के अर्थ एवं उद्देश्य का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

पहले गुणवत्ता प्रबंधन का उपयोग केवल व्यावसायिक संगठनों में होता था, किन्तु अब यह शिक्षा क्षेत्र में भी प्रयुक्त होने लगा है। जैसे-जैसे आर्थिक तथा सामाजिक परिवेश में परिवर्तन आ रहे हैं उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हो रहे हैं। वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष बल दिया जा रहा है। इस अध्याय में हम शिक्षा की गुणवत्ता तथा इसकी चुनौतियों के विषय में अध्ययन करेंगे।

## 22.1 शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन का अर्थ (Meaning of Quality Management in Education)

शिक्षा में गुणवत्ता एक बहुविमीय अवधारणा है। जिसमें शिक्षा से जुड़े सभी कार्य तथा गतिविधियाँ सम्मिलित हैं, अत: शिक्षा में गुणवत्ता के लिए, छात्र, अध्यापक, छात्र सहयोगी सेवाएँ संसाधन तथा पाठ्यक्रम सभी की गुणवत्ता बहुत आवश्यक है। शिक्षा की गुणवत्ता की कसौटी परिणाम पर निर्भर करती है। शिक्षा की गुणवत्ता के लिए विभिन्न प्रयास किये गए हैं, किन्तु वर्तमान शिक्षा प्रणाली में ये प्रयास पर्याप्त नहीं है, इसके मार्ग में बहुत चुनौतियाँ हैं।

नोट

## 22.2 शिक्षा तथा गुणवत्ता के उद्देश्य (Objectives of Education and Quality)

किसी भी शिक्षण तंत्र के गुणवत्ता प्रबंध के कुछ उद्देश्य होते हैं। वर्तमान शिक्षण प्रणाली के उद्देश्यों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है जो निम्नलिखित हैं–

1. **सामाजिक गुणवत्ता**–भारतवर्ष में विभिन्न धर्म, भाषाएँ, मत तथा पंथों के अनुयायी रहे हैं, सभी धर्मानुयायी अपने-अपने धर्मों तथा मतों का पालन करते हैं, शिक्षा द्वारा ही इन सभी धर्मों को समझने तथा एक दूसरे धर्मों को आदर की दृष्टि से देखना संभव है, अत: शिक्षा का स्वरूप व प्रारूप इस प्रकार का होना चाहिए जिससे सामाजिक मूल्यों का विकास हो।
2. **राष्ट्रीय गुणवत्ता**–एकता तथा अखंडता किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए अत्यंत आवश्यक है। नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना जन्म से उत्पन्न नहीं होती बल्कि शिक्षा तथा अध्यापन द्वारा यह भावना छात्रों में विकसित करनी होती है। शिक्षा में जब शुद्धता तथा गुणवत्ता होगी, तब भी ये भावनाएँ जागृत होंगी। सामाजिक अध्ययन एक ऐसा विषय है, जिसमें राष्ट्र के इतिहास, भूगोल तथा अन्य सामाजिक स्थितियों का गहन अध्ययन किया जाता है। इसलिए इसमें ऐसे तथ्यों का समावेश होना चाहिए, जिससे राष्ट्रवाद तथा नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सके। प्रार्थना सभा में राष्ट्रगान का गायन, विद्यालय में प्रार्थना सभा का आयोजन, कक्षा में राष्ट्रीय एकता से संबंधित कार्य तथा गतिविधियाँ इस कार्य के लिए किये गए प्रयास हैं।
3. **शैक्षणिक गुणवत्ता**–शैक्षणिक गुणवत्ता का अर्थ, शैक्षणिक अधिगम में उत्तमता है। शिक्षा में सभी विषयों विशेषरूप से विज्ञान, तकनीकी गणित आदि की गुणवत्ता इतनी अच्छी होनी चाहिए कि विषयों का अध्ययन करके विद्यार्थी व्यावसायिक रूप से सक्षम हो सकें और गुणवत्ता प्रधान कार्य कर सकें। प्रायोगिक परीक्षा, प्रोजेक्ट्स तथा प्रस्तुतिकरण के माध्यम से छात्रों को ऐसी उत्तम प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाये जिससे वे भविष्य में जीवन के हर क्षेत्र में भी गुणवत्ता प्रदान कर सकें।

*क्या आप जानते हैं* सामाजिक मानक किसी भी राष्ट्र की संस्कृति की नींव होते हैं, तथा ये सामाजिक मूल्यों को निर्धारित करते हैं।

## 22.3 शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन की चुनौतियाँ (Challenges in Quality Management in Education)

शिक्षा की गुणवत्ता तभी संभव है, जब इसके प्रबंध में गुणवत्ता लाई जाये। उच्च गुणवत्ता तथा उच्च मानक बहुत से 'कम्पोनेन्ट्स' पर निर्भर करते हैं। ये Components एक प्रकार की प्रणाली बनाते हैं जोकि इनपुट, प्रक्रिया तथा आऊटपुट (परिणाम) में वर्गीकृत किये गये हैं।

| *इनपुट* | *प्रक्रिया* | *आउटपुट* |
|---|---|---|
| स्टाफ की शैक्षिक योग्यता | पाठ्यक्रम डिजाइन | योग्य स्नातक |
| छात्रों का शैक्षिक अनुभव | अधिगम सपोर्ट (support) | पारितोषिक के प्रकार |
| अधिगम संसाधनों की रेंज | छात्र मूल्यांकन | छात्रों का कार्य, स्नातक ज्ञान, कौशल |

1. **वित्तीय प्रबंधन**–हमारे देश में जहाँ संसाधनों की उपलब्धता है, तो ऐसी कई समस्याएँ हैं जिन्हें हल करने में देश का धन व्यय होता है। चारों ओर से भारत के पड़ोसी देश अपनी कुदृष्टि देश की स्थिति पर रखते हैं। इन शत्रु देशों से रक्षा के लिए धन व्यय करना पड़ता है, इसके अतिरिक्त खाद्य, यातायात, स्वास्थ्य आदि के लिए भी

नोट

बहुत धन खर्च करना पड़ता है जिससे शिक्षा के लिए पर्याप्त धन नहीं मिलता है और हम शिक्षा के विश्वस्तरीय मानकों से वंचित रह जाते हैं, इसलिए विभिन्न राष्ट्रों की तुलना में हमारा देश शिक्षा की गुणवत्ता के क्षेत्र में पिछड़ रहा है।

**2. गुणवत्ता प्रबंधन**–शिक्षण संस्थानों, विद्यालयों तथा कॉलेजों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के कुछ क्षेत्रों में कमियाँ हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है–

(*a*) **संस्थानात्मक नेतृत्व**–किसी भी संस्थान की प्रगति तथा उन्नति प्रधानाचार्य, डीन तथा अध्यापकों की योग्यता तथा कार्यान्वयन पर निर्भर करती है। अत: केवल प्रधानाचार्य, डीन तथा कुलपति पर ही नहीं वरन् अध्यापकों पर भी निर्भर करता है। अध्यापक कक्षा को पूर्ण रूप से प्रशासित तथा अनुशासित रखता है, तथा उनका नेतृत्व भी करता है। अत: यदि प्रधानाध्यापक, अध्यापक तथा अन्य सहयोगी एक टीम की भाँति मिलजुल कर कार्य करें तो संस्थान की प्रगति तथा गुणवत्ता में सुधार अवश्य लाया जा सकता है।

(*b*) **प्रशासनिक गुणवत्ता**–प्रशासनिक कार्य दो स्तरों पर महत्वपूर्ण हैं–(*i*) संस्थान (*ii*) कक्षा। प्रधानाचार्य अथवा रजिस्ट्रार संस्थानात्मक प्रशासन का कार्यभार संभालते हैं तथा अध्यापक कक्षीय स्तर पर देखरेख करते हैं। संस्थान में कक्षाओं, बिल्डिंग, बाथरूम डेस्कों तथा खेल के मैदान की सफाई में होने वाली सभी गतिविधियों का रिकार्ड रखना भी प्रशासनिक कार्य हैं। इन कार्यों में गुणवत्ता की बहुत आवश्यकता है।

(*ii*) **फैकल्टी की गुणवत्ता की आवश्यकता**–एक शैक्षणिक रूप से योग्य शिक्षक का अर्थ यह नहीं कि वह एक गुणवत्ता की दृष्टि से भी योग्य है। स्नातकोत्तर अथवा Ph.D. करने वाला शिक्षक, शैक्षिक रूप से योग्य होता है किन्तु प्रभावी शिक्षक वह है जो विद्यार्थियों को कोई विशेष विषय प्रभावी ढंग से समझा सके, तथा कॉलेज की अन्य गतिविधियों में भी बच्चों को प्रोत्साहन दे सके। उच्च शिक्षा में अध्यापकों की गुणवत्ता विशेष महत्व रखती है। अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा शिक्षा में वेतनमान कम हैं, अत: लोग इस क्षेत्र में आने में रूचि नहीं दिखाते तथा जो लोग आते हैं, वे भी रूचि लेकर शिक्षण कार्य नहीं करते हैं जिससे अच्छे, अनुभवी तथा योग्य अध्यापकों की कमी हो गई है। वेतनमान बढ़ाकर, इस कमी को पूरा किया जा सकता है, तथा शिक्षा में गुणवत्ता लाई जा सकती है।

बेहतर शिक्षण चार अंगों का मिश्रित रूप है, ये अंग हैं–

(*i*) शैक्षिक कुशलता, (*ii*) विशेष में शिक्षण कौशल, (*iii*) छात्र मनोविज्ञान की अच्छी समझ, (*iv*) प्रेरक कौशल। अध्यापक प्राय: अपनी बेहतर योग्यता तथा शिक्षण कौशल के लिए जाने जाते हैं, किन्तु शिक्षण में गुणवत्ता के लिए अनेक प्रकार के अतिरिक्त कौशलों की भी आवश्यकता होती है, अत: शिक्षकों का चयन करते समय इन सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए।

*नोट्स* किसी भी छात्र में आजन्म राष्ट्रीयता की भावना नहीं होती। राष्ट्रीयता की भावना के लिए गुणवत्तायुक्त शिक्षा एवं अध्यापन आवश्यक है।

**3. परीक्षण तथा मूल्यांकन में गुणवत्ता की आवश्यकता**–शिक्षा तथा शैक्षिक प्रक्रियाएँ पूर्णरूप से अध्यापकों की योग्यता, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण सामग्री, शैक्षिक पद्धतियाँ, शैक्षिक सुविधाओं से जुड़ी होती हैं। इन सभी की गुणवत्ता का परिणाम केवल परीक्षा तथा परीक्षण प्रणाली से ही पता चलता है। चार तथ्य ऐसे हैं जो परीक्षा प्रणाली पर प्रभाव डालते हैं, ये इस प्रकार हैं–

(*i*) **नियोजन**–यह पाठ योजना, स्वतंत्रता, भाषा आदि की गुणवत्ता की प्रमाणिकता को दर्शाता है।

नोट

(*ii*) **विश्वसनीयता तथा वैधता**–वैधता तथा विश्वसनीयता किसी भी शैक्षिक परीक्षण का प्रमुख तथा मूल अंग है।

(*iii*) प्रबंधन इसे पूर्ण रूप से व्यवस्थित करने का तरीका है।

(*iv*) विभिन्न परीक्षणों के मापन तथा विश्लेषण द्वारा परीक्षा का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

उपरोक्त सभी अंगों में गुणवत्ता की कमी देखी जाती है। शिक्षण परीक्षणों के नियोजन तथा निर्माण करते समय पूर्णतया सावधानी तथा कुशलता से कार्य करने की आवश्यकता है, इसके लिए कुशल तथा अनुभवी अध्यापकों तथा अन्य शिक्षक विषय विशेष के निपुण लोगों की आवश्यकता होती है।

**4. मूलभूत सुविधाओं का अभाव**–किसी भी शिक्षण प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कक्षा में विभिन्न वस्तुओं जैसे कागज, लिखने की सामग्री, ब्लैक बोर्ड, चॉक, किताबें आवश्यक हैं, किंतु देश के कई राज्यों में कई विद्यालय संस्थान ऐसे हैं, जहाँ अभी तक ये सुविधाएँ नहीं पहुँच पाई हैं, विद्यालय के लिए उचित इमारत व स्थान उपलब्ध नहीं हैं, पीने के पानी तथा शौच जैसी मूलभूत सुविधाओं का भी अभाव है। इन सुविधाओं के अभाव में छात्र पढ़ने में रूचि नहीं ले पाते तथा शिक्षक भी ठीक प्रकार से छात्रों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दे पाते हैं। अत: शिक्षा प्रबंध की गुणवत्ता के लिए शिक्षण प्रणाली के इन दोषों को दूर किया जाना चाहिए।

**5. विद्यार्थियों की गुणवत्ता में कमी**–विद्यालय तथा कॉलेजों में विभिन्न परिस्थितियों तथा परिवेश से बालक आते हैं, प्रत्येक बालक का मानसिक तथा बौद्धिक स्तर भी अलग होता है। प्रत्येक बालक को अनुभवी अध्यापकों के शिक्षण के साथ-साथ परामर्श की भी आवश्यकता पड़ती है, किंतु विभिन्न अभावों के चलते यह संभव नहीं है, अत: विद्यार्थियों की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब विद्यार्थी स्कूल, कॉलेज अथवा अन्य शिक्षण संस्थानों से व्यावसायिक दुनिया में कदम रखते हैं, तो वे अपने आपको ठगा व असहाय महसूस करते हैं। उन्हें तकनीकी शिक्षा का प्रायोगिक ज्ञान नहीं होता है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थियों की गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत: शिक्षा प्रणाली में ऐसे सुधार लाने चाहिए जिससे शिक्षा के सभी अंगों में गुणवत्ता लाई जा सके।

*टास्क* बेहतर शिक्षण के लिए किन चार अंगों की आवश्यकता होती है?

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. ..... किसी भी शैक्षिक परीक्षण का प्रमुख अंग है।
2. शिक्षा की गुणवत्ता तभी संभव है जब इसके ..... में गुणवत्ता लाई जाये।
3. शैक्षिक गुणवत्ता का अर्थ है शैक्षणिक अधिगम में ..... ।
4. नागरिकों में ..... द्वारा राष्ट्रवाद की भावना विकसित की जाती है।
5. शिक्षा में गुणवत्ता एक ..... अवधारणा है।

## 22.4 सारांश (Summary)

- शिक्षा में गुणवत्ता एक बहुविमीय अवधारणा है। जिसमें शिक्षा से जुड़े सभी कार्य तथा गतिविधियाँ सम्मिलित हैं, अत: शिक्षा में गुणवत्ता के लिए, छात्र, अध्यापक, छात्र सहयोगी सेवाएँ संसाधन तथा पाठ्यक्रम सभी की गुणवत्ता बहुत आवश्यक है। शिक्षा की गुणवत्ता की कसौटी परिणाम पर निर्भर करती है। शिक्षा की गुणवत्ता

नोट

के लिए विभिन्न प्रयास किये गए हैं, किन्तु वर्तमान शिक्षा प्रणाली में ये प्रयास पर्याप्त नहीं है, इसके मार्ग में बहुत चुनौतियाँ हैं।

- भारतवर्ष में विभिन्न धर्म, भाषाएँ, मत तथा पंथों के अनुयायी रहे हैं, सभी धर्मानुयायी अपने-अपने धर्मों तथा मतों का पालन करते हैं, शिक्षा द्वारा ही इन सभी धर्मों को समझने तथा एक दूसरे धर्मों को आदर की दृष्टि से देखना संभव है, अत: शिक्षा का स्वरूप व प्रारूप इस प्रकार का होना चाहिए जिससे सामाजिक मूल्यों का विकास हो।
- एकता तथा अखंडता किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए अत्यंत आवश्यक है। नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना जन्म से उत्पन्न नहीं होती बल्कि शिक्षा तथा अध्यापन द्वारा यह भावना छात्रों में विकसित करनी होती है। शिक्षा में जब शुद्धता तथा गुणवत्ता होगी, तब भी ये भावनाएँ जागृत होंगी। सामाजिक अध्ययन एक ऐसा विषय है, जिसमें राष्ट्र के इतिहास, भूगोल तथा अन्य सामाजिक स्थितियों का गहन अध्ययन किया जाता है।
- शैक्षणिक गुणवत्ता का अर्थ, शैक्षणिक अधिगम में उत्तमता है। शिक्षा में सभी विषयों विशेषरूप से विज्ञान, तकनीकी गणित आदि की गुणवत्ता इतनी अच्छी होनी चाहिए कि विषयों का अध्ययन करके विद्यार्थी व्यावसायिक रूप से सक्षम हो सकें और गुणवत्ता प्रधान कार्य कर सकें।
- शिक्षा की गुणवत्ता तभी संभव है, जब इसके प्रबंध में गुणवत्ता लाई जाये।
- हमारे देश में जहाँ संसाधनों की उपलब्धता है, तो ऐसी कई समस्याएँ हैं जिन्हें हल करने में देश का धन व्यय होता है। चारों ओर से भारत के पड़ोसी देश अपनी कुदृष्टि देश की स्थिति पर रखते हैं। इन शत्रु देशों से रक्षा के लिए धन व्यय करना पड़ता है, इसके अतिरिक्त खाद्य, यातायात, स्वास्थ्य आदि के लिए भी बहुत धन खर्च करना पड़ता है जिससे शिक्षा के लिए पर्याप्त धन नहीं मिलता है और हम शिक्षा के विश्वस्तरीय मानकों से वंचित रह जाते हैं, इसलिए विभिन्न राष्ट्रों की तुलना में हमारा देश शिक्षा की गुणवत्ता के क्षेत्र में पिछड़ रहा है।
- किसी भी संस्थान की प्रगति तथा उन्नति प्रधानाचार्य, डीन तथा अध्यापकों की योग्यता तथा कार्यान्वयन पर निर्भर करती है। अत: केवल प्रधानाचार्य, डीन तथा कुलपति पर ही नहीं वरन् अध्यापकों पर भी निर्भर करता है। अध्यापक कक्षा को पूर्ण रूप से प्रशासित तथा अनुशासित रखता है, तथा उनका नेतृत्व भी करता है।
- प्रशासनिक कार्य दो स्तरों पर महत्वपूर्ण हैं–(*i*) संस्थान (*ii*) कक्षा। प्रधानाचार्य अथवा रजिस्ट्रार संस्थानात्मक प्रशासन का कार्यभार संभालते हैं तथा अध्यापक कक्षीय स्तर पर देखरेख करते हैं। संस्थान में कक्षाओं, बिल्डिंग, बाथरूम डेस्कों तथा खेल के मैदान की सफाई में होने वाली सभी गतिविधियों का रिकार्ड रखना भी प्रशासनिक कार्य हैं। इन कार्यों में गुणवत्ता की बहुत आवश्यकता है।
- शिक्षा तथा शैक्षिक प्रक्रियाएँ पूर्णरूप से अध्यापकों की योग्यता, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण सामग्री, शैक्षिक पद्धतियाँ, शैक्षिक सुविधाओं से जुड़ी होती हैं। इन सभी की गुणवत्ता का परिणाम केवल परीक्षा तथा परीक्षण प्रणाली से ही पता चलता है।
- किसी भी शिक्षण प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कक्षा में विभिन्न वस्तुओं जैसे कागज, लिखने की सामग्री, ब्लैक बोर्ड, चॉक, किताबें आवश्यक हैं, किंतु देश के कई राज्यों में कई विद्यालय संस्थान ऐसे हैं, जहाँ अभी तक ये सुविधाएँ नहीं पहुँच पाई हैं, विद्यालय के लिए उचित इमारत व स्थान उपलब्ध नहीं हैं, पीने के पानी तथा शौच जैसी मूलभूत सुविधाओं का भी अभाव है।
- विद्यालय तथा कॉलेजों में विभिन्न परिस्थितियों तथा परिवेश से बालक आते हैं, प्रत्येक बालक का मानसिक तथा बौद्धिक स्तर भी अलग होता है। प्रत्येक बालक को अनुभवी अध्यापकों के शिक्षण के साथ-साथ परामर्श की भी आवश्यकता पड़ती है, किंतु विभिन्न अभावों के चलते यह संभव नहीं है, अत: विद्यार्थियों की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

नोट

## 22.5 शब्दकोश (Keywords)

- **कुदृष्टि–**बुरी नजर।
- **वंचित–**दूर होना, सुख-सुविधा का लाभ न मिल पाना।

## 22.6 अभ्यास-प्रश्न ( Review Questions)

1. शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन का क्या अर्थ है? इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
2. शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन की चुनौतियों का विवेचन कीजिए।
3. शिक्षा में गुणवत्ता की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. वैधता और विश्वसनीयता 2. प्रबंधन 3. दक्षता 4. शिक्षा तथा अध्यापन
5. बहुविमीय।

## 22.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन–* डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन–* आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय प्रबंधन–* जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी–* जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–23: समय-प्रबंधन (Time-Management)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 समय-प्रबंधन (Time-Management)

23.2 समय-तालिका का अर्थ और आवश्यकता (Meaning and Needs of Time-Table)

23.3 समय-तालिका तैयार करने के सिद्धांत (Principles for Preparing Time-Table)

23.4 समय-तालिका निर्माण के सोपान (Steps for Preparing Time-Table)

23.5 सारांश (Summary)

23.6 शब्दकोश (Keywords)

23.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

23.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समय-प्रबंधन से होने वाले लाभ को समझने में;
- समय-तालिका के अर्थ, आवश्यकता, सिद्धांत और सोपान की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

विद्यालय के दैनिक कार्यों के सुसंचालन के लिए प्रत्येक विद्यालय को समय-प्रबंधन करना आवश्यक है। इसे समय विभाग चक्र या समयचक्र के नाम से भी जाना जाता है।

समय प्रबंधन, विद्यालय के समक्ष शैक्षिक एवं शिक्षेतर कार्यकलापों के संचालन की विधिपूर्वक पूर्व नियोजित प्रक्रिया है। यही वह माध्यम है जिससे संगठन अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है। यह वह योजना है, जिसके अनुसार शिक्षक और विद्यार्थी विविध विषयों का अध्ययन और अध्यापन करते हैं एवं विधि प्रवृत्तियों में भाग लेते हैं। इसी के आधार पर शाला का समय विभाजन, शिक्षकों पर कार्यभार, पाठ्य एवं पाठ्येतर प्रवृत्तियों पर दिये जाने वाले समय एवं कार्य पद्धति का अनुमान लगाया जा सकता है। यही वह आधार है जिसके माध्यम से विद्यालय भौतिक संसाधनों, भवन, उपकरण, खेल के मैदानों का विद्यालय के सभी छात्रों द्वारा अधिकाधिक उपयोग सम्भव होता है।

## 23.1 समय-प्रबंधन (Time-Management)

वस्तुत: किसी भी विद्यालय के व्यवस्थित रूप से संचालन के लिए समय-प्रबंधन की नितान्त आवश्यकता है। यह वह दर्पण है जिसके माध्यम से समग्र विद्यालय की प्रवृत्तियों के दर्शन किए जा सकते हैं। यह वह दूसरी घड़ी है,

नोट

जिसके अनुसार विद्यालय के सभी कार्य चलते हैं।

समय-प्रबंधन से विद्यालय को अनेक लाभ होते हैं, यथा–

(1) समय-प्रबंधन की सहायता से शाला में व्यवस्था का वातावरण बनता है, अन्यथा शाला के वातावरण में एक भीड़, अव्यवस्था एवं अनुशासनहीनता छा जाएगी।

(2) इसी की मदद से विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप विद्यालय के संसाधनों का अधिकतम उपयोग हो पाता है।

(3) इसी की वजह से विविध विषयों एवं प्रवृत्तियों के लिए उपयुक्त समय दे पाना संभव होता है।

(4) शिक्षकों की योग्यता के अनुसार तथा छात्रों की आवश्यकता के अनुरूप कार्य का विभाजन, समय प्रबंधन द्वारा ही संभव हो पाता है।

(5) इसी की वजह से समय, मानवीय और भौतिक संसाधनों में विद्यालय के उद्देश्य के अनुरूप एक समन्वय स्थापित हो पाता है और अपव्ययता रुक जाता है।

*क्या आप जानते हैं* समय-प्रबंधन से विद्यालयी प्रवृत्तियों को नियमित एवं सुव्यवस्थित करने और छात्रों में अच्छी व स्वस्थ आदतों के निर्माण में सहयोग मिलता है।

## 23.2 समय-तालिका का अर्थ एवं आवश्यकता (Meaning and Need of Time-Table)

विद्यालय के नियोजन में समय-तालिका का विशेष महत्व होता है। प्रधानाचार्य को विद्यालय के संचालन के लिये कार्यप्रणाली के लिये एक प्रारूप तैयार करना होता है। उसे विद्यालय की समय-तालिका कहते हैं। समय-तालिका का नियोजन एक कठिन कार्य माना जाता है। इसलिये शिक्षक तथा प्रधानाचार्य की समय-तालिका का ज्ञान तथा कौशल होना आवश्यक होता है। इसलिये यहाँ पर समय तालिका के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है।

### समय-तालिका का अर्थ (Meaning of Time-Table)

समय-तालिका वह सूची है, जिसमें शिक्षकों तथा कक्षाओं का एक सप्ताह का कार्य वितरण प्रदर्शित किया जाता है। एक सप्ताह में किस कक्षा को कौन-कौन से विषय, किन-किन घण्टों में किन अध्यापकों द्वारा पढ़ाये जाते हैं? यह चार्ट समय और कार्य का विवरण प्रस्तुत करता है। इससे यह भी पता चलता है कि किस दिन में किस कक्षा की क्या गतिविधियाँ या कार्यक्रम होंगे तथा अध्यापक विशेष को क्या-क्या कार्य करने होंगे? इस प्रकार सारिणी विद्यालय की समस्त क्रियाओं के लिये समय एवं मानवीय शक्ति का विवरण प्रस्तुत करती है। इसके द्वारा विद्यालयी कार्यक्रमों को सुगमतापूर्वक नियन्त्रित किया जा सकता है। एच.जी स्टैज महोदय के अनुसार, विद्यालय की जिस तालिका, योजना या चार्ट के अनुसार प्रतिदिन के निर्धारित समय को विभिन्न विषयों, क्रियाओं एवं कक्षाओं के मध्य प्रदर्शित किया जाता है, समय-विभाग-चक्र या समय तालिका कहलाता है। वस्तुतः समय तालिका समस्त विद्यालय क्रिया-कलापों का मूलाधार होती है।

### समय-तालिका की आवश्यकता (Need of Time-Table)

समय-तालिका विद्यालयी कार्यों के व्यवस्थित संचालन हेतु एक महत्वपूर्ण साधन है। समय सारिणी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एस. एन. मुखर्जी लिखते हैं कि "समय-सारिणी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ऐसा दर्पण है जो समस्त शैक्षणिक कार्यक्रम पूरी सत्यता के साथ प्रतिबिम्बित करता है।" वास्तव में समय सारिणी पूरे विद्यालय पर नियन्त्रण का कार्य करती है। समय-सारणी का महत्व मानवीय साधनों के सदुपयोग एवं अनुशासन स्थापना के लिये बहुत

नोट

अधिक है। समय-सारणी के विधिवत् प्रयोग से नियमितता की आदत तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। अच्छी समय-सारिणी से निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. समय-तालिका समय के सदुपयोग करने में सहायक होती है। यदि विद्यालयी कार्यक्रम बिना-पूर्व नियोजन योजना के अनुसार चलाये जायेंगे तो अध्यापक और विद्यार्थी निरुद्देश्य भटकते रहेंगे। समय-तालिका सोद्देश्य क्रियाएँ सम्पादित करने में सहायता प्रदान करती है।
2. समय-तालिका द्वारा विभिन्न विषयों को उनकी प्रकृति के अनुसार उपयुक्त समय की व्यवस्था की जाती है। सभी विषयों एवं क्रियाओं के लिये सुनिश्चित हो जाता है तथा किसी की अवहेलना नहीं होती।
3. अच्छी समय-तालिका शिक्षकों में कार्य के प्रति रुचि एवं प्रेरणा विकसित करके उन्हें कार्य कुशल बना देती है।
4. अच्छी समय-तालिका द्वारा विद्यार्थियों की व्यक्तिगत रुचियों, अभिरुचियों तथा योग्यताओं का चरम उपयोग किया जाता है। अच्छी समय-तालिका समस्त कक्षा को रुचिकर रूप में व्यस्त रखने में सहायक होती है।
5. समय-तालिका के माध्यम से सभी विषयों को अध्यापकों एवं विद्यार्थियों द्वारा न्यायोचित समय प्रदान कराकर सन्तुलित महत्व प्रदान किया जाता है।
6. समय-तालिका मानव जीवन के महत्वपूर्ण मूल्यों एवं आदर्शों के प्रति आदर की भावना विकसित करने में सहायक सिद्ध होती है। समय-तालिका का प्रयोग विद्यार्थियों में कर्त्तव्यपरायणता, समय निष्ठता एवं उद्यम प्रियता के गुणों का विकास करती है।
7. समय-तालिका विद्यार्थियों में अनुशानप्रियता विकसित करने में सहायक होती है। समय-तालिका छात्रों की अनावश्यक क्रियाओं पर नियन्त्रण लगा देती है। समय-तालिका में मध्यावकाश व खेल-कूद का समय भी निर्धारित किया जाता है तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं जिनमें विद्यार्थियों की ऊर्जा का सदुपयोग कराकर वृत्तियों का शोधन किया जाता है।

*नोट्स* समय-तालिका द्वारा अध्यापक एवं विद्यार्थियों की क्रियाओं का समुचित निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण किया जाता है।

## 23.3 समय-तालिका तैयार करने के सिद्धान्त (Principles for Preparing Time-Table

समय-तालिका को विद्यालय की दूसरी घड़ी के नाम से पुकारा जाता है। वह उन घण्टों का विवरण प्रदान करता है, जिनमें विद्यालय कार्य किया जाता है। इसके साथ ही यह इस बात को भी प्रदर्शित करती है कि किसी विशेष समय-चक्र एवं कक्षा में क्या कार्य किया जाता है तथा उस कार्य को कौन-सा शिक्षक करायेगा। इसकी श्रेष्ठता विद्यालय की उन्नति में उत्तरोत्तर वृद्धि कर सकती है और इसकी अनुपयुक्तता उसके कुशल संचालन में बाधक सिद्ध हो सकती है। अत: प्रत्येक विद्यालय में प्रधानाध्यापक का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह स्वयं या अपने किसी सहयोगी से उत्तम समय-तालिका का निर्माण कराये। यद्यपि उत्तम समय-तालिका के निर्माण के लिये कोई निश्चित नियम नहीं हैं, जिनकों आधार मानकर समस्त विद्यालय अपने लिये उत्तम समय-तालिका का निर्माण कर सकें, परन्तु फिर भी निम्नलिखित कुछ ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य है जिनकों ध्यान में रखकर सन्तोषजनक समय-तालिका का निर्माण किया जा सकता है।

**1. बालकों के हित सम्बन्धी तथ्य–**विद्यालय का महत्वपूर्ण उद्देश्य बालकों के व्यक्तित्व का विकास करना है। अत: उसका सम्पूर्ण कार्यक्रम इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये निर्धारित किया जाता है। इसलिये समय-तालिका का निर्माण भी उनकी रुचि, योग्यता एवं आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये।

(अ) बालकों को अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार विषय चुनने का अवसर प्राप्त होना चाहिये।

नोट

(ब) जहाँ तक सम्भव हो सके, बालकों की वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अवसर प्रदान किये जाने चाहिये।

(स) समय-चक्रों की अवधि का निर्धारण बालकों की आयु के अनुसार होना चाहिये। मनोवैज्ञानिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि 6 से 9 वर्ष तक बालक किसी विषय का 10 से 15 मिनट तक ही एकाग्रचित होकर अध्ययन कर सकते हैं। 9 से 12 तथा 12 से 14 वर्ष तक के बालक 20–25 मिनट तथा 30–35 मिनट तक ही अपने चित्त को एकाग्र कर सकते हैं।

(द) समय-चक्रों के क्रम का भी ध्यान रखना चाहिये। कार्य की दृष्टि से प्रथम तथा अन्तिम समय-चक्र अच्छे नहीं माने जाते हैं, क्योंकि प्रथम में बालक घर से चलकर जाता है, इससे थकान का आना स्वाभाविक है। अन्तिम समय-चक्र तथा ये कार्य करते-करते थक जाते हैं। इन समय-चक्रों में रोचक एवं सरल विषयों का अध्ययन करना चाहिये।

(य) विषयों के क्रम का भी ध्यान रखना चाहिये। इसके अनुसार समय-तालिका में दो कठिन विषयों को लगातार न रखा जाये, क्योंकि दो कठिन विषयों को लगातार रखने से बालकों में शीघ्रता से थकान आने की सम्भावना रहेगी। इसके लिये समय-तालिका में ऐसी व्यवस्था की जाये कि कठिन विषय के बाद सरल विषय को रखा जाये या सैद्धान्तिक कार्य के उपरान्त दूसरा चक्र प्रयोगात्मक कार्य के लिये निर्धारित किया जाये।

(र) बालकों की थकावट दूर करने के लिये समय-तालिका में दो अवकाशों की व्यवस्था की जाये तो अच्छा होगा ये अवकाश तीसरे तथा पाँचवें घण्टे के पश्चात् होने चाहिए। इस सम्बन्ध में मौसम का भी ध्यान रखना आवश्यक है। मनुष्य की कार्य-क्षमता पर मौसम का प्रभाव पड़ता है। इसलिये यह आवश्यक है कि हम अपनी समय-तालिका ऐसी बनाये कि जिन महीनों में मौसम के अनुकूल होने की सम्भावना है, उन महीनों में अधिकाधिक कार्य करने का प्रयास किया जा सकता है और मैदानी प्रदेशों में जाड़े के मौसम में अधिक कार्य करने का प्रयास किया जा सकता है। हमारे यहाँ बहुधा गर्मी के मौसम में स्कूल इस दृष्टिकोण से ही चलाये जाते हैं जिसकी प्रात:काल के समय में सुगमता से कार्य किया जा सके, क्योंकि अधिक गर्मी के कारण कार्यक्षमता में कमी जा आने से वे थोड़ा-सा भी कार्य करने पर थकान का अनुभव करने लगेंगे।

(ल) बालकों के व्यक्तित्व के अन्य पक्षों के विकास से सम्बन्धित क्रियाओं के लिये भी समय-तालिका में स्थान मिलना चाहिये। उदाहरणार्थ-शारीरिक, नैतिक, नागरिक एवं सामाजिक पक्षों के विकास के लिये उन्हें समय-तालिका द्वारा खेल-कूद, व्यायाम, प्रार्थना, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं-खेल-कूद, व्यायाम, स्कूल प्रार्थना, सामाजिक क्रियाओं आदि के लिए भी निश्चित समय होना चाहिये।

(व) दिवसों के क्रम को भी ध्यान में रखना चाहिये। एक सप्ताह में कार्य करने के लिये कुल 6 दिन होते हैं। इन दिनों में सोमवार तथा शनिवार को अधिक उपयुक्त नहीं माना जाता है। क्योंकि इनमें से एक तो छुट्टी से पहले आता है और दूसरी छुट्टी के बाद। इस दोनों में बालकों को ऐसे विषयों का अध्ययन नहीं कराया जाना चाहिये जिनके लिये उनको अधिक श्रम करना पड़े, क्योंकि दोनों ही स्थितियों में उनके मस्तिष्क में छुट्टी का ध्यान रहता है।

**2. शिक्षकों के हित सम्बन्धी तथ्य–**समय-तालिका का निर्माण करते समय शिक्षकों की आवश्यकता को भी ध्यान में रखा जाये। इसका निर्माण ऐसे ढंग से किया जाये जिससे उनको लगातार एक-सा कार्य न करना पड़े तथा आराम करने या अध्ययन करने के लिए अवकाश भी प्राप्त हो जाये। इस सम्बन्ध में निम्न बातों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिये–

(अ) प्रत्येक शिक्षक को वही कार्य दिया जाये जिसमें उसकी रुचि एवं योग्यता हो। इससे शिक्षक का मानसिक सन्तुलन ठीक रहता है।

(ब) प्रत्येक शिक्षक पर कार्य-भार, जहाँ तक सम्भव हो सके, समान रहे।

(स) शिक्षकों की सीमाओं एवं मनोवृत्तियों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

नोट

**3. विद्यालय सामग्री सम्बन्धी तथ्य–**समय-तालिका का निर्माण करते समय विद्यालय में उपलब्ध साधनों का भी ध्यान आवश्यक है। उदाहरणार्थ-शिक्षकों की संख्या, विशेष कक्षों एवं सामान्य कक्षों की व्यवस्था एवं उनकी सामग्री, फर्नीचर, पुस्तकालय, खेल का मैदान, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संचालन हेतु सामग्री, शैक्षिक सामग्री आदि जिससे बालक इनका सरलता से उपयोग कर सकें।

**4. शिक्षा विभागीय नियम–**सामान्यत: शिक्षा-विभाग द्वारा विद्यालय-सत्र एवं विद्यालय दिवस की अवधि तथा प्रत्येक विषय के घण्टों की संख्या का निर्धारण किया जाता है। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा-विभाग द्वारा निर्धारित विषयों को ध्यान में रखते हुए समय-तालिका में प्रत्येक विषय को उसके महत्व एवं औचित्य के अनुसार समय प्रदान किया जाये।

**5. अन्य शर्तें–**समय-तालिका का निर्माण करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि उसके द्वारा बालकों एवं शिक्षकों को अधिकाधिक सम्पर्क में लाया जा सके। ऐसा करने से केवल शिक्षण स्तर की ही ऊँचा नहीं, वरन? विद्यालय की सामान्य चारित्रिक भावना को भी उच्च बनाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त इनका अधिकाधिक सम्पर्क शिक्षकों के लिये बालकों को वैयक्तिक रूप से जानने में भी सहायक सिद्ध होगा और वह जानकारी बालकों के निर्देशन के लिये बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होगी।

मैनेले (Manely) का मत है कि माध्यमिक विद्यालय की समय-तालिका में बालकों को निर्देशन के लिये भी निर्धारित किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उसमें समन्वित शिक्षा के लिये भी व्यवस्था की जाये।

विद्यालय के घण्टों का समय विद्यार्थियों की आयु व ध्यान केन्द्रित करने की क्षमतानुसार निर्धारित करना चाहिये। सुझाव निम्नवत् हैं–

| | | |
|---|---|---|
| 6 से 9 वर्ष की आयु | – | 20 मिनट कालांश |
| 9 से 12 वर्ष की आयु | – | 30 मिनट कालांश |
| 12 से 14 वर्ष की आयु | – | 35 मिनट कालांश |
| 14 से अधिक आयु | – | 40 या 45 मिनट का कालांश |

(अ) एक विषय या एक जैसे विषय लगातार घण्टों में नहीं पढ़ाये जाने चाहयें। विभिन्न घण्टों में विद्यार्थियों को विभिन्न विषय पढ़ाये जाने चाहियें। भाषा, व्याकरण, सामाजिक ज्ञान तथा रचना के बीच-बीच में श्रुति लेख, गणित, रचना चित्रकला तथा प्रयोग आदि समायोजित किये जाने चाहिये।

(ब) कक्षाओं को यथासम्भव शिक्षा ग्रहण करने के स्थान परिवर्तन करने की सुविधा होनी चाहिये तथा छात्रों को एक कक्षा स्थिति में अधिक समय तक नहीं बैठाना चाहिये।

**6. विशिष्ट परिस्थितियों के साथ समायोजन का सिद्धान्त–**समय-तालिका बनाते समय कक्षा के आकार, कमरों के आकार, बच्चों की आयु, आदि का ध्यान रखना चाहिये। निश्चित रूप से एक सी समय-तालिका सभी विद्यालय के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती है। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों वाले स्थानों पर विभिन्न प्रकार की समय सारिणी तैयार करनी होगी।

**समय-तालिका निर्माण हेतु अन्य आवश्यक बातें**

1. समय-तालिका को अन्तिम रूप देने से पहले विद्यालय से परामर्श करके गतिरोध यदि कोई हो तो दूर करना चाहिये।
2. विद्यालय में उपलब्ध सभी मानवीय एवं भौतिक साधनों का अच्छे तालमेल के साथ उपयोग करना चाहिये।
3. समय-तालिका स्वयं में पूर्ण होनी चाहिये अर्थात् इसमें विद्यार्थियों की उपस्थिति लगाने का समय, प्रार्थना का समय, खेल-कूद का समय, व्यायाम का समय, साहित्यिक गोष्ठी एवं अन्य पाठ्यक्रम सहयोगी क्रियाओं हेतु समय सुनिश्चित होना चाहिये।
4. प्रत्येक कक्षा के कमरे में उस कक्षा की समय-तालिका की प्रतिलिपि टंगी रहनी चाहिये।

नोट

5. प्रधानाध्यापक के कक्षा में तीन प्रकार की समय-तालिका-(अ) कक्षावार समय-तालिका, (ब) विषयवार समय-तालिका, (स) अध्यापकवार समय-तालिका उपलब्ध होनी चाहिये।

## 23.4 समय-तालिका निर्माण के सोपान (Steps for Preparing Time-Table)

समय-तालिका के निर्माण में अधोलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

**प्रथम सोपान** में समय-तालिका सम्बन्धी सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है–अध्यापकों की सूची, कक्षाओं की सूची, विभागों सहित विषयों की सूची, कमरों की संख्या, अध्यापकों की योग्यता विषयों के अनुसार आदि।

**द्वितीय सोपान** में विषयों के विकल्पों सम्बन्धी सूचनाएँ तथा प्रयोगशाला, भूगोल कक्ष, कला कक्ष आदि का विवरण।

**तृतीय सोपान** में कमरों की संख्या, आकार तथा विभिन्न कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या का विवरण आदि।

**चतुर्थ सोपान** में गतवर्ष की समय सारिणी तथा शिक्षकों के कार्यभार (घण्टों के अध्यापन के रूप में) विवरण।

**पंचम सोपान** में विद्यालय की समय-तालिका तैयार की जाती है। यह तालिका दो प्रकार से तैयार करना आवश्यक होता है। कक्षाओं के अनुसार तथा अध्यापकों के अनुसार।

### समय-तालिका के प्रकार (Types of Time-Table)

विद्यालय की समय-तालिका तैयार की जाती है। यह तालिका कई प्रकार से तैयार की जाती हैं परन्तु तीन प्रकार की समय-तालिका तैयार करना विद्यालय संचालन के लिये नितान्त आवश्यक होता है। समय-तालिका इस प्रकार हैं–

1. कक्षाओं अनुसार के विद्यालय समय-तालिका
2. शिक्षकों के अनुसार विद्यालय समय-तालिका
3. कक्षा की समय-तालिका।

प्रथम दोनों प्रकार की समय-तालिका प्रधानाचार्य के द्वारा तैयार की जाती हैं और तीसरे प्रकार की समय-तालिका कार्य-विवरण की तालिका तैयार की जाती है। इस तालिका में यह जानकारी होती है कि अमुक कक्षा में अमुक दिन, अमुक घण्टे में कौन अध्यापक शिक्षण करेगा।

**1. कक्षाओं के अनुसार विद्यालय समय–तालिका** में सप्ताह के छः दिनों का प्रतिदिन के घण्टों के अनुसार कार्य-विवरण की तालिका तैयार की जाती है। इस तालिका में यह जानकारी होती है कि अमुक कक्षा में अमुक दिन, अमुक घण्टे में कौन अध्यापक शिक्षण करेगा।

कक्षाओं के अनुसार समय-तालिका तैयार करने में स्तम्भों तथा पंक्तियों की सहायता ली जाती है। प्रथम स्तम्भ (Column) में ही कक्षाओं को विभाग सहित अंकित किया जाना है। तालिका में पंक्तियों की संख्या उतनी रहती है जितने विद्यालय में कुल कक्षाओं के विभागों की संख्या होती है। कालांशों (Periods) की संख्या तथा अन्तराल (Interval) या विश्राम के योग के बराबर तालिका में स्तम्भों की संख्या रखी जाती है। प्रथम पंक्ति में कालांशों तथा उनका समय अंकित किया जाता है। इस प्रकार समय-तालिका का ढाँचा आयोजित किया जाता है। इस तालिका के वर्गों (Cells) में विषय, शिक्षक का नाम तथा शिक्षण दिनों को अंकित करके समय-तालिका तैयार की जाती है।

कक्षाओं के अनुसार समय-तालिका से यह जानकारी होती है कि कक्षाओं के विभागों में कांलाशों में कौन-कौन शिक्षक सप्ताह में कितने दिन अध्यापन करेगा। प्रधानाचार्य निरीक्षण के समय यह पता लगा लेता है कि कौन शिक्षक कक्षा में नहीं पहुँचा है। यदि शिक्षक अवकाश पर है तब उसके लिये अन्य शिक्षक को भेजने की व्यवस्था करता है।

**2. शिक्षकों के अनुसार विद्यालय समय-तालिका** में सप्ताह के छः दिनों का प्रतिदिन के घण्टों के अनुसार कार्य-विवरण की तालिका भी तैयार की जाती है। इस तालिका से यह पता चलता है कि अमुक शिक्षक को किन-किन कालांशों में कौन-कौन कक्षाओं में शिक्षण करना है तथा किस कालांश में नहीं पढ़ाना है।

## कक्षाओं के अनुसार समय-तालिका

**(Classwise School Time-Table)**

| कलांश / शिक्षक | प्रथम 10-10.40 | द्वितीय 10.40-11.20 | तृतीय 11.20-12 | चतुर्थ 12-12.40 | विश्राम 12.40.100 | पंचम 1-1.40 | षष्टम् 1.40-2.20 | सप्तम् 2.20-300 | अष्टम् 3-3.40 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| दशम् अ | हिन्दी<br>राकेश मिश्र<br>प्रतिदिन | भौ. विज्ञान<br>सतीश<br>प्रतिदिन | गणित<br>महेन्द्र चन्द्र<br>प्रतिदिन | जीव विज्ञान<br>दिनेश चन्द्र<br>प्रतिदिन | – | अंग्रेजी<br>सूरज सिंह<br>प्रतिदिन | रा. विज्ञान<br>अरुण<br>प्रतिदिन | जीव विज्ञान<br>का प्रयोग<br>दिनेश चन्द्र | भौ. विज्ञान<br>रसायन<br>का प्रयोग<br>श्री महेश<br>श्री अरुण |
| दशम् ब | गणित<br>श्री महेश<br>प्रतिदिन | हिन्दी<br>राकेश<br>प्रतिदिन | जीव विज्ञान<br>दिनेश<br>प्रतिदिन | भौ. विज्ञान<br>सतीश<br>प्रतिदिन | | रासायन वि.<br>अरुण<br>प्रतिदिन | अंग्रेजी<br>सूरज सिंह<br>प्रतिदिन | भौ. विज्ञान<br>रासायन<br>महेश–3<br>अरुण–3 | जीव वि.<br>दिनेश<br>3+3 |

## अध्यापकों के अनुसार विद्यालय समय-तालिका

**(Teacherwise School Time-Table)**

| कलांश / शिक्षक | प्रथम 10-10.40 | द्वितीय 10-20-12 | तृतीय 11.20-12 | चतुर्थ 11.20-12 | विश्राम 12.40-1 | पंचम 1-1.40 | षष्टम् 1.40-2.20 | सप्तम् 2.20-3 | अष्टम् 3-3.40 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| श्री महेश चन्द्र,<br>एम. एस.सी. | दशम् व<br>गणित<br>प्रतिदिन | नवम् स<br>गणित<br>प्रतिदिन | दशम् अ<br>गणित<br>प्रतिदिन | –<br>– | – | नवम् अ<br>गणित<br>प्रतिदिन | नवम् ब<br>गणित<br>प्रतिदिन | दशम् स<br>गणित<br>प्रतिदिन | |
| श्री राकेश मिश्र | दशम् अ<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन | दशम् ब<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन | नवम् स<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन | दशम् स<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन | – | नवम् अ<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन | नवम् ब<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन | नवम् ब<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन | अष्टम् द<br>हिन्दी<br>प्रतिदिन |

नोट

नोट

इस प्रकार की तालिका के निर्माण में भी स्तम्भों एवं पंक्तियों की सहायता ली जाती है। प्रथम स्तम्भ में शिक्षकों के नाम योग्यता सहित अंकित किये जाते हैं। तालिका में पंक्तियों की संख्या उतनी रहती है जितने विद्यालय में कुछ अध्यापक होते हैं। शिक्षकों को उनकी वरीयता के अनुसार लिखा जाता है। प्रधानाचार्य के नाम सर्वप्रथम लिखा जाता है। प्रथम पंक्ति में कालांशों की संख्या तथा विश्राम के योग के बराबर स्तम्भों की संख्या रखी जाती है। शिक्षक के अनुसार समय-तालिका का ढांचा तैयार कर लिया जाता है। इस प्रकार की तालिका के वर्गों में कक्षा-विभाग सहित तथा शिक्षण विषय तथा दिनों को अंकित किया जाता है।

इस तालिका में शिक्षक के कार्य-भार की जानकारी होती है कि शिक्षक को प्रतिदिन कितने कलांश होते हैं तथा एक सप्ताह में कुल कितने घण्टे पढ़ने पड़ते हैं। प्रधानाचार्य के लिये यह तालिका अधिक उपयोगी होती है। जब किसी शिक्षक का अवकाश के लिये आवेदन-पत्र आता है। तब रिक्त कालांश वाले शिक्षकों को उसके स्थान पर लगा देता है जिसमें उसके कालांशों की कक्षाओं के छात्र खाली न रहें जिससे विद्यालय में व्यवस्था बनी रहे। उपरोक्त दोनों तालिकाओं के उपयोग अलग-अलग होते हैं इनका विशेष उपयोग प्रधानाचार्य तथा शिक्षकों को अधिक होता है। प्रत्येक शिक्षक को अपने शिक्षण के कक्षाओं तथा कालांशों की जानकारी होती है।

**3. कक्षा की समय-तालिका** (Class Time-Table)—प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक विभाग की समय-तालिका भी तैयार की जाती है। कक्षा-शिक्षक को तथा उसके छात्रों को सप्ताह के कार्यक्रम का विशिष्टीकरण दिया जाता है। जैसे गणित का शिक्षक सप्ताह में किन दिनों अंकगणित, किन दिनों बीजगणित तथा किन दिनों में रेखागणित पढ़ायेंगे।

कक्षा की समय-तालिका भी स्तम्भों तथा पंक्तियों के रूप में तैयार की जाती है। प्रथम स्तम्भ में सप्ताह दिनों को अंकित किया जाता है। इस तालिका में छः पंक्तियाँ होती हैं और कालांशों की संख्या के बराबर स्तम्भ होते हैं। इस ढाँचे के वर्गों में विषय के उप-विषय तथा शिक्षक का नाम भी अंकित कर दिया जाता है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

कक्षागत समय तालिका से यह जानकारी होती है। सप्ताह के दिनों में प्रत्येक विषय के किन उप-विषयों को कब-कब पढ़ाया जायेगा। उसी के अनुसार छात्र अपनी पुस्तकों तथा उत्तर-पुस्तिकाओं को लेकर आते हैं।

**समय-तालिका का मूल्यांकन (Evaluation of Time-Table)**

समय तालिका के निर्माण में त्रुटियों की सम्भावना रहती है। इसीलिये अधोलिखित मानदण्डों के आधार पर मूल्यांकन करना चाहिए—

1. समय तालिका निर्माण में शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित नियमों का उल्लंघन हो जाता है।
2. कभी-कभी एक अध्यापक एक ही समय में दो कक्षाओं में लगा दिया जाता है।
3. अध्यापकों को योग्यतानुसार कार्य नहीं मिल पाता।
4. कुछ विषयों को आवश्यकता से अधिक समय और दूसरे विषयों के समय में कटौती हो जाती है।
5. कठिन विषय लगातार पढ़ाने के लिये समय निर्धारित कर दिये जाते हैं।
6. विद्यार्थियों को बीच-बीच में समुचित अवकाश नहीं मिलता।
7. समय-तालिका में अनावश्यक परिवर्तन प्रदर्शित करके जटिल बना दिया जाता है।
8. समय-तालिका का अपूर्ण सूचनाओं युक्त होना। समय-तालिका निर्माण सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर तथा त्रुटियों के प्रति सावधानी बरत कर विद्यालय के लिये व्यावहारिक एवं आदर्श समय-तालिका बनानी चाहिये।

*टास्क* 'समय-तालिका कितने प्रकार की होती है?

नोट

## समय-तालिका के बनाने में कठिनाइयाँ (Difficulties in Preparing Time-Table)

सामान्यत: समय-तालिका के निर्माण में अधोलिखित कठिनाइयाँ आती हैं–

(1) शिक्षकों के अभाव के कारण उपर्युक्त सिद्धान्तों को अपनाना कठिन हो जाता हैं कारण समय-तालिका में बालकों को अपनी रुचि के अनुसार विषयों को चुनने की भी व्यवस्था नहीं हो पाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों को अपनी रुचि के विषय भी पढ़ाने को मिलते हैं। प्राय: यह देखा जाता है कि उन्हें वे विषय पढ़ाने पड़ते हैं, जिनकों पढ़ाने के लिये वे योग्य नहीं हैं। इस कारण उन पर अधिक कार्य-भार रहता है और उनके मस्तिष्क में सदैव तनाव रहता है। जिससे उनकी कार्य-क्षमता निरन्तर कम होती रहती है।

(2) सामान्य कक्षा-कक्ष, फर्नीचर एवं अन्य शैक्षिक सामग्री का अभाव भी समय-तालिका के निर्माण में बहुत सी कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है।

(3) अंशकालीन शिक्षकों (Part-Time Teacher) की नियुक्ति के कारण भी तालिका के बनाने में कठिनाई उत्पन्न होती है, क्योंकि वे विद्यालय को अपनी सुविधानुसार ही समय दे पाते हैं।

उपर्युक्त कठिनाइयों के होते हुए भी हमें निराश नहीं होना चाहिये, वरन् एक अच्छी समय-तालिका का निर्माण करने के लिये प्रयास करते रहना चाहिये। प्रशासक की कुशलता इस तथ्य में निहित है कि उसके पास जो साधन उपलब्ध हैं, उनका सर्वोत्तम रूप से उपयोग किया जाये। प्रधानाध्यापक समय-तालिका के निर्माण के लिये उत्तरदायी होता है परन्तु उन्हें इस कार्य में साथियों का सहयोग लेना चाहिये।

### समय-तालिका की सीमायें (Limitations of Time-Table)

इस तालिका की व्यावहारिक उपयोगिता एवं विद्यालय के महत्व के साथ अधोलिखित सीमाएँ होती हैं–

(1) समय-तालिका कार्यक्रम में कठोरता उत्पन्न कर देती है क्योंकि इसके अन्तर्गत प्रत्येक कार्य स्तर की योजनाओं के आधार पर प्रदेशों की आवश्यकतानुसार विद्यालयों की कार्य योजना तैयार की जाती हैं। इन योजनाओं के बारे में कोठारी कमीशन (1964-66) ने विचार व्यक्त किया है कि–

"हमारी योजना प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि ऊपर से प्रारम्भ होती है तथा कठिनता से विद्यालय-स्तर तक पहुँचती है। इसका परिणाम यह होता है अधिकांश विद्यालयों को राष्ट्र अथवा राज्य स्तर पर तैयार किये गये विकास कार्यक्रम से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।"

स्पष्ट ही है कि ऊपर से थोपी गयी योजनाओं का, क्रियान्वयन अरुचिकर तथा कठिन होता है। विकेन्द्रीकरण के आधार पर निर्मित योजनाएँ अधिक व्यावहारिक हो सकती हैं तथा क्यों न योजना सर्वप्रथम विद्यालय-स्तर पर बनाई जाये, फिर जिला स्तर, राज्य-स्तर तथा राष्ट्रीय-स्तर पर शिक्षा सम्बन्धी योजना निर्माण किया जाये। इस सम्बन्ध में डॉ. बी. के. आर. वी. राय ने लिखा है कि–

"प्रत्येक संस्था को राष्ट्रीय शिक्षा नीति की व्यापक रूपरेखा को सामने रखते हुये अपनी विकास की योजना बनानी सीखनी होगी।"

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' तथा 'असत्य' का चुनाव कीजिए (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**

1. समय-तालिका की कोई प्रकार नहीं होते हैं।
2. समय-तालिका विद्यालय संचालन में निर्देशन का कार्य करती है।
3. विद्यालय आलेखों में शैक्षिक आलेख अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।
4. समय-तालिका के निर्माण में कोई कठिनाई नहीं आती है।

नोट

## 23.5 सारांश (Summary)

- वस्तुत: किसी भी विद्यालय के व्यवस्थित रूप से संचालन के लिए समय प्रबंधन की नितान्त आवश्यकता है। यह वह दर्पण है जिसमें अथवा जिसके माध्यम से समग्र विद्यालय की प्रवृत्तियों के दर्शन किए जा सकते हैं। यह वह दूसरी घड़ी है, जिसके अनुसार विद्यालय के सभी कार्य चलते हैं।
- समय प्रबंधन की सहायता से शाला में व्यवस्था का वातावरण बनता है, अन्यथा तो शाला के वातावरण में एक भीड़, अव्यवस्था एवं अनुशानहीनता छा जाएगी।
- इसी की वजह से विविध विषयों एवं प्रवृत्तियों के लिए उपयुक्त समय दे पाना संभव होता है।
- शिक्षकों की योग्यता के अनुसार तथा छात्रों की आवश्यकता के अनुरूप कार्य का विभाजन, समय प्रबंधन द्वारा ही संभव हो पाता है।
- विद्यालय के नियोजन में समय तालिका का विशेष महत्व होता है। प्रधानाचार्य को विद्यालय के संचालन के लिये कार्यप्रणाली के लिये एक प्रारूप तैयार करना होता है। उसे विद्यालय की समय-तालिका कहते हैं
- समय तालिका वह सूची है, जिसमें शिक्षकों तथा कक्षाओं का एक सप्ताह का कार्य वितरण प्रदर्शित किया जाता है। एक सप्ताह में किस कक्षा को कौन-कौन से विषय, किन-किन घण्टों में किन अध्यापकों द्वारा पढ़ाये जाते हैं? यह चार्ट समय और कार्य का विवरण प्रस्तुत करता है।
- समय-तालिका विद्यालयी कार्यो के व्यवस्थित संचालन हेतु एक महत्वपूर्ण साधन है। समय सारिणी के महत्व पर प्रकाश डालते हुये एस. एन. मुखर्जी लिखते हैं कि "समय-सारिणी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ऐसा दर्पण है जो समस्त शैक्षणिक कार्यक्रम कुल सत्यता के साथ प्रतिबिम्बित करता है।" वास्तव में समय सारिणी पूरे विद्यालय पर नियन्त्रण का कार्य करती है। समय-सारणी का महत्व मानवीय साधनों के सदुपयोग एवं अनुशासन स्थापना के लिये बहुत अधिक है।
- समय-तालिका मानव जीवन के महत्वपूर्ण मूल्यों एवं आदर्शों के प्रति आदर की भावना विकसित करने में सहायक सिद्ध होती है। समय-तालिका का प्रयोग विद्यार्थियों में कर्त्तव्यपरायणता, समय निष्ठता एवं उद्यम प्रियता के गुणों का विकास करती है।
- समय-तालिका विद्यार्थियों में अनुशानप्रियता विकसित करने में सहायक होती है। समय तालिका छात्रों की अनावश्यक क्रियाओं पर नियन्त्रण लगा देती है समय तालिका में मध्यावकाश व खेल-कूद का समय भी निर्धारित किया जाता है तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं जिनमें विद्यार्थियों की ऊर्जा का सदुपयोग कराकर वृत्तियों का शोधन किया जाता है।
- विद्यालय का महत्वपूर्ण उद्देश्य बालकों के व्यक्तित्व का विकास करना हैं। अत: उसका सम्पूर्ण कार्यक्रम इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये निर्धारित किया जाता है। इसलिये समय-तालिका का निर्माण भी उनकी रूचि योग्यता एवं आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये।
- समय-तालिका का निर्माण करते समय शिक्षकों की आवश्यकता को भी ध्यान में रखा जाये। इसका निर्माण ऐसे ढंग से किया जाये जिससे उनको लगातार एक-सा कार्य न करना पड़े तथा आराम करने या अध्ययन करने के लिए अवकाश भी प्राप्त हो जाये।
- समय-तालिका का निर्माण करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि उसके द्वारा बालकों एवं शिक्षकों को अधिकाधिक सम्पर्क में लाया जा सके। ऐसा करने से केवल शिक्षण स्तर की ही ऊँचा नहीं, वरन? विद्यालय की सामान्य चारित्रिक भावना को भी उच्च बनाया जा सकेगा।

नोट

- प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक विभाग की समय-तालिका भी तैयार की जाती है। कक्षा-शिक्षक को तथा उसके छात्रों को सप्ताह के कार्यक्रम का विशिष्टीकरण दिया जाता है। जैसे गणित का शिक्षक सप्ताह में किन दिनों अंकगणित, किन दिनों बीजगणित तथा किन दिनों में रेखागणित पढ़ायेंगे।
- कक्षा की समय-तालिका भी स्तम्भों तथा पंक्तियों के रूप में तैयार की जाती है। प्रथम स्तम्भ में सप्ताह दिनों को अंकित किया जाता है। इस तालिका में छः पंक्तियाँ होती हैं और कालांशों की संख्या के बराबर स्तम्भ होते हैं।
- शिक्षकों के अभाव के कारण उपर्युक्त सिद्धान्तों को अपनाना कठिन हो जाता है। कारण समय-तालिका में बालकों को अपनी रुचि के अनुसार विषयों को चुनने की भी व्यवस्था नहीं हो पाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों को अपनी रुचि के विषय भी पढ़ाने को मिलते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि उन्हें वे विषय बढ़ाने पड़ते हैं, जिनकों पढ़ानें के लिये वे योग्य नहीं है।
- सामान्य कक्षा-कक्ष, फर्नीचर एवं अन्य शैक्षिक सामग्री का अभाव भी समय-तालिका के निर्माण में बहुत सी कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है।
- अंशकालीन शिक्षकों (Part-Time Teacher) की नियुक्ति के कारण भी तालिका के बनाने में कठिनाई उत्पन्न होती है, क्योंकि वे विद्यालय को अपनी सुविधानुसार ही समय दे पाते हैं।
- समय-तालिका कार्यक्रम में कठोरता उत्पन्न कर देती है क्योंकि इसके अन्तर्गत प्रत्येक कार्य स्तर की योजनाओं के आधार पर प्रदेशों की आवश्यकतानुसार विद्यालयों की कार्य योजनाएँ तैयार की जाती हैं।
- विद्यालय में जितने भी आलेख एवं रजिस्टर हों, उन सबकी एक सूची तैयार करनी चाहिये। इनके साथ ही उस शिक्षक या क्लर्क का नाम भी होना चाहिये जिनके द्वारा उनको स्थापित करना है।
- इन आलेखों एवं रजिस्टरों को विधिपूर्वक एवं स्वच्छता से तैयार किया जाना चाहिये। इसकी पूर्ति करने में यदि कोई अशुद्धि हो जाये तो उसको काटकर निर्माणकर्त्ता को अपने हस्ताक्षर कर देने चाहिये। उसे इनके किसी भी पृष्ठ को फाड़ना नहीं चाहिये।

## 23.6 शब्दकोश (Keywords)

- **अपव्ययता**–फिजूलखर्ची।
- **अवकाश**–छुट्टी।

## 23.7 अभ्यास-प्रश्न ( Review Questions)

1. समय प्रबंधन से आप क्या समझते हैं? समय प्रबंधन से होने वाले लाभ को समझाइये।
2. समय-तालिका का क्या अर्थ है? इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
3. विद्यालय में समय-तालिका के उपयोग का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. समय-तालिका निर्माण के सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।
5. समय-तालिका तैयार करने की सोपान विधि की व्याख्या कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य।

नोट

## 23.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *अध्यापक शिक्षा*–एन. आर. सक्सेना, बी. के मिश्रा, आर. के. मोहनती; विनय रखेजा पब्लिशर्स, राज प्रिन्टर्स (यू.पी.)
2. *पर्यावरण अध्ययन*–डा. बृजविलास पाण्डेय; प्रकाशन केन्द्र लखनऊ।
3. *भारत में शिक्षा का विकास*–प्रो. सुरेश भटनागर, डॉ. संजय कुमार; विनय रखेजा पब्लिशर्स, (यू.पी.)।
4. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबंधन*–डॉ. एस. के. मंगल, श्रीमती शुभ्रा मंगल; इण्टर नेशनल पब्लिशिंग हाउस (यू.पी.)।

नोट

# इकाई–24: उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुधार की समस्या (Quality Improvement Issue in Higher Education)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा संस्थान और व्यक्तिपरक शिक्षा की गुणवत्ता (Educational System, Quality of Individual Education and Educational Institute)

24.2 शिक्षा की प्रक्रिया (Process of Education)

24.3 शिक्षा के उद्देश्य और गुणवत्ता (Aims and Quality of Edcuation)

24.4 सारांश (Summary)

24.5 शब्दकोश (Keywords)

24.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

24.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण संस्थान और व्यक्तिपरक शिक्षा की गुणवत्ता के समझने और उसकी समस्याओं का विश्लेषण करने में।
- शिक्षा की प्रक्रिया और उसके उद्देश्यों की व्याख्या करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

एकमात्र पारिभाषिक गुणों के रूप में समझने के बजाय गुणवत्ता को उत्कृष्टता के रूप में समझा जा सकता है। हम एक ऐसी शिक्षा की कल्पना कर सकते हैं जिसमें शिक्षा की पारिभाषिक विशेषताएं हों और तब भी उत्कृष्टता के आधार या उसके अभाव में फर्क किया जा सकता हो। चिंता यह है कि ऐसा करने में पारिभाषिक गुणों को उत्कृष्टताविहीन रखा जा सकता है और इस सीमा तक कि उन विशेषताओं के अस्तित्व का ही अपने-आपमें स्वीकार करना मुश्किल हो जाए। ऐसी स्थिति में जिस विचार के अंतर्गत प्रयास करने की कोशिश की जा रही है वह शिक्षा की गिनती में ही न आए। इसमें यह निहित है कि जब हम उत्कृष्टता को गुणवत्ता के रूप में देख रहे हैं, तब हम सापेक्ष समृद्धि की, उपयुक्तता और शिक्षा स्वयं की परिभाषीय विशेषताओं की गहनता की बात कर रहे हैं; यह विचार शिक्षा का कोई अनुपूरक नहीं बल्कि स्वयं विशेषताओं की मजबूती या उनके अभाव जानने का एक प्रयास है। ये विशेषताएँ वही हैं जिन्हें हम शिक्षा की अवधारणा में आवश्यक रूप से शामिल करते हैं।

नोट

## 24.2 शिक्षा की प्रक्रिया (Process of Education)

निवेश और व्यवस्था के संचालन के रूप में परिभाषित शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता के बारे में प्राय: बात की जाती है। उदाहरण के लिए, जब कोई व्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों और कार्मिकों पर विचार करता है; योग्यताओं, दक्षता और कार्मिकों की अभिप्रेरणा; नियम, निर्णय लेने और क्रियान्वयन से संबंधित व्यवस्था की संचालन प्रक्रिया पर बात करता है, तब वह शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता पर बात कर रहा होता है। ऐसी भी प्रवृत्ति होती है कि स्कूलों और संस्थानों की तुलना की जाती है, कमोबेश उसी तरह जैसा ऊपर शिक्षा की गुणवत्ता और स्कूल व्यवस्थाओं के बारे में कहा गया है। स्कूल व्यवस्थाओं और विभिन्न स्कूलों के बीच, इन तुलनाओं को आवश्यक रूप से शिक्षार्थी द्वारा प्राप्त शिक्षा की गुणवत्ता का उल्लेख करना होता है। समस्या तब पैदा होती है जब शिक्षा में गुणवत्ता के विचार को पहले स्पष्ट किए बिना जिसे वास्तव में वह प्राप्त करता है (शिक्षा की गुणवत्ता व्यक्तिश:) बच्चों के सीखने की तुलना संकुचित दायरे में बच्चों के सीखने को लेकर की जाती है और जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे संसाधनों, कार्मिकों और प्रक्रियाओं के आधार पर निकाले जाते हैं। यह विद्यालयी व्यवस्थाओं और विद्यालयों में गुणवत्ता के विचार को पूर्णता प्रदान करने के ख्याल से किया जाता है चूंकि बाकी सब चीजें जो शिक्षा व्यवस्थाओं की गुणवत्ता को परिभाषित करने के लिए शामिल की जाती हैं; वे संसाधनों, संचालन या क्षमताओं से संबंधित भी हो सकती हैं जो सब बच्चों को प्रभावित करती हैं; इनका तभी कोई मतलब है जब पर्याप्त स्पष्टता और सहमति 'शिक्षा की गुणवत्ता पर हो, जो बच्चों को प्राप्त होती है।' यह उपयुक्त लगता है कि पहले व्यक्तिपरक शिक्षा की गुणवत्ता के तत्वों पर ध्यान केन्द्रित किया जाए।

यह एक अलग विषय है कि सीखने वालों को शिक्षा की जो गुणवत्ता प्राप्त होती है, क्या उसे केवल स्कूली विषयों में प्राप्त ज्ञान के जरिए (जिसमें सब कुछ शामिल हो) मापा जा सकता है या कि इसके लिए और चीजों की भी जरूरत होगी। इसलिए जो पहला अंतर करने की जरूरत है वह है गुणवत्ता के विचार को अलग-अलग करके देखना–'शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता', 'शिक्षा संस्थानों (स्कूलों) की गुणवत्ता' और 'व्यक्तिपरक शिक्षा की गुणवत्ता' तथा इन तीनों के बीच फर्क को देखना है। इन विचारों में श्रेणीबद्ध संबंध है। यह स्पष्ट है–एक अच्छे गुणवत्तापूर्ण स्कूल को आवश्यक रूप से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करानी होती है लेकिन इससे कुछ अधिक की भी जरूरत हो सकती है, उदाहरण के लिए, सब बच्चों के साथ समान व्यवहार और सबके प्रति निष्पक्षता चाहे वह किसी भी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से हो। इसी प्रकार, एक अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था में (विद्यालयी व्यवस्था-राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर पर) आवश्यक रूप से अच्छे गुणवत्तापूर्ण संस्थानों का होना जरूरी है जो उस व्यवस्था के अंग हैं, लेकिन इन अच्छे गुणवत्तापूर्ण संस्थानों के साथ-साथ कुछ और चीजों की भी उन्हें जरूरत हो सकती है, उदाहरणार्थ स्कूलों की स्वायत्तता और जवाबदेही को बढ़ावा देने के लिए व्यवस्थापकीय क्षमता और स्वयं का लोगों के प्रति जवाबदेह होना। व्यक्तिपरक शिक्षा की गुणवत्ता को स्वीकार करने में ऐसा महसूस हो सकता है कि हमें वापस शैक्षिक गुणवत्ता के मूल प्रश्न के रूप में मापनीय छात्र उपलब्धियों की चौखट पर फेंक दिया गया है।

### शिक्षा प्रक्रिया के रूप में और शिक्षा परिणाम के रूप में

शिक्षा शब्द अंग्रेजी में दो तरह से प्रयोग होता है, प्रक्रिया के रूप में भी, और प्रक्रिया के अंतिम परिणाम के रूप में भी। वाक्यांशों का प्रयोग जैसे "Being Educated" (शिक्षित हो रहा है), 'शिक्षा प्राप्त कर रहा है'। एक प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिससे शिक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति गुजर रहा है।

जब हम शिक्षित व्यक्ति (Educated person) की बात करते हैं तब हम केवल उस प्रक्रिया की बात नहीं कर रहे होते हैं जिससे वह व्यक्ति गुजर चुका होता है बल्कि यह भी कि अंत में उस व्यक्ति का क्या हुआ, वह क्या बना। क्षमताएं, वृत्तियां और समझ जो उसने शैक्षिक प्रक्रियाओं से गुजरने के परिणामस्वरूप अर्जित की, हम उन्हीं का उल्लेख कर रहे हैं, जब उस व्यक्ति को शिक्षित व्यक्ति कह रहे हैं। इस प्रकार की उपलब्धियों को पूरी तरह से संतोषजनक रूप में परिभाषित करना कठिन कार्य हो सकता है लेकिन उसे करना ही है यदि गुणवत्ता के अर्थ और भाव को अन्तत:

नोट

समझना ही है क्योंकि पसंदीदा प्रक्रिया से गुजरने से जरूरी नहीं कि विशिष्ट उपलब्धियां आवश्यक रूप से प्राप्त हो ही जाएं। शिक्षा के दो पक्ष-प्रक्रिया और परिणाम-स्पष्ट रूप से बताते हैं कि गुणवत्ता की किसी भी धारणा को उन दोनों पक्षों को ध्यान में रखना चाहिए; यानी कि शिक्षा की प्रक्रिया और परिणामों दोनों के कुछ निश्चित मानक होने चाहिए ताकि शिक्षा जो नियोजित हो या प्राप्त की गई हो–अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा कहा जा सके।

## 24.2 शिक्षा की प्रक्रिया (Process of Education)

छात्रों के आम मूल्यांकन में केवल छात्रों ने जो सीखा है उसी का मूल्यांकन किया जाता है और उस ज्ञान को उन्होंने कैसे अर्जित किया, इस मूल्यांकन में वह नहीं आता। आम बोल-चाल की भाषा में गुणवत्ता बोर्ड परीक्षाओं में छात्रों द्वारा प्राप्त अंकों के औसत प्रतिशत से मापी जाती है, जैसा कि हमने ऊपर कहा है। अत: छात्रों के मूल्यांकन के आधार पर मापी गई शिक्षा की गुणवत्ता एक बहुत संकरी अवधारणा बन जाती है। कुछ शिक्षाविदों का प्रबल दावा है कि जो सीखा जाता है और वह कैसे सीखा जाता है, दोनों में फर्क नहीं किया जा सकता। इसलिए शिक्षा में प्रक्रिया और परिणाम दोनों एक ही चीज हैं। विशेषकर बाल केन्द्रित दायरों में इस दावे को कथन की बारंबारता के प्रभाव के कारण पसंद किया जाता होगा। लेकिन न तो वह अवधारणात्मक परख पर टिक पाएगा और न ही मूल्यांकन के पक्षधर लोगों को संतुष्ट कर पाएगा और न ही गुणवत्ता विमर्श को आगे बढ़ा सकता है। भारतीय इतिहास में अकबर के शासन का महत्त्व आसानी से समझा जा सकता है या गुरूत्वाकर्षण का या दशमलव भिन्न अनेक तरह से सीखी जा सकती है और कमोबेश समान रूप से अच्छी तरह समझी जा सकती है जिसे समस्या हल करने में और आगे सीखने में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार शब्दाडम्बर में 'प्रक्रिया और परिणाम में फर्क नहीं रह जाता', इन शब्दों में लिपटा हुआ दृढ़ दावा भ्रामक और अनिवार्यत: एक बंजर विचार है जिससे किसी का ज्ञानवर्धन नहीं होता। पर इसका मतलब यह नहीं है कि प्रक्रिया और परिणामों के बीच संबंध पर विचार करने का कोई मूल्य नहीं है जैसा कि हम आगे देखेंगे। न ही इसका मतलब यह है कि शिक्षा में गुणवत्ता के व्यापक विचार को निर्मित करने में शिक्षा की प्रक्रिया का महत्त्व नहीं है। अनेक कारणों से यह महत्त्वपूर्ण है और शिक्षा में गुणवत्ता का कोई विवरण प्रक्रिया पर समुचित दिए बिना निश्चित रूप से असंतोषजनक होगा; यह समाज और शिक्षार्थी दोनों के लिए नुकसानदायक भी हो सकता है।

शिक्षा की प्रक्रिया अधिकांश रूप में सीखने के मनोविज्ञान द्वारा संचालित होती है, जिसे व्यक्ति स्वीकार करता है या जिसमें उसका विश्वास होता है। हम उन मतों से साफ बचने की कोशिश करेंगे जो सीखने के मनोविज्ञान और उसमें जो भी शिक्षा विज्ञान निहित हो, चाहे अधिक उपयुक्त हो और अवश्य पसंद करने लायक हो। यहां गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की चार व्यापक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, जिन्हें सीखने वाले का जुड़ाव, सक्षमता, नैतिक सम्मति और उपयुक्त लागत कहा जा सकता है।

गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की पहली विशेषता है सीखने वाले का जुड़ाव। आरंभ करने के लिए यह जरूरी है कि सीखने वाले का स्वैच्छिक जुड़ाव हो, इसी से नींव का निर्माण होता है जिस पर सीखने की इमारत खड़ी होती है। अनिश्चित और अरुचिकर भागीदारी से शिक्षक और छात्र दोनों के लिए सीखना कठिनाई पैदा करता है। जुड़ाव में सीखने वाले की रुचि और आनन्द दोनों शामिल होते हैं और ये दोनों ही अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण मूल्य हैं, मात्र इसलिए नहीं कि सीखने में इनसे मदद मिलती है बल्कि इस कारण भी कि इनका संबंध व्यक्ति की प्रसन्नता से है। सीखने में आनन्द का एक और लाभ यह होता है कि जो सीखा जाता है उसके प्रति लगाव और शौक विकसित होता है, स्वप्रेरित सीखने में यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व होता है जैसा कि हम आगे देखेंगे। आनन्द और रुचि स्वैच्छिक संलग्नता के मापक हैं जो सीधे संलग्नता की गतिविधि/वस्तु की उपयोगिता की समझ से जुड़ जाते हैं। इस प्रकार सीखने वाले का जुड़ाव शैक्षिक प्रक्रिया के परिणामों पर टिकने वाला प्रभाव डालता है जो विशिष्ट विषय की सीखी गई सामग्री की सीमा के पार हो जाते हैं।

नोट

शैक्षिक प्रक्रिया की गुणवत्ता की दूसरी विशेषता है सक्षमता। सक्षमता का संबंध शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद हेतु शैक्षिक प्रक्रिया की क्षमता और कार्य कुशलता से है। यहां यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के उद्देश्य केवल आयु के अनुकूल शिक्षा के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण ही हैं। वे छात्रों के लिए हमारे द्वारा परिकल्पित सीखने के विभिन्न पक्षों द्वारा संचालित होते हैं और बच्चे सीखते कैसे हैं, से संबंधित हमारी मान्यताओं पर निर्भर करते हैं। अत: शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक क्षमता का संकेतक के रूप में लेना अनिवार्यत: सामान्य रूप से अप्रबंधनीय नहीं है या कक्षा की गतिविधियों से एकदम अलग नहीं है, आयु के अनुसार उपयुक्त उद्देश्यों के जरिए शिक्षा के लक्ष्य शिक्षक के लिए तात्कालिक सरोकार बन जाते हैं। सक्षमता का यही अर्थ है, लक्ष्यों की बेहतर उपलब्धि के लिए शैक्षिक प्रक्रियाएं कितनी विश्वसनीय हैं।

शैक्षिक प्रक्रिया की गुणवत्ता की अगली विशेषता है नैतिक सम्मति। यह आम तौर पर जांचा-परखा क्षेत्र नहीं है और समस्याविहीन समझा जाता है क्योंकि माना जाता है कि हर व्यक्ति अंतर्मन से जानता है कि नैतिक दृष्टि से पढ़ाने का कौन-सा तरीका काम में लिया जाना चाहिए और कौन-सा काम में नहीं लेना चाहिए। वास्तव में यह मुद्दा बहुत जटिल है। आरंभ में यह ध्यान रखने की जरूरत है कि नैतिक सम्मति सकारात्मक, अनुशंसात्मक की बजाय नकारात्मक स्थिति में काम करती है। इसे सिर्फ जिस चीज को देखने की जरूरत होती है वह यह कि पढ़ाने में प्रयुक्त कक्षा की प्रक्रियाएं निश्चित नैतिक प्रतिमान के अनुसार हों। जिसका मतलब है कि जो प्रतिमान के अनुसार काम नहीं करते हैं वे स्वीकार्य नहीं हैं, स्वीकार्य प्रतिमान के अनुसार किस कक्षा विशेष के लिए कौन-सी गतिविधि चुनी जाती है, यह शिक्षाकर्मी पर निर्भर करता है जो अन्य परिस्थितियों के आधार पर तय होता है। नैतिक आधार पर जिन प्रक्रियाओं की इजाजत नहीं होती उनके उदाहरण हैं बच्चे को अपमानित करना, शारीरिक दण्ड, कक्षा में बच्चे के घर की भाषा को प्रतिबंधित करना। इस बात का ध्यान देने की जरूरत है कि प्रभाविता के आधार पर तीनों की आलोचना की जा सकती है जैसे कि यह तर्क दिया जा सकता है कि अपमानित करना, दण्ड देना, बच्चे की मातृभाषा को प्रतिबंधित करना वास्तव में बच्चे के सीखने को बेहतर बनाने में आड़े आता है न कि उसे बेहतर बनाने में। लेकिन इससे नैतिक आधार निरर्थक नहीं हो जाते, न ही प्रभाविता के आधार जैसे हो जाते हैं।

गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की अंतिम विशेषता है उपयुक्त लागत। लागत से आशय यहां पैसे तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें मानवीय प्रयास और समय भी शामिल है, सीखने वाले का भी। दो कक्षाओं की प्रक्रियाओं के बीच जिन्हें समान रूप से प्रभावी क्षमताएं और नैतिक सम्मति उपलब्ध है, यह स्वत: स्पष्ट है कि उसे ही चुना जाएगा, जिसमें कम प्रयास और संसाधनों की जरूरत होगी। नि:संदेह यह तर्क दिया जा सकता है कि संसाधनों और समय की कोई कमी नहीं है तब यह आधार निरर्थक हो जाता है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि इस तर्क के खिलाफ भी दलील दी जा सकती है, सब मानवीय प्रयासों को व्यापक सार्वजनिक हित से जोड़कर और इसमें यह जोड़ते हुए कि सीखने वाले के पास निश्चित रूप से असीमित समय नहीं है। एक दूसरा तर्क इसी बात के विरुद्ध यह हो सकता है कि इससे यह संभावना खुलती है कि सुरुचि, सुन्दरता और नफासत, जैसे आधारों को भी इसमें शामिल किया जाए। शिक्षा की गुणवत्ता के विचार को समझे बिना या उसको निर्मित किए बिना, व्यवस्था और संस्थान की गुणवत्ता पर बहस अर्थहीन और भ्रमित करने वाली होगी। शिक्षा की गुणवत्ता के विचार को निर्मित करने के प्रयास में, प्रक्रिया और परिणाम के रूप और उसके बाद शिक्षा की गुणवत्ता की चार व्यापक विशेषताओं को सूचीबद्ध करने का प्रयास किया गया है जो ये हैं–सीखने वाले का जुड़ाव, सक्षमता, नैतिक सम्मति और उपयुक्त लागत।

*क्या आप जानते हैं*

शिक्षा एक प्रक्रिया है जो शिक्षार्थी को आमूल परिवर्तित कर देती है। जिसे पलटा नहीं जा सकता। यह निर्मिति की प्रक्रिया है न कि उसमें कुछ बदलने की जो वह बन चुका है, न ही वह प्रक्रिया है उसे परिष्कृत करने की जो वह पहले से है।

## परिणाम के रूप में शिक्षा

नोट

पहली बात तो यह है कि शैक्षिक प्रक्रियाओं के परिणाम आमतौर पर शिक्षार्थी की सीखने की उपलब्धियों के रूप में देखे जाते हैं। उन्हें एक प्रकार से सीखने वाले की अनुपूरक उपलब्धियों के रूप में देखा जाता है। एक ऐसी चीज जो व्यक्ति के अपने मूल स्वरूप से बाहर की है। तथापि, शिक्षा को एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में भी मान्यता दी जाती है; यह लोगों के व्यक्तित्व को गढ़ने में मदद करती है। स्कूल में सीखना मात्र विषयवस्तु को सीखना नहीं है। दुनिया को, लोगों को और अपने को देखने का नजरिया क्या हो, यह भी सीखना ही है। विचारों को निर्मित करना, मतों, अनुभव, व्याख्या के कार्यात्मक ढांचों को और समग्र दुनिया के प्रति नजरिए को विकसित करना भी सीखने के अंतर्गत आता है। नि:संदेह, इसमें केवल स्कूल ही नहीं है तथा स्कूलों के आजकल जो प्रभाव पड़ रहे हैं वे हमेशा ही वांछनीय नहीं होते या शिष्यों के हित में भी नहीं होते। लेकिन जो भी कहा जाए स्कूल शिष्यों के ज्ञान, अभिवृत्तियों और दुनिया के नजरियों पर खासा प्रभाव डालते हैं। मानव मस्तिष्क प्रकृति से ही एक प्रकार का युक्ति-यंत्र है जो 'स्व-निर्माण' का तरीका विकसित कर लेता है या उन्हें मानसिक क्षमताएं भी कहा जा सकता है। इसका मतलब है कि मनुष्य सीखने के साथ-साथ सीखा कैसे जाता है, यह भी सीख जाता है और कैसे व्यवस्थित करना और सीखे हुए को कैसे प्रयोग करना यह भी। यह हमेशा स्कूल के अंदर भी होता है और बाहर भी। अत: भावी जीवन में किसी भी सीखी गई चीज के प्रभाव में सीखने वाले के बहुआयामी विकास के सम्मिलित प्रभावों का योगदान होता है।

गुणवत्ता की दूसरी विशेषता पर आते हैं, बच्चों ने शिक्षा में क्या सीखा है और जो सीखा है उसमें स्पष्टता और समझ की गहनता कितनी है। बच्चों से सही उत्तर सुनना तो एक आम-सी बात है लेकिन वे तब खो से जाते हैं जब उन्हें दिए गए उत्तर का संबंध दूसरी चीजों के साथ स्पष्ट करने के लिए कहा जाता है, जो उसने सीखी है या स्पष्टीकरण हेतु नए उदाहरण देने के लिए कहा जाता है। इसका सीधा-सा मतलब है कि जो शब्दों में सीखा है, उसे ठीक से नहीं समझा है और अन्य प्रासंगिक अवधारणाओं से संबंध नहीं जोड़ पाया है। उच्च शिक्षा के स्तर पर समझ की यह कमी कठिनाई पैदा करती है जब छात्र विभिन्न मुद्दों पर बात करते हुए अपने ज्ञान की स्थापनाओं और प्राक्कथनों में स्थित निहितार्थों और मान्यताओं पर काम कर रहे होते हैं। बिना इन संबंधों और सामान्य समग्र समझ के एकत्रित जानकारी को समस्या समाधान में न तो प्रयोग किया जा सकता है न ही वह आगे सीखने की प्रक्रिया का आधार बन सकती है। व्हाइटहैड के शब्दों में यह सीखने वाले के मस्तिष्क पर जड़ और निष्क्रिय विचारों का बोझ बनकर रह जाती है। यह बात बड़े समूहों के मानक परीक्षणों में प्राय: पकड़ में नहीं आती जो कि प्रतिस्पर्धात्मक गुणवत्ता को मापने का प्रमुख उपकरण है। लेकिन गुणवत्ता का कोई भी विचार, यदि उसे बेहतर जिंदगी के लिए उपयोगी होना है तो इस पर ध्यान देना पड़ेगा।

तीसरी विशेषता है स्वतंत्र रूप से सीखने और शोध करने की क्षमताएं। ये सभी पहलू घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं और कुछ सीमा तक एक-दूसरे के पार जाते हैं। आसानी से स्वतंत्र रूप से सीखने, अवधारणात्मक स्पष्टता और समझ की गहनता के बीच अवधारणाओं के अंतर्जुड़ाव के तहत संबंध देखा जा सकता है। लेकिन स्वतंत्र रूप से सीखने और आगे शोध करने की क्षमताओं के लिए विषय या विषय क्षेत्र (अनुशासन) के विशिष्ट तरीकों और अर्थ निर्माण के तरीकों की सामान्य समझ की जरूरत होती है। इसलिए इसके अतिरिक्त कि कोई चीज कितनी और कितनी अच्छी तरह से सीखी जाती है, सीखने में जितना संभव हो सके उतनी आत्म-निर्भरता के साथ सीखा जाए तो इसका शिक्षा में महत्त्व है। इस प्रकार की आत्म-निर्भरता की कमी दूसरों पर निर्भर बना देती है।

चौथी विशेषता, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया था, वह है सीखने और ज्ञान के प्रति रुझान। इससे आशय है कि ज्ञान और समझ, सीखने में आत्म-विश्वास और नियमित रूप से सख्त मेहनत को शिक्षार्जन में कितना महत्त्व दिया जाता है। फिर, इसका सीखने की स्वतंत्रता से अत्यंत घनिष्ठ संबंध है लेकिन इसमें अन्य तत्व भी शामिल हैं, ज्ञान के प्रति अनुराग और अपने मस्तिष्क की स्पष्टता के लिए सशक्त प्रेरणा और जिसे हार्वे सीगल के कथन

नोट

में देखा जा सकता है जिसे वे तार्किक गवेषणा को महत्त्व देना और उसके परिणामों को गंभीरता से लेना कहते हैं; उनका दावा है कि यह किसी भी अच्छी शिक्षा का मूल है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की ..... सीखने का जुड़ाव।
2. शैक्षिक प्रक्रिया की गुणवत्ता की ..... है सक्षमता।
3. शैक्षिक प्रक्रिया के गुणवत्ता की तीसरी विशेषता ..... है।
4. गुणवत्ता शैक्षिक प्रक्रिया की प्रमुख विशेषता ..... है।

## 24.3 शिक्षा के उद्देश्य और गुणवत्ता (Aims and Quality of Education)

प्रत्यक्षत: ऐसा संभव लगता है कि प्रक्रिया और परिणामों के बारे में सभी मानदण्डों को जिनकी तरफ इशारा किया गया है, पूरा करना संभव है, ऐसी परिस्थितियों में भी जब शिक्षार्थी के पास सीखने की बहुत भिन्न सामाजिक-राजनैतिक और नीतिगत चीजें हों। उदाहरण के लिए, यह संभव है कि स्कूलों और कॉलेजों की व्यवस्था इस प्रकार की जाए कि उससे बहुत कार्यकुशल और सृजनात्मक व्यवस्थापकों का निर्माण हो, जिनका लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों से सरोकार न हो और जिनके पास गरीबों के बारे में सोचने के लिए कोई समय न हो सिवाय यह जानने के कि उनका बाजार मूल्य क्या है लोगों को धार्मिक उन्मादी बनने में मदद करना भी संभव है जहां जनसमूहों के धार्मिक नेताओं की दिव्य सत्ता द्वारा उन्हें संचालित किए जाने की आशा की जाती है। या लोगों की सामान्य दुर्दशा के प्रति संवेदनशील होने में उनकी मदद की जा सकती है और लोगों की भी इसमें मदद की जा सकती है कि वे समानता और स्वतंत्रता के अपने अधिकार को पहचानें और स्वयं निर्णय लें; और आर्थिक विकास को गौण महत्त्व दें। लोगों और जीवन के प्रति इन अलग-अलग मनोवृत्तियों का सभी क्षेत्रों में एक-दूसरे का घोर विरोध होना जरूरी नहीं है, लेकिन भिन्न पहलुओं को महत्त्व देना काफी महत्त्वपूर्ण हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा के लिए वांछनीयता की श्रेणी में फर्क होगा, जिसकी परिकल्पना किए जाने पर एक या दूसरे परिणाम प्राप्त होंगे। इससे पता चलता है कि तब तक जब तक कि शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार नहीं किया जाता। शैक्षिक गुणवत्ता की तस्वीर अधूरी है। कुछ के लिए शिक्षा के उद्देश्य की गुणवत्ता के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू हो सकते हैं।

यह भी तर्क दिया जा सकता है कि 'केवल शिक्षा की प्रक्रिया और परिणाम ही' 'गुणवत्ता' के द्योतक हैं क्योंकि यही तय हुआ था; और निर्धारित किए गए परिणामों की स्वयं की प्रकृति पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है। गुणवत्ता की ऐसी धारणा के श्रेष्ठ बिन्दु व्यापक स्तर पर मान्य हो सकते हैं। यदि ऊपर दी गई विशेषताओं को ध्यान में रखा जाए बावजूद इसके कि शिक्षा किन उद्देश्यों की पूर्ति करती है तो जो लोग उद्देश्यों को लेकर भिन्न मत रखते हैं वास्तव में गुणवत्ता के पैमानों पर सहमत हो सकते हैं। यह सहमति, तथापि, सतही और व्यावहारिक स्तर पर निरर्थक होगी, जैसा कि शिक्षा में अनेक सामान्य प्रकार की सहमतियां होती हैं, क्योंकि उद्देश्य पाठ्यक्रम के द्वारा परिणामों को तय करेंगे और प्रक्रिया और शिक्षाविज्ञान को प्रभावित करेंगे। उदाहरण के लिए, शिक्षा में आर्थिक उद्देश्यों और सामाजिक न्याय के उद्देश्यों की प्रमुखता पर विचार करते हैं। इस तर्क हेतु इन दोनों उद्देश्यों को परिभाषित करते हैं। 'आर्थिक उद्देश्यों की प्रमुखता' से हम आशय लेते हैं कि शिक्षा मुख्य रूप से कौशलों के विकास के लिए है जो वर्तमान प्रतिस्पर्धी और तथाकथित ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी है और यह कि सामाजिक न्याय आर्थिक विचार के अधीन है और केवल तभी संभव होगा जब आर्थिक विकास पहले होगा। दूसरी तरफ शैक्षिक उद्देश्य के रूप में सामाजिक न्याय की प्रमुखता का मतलब है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य न्यायसंगत समाज का निर्माण करना और वैसा बनाए रखना है; आर्थिक उद्देश्य आवश्यक तो हैं पर हमेशा सामाजिक न्याय के नीतिगत विचारों के मातहत होते हैं। इन दोनों प्रकार के लोगों को कोई समस्या नहीं होनी चाहिए जहां तक प्रक्रिया और परिणामों की उपरोक्त विशेषताओं को मूल्यांकनों में स्थान दिया जाता है। लेकिन पाठ्यक्रम में

नोट

जिन चीजों पर बल दिया जाता है, वह समाज विज्ञानों और कलाओं के प्रस्तावित महत्त्व के सापेक्ष हो सकता है। शिक्षा की प्रक्रिया में स्कूल की व्यवस्था और योग्यता में प्रतिस्पर्धी व्यवहार को महत्त्व देना, इनमें बड़ा अंतर होने की संभावना है। इसलिए कहा जा सकता है कि शिक्षा के उद्देश्यों पर बिना विचार किए गुणवत्ता की परिपूर्ण धारणा मुश्किल से आगे बढ़ सकती है।

*नोट्स* शिक्षा को एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में भी मान्यता दी जाती है; यह लोगों के व्यक्तित्व को गढ़ने में मदद करती है। स्कूल में सीखना मात्र विषयवस्तु को सीखना नहीं है। दुनिया को, लोगों को और अपने को देखने का नजरिया क्या हो, यह भी सीखना ही है। विचारों को निर्मित करना, मतों, अनुभव, व्याख्या के कार्यात्मक ढांचों को और समग्र दुनिया के प्रति नजरिए को विकसित करना भी सीखने के अंतर्गत आता है।

## गुणवत्ता के लिए एक अस्थायी रूपरेखा

यदि हम उपरोक्त विचारों को शिक्षा में गुणवत्ता के विचार के अनिवार्य तत्वों के रूप में स्वीकार करते हैं, जिसके पक्ष में मैंने तर्क करने का प्रयास किया है और यदि उन्हें पर्याप्त रूप से व्यापक समझा जाता है जिसमें सभी आवश्यक पहलू आ जाते हैं (जिनके पक्ष में अभी दलील नहीं दी गई है)। गुणवत्ता के लिए एक अस्थायी रूपरेखा नीचे की तालिका में इस प्रकार है।

| **शिक्षा की गुणवत्ता** | |
|---|---|
| शैक्षिक आदर्श और मूल्य | समानता और न्याय, संवेदनशीलता और मूल्य, विवेक और स्वायत्तता, सामाजिक–राजनैतिक सरोकार, आर्थिक योगदान |
| **शैक्षिक परिणाम** | |
| अ. अधिगम की मात्रा | अवधारणाएँ, जानकारियाँ, नियम और सिद्धांत |
| ब. समझ की स्पष्टता | अवधारणात्मक स्पष्टता, अन्तर्संबंध, वास्तविक जीवन के उदाहरण, विपरीत उदाहरण |
| स. स्वतंत्र रूप से सीखने और शोध के लिए क्षमताएँ | शोध करने की योग्यता, आगे के लिए सीखने में प्रयोग, समस्या हल करने में रचनात्मक अनुप्रयोग |
| द. सीखने के प्रति रुझान | बौद्धिक ईमानदारी और साहस, सीखने की इच्छा, ज्ञान के मूल्य की कद्र, आत्म–विश्वास |
| य. संवेदनशीलता और मूल्य | दूसरों के प्रति संवेदनशीलता, सहयोग, निष्पक्षता, आत्म–सम्मान, दूसरों के प्रति सम्मान |
| **शैक्षिक प्रक्रियाएं** | |
| अ. सक्षमता और प्रभावोत्पादकता | सीखने की मात्रा के रूप में, योग्यता के विकास के रूप में |
| ब. नैतिक सम्मति | शारीरिक दण्ड का न होना, अपमानित न करना, भावात्मक स्वतंत्रता, भय का न होना |
| स. सीखने वाले का जुड़ाव | आनन्द, सक्रिय जुड़ाव, ध्यान केन्द्रित करना |
| द. उपयुक्त लागत | सीखने वाले का समय और प्रयास, शिक्षकों का समय और प्रयास, आवश्यक संसाधन |

नोट

उपरोक्त रूपरेखा में बहुत सारी चीजें जो गुणवत्ता के विभिन्न तत्वों को शैक्षिक गुणवत्ता के विचार के अनिवार्य तत्वों के रूप में विश्लेषित करती हैं, जरूरी हैं लेकिन समानता और न्याय के लिए शिक्षा के उद्देश्यों के रूप में प्रस्तुत नहीं की गई हैं। स्थान सीमित होने के कारण, यह संभव नहीं है, न ही लगता है इस मुद्दे पर भारी असहमति है, कम से कम सतह पर तो नहीं। इन खास विशेषताओं का निरूपण इस बिन्दु को उभारने के लिए किया गया है कि पूरी रूपरेखा तैयार होने पर वह स्पष्ट हो जाए। इसका मतलब है कि उद्देश्यों का चुनाव एक प्रकार से शिक्षा के वांछित परिणामों और प्रक्रियाओं को तय करता है।

*टास्क* गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की मुख्य विशेषता क्या है?

## 24.4 सारांश (Summary)

- गुणवत्ता के मापनीय संकेतकों की सीमाबद्धता शायद वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है जिस पर बल दिया जाना चाहिए। वर्तमान प्रवृत्ति को, जिसमें विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित गुणवत्ता की धारणाएँ शैक्षिक सुधार हेतु प्रयोग करने के लिए गुणवत्ता के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संकेतक के रूप में मानक परीक्षाओं पर बल देती है; सुधारों का दायरा शिक्षक तैयारी से लेकर स्कूल तक जाता है, अनिवार्य रूप से खंडित और आंशिक मानना चाहिए; उसमें शिक्षा की गुणवत्ता का एक छोटा-सा अंश शायद वास्तव में पकड़ में आता हो। मानक परीक्षणों द्वारा शैक्षिक आदर्शों और शैक्षिक प्रक्रियाओं का लगभग कुछ भी अंश पकड़ में नहीं आता। शैक्षिक परिणामों के बतौर जो वे मापते हैं, वह अधिकांश रूप से सीखी गई चीजों की मात्रा तक सीमित होता है और बाकी चार चीजें छोड़ दी जाती हैं, अर्थात् समझ की स्पष्टता और गहनता, स्वतंत्र रूप से सीखने के लिए क्षमता का होना, सीखने, संवेदनशीलता और मूल्यों के प्रति मनोवृत्ति। वास्तव में छोड़ी गई उपरोक्त चीजें दीर्घकालिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं अपेक्षाकृत उनके जिनका कि मूल्यांकन किया गया है। एक बात यह भी कि सीखी गई चीजों की मात्रा के मापन का विचार भले ही अवधारणात्मक प्रकृति का हो या आनुभविक किस्म का कोई वास्तविक आधार प्रदान करता हो जिससे बचे हुए पहलुओं के विकास का पता चलता हो, इसका कोई स्वतंत्र प्रमाण नहीं है।
- दूसरा महत्त्वपूर्ण निहितार्थ है कि वांछनीय शैक्षिक परिणामों का आंशिक मूल्यांकन और शैक्षिक आदर्शों को बहस में शामिल नहीं करना एक खास विचारधारा के दुनियावी नजरिए को सशक्त ढंग से फैलाने के लिए रिक्त स्थान को सृजित करता है। मापनीय सीखी गई चीजें जिनसे आशा की जाती है कि वे दुनिया के कामकाज चलाने में रोजमर्रा की समस्याओं को हल करने में उपयोगी होंगी, उनकी भी लोगों द्वारा प्रतिदिन व्यतीत की जाने वाली जिन्दगी के बारे में मान्यताएँ होती हैं। जिन कार्य-कुशलताओं को तरजीह दी जाती है, जिनकी सामान्य जिन्दगी में जरूरत होती है, वांछित जीवन के लिए चोरी-छिपे आधार तैयार करती है। इसलिए गणित और विज्ञान का मापन लेकिन सामाजिक समझ को बाहर रखना और मूल्यों के बारे में कहने के लिए कुछ भी पास नहीं होना 'सक्षम' शिक्षा के लिए ऐसा आधार तैयार करता है जो आज समाज द्वारा सामना किए जाने वाले नैतिक मुद्दों से एकदम बरी रहता है और शायद पूर्णरूप से प्रेरक बल के रूप में आर्थिक परिस्थितियों और जीवन के लिए वांछित लक्ष्यों पर केन्द्रित रहता है। प्रस्तुत सच्चाई से निबटने के माध्यम के रूप में शिक्षा पर विचार किया जाता है न कि उसमें आमूल परिवर्तन के लिए।
- हमें गुणवत्ता को अपने बच्चों के लिए समुचित अवसर उपलब्ध कराने के काम में लेना चाहिए, उनकी लोकतांत्रिक सहभागिता के लिए स्थान सृजित करते हुए जिसका वे स्वयं उपयोग करें न कि समाज को उन दिशाओं में धकेला जाए जो नीति निर्माताओं की पसंद की गुणवत्ता की धारणाओं के पीछे छिपी हैं।

नोट

## 24.5 शब्दकोश (Keywords)

- **सरोकार**–आपसी व्यवहार का सम्बंध, वास्ता, लगाव।
- **नफासत**–सुंदरता, बढ़ियापन, कोमलता, निर्मलता।

## 24.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा संस्थानों में गुणवत्ता सुधार की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
2. शिक्षा प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।
3. शिक्षा के उद्देश्य की विवेचना कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. पहली विशेषता है 2. दूसरी विशेषता 3. नैतिक सम्मति 4. उपयुक्त लागत।

## 24.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–25: उच्च शिक्षण संस्थान में आईक्यूएसी (IQAC in Higher Education Institute)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (Internal Quality Assurance Cell – IQAC)

25.2 आईक्यूएसी के उद्देश्य (Aims of Internal Quality Assurance Cell)

25.3 आईक्यूएसी के कार्य (Functions of Internal Quality Assurance Cell)

25.4 सारांश (Summary)

25.5 शब्दकोश (Keywords)

25.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

25.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) को समझने में।
- आईक्यूएसी के उद्देश्यों की व्याख्या करने में।
- आईक्यूएसी के कार्यों की विवेचना करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग राष्ट्रीय स्तर पर उच्च शिक्षा की गुणवत्ता के लिए उत्तरदायी है। उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षा की गुणवत्ता के लिए राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) ने एक सेल गठित किया, जिसे आन्तरिक गुणवत्ता, प्रत्याभूति सेल (IQAC) कहते हैं। शैक्षणिक तथा प्रशासनिक गुणवत्ता को मूल्यांकित करने के लिए प्रत्येक महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में स्थापित किया गया। यह महाविद्यालय का सहभागी अंग है जो संस्थान में शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावी बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। इस इकाई में विद्यार्थी आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति, सेल (IQAC) तथा इसके विषय में अन्य जानकारी प्राप्त करेंगे।

## 25.1 आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (Internal Quality Assurance Cell – IQAC)

राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन परिषद् (NAAC) की राष्ट्रीय कार्य योजना में उच्च शिक्षण संस्थान के गुणवत्ता मूल्यांकन का कार्य करती है। राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन परिषद् (NAAC) ने गुणवत्ता के मूल्यांकन हेतु प्रत्येक संस्थान में एक आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) स्थापित करने पर विशेष बल दिया। चूँकि गुणवत्ता वृद्धि एक सतत् प्रक्रिया है अतः आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) भी किसी संस्था की प्रणाली का अभिन्न अंग है। आन्तरिक

नोट

गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) का प्रमुख कार्य संस्थान के प्रदर्शन का विश्लेषण कर उसमें आवश्यक सुधार लाना है। आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) संस्थान के विभिन्न प्रदर्शन में सुधार के लिए अर्थपूर्ण योगदान देता है। IQAC एक ऐसा सेल है, जो उच्च शिक्षा संस्थानों में गुणवत्ता मानकों को मॉनीटर करता है। राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन परिषद् (NAAC) ने कुछ सिफारिशें दीं जो आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) के निर्माण के लिए उपयोगी सिद्ध हुईं। ये सिफारिशें निम्नलिखित हैं:–

(*i*) संस्थान के प्रदर्शन में सतत् तथा उत्प्रेरणीय सुधार लाने हेतु एक प्रणाली विकसित करना आवश्यक है।

(*ii*) संस्थान के प्रदर्शन मूल्यांकन में योगदान देने के लिए एक ऐसे सेल की आवश्यकता है।

(*iii*) शैक्षिक गुणवत्ता के लिए प्रयासों तथा संस्थान के मापकों को संचालित करने के लिए इसकी आवश्यकता है।

### आईक्यूएसी का संगठन (Organization of IQAC)

आईक्यूएसी (IQAC) का संगठन इस प्रकार है–

(*a*) उच्च शिक्षण संस्थान के प्रमुख– चेयरपर्सन

(*b*) पाँच वरिष्ठ अध्यापक (कॉलेज या महाविद्यालय), आठ वरिष्ठ अध्यापक तथा एक वरिष्ठ प्रशासकीय अधिकारी– सदस्य

(*c*) गुणवत्ता प्रबंधन/ स्थानीय समुदाय के बाहरी विशेषज्ञ, दो बाह्य विशेषज्ञ महाविद्यालय, तीन विश्वविद्यालय– सदस्य

(*d*) निदेशक/आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) के कोओर्डिनेटर– सदस्य सचिव

उच्च शिक्षण संस्थान को शैक्षिक निकाय के द्वारा उपरोक्त (*b*) तथा (*c*) के सदस्यों का नामांकन किया जाता है। इस शैक्षणिक निकाय को विश्वविद्यालय की शैक्षणिक परिषद् अथवा महाविद्यालय की शैक्षणिक समिति कहते हैं।

*क्या आप जानते हैं* आईक्यूएसी संगठन के सदस्यों का कार्यकाल 2 वर्ष का होता है।

### आईक्यूएसी स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता की योजना

सभी विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय UGC अधिनियम के अनुच्छेद 2(f) तथा 12B के अंतर्गत आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) को स्थापित तथा संगठित करने के लिए वित्तीय सहायता के पात्र हैं। इस अधिनियम के तहत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) स्थापित करने के लिए प्रत्येक महाविद्यालय को ₹ 3 लाख तथा प्रत्येक विश्वविद्यालय को ₹ 5 लाख उपलब्ध कराता है।

## 25.2 आईक्यूएसी के उद्देश्य (Aims of Internal Quality Assurance Cell)

आईक्यूएसी के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

(*i*) शैक्षिक सत्र में गुणवत्ता सुधार के लिए कार्य योजना बनाना।

(*ii*) योजनाओं तथा कार्यक्रमों को कार्यांवित करना।

(*iii*) शैक्षणिक तथा प्रशासनिक प्रदर्शन को मूल्यांकित करना।

(*iv*) वास्तविक गुणवत्ता को विकसित करना।

(*v*) कार्य करने की विधियों में जागरूकता उत्पन्न करना।

नोट

नोट्स आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC), विभिन्न समितियों पर आधारित कई सेल तथा केन्द्र बनाता है, जो शैक्षणिक तथा प्रशासन संबंधी गतिविधियों को कार्यांवित करते हैं।

## 25.3 आईक्यूएसी के कार्य (Functions of Internal Quality Assurance Cell)

आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) उच्च शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता तथा कार्यों के मानकों को मूल्यांकित करता है, इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:–

(1) आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) कोओर्डिनेटिंग तथा मूल्यांकन करने की प्रभावी प्रणाली है। यह उच्च शिक्षण संस्थान में शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावी बनाये रखने के लिए संस्थान के प्रबंधन, प्रधानाचार्य तथा अन्य समितियों को उपयोगी सुझाव देकर उनकी सहायता करती है।

(2) आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की 11वीं योजना में शैक्षणिक तथा प्रशासनिक क्रियाकलापों के सम्पूर्ण गुणवत्ता सुधार के लिए प्रस्ताव बनाये। यूजीसी ने प्रस्ताव को स्वीकार किया तथा महाविद्यालयों की मूल विकास तथा योजना के लिए ₹ 74.50 लाख प्रदान किये।

(3) योजनाओं के कार्यांवयन के लिए आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) प्रतिवर्ष वार्षिक शैक्षणिक रिपोर्ट तैयार करता है। यह लगातार राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन परिषद् (NAAC) के सम्पर्क में रहता है, तथा AQAR रिपोर्ट तैयार करके जमा करता है।

(4) शिक्षण संस्थान के विभिन्न शैक्षणिक तथा प्रशासनिक गतिविधियों के मानकों का विकास तथा उपयोग करता है।

(5) शिक्षण संस्थान में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को शक्तिशाली तथा प्रभावी बनाने के लिए अधिगमकर्ता केन्द्रित वातावरण तैयार करती है, जिससे छात्र तथा शिक्षक शिक्षा तथा ज्ञान को परिपक्व रूप में समझ सकें।

(6) शिक्षण संस्थान की गुणवत्ता संबंधी संस्थानात्मक प्रक्रिया का छात्रों, अभिभावकों तथा अन्य पणधारियों की पृष्ठपोषण प्रतिक्रिया का प्रबंध करती है।

(7) आन्तरिक तथा बाह्य संस्थानात्मक वर्कशॉप, सेमिनार तथा गुणवत्ता प्रोन्नत थीम आयोजित करता है।

(8) संस्थानों के सभी कार्यक्रमों तथा क्रियाकलापों को कलमबद्ध करता है।

(9) उच्च शिक्षण संस्थान में गुणवत्ता संस्कृति को विकसित करता है। इसके अतिरिक्त महाविद्यालय में गेस्ट लेक्चर्स आयोजित करना, छात्रों को औद्योगिक इन्टर्नशिप पर भेजने की व्यवस्था करना, प्रोजेक्ट वर्क का सम्पूर्ण विवरण (शीर्षक, गाइड, उद्योग जहाँ प्रोजेक्ट किया जा रहा है।) लेना, कक्षा, प्रयोगशाला तथा कम्प्यूटर सुविधाओं का उचित उपयोग, तथा इनकी स्वच्छता, छात्रों की उपस्थिति का रिकॉर्ड रखना, सतत् मूल्यांकन परीक्षण के प्रश्न–पत्र तथा सैम्पल उत्तर पुस्तिका, प्रयोगशाला रिकॉर्ड, पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए विभिन्न सुविधाओं तथा सृजनात्मक शिक्षण का आयोजन करना आईक्यूएसी के प्रमुख दायित्व हैं।

टास्क आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल से आप क्या समझते हैं?

नोट

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. आईक्यूएसी आंतरिक ..... तथा मूल्यांकन करने की प्रभावी प्रणाली है।
2. यह विभिन्न समितियों पर आधारित ..... तथा केन्द्र बनाता है।
3. आंतरिक तथा बाह्य संस्थानात्मक वर्कशॉप ..... तथा गुणवत्ता प्रोन्नत थीम आयोजित करता है।
4. संस्थानों के सभी कार्यक्रमों तथा ..... को कलमबद्ध करता है।
5. उच्च शिक्षण संस्थानों में ..... को विकसित करता है।

## 25.4 सारांश (Summary)

- उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षा की गुणवत्ता के लिए राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) ने एक सेल गठित किया, जिसे आन्तरिक गुणवत्ता, प्रत्याभूति (IQAC) सेल कहते हैं। शैक्षणिक तथा प्रशासनिक गुणवत्ता को मूल्यांकित करने के लिए प्रत्येक महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में स्थापित किया गया।
- राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्याभूति परिषद् (NAAC) की राष्ट्रीय कार्य योजना में उच्च शिक्षण संस्थान के गुणवत्ता मूल्यांकन का कार्य करती है। NAAC ने गुणवत्ता के मूल्यांकन हेतु प्रत्येक संस्थान में एक आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) स्थापित करने पर विशेष बल दिया। चूँकि गुणवत्ता वृद्धि एक सतत् प्रक्रिया है अत: आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) भी किसी संस्था की प्रणाली का अभिन्न अंग है। आन्तरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (IQAC) का प्रमुख कार्य संस्थान के प्रदर्शन का विश्लेषण कर उसमें आवश्यक सुधार लाना है।
- सभी विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय UGC अधिनियम के अनुच्छेद 2(f) तथा 12B के अंतर्गत IQAC को स्थापित तथा संगठित करने के लिए वित्तीय सहायता की पात्र हैं। इस अधिनियम के तहत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग IQAC स्थापित करने के लिए प्रत्येक महाविद्यालय को ₹ 3 लाख तथा प्रत्येक विश्वविद्यालय को ₹ 5 लाख उपलब्ध कराता है।
- उच्च शिक्षण संस्थान में गुणवत्ता संस्कृति को विकसित करता है। इसके अतिरिक्त महाविद्यालय में गेस्ट लेक्चर्स आयोजित करना, छात्रों को औद्योगिक इन्टर्नशिप पर भेजने की व्यवस्था करना, प्रोजेक्ट वर्क का सम्पूर्ण विवरण (शीर्षक, गाइड, उद्योग जहाँ प्रोजेक्ट किया जा रहा है।) लेना, कक्षा, प्रयोगशाला तथा कम्प्यूटर सुविधाओं का उचित उपयोग, तथा इनकी स्वच्छता, छात्रों की उपस्थिति का रिकॉर्ड रखना, सतत् मूल्यांकन परीक्षण के प्रश्न-पत्र तथा सैम्पल उत्तर पुस्तिका, प्रयोगशाला रिकॉर्ड, पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए विभिन्न सुविधाओं, तथा सृजनात्मक शिक्षण का आयोजन करना आईक्यूएसी के प्रमुख दायित्व हैं।

## 25.5 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रत्याभूति**–विश्वसनीयता।
- **कलमबद्ध**–लिखित साक्ष्य।

## 25.6 अभ्यास-प्रश्न ( Review Questions)

1. आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (आईक्यूएसी) के सांगठनिक ढांचे को समझाइए।
2. आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (आईक्यूएसी) के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
3. आंतरिक गुणवत्ता प्रत्याभूति सेल (आईक्यूएसी) के कार्यों का विश्लेषण कीजिए।

नोट

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. कोआर्डिनेटिंग
2. कई सेल
3. सेमिनार
4. क्रियाकलापों
5. गुणवत्ता संस्कृति

## 25.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–26: शिक्षा में व्यावसायिक अधिगम समुदाय (Professional Learning Community (PLC) in Education)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 व्यावसायिक अधिगम समुदाय की अवधारणा (Concept of Professional Learning Community)

26.2 व्यावसायिक अधिगम में शिक्षक व्यवहार की विशेषताएँ (Characteristics of Teacher Behaviour in Professional Learning)

26.3 व्यावसायिक अधिगम में प्रधानाचार्य के व्यवहार की विशेषताएँ (Characteristics of Principal Behaviour in Professional Learning)

26.4 व्यावसायिक अधिगम के लिए विद्यालय में आवश्यक वातावरण (Necessary Environment in School for Professional Learning)

26.5 सारांश (Summary)

26.6 शब्दकोश (Keywords)

26.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

26.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा में व्यावसायिक अधिगम समुदाय की अवधारणा को समझने में।
- व्यावसायिक अधिगम में शिक्षक एवं प्रधानाचार्य के व्यवहारों की विशेषताओं का विश्लेषण करने में।
- व्यावसायिक अधिगम के लिए विद्यालय में आवश्यक वातावरण का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

विद्यालय प्रबंधन में सुधार के लिए अनेक प्रयोगों में से विद्यालय संगठन पर्यावरण के आधार पर शैक्षिक विकास का प्रयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अवधारणा में यह मानकर चला जाता है कि किसी भी संगठन के विकास में संगठन विशेष के सामाजिक सांस्कृतिक संबंध व कार्य-संस्कृति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि संगठन के पर्यावरण का अध्ययन कर अपेक्षित पर्यावरण निर्माण का कार्य किया जाए, तब विद्यालयों की शैक्षिक गुणवत्ता व प्रभावशीलता बढ़ाई जा सकती है। शोधकर्त्ताओं ने विद्यालयी श्रेष्ठ पर्यावरण (स्वायत्त) से कठोर पर्यावरण (नियंत्रित) तक का श्रेणीकरण का आधार भी प्रस्तुत किया है। यही नहीं विद्यालय संगठन पर्यावरण के संबंध में शोधकर्त्ताओं ने शिक्षकों के मनोबल, मूल्य, कार्यशैली आदि के परस्पर संबंध आदि के प्रभाव को भी देखा है।

नोट

विद्यालय संगठन के प्रभाव के संदर्भ में यह स्वीकार किया जाता है कि जिस प्रकार लोग अपने अच्छे, प्रभावशाली, झगड़ालू, मिलनसार, कर्त्तव्यनिष्ठ आदि प्रकार के व्यवहार के लिए जाने जाते हैं, उसी प्रकार विद्यालय भी अपने विशेष प्रभाव या व्यवहार से आंगतुकों को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। यदि किसी विद्यालय में प्रधानाध्यापक तथा शिक्षक प्रसन्न मुद्रा में कार्यरत हैं, किसी प्रकार का तनाव एवं असंतोष नहीं है, तो प्रसन्नता विद्यार्थियों में भी देखी जा सकती है और उनके लिए विद्यालय सुखानुभूति के स्थान बन जाते हैं। इसके विपरीत जिन विद्यालयों में शिक्षक और प्रधानाध्यापक के मध्य अच्छे संबंधों का अभाव है, शिक्षकों में असंतोष है, वे केवल नियमानुसार ही कार्य करते दिखाई देते हैं तथा निर्देशक का अभाव लगता है तब इस सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति का प्रभाव विद्यार्थियों पर भी देखा जा सकता है।

## 26.1 व्यावसायिक अधिगम समुदाय की अवधारणा (Concept of Professional Learning Community)

व्यावसायिक अधिगम समुदाय की अवधारणा बिल्कुल नवीन है जो 1990 के मध्य में आरम्भ हुई। व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) एक प्रक्रिया है जोकि विद्यालयों में संस्कृति को स्थापित करती है तथा शिक्षकों में विद्यालयी सुधार के लिए किये गये प्रयासों को कार्यान्वित करने के लिए उनमें नेतृत्व की भावना विकसित करती है।

सामान्यत: व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) में अध्यापक, प्रशासन तथा सहायक सहकर्मी स्टॉफ भागीदार होते हैं। कुछ विद्यालयों में व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) में इनके अतिरिक्त सामुदायिक सदस्य तथा छात्र भी इसमें सहभागी के रूप में सम्मिलित होते हैं। छात्रों की शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए अध्यापक एक टीम के सदस्य के रूप में कार्य करते हुए नेतृत्व क्षमता को भी विकसित करते हैं। छात्रों के सुधार हेतु अध्यापक आपस में बेहतर से बेहतर तकनीक को सीखने का प्रयास करते हैं तथा साझा कार्यक्रम द्वारा एक दूसरे को इसकी जानकारी देते हैं।

**समर्थित नेतृत्व–**व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) की स्थापना के लिए मजबूत, समर्थित नेतृत्व बहुत आवश्यक है। विद्यालय में व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) के लिए प्रधानाध्यापक का समर्थन बहुत आवश्यक है। समर्थन में निम्नलिखित तत्व होते हैं–

(*i*) अध्यापकों में नेतृत्व की भावना का विकास करना,

(*ii*) अध्यापक विकास के लिए मानव संसाधन तथा फिस्कल को सुरक्षित करना,

(*iii*) सम्पूर्ण स्टाफ के बीच शिक्षण छात्र अधिगम संबंधी वार्तालाप प्रक्रिया को उत्पन्न करना तथा प्रगति को मूल्यांकित तथा पर्यवेक्षित करना।

(*iv*) छात्रों से जुड़ी हर प्रकार की शैक्षिक जानकारी के आँकड़े उपलब्ध करना, यदि आँकड़े नहीं हैं, तो उन्हें ढूँढने के लिए संभव प्रयत्न करना।

(*v*) इस सबके साथ, जिला समर्थन भी बहुत आवश्यक है। यह व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) को जिले के प्रत्येक स्कूल में उपलब्ध व स्थापित कराने का कार्य करता है तथा व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) के विकास के लिए विभिन्न संसाधन जैसे समय, व्यावसायिक विकास तथा छात्र आँकड़े उपलब्ध कराना।

**संरचनात्मक समर्थन–**प्रशासकीय समर्थन के साथ-साथ संरचनात्मक समर्थन परिस्थितियों की जरूरत है। व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) को बैठकों तथा अन्य गतिविधियों के लिए उचित स्थान आदि की आवश्यकता होती है, इसके अतिरिक्त समय भी व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC), बैठकों तथा वार्तालाप के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए विभिन्न रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं–

(*i*) कक्षाओं का टाइम-टेबल इस प्रकार बनाया जाता है कि कॉमन नियोजन कालांश (Common Planning Period) बन सके।

नोट

(*ii*) विशिष्ट स्कूली दिनों की समयावधि बढ़ा दी जाती है।

(*iii*) शिड्यूल इस तरह बनाया जाना चाहिए कि अध्यापक "विशिष्ट" जैसे संगीत, कला, शारीरिक शिक्षा आदि कार्यों से मुक्त होकर कार्य कर सकें।

(*iv*) मासिक फैकल्टी मीटिंग तथा जिला व्यावसायिक विकास दिवसों को व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) के लिए निर्धारित कर सकते हैं।

(*v*) शिड्यूल को स्थापित किया जाता है, जैसे विद्यालयों का समय 20 मिनट बढ़ा दें तथा अध्यापकों को 30 मिनट पहले बुला लें, जिससे अध्यापक इसका उपयोग व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) की मीटिंग के लिए कर सकें।

*नोट्स* व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) शिक्षकों का संगठित समूह है जो एक साथ कार्य करके तथा विभिन्न शैक्षिक तकनीक का उपयोग करके छात्रों के सुधार हेतु कार्य करते हैं।

## 26.2 व्यावसायिक अधिगम में शिक्षक व्यवहार की विशेषताएँ (Characteristics of Teacher Behaviour in Professional Learning)

इस व्यवहार के अंतर्गत शिक्षकों या समूह के चार प्रकार के व्यवहार: उदासीनता, बाधा, मनोबल तथा घनिष्ठता आते हैं। जहाँ प्रथम दो व्यवहार किसी भी संगठन के विकास में बाधक होंगे, वहीं बाद के दो अत्यंत सहायक होंगे।

**1. उदासीनता की भावना–**उदासीनता का आशय इस उपकरण में शिक्षकों की उस अनुभूति से है, जिसमें शिक्षक यह प्रदर्शित करता है कि विद्यालय से उनका कोई लगाव नहीं है। इनके अंतर्गत सम्पूर्ण प्रश्नावली में निम्नलिखित कथन हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. शिक्षक विद्यालय प्रणाली को ही छोड़ने की बात करते हैं।
2. प्रतिकूल विचार वाले सदस्यों पर अध्यापक सामूहिक दबाव डालते हैं।
3. शिक्षक अन्य अध्यापकों को बैठकों में बात करने में बाधा पहुंचाते हैं।
4. शिक्षक अध्यापकों की बैठकों में बेतुके प्रश्न करते हैं।

**2. अवरोध की भावना–**प्रश्नों के इस उपविभाग अवरोध की भावना में समूह की यह अनुभूति ज्ञात की जाती है कि प्रधानाध्यापक शिक्षकों को अनावश्यक कार्य देकर उन पर अधिक कार्य भार डालता है जिससे कि उनके वैयक्तिक विकास में बाधा पड़ती हो। इस प्रकार के व्यवहार को जानने के लिए निम्नलिखित कथन हैं–

1. इस विद्यालय में प्रशासनिक कार्य कागजी बोझा बना हुआ है।
2. दैनिक औपचारिकताएँ शिक्षण कार्य में व्यवधान पैदा करती हैं।

**3. मनोबल–**मनोबल के अंतर्गत शिक्षकों के संगठन में कार्य करने के मनोबल का पता चलता है तथा यह भी कि वे अपने कार्य से कितने संतुष्ट हैं। उनकी वैयक्तिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है या नहीं और वे कितने उत्साह से कार्य करते हैं। मापनी में इस पक्ष की अभिव्यक्ति का पता लगाने के लिए निम्नलिखित कथन हैं।

**उदाहरण–**

1. उन्हें कक्षा-कार्य के लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध है।
2. इस विद्यालय में शिक्षकों का मनोबल ऊँचा होता है।
3. अध्यापकों की बैठकों में यह भावना होती है कि हमें कार्य निबटा लेना चाहिए।

नोट

**4. घनिष्ठता**–घनिष्ठता में विद्यालय में शिक्षकों के परस्पर संबंधों का पता लगाया जाता है कि वे साथ-साथ मिलकर कार्य करते हैं या नहीं। परस्पर हँसी-मजाक का आनंद लेते हैं। उनकी सामाजिक आवश्यकताओं की समूह में संतुष्टि होती है। इस क्षेत्र की प्रश्नावली में निम्नलिखित कथन हैं।

**उदाहरणार्थ–**

1. शिक्षक दूसरे अध्यापक सदस्यों की पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानते हैं।
2. शिक्षक विद्यालय समय में परस्पर हँसी-मजाक का आनंद लेते हैं।

## 26.3 व्यावसायिक अधिगम में प्रधानाचार्य के व्यवहार की विशेषताएँ (Characteristics of Principal Behaviour in Professional Learning)

प्रशासनिक व्यवहार के अंतर्गत भी चार व्यवहार हैं–

(*i*) अलगाव की भावना (*ii*) कार्य एवं परिणामों पर बल

(*iii*) उदाहरण प्रस्तुत करना (*iv*) मानवीय दृष्टिकोण

**1. अलगाव**–अलगाव का आशय प्रधानाध्यापक के उस व्यवहार औपचारिक तथा निर्वैयक्तिक होता है। वह हर कार्य को नियमों से करता है। अनौपचारिक संबंधों में उसका कम विश्वास है। इस व्यवहार के अंतर्गत निम्नलिखित कथन हैं–

1. प्रधानाध्यापक द्वारा निर्मित नियमों पर कोई चर्चा नहीं करता।
2. शिक्षकों की बैठकों का आयोजन निश्चित कार्यक्रमों के अनुसार होता है।

**2. कार्य एवं परिणामों पर बल**–इस व्यवहार में प्रधानाध्यापक विद्यालय के कार्यों तथा अच्छे परिणामों के प्रति सजग रहता है। आवश्यकतानुसार शिक्षकों को स्पष्ट रूप से कार्य देता है। वह विद्यालय के परीक्षा नियमों को ऊँचा रखना चाहता है। इस व्यवहार के लिए प्रश्नावली में निम्नलिखित उदाहरण हैं –

1. प्रधानाध्यापक शिक्षकों की त्रुटियों को सुधारते हैं।
2. प्रधानाध्यापक अध्यापकों का कार्य निर्धारित करते हैं।
3. शिक्षकों के अतिरिक्त कार्य स्पष्ट रूप से निश्चित किए जाते हैं।

**3. उदाहरण प्रस्तुत करना**–इस उप विभाग के अंतर्गत प्रधानाध्यापक के प्रेरणादायी व्यवहार को देखा जाता है। इस व्यवहार के अंतर्गत निम्नलिखित कथन हैं–

1. प्रधानाध्यापक स्वयं तैयारी करके आते हैं।
2. प्रधानाध्यापक रचनात्मक आलोचना करते हैं।

**4. मानवीय व्यवहार**–इस व्यवहार में प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकों के मध्य परस्पर संबंधों को देखा जाता है कि वे परस्पर समस्याओं को कैसे सुलझाते हैं तथा शिक्षकों के लिए क्या कुछ करने को उद्यत रहते हैं। इसके अंतर्गत उपकरण में निम्नलिखित कथन हैं–

1. प्रधानाध्यापक शिक्षकों की व्यक्तिगत समस्याओं का हल करने में रुचि लेते हैं।
2. प्रधानाध्यापक शिक्षकों को अधिक लाभ मिले, इसके लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

## 26.4 व्यावसायिक अधिगम के लिए विद्यालय में आवश्यक वातावरण (Necessary Environment in Schools for Professional Learning)

विद्यालय में उचित वातावरण के लिए उपलब्धियों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है भले ही इसका अन्य प्रशासनिक पक्षों पर विपरीत प्रभाव रहे। अत: इसमें व्यक्तियों की सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तुष्टि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों का मनोबल ऊँचा होता है। शिक्षक प्रधानाध्यापक के निर्देशों के विपरीत नहीं जाते। वे

नोट

व्यक्तिगत रूप से भी कार्य-संपादन में योग देते हैं। इस पर्यावरण में रोजमर्रा का कागजी कार्य अधिक होता है जिससे शिक्षक अपने पर कार्यभार अधिक अनुभव करते हैं। उसे वे अपनी प्रगति में भी बाधक समझते हैं। उनके पास व्यक्तिगत चर्चा या संपर्क के लिए समय का अभाव रहता है। अत: शिक्षकों में परस्पर घनिष्ठ संबंध नहीं हो पाते।

प्रधानाध्यापक संगठन के नियमों में किसी भी प्रकार का लचीलापन नहीं देखता। सभी कार्यों को वह अपनी इच्छानुसार देखना चाहता है। परिणामों पर अधिक बल देता है तथा संबंधों की चिंता उसे नहीं होती। प्रधानाध्यापक के विचारों को जब स्टाफ के सदस्य मान्यता नहीं देते तो वह हठी भी हो जाता है। समूह की सामाजिक आवश्यकता की ओर भी वह कम ध्यान देता है, फिर भी वह इस दिशा में कठिन प्रयास करता है कि संगठन विकास करे। वह कतिपय दायित्व दूसरों को भी देता है। इस पर्यावरण की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. उच्च मनोबल
2. निम्न अन्यमनस्कता
3. उच्च परिणामों पर बल
4. निम्न सद्भाव
5. उच्च उदाहरण प्रस्तुत करना
6. अत्यधिक बाधाएँ
7. औसत एकाकीपन
8. निम्न घनिष्ठता

*क्या आप जानते हैं* प्रधानाध्यापक के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात कार्य संपादन की होती है।

परिचित वातावरण में प्रशासन और शिक्षकों के मध्य मित्रवत् संबंध होते हैं। कार्यकर्ताओं को सामाजिक आवश्यकताओं की तुष्टि का सर्वाधिक अभाव होता है। शिक्षक कार्य-उपलब्धियों पर बहुत कम ध्यान देते हैं। प्रधानाध्यापक का शिक्षकों के कार्य-कलापों पर बहुत कम नियंत्रण होता है। वह रोजमर्रा प्रतिवेदन तथा कार्यों में शिक्षकों को नहीं लगाता। शिक्षकों में परस्पर मित्रवत् संबंध होते हैं तथा वे सामाजिक रूप से एक प्रसन्न परिवार के सदस्य के रूप में रहते हैं। शिक्षकों का मनोबल तथा व्यावसायिक तुष्टि औसत होती है। प्रधानाध्यापक की मुख्य विचारधारा होती है कि हम सभी एक अच्छे परिवार के सदस्यों की तरह रहें। वह चाहता है कि प्रत्येक समूह के सदस्य मिलकर कार्य करें, परन्तु व्यक्तियों में कार्य के प्रति काफी उदासीनता होती है।

प्रधानाध्यापक एकांतवासी न होकर समूह के साथ रहता है। कार्य पर अधिक बल नहीं देता और न ही इसकी चिन्ता करता है कि शिक्षक अपने कार्य को सही प्रकार से कर रहे हैं या नहीं। उसका शिक्षकों के कार्य के मूल्यांकन पर बहुत कम ध्यान होता है। विशेष बात यह है कि शिक्षक उस पर विश्वास करते हैं क्योंकि वह शिक्षकों के कल्याण में रुचि रखता है। इस पर्यावरण की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. उच्च अन्यमनस्कता
2. निम्न बाधाएँ
3. उच्च घनिष्ठता
4. औसत घनिष्ठता
5. उच्च सद्भाव
6. निम्न अलगाव
7. परिणामों पर न्यून बल
8. औसत उदाहरण प्रस्तुति

*टास्क* व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) में किन लोगों की भागीदारी आवश्यक होती है?

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. व्यावसायिक अधिगम समुदाय के लिए ..... नेतृत्व की आवश्यकता होती है।
2. विद्यालय में व्यावसायिक अधिगम समुदाय के लिए ..... का समर्थन बहुत आवश्यक है।

नोट

3. व्यावसायिक अधिगम समुदाय के अंतर्गत कक्षाओं का टाइम टेबल इस प्रकार बनाया जाता है कि ..... बन सके।
4. व्यावसायिक अधिगम समुदाय की अवधारणा ..... के मध्य में आरंभ हुई।

## 26.5 सारांश (Summary)

- व्यावसायिक अधिगम समुदाय की अवधारणा बिल्कुल नवीन है जो 1990 के मध्य में आरम्भ हुई। व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) एक प्रक्रिया है जोकि विद्यालयों में संस्कृति को स्थापित करती है तथा शिक्षकों में विद्यालय में सुधार के लिए किये गये प्रयासों को कार्यान्वित करने के लिए उनमें नेतृत्व की भावना विकसित करती है।
- सामान्यत: व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) में अध्यापक, प्रशासन तथा सहायक सहकर्मी स्टॉफ भागीदार होते हैं। कुछ विद्यालयों में व्यावसायिक अधिगम समुदाय (PLC) में इनके अतिरिक्त सामुदायिक सदस्य तथा छात्र भी इसमें सहभागी के रूप में सम्मिलित होते हैं। छात्रों की शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए अध्यापक एक टीम के सदस्य के रूप में कार्य करते हुए नेतृत्व क्षमता को भी विकसित करते हैं। छात्रों के सुधार हेतु अध्यापक आपस में बेहतर से बेहतर तकनीक को सीखने का प्रयास करते हैं तथा साझा कार्यक्रम द्वारा एक दूसरे को इसकी जानकारी देते हैं।
- इस व्यवहार के अंतर्गत शिक्षकों या समूह के चार प्रकार के व्यवहार; उदासीनता, बाधा, मनोबल तथा घनिष्ठता आते हैं। जहाँ प्रथम दो व्यवहार किसी भी संगठन के विकास में बाधक होंगे, वहीं बाद के दो अत्यंत सहायक होंगे।
- उदासीनता का आशय इस उपकरण में शिक्षकों की उस अनुभूति से है, जिसमें शिक्षक यह प्रदर्शित करता है कि विद्यालय से उनका कोई लगाव नहीं है।
- प्रश्नों के इस उपविभाग अवरोध की भावना में समूह की यह अनुभूति ज्ञात की जाती है कि प्रधानाध्यापक शिक्षकों को अनावश्यक कार्य देकर उन पर अधिक कार्य भार डालता है जिससे कि उनके वैयक्तिक विकास में बाधा पड़ती हो।
- मनोबल के अंतर्गत शिक्षकों के संगठन में कार्य करने के मनोबल का पता चलता है तथा यह भी कि वे अपने कार्य से कितने संतुष्ट हैं। उनकी वैयक्तिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है या नहीं और वे कितने उत्साह से कार्य करते हैं।
- घनिष्ठता में विद्यालय में शिक्षकों के परस्पर संबंधों का पता लगाया जाता है कि वे साथ-साथ मिलकर कार्य करते हैं या नहीं। परस्पर हँसी-मजाक का आनंद लेते हैं। उनकी सामाजिक आवश्यकताओं की समूह में संतुष्टि होती है।
- अलगाव का आशय प्रधानाध्यापक का व्यवहार औपचारिक तथा निवैयक्तिक होता है। वह हर कार्य को नियमों से करता है। अनौपचारिक संबंधों में उसका कम विश्वास है।
- विद्यालय में उचित वातावरण के लिए उपलब्धियों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है भले ही इसका अन्य प्रशासनिक पक्षों पर विपरीत प्रभाव रहे। अत: इसमें व्यक्तियों की सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तुष्टि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों का मनोबल ऊँचा होता है। शिक्षक प्रधानाध्यापक के निर्देशों के विपरीत नहीं जाते।
- परिचित वातावरण में प्रशासन और शिक्षकों के मध्य मित्रवत् संबंध होते हैं। कार्यकर्ताओं को सामाजिक आवश्यकताओं की तुष्टि का सर्वाधिक अभाव होता है। शिक्षक कार्य-उपलब्धियों पर बहुत कम ध्यान देते हैं। प्रधानाध्यापक का शिक्षकों के कार्य-कलापों पर बहुत कम नियंत्रण होता है। वह रोजमर्रा प्रतिवेदन तथा कार्यों में शिक्षकों को नहीं लगाता। शिक्षकों में परस्पर मित्रवत् संबंध होते हैं तथा वे सामाजिक रूप से एक प्रसन्न परिवार के सदस्य के रूप में रहते हैं।
- प्रधानाध्यापक की मुख्य विचारधारा होती है कि हम सभी एक अच्छे परिवार के सदस्यों की तरह रहें।

नोट

## 26.6 शब्दकोश (Keywords)

- **निर्वैयक्तिक**–किसी व्यक्ति विशेष से सम्बद्ध न होना।
- **उद्यत रहना**–किसी भी काम के लिए तत्पर रहना या तैयार रहना।

## 26.7 अभ्यास-प्रश्न ( Review Questions)

1. व्यावसायिक अधिगम समुदाय की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
2. व्यावसायिक अधिगम में शिक्षकों एवं प्रधानाचार्य के व्यवहार की क्या विशेषताएँ होती हैं? वर्णन कीजिए।
3. व्यावसायिक अधिगम के लिए विद्यालयों में आवश्यक वातावरण की भूमिका की विवेचना कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. मजबूत एवं समर्थित 2. प्रधानाध्यापक 3. कामन नियोजन कालांश 4. 1990

## 26.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–27: शैक्षिक नियोजन और प्रबंधन में आईआईईपी एक शीर्षस्थ निकाय (IIEP as an Apex Body in Educational Planning)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान (International Institute of Educational Planning–IIEP)

27.2 आईआईईपी के कार्य एवं उद्देश्य (Function and Aims of IIEP)

27.3 भारत के संदर्भ में शैक्षिक नियोजन (Educational Planning in Context of India)

27.4 सारांश (Summary)

27.5 शब्दकोश (Keywords)

27.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- IIEP (आईआईईपी) के उद्देश्य एवं कार्यों की व्याख्या करने में।
- भारत के संदर्भ में आईआईईपी की शैक्षिक नियोजन में भूमिका का विवेचन करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान (IIEP) विश्व भर में शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन का प्रमुख निकाय है, जो दुनिया भर में शैक्षिक नियोजन तथा प्रणालियों में सुधार तथा प्रबंधकों के यथोचित प्रशिक्षण पर विशेष बल देता है। इस इकाई में विद्यार्थी अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान (IIEP) के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

## 27.1 अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान (International Institute of Educational Planning (IIEP)

यूनेस्को ने 1963 में, अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान, पेरिस में स्थापित किया। यह संस्थान न केवल शोध द्वारा शैक्षिक नियोजन के विषय में नवीन जानकारी उपलब्ध कराता है बल्कि विभिन्न विकासशील सदस्य राष्ट्रों के अधिकारियों के लिए वार्षिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों जैसे, सक्षमता निर्माण कार्यक्रमों के माध्यम से नियोजन कुशलता प्रदान करता है। अपनी स्थापना के पाँच दशकों में आईआईईपी (IIEP) ने न केवल शैक्षिक नियोजन से संबंधित साहित्य विकसित किया बल्कि नवीन नियोजन तकनीकें भी विकसित की हैं। सन् 1962 में एलेक्जेण्डर कार सॉन्डर्स की अध्यक्षता में एक समिति

नोट

गठित की गई जिसने आईआईईपी (IIEP) के स्थापना के विषय में सिफारिशें दीं। यूनेस्को ने इन सिफारिशों को स्वीकार किया तथा फ्रांस सरकार ने नए संस्थान के लिए इमारत उपलब्ध कराई। 1963 में इसके पहले निदेशक फिलिप हॉल कूम्बस थे जो कि कैनेडी प्रशासन में शैक्षिक तथा सांस्कृतिक मामलों के प्रथम सहसचिव रह चुके हैं। संस्थान को यूनेस्को तथा IBRD (विश्व बैंक) द्वारा वित्तीय सहायता दी जाती है। संस्थान का पहला सेमिनार 1964 में हुआ था जब लैटिन अमरीका के 80 सदस्यों ने इस सम्मेलन में भाग लिया था।

*क्या आप जानते हैं* आईआईईपी यूनेस्को का एक प्रमुख अंग है इसका अपना बोर्ड है, जिसके प्रमुख यूनेस्को के निदेशक द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

## 27.2 आईआईईपी के कार्य एवं उद्देश्य (Function and Aims of IIEP)

आईआईईपी (IIEP) का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रों की शैक्षिक क्षमता को सुदृढ़ करना है। यह यूनेस्को के सदस्य देशों को अपने शैक्षिक प्रणाली के प्रबंधन में सहायता करता है। अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

(*i*) अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन में प्रशिक्षण उपलब्ध कराता है। साथ ही संस्थान शैक्षिक गुणवत्ता तथा मूल्यांकन में सहायता करता है। यह विभिन्न शैक्षिक नीतियाँ, प्रोजेक्ट्स तथा उनके लिए बजट भी बनाता है। इसके कार्यक्रम, नीति निर्माणकर्ताओं तथा शोधकर्ताओं के लिए बनाये जाते हैं।

(*ii*) आईआईईपी (IIEP) शोध प्रोजेक्ट नई–नई तकनीकों तथा उपागमों को अन्वेषित करते हैं, जिससे नियोजक तथा प्रबंधक उन्हें अपनाकर विभिन्न शैक्षिक क्षेत्रों में गुणवत्ता तथा मूल्यांकन में सुधार ला सकें तथा शैक्षिक प्रणालियों में उनका उपयोग कर सकें। लागत तथा वित्त, प्रशासन तथा प्रबंधन के अतिरिक्त आईआईईपी (IIEP) के प्रमुख शोध क्षेत्र हैं। आईआईईपी (IIEP) तकनीकी सहयोग द्वारा शिक्षा तथा संस्थान मंत्रालय को प्रशिक्षित करता है, ताकि वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में स्वायत्त बन सकें, तथा बाहरी स्त्रोतों से कम से कम सहायता लें। आईआईईपी (IIEP) सदस्य राष्ट्रों को शिक्षा के मामले में स्वायत्त बनाने में सहायता करती है। अत: आईआईईपी (IIEP) राष्ट्र सरकारों को विशिष्ट कार्यक्रमों की सहायता से आपातकालीन स्थितियों से निपटने तथा अपने शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में सहायता करती है।

*नोट्स* आईआईईपी (IIEP) राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करता है।

### आईआईईपी (IIEP) द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम

आईआईईपी (IIEP) शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन राष्ट्रीय शिक्षण पर केन्द्रित कई प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है। ये कार्यक्रम निम्नलिखित हैं–

1. शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन में 10 माह का एडवान्स्ड शैक्षणिक कार्यक्रम।
2. शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में फरवरी से अप्रैल तक के सत्र के लिए विशिष्ट कोर्स कार्यक्रम।
3. पूरे वर्ष में रणनीतिक सम्मेलन की श्रृंखला।
4. प्रतिवर्ष एक ग्रीष्म विद्यालय आयोजित किया जाता है।
5. ब्यूनॉस आयर्स में स्थित आईआईईपी (IIEP) कार्यालय लैटिन अमेरिकन पेशेवरों के लिए क्षेत्रीय प्रशिक्षण कोर्स आयोजित करता है।

नोट

6. राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर सदस्य राज्यों के विशेष अनुरोध पर पूरे विश्व में विशिष्ट विषयों पर विभिन्न कोर्स तथा वर्कशॉप आयोजित की जाती है।
7. संस्थान शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन संबंधी दूरवर्ती पाठ्यक्रम कार्यक्रम तथा इन्टरनेट विचार-विमर्श प्रस्तुत करता है। 5000 से भी अधिक कुशल शिक्षा अधिकारी आईआईईपी (IIEP) द्वारा प्रशिक्षित किये जा चुके हैं।
8. आईआईईपी (IIEP) पुस्तकालय तथा अध्ययन कक्ष में रशियन तथा अन्य विदेशी छात्रों के लिए पाठ्यपुस्तक, शब्दकोश, तकनीकी, वैज्ञानिक साहित्य यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका की 14 भाषाओं में है। पुस्तकालय में 2600000 वॉल्यूम से भी अधिक का संग्रह है। आईआईईपी (IIEP) विश्वविद्यालय, अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक संगठनों शोध संस्थान तथा विश्व के विभिन्न देशों के विभिन्न क्षेत्रों की औद्योगिक कम्पनियों के बीच संबंध को बनाये रखता है।

## 27.3 भारत के संदर्भ में शैक्षिक नियोजन (Educational Planning in Context of India)

राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक नियोजन का उत्तरदायित्व शिक्षा विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा योजना आयोग पर है। उच्च शिक्षा विभाग के नियोजन तथा सांख्यिकी ब्यूरो नियोजन की प्रक्रिया को संचालित करते हैं, जबकि अन्य ब्यूरो शैक्षिक कार्यक्रमों के नियोजन तथा प्रबंधन सम्बन्धित अपने उत्तरदायित्वों का कार्यान्वयन करते हैं। राज्य स्तर पर शिक्षा नियोजन का कार्यभार शिक्षा निदेशालय के शिक्षा विभाग तथा राज्य नियोजन बोर्ड संभालते हैं। सन् 1990 में DPEP के कार्यान्वयन के साथ प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के नियोजन तथा प्रबंधन के लिए विशिष्ट राज्य तथा जिला स्तरीय समितियाँ बनाई गईं।

NPE (1986) प्रत्येक ज़िले में एक ज़िला शिक्षा बोर्ड की सिफ़ारिश की। कुछ ज़िलों में ज़िला शिक्षा बोर्ड बनाये गये, किन्तु ये सभी ज़िलों में स्थापित नहीं किये जा सके। जिन ज़िलों में ज़िला शिक्षा बोर्ड नहीं हैं वहाँ ज़िला परिषद बनाई गई हैं, जो विभिन्न नियोजन तथा प्रबंधन गतिविधियों को शिक्षा समिति तथा ज़िला शिक्षा कार्यालय द्वारा संचालित करती हैं। पंचायती राज संस्थान (स्थानीय स्वप्रशासन) ज़िला तथा उपज़िला स्तरों पर शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उपज़िला स्तर पर प्रारंभिक शिक्षा के नियोजन तथा प्रबंधन का कार्य ब्लॉक शिक्षा कार्यालय संचालित करता है। माध्यमिक शिक्षा की देखरेख तथा कार्यान्वयन के लिए उपज़िला स्तर पर कोई संस्थानात्मक व्यवस्था नहीं है। ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन का कार्य देखती है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन विश्वविद्यालय (NUEPA), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद (NCERT) प्रबंधन के कार्य देखती है।

*टास्क* किस अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सहायता से आईआईईपी की स्थापना की गई?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**सही विकल्प का चुनाव कीजिए। (Choose the correct option)–**

1. अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान 1963 में किस स्थान पर स्थापित किया गया–
   (क) पेरिस (ख) नई दिल्ली (ग) वाशिंगटन (घ) लंदन
2. ए. के. सान्डर्स की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा आईआईईपी के गठन की सिफारिश की गई। यह समिति कब गठित की गई–
   (क) 1960 (ख) 1962 (ग) 1963 (घ) 1964

नोट

3. फिलिप हाल कूम्बस को आईआईईपी का पहला निदेशक कब नियुक्त किया गया–

(क) 1961 (ख) 1962 (ग) 1963 (घ) 1964

4. आईआईईपी का पहला सेमिनार कब आयोजित किया गया–

(क) 1961 (ख) 1962 (ग) 1963 (घ) 1964

## 27.4 सारांश (Summary)

- यूनेस्को ने 1963 में, अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान, पेरिस में स्थापित किया। यह संस्थान न केवल शोध द्वारा शैक्षिक नियोजन के विषय में नवीन जानकारी उपलब्ध कराता है बल्कि विभिन्न विकासशील सदस्य राष्ट्रों के अधिकारियों के लिए वार्षिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से सक्षमता निर्माण कार्यक्रमों द्वारा नियोजन कुशलता प्रदान करता है।
- 1963 में इसके पहले निदेशक फिलिप हॉल कूम्बस थे जो कि कैनेडी प्रशासन में शैक्षिक तथा सांस्कृतिक मामलों के प्रथम सहसचिव रह चुके हैं।
- आईआईईपी (IIEP) का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रों की शैक्षिक क्षमता को सुदृढ़ करना है। यह यूनेस्को के सदस्य देशों को अपने शैक्षिक प्रणाली के प्रबंधन में सहायता करता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन में प्रशिक्षण उपलब्ध कराता है। साथ ही संस्थान शैक्षिक गुणवत्ता तथा मूल्यांकन में सहायता करता है। यह विभिन्न शैक्षिक नीतियाँ, प्रोजेक्ट्स तथा उनके लिए बजट भी बनाता है। इसके कार्यक्रम, नीति निर्माणकर्ताओं तथा शोधकर्ताओं के लिए बनाये जाते हैं।
- आईआईईपी (IIEP) तकनीकी सहयोग द्वारा शिक्षा तथा संस्थान मंत्रालय को प्रशिक्षित करता है, ताकि वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में स्वायत्त बन सकें, तथा बाहरी स्त्रोतों से कम से कम सहायता लें। आईआईईपी (IIEP) सदस्य राष्ट्रों को शिक्षा के मामले में स्वायत्त बनाने में सहायता करती है।
- राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक नियोजन का उत्तरदायित्व शिक्षा विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा योजना आयोग पर है। उच्च शिक्षा विभाग के नियोजन तथा सांख्यिकी ब्यूरो नियोजन की प्रक्रिया को संचालित करते हैं, जबकि अन्य ब्यूरो शैक्षिक कार्यक्रमों के नियोजन तथा प्रबंधन सम्बन्धित अपने उत्तरदायित्वों का कार्यान्वयन करते हैं। राज्य स्तर पर शिक्षा नियोजन का कार्यभार शिक्षा निदेशालय के शिक्षा विभाग तथा राज्य नियोजन बोर्ड संभालते हैं। सन् 1990 में DPEP के कार्यान्वयन के साथ प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के नियोजन तथा प्रबंधन के लिए विशिष्ट राज्य तथा जिला स्तरीय समितियाँ बनाई गईं।
- NPE (1986) प्रत्येक ज़िले में एक ज़िला शिक्षा बोर्ड की सिफ़ारिश की। कुछ ज़िलों में ज़िला शिक्षा बोर्ड बनाये गये, किन्तु ये सभी ज़िलों में स्थापित नहीं किये जा सके। जिन ज़िलों में ज़िला शिक्षा बोर्ड नहीं है वहाँ ज़िला परिषदें बनाई गई हैं, जो विभिन्न नियोजन तथा प्रबंधन गतिविधियों को शिक्षा समिति तथा ज़िला शिक्षा कार्यालय द्वारा संचालित करती हैं।

## 27.5 शब्दकोश (Keywords)

- **वर्कशॉप**–कार्यशाला।
- **प्राधिकृत**–विधि विहित अधिकार प्राप्त।

## 27.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान की स्थापना कब हुई? शैक्षिक नियोजन में आईआईईपी की भूमिका को समझाइये।

नोट

2. आईआईईपी के कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान के उद्देश्यों का विवेचन कीजिए।
4. भारतीय संदर्भ में आईआईईपी का शैक्षिक नियोजन में क्या योगदान है? वर्णन कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. (क) 2. (ख) 3. (ग) 4. (घ)

## 27.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
3. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।

नोट

# इकाई–28: शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन में न्यूपा एक शीर्षस्थ निकाय (NUEPA as an Apex Body in Educational Planning and Management)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 राष्ट्रीय विश्वविद्यालय योजना और प्रशासन, नई दिल्ली (National University of Educational planning and Administration-NUEPA, New Delhi)

28.2 न्यूपा के प्रमुख उद्देश्य (Main objectives of NUEPA)

28.3 उच्च शिक्षा तथा विकास (Higher Education and Development)

28.4 सारांश (Summary)

28.5 शब्दकोश (Keywords)

28.6 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

28.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- न्यूपा (NUEPA) के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।
- उच्च शिक्षा तथा विकास के मद्देनजर न्यूपा के प्रमुख उद्देश्यों का विश्लेषण करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर सुझाव तथा संस्तुतियों को दिया गया है। नीतियाँ तथा कार्य योजनाएँ प्रस्तावित की गई हैं। शिक्षा के प्रबंध के सम्बन्ध में राष्ट्र स्तरीय तंत्र तथा राज्य स्तरीय तंत्र हेतु नीतियाँ, कार्य योजना तथा प्रारूप संबंधी संस्तुतियाँ की गई हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन विश्वविद्यालय (NUEPA) शैक्षिक प्रबंधन के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करता है, यह उच्च शिक्षा के सर्वसुलभीकरण तथा निरक्षता उन्मूलन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, कार्यान्वयन प्रक्रिया में सुनिश्चित उपाय करने हेतु कार्य करता है। इस इकाई में हम न्यूपा NUEPA तथा उसके प्रारूप और विशिष्ट कार्यों के विषय में अध्ययन करेंगे।

## 28.1 राष्ट्रीय विश्वविद्यालय योजना और प्रशासन, नई दिल्ली (National University of Educaitonal Planning and Administration NUEPA, New Delhi)

**संस्थान की स्थापना**–इस संस्थान को भारत सरकार ने शैक्षिक एवं प्रशासन के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर की संस्था के रूप में सन् 1962 में यूनेस्को (UNESCO) के साथ दस वर्षीय संविदा के तहत स्थापित किया। उस समय इसका नाम

नोट

था–'एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' (Asian Institute of Education Planning and Administration)। इस संविदा की समाप्ति के बाद भारत सरकार ने शिक्षा आयोग (1964-66) की सिफारिश पर इस संस्थान को अपने हाथों में ले लिया तथा उसका नाम रखा–'नेशनल स्टाफ कॉलेज फॉर एजुकेशनल प्लानर्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेटर्स (National Staff College for Educational Planners and Administrators) मई–1979 में भारत सरकार ने इस संस्थान को वर्तमान नाम-राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (National Institute of Educational Planning and Administration-NIEPA) दिया। वर्ष 2006 में इसे विश्वविद्यालय बना दिया गया। यह संस्थान नई दिल्ली में स्थित है।

**न्यूपा (NUEPA) संस्थान के कार्य**–इस संस्थान के कार्यों का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है–

1. **शिक्षा-नियोजकों तथा प्रशासकों का प्रशिक्षण**–यह संस्थान भारत के शैक्षिक कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। यह शैक्षिक नीतियों पर विचार-विमर्श करने के लिए विभिन्न सेमीनारों तथा वर्कशॉपों का भी आयोजन करता है। इसने अब तक भारत के विभिन्न राज्यों तथा संघ प्रदेशों के हजारों अधिकारियों को प्रशिक्षित किया है। संस्थान जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए डिप्लोमा कोर्स भी संचालित कर रहा है। इनमें से प्रमुख 'DEPA' (Diploma in Educational Planning and Administration) है जिसकी अवधि छः माह की है। इस अवधि में उनको तीन माह में पाठ्यक्रम कार्य कराया जाता है और शेष तीन माह में व्यवसाय से सम्बन्धित प्रोजेक्ट कार्य कराया जाता है। यह संस्थान विदेशी कर्मचारियों के लिए भी प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। इस संस्थान द्वारा आयोजित सेमीनार तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अफगानिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, चीन, इथोपिया, हंगरी, इण्डोनेशिया, कोरिया, मलेशिया, नेपाल, मॉरीशस, पाकिस्तान, फिलीपीन्स, श्रीलंका, थाईलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूगोस्लाविया आदि देशों ने भाग लिया है।
2. **अनुसन्धान**–यह संस्थान प्रबन्धात्मक अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसकी अनुसन्धानात्मक क्रियाएँ विभिन्न प्रकार की हैं। इनमें सर्वेक्षण, विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा अनुसन्धान प्रायोजनाएँ प्रमुख हैं।
3. **नवाचारों का प्रसार**–यह संस्थान नवाचारों के प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसके लिए सन् 1983 में इस संस्थान ने अन्तर्राज्यीय भ्रमणों (Visits) का आयोजन किया। इसके साथ ही उसने विभिन्न राज्यों में प्रयुक्त नवाचारों को प्रसारित करने के लिए अन्य माध्यमों का प्रयोग किया।
4. **परामर्शदात्री सेवा**–यह संस्थान विभिन्न राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों के लिए परामर्शदात्री सेवाएँ प्रदान करता है। इसने जम्मू व कश्मीर, सिक्किम, दादरा व नगरी हेवली, हरियाणा आदि में सेवाएँ प्रदान की हैं। संस्थान ने हरियाणा की प्रार्थना पर विद्यालयों की स्थापना तथा विद्यालयों की प्रोन्नत करने के मानकों का निर्माण किया।
5. **प्रकाशन कार्यक्रम**–संस्थान शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकाशनों को प्रकाशित कर रहा है। इनमें पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, प्रतिवेदन आदि प्रमुख हैं।
6. **सहयोग**–यह संस्थान विभिन्न राष्ट्रीय संगठनों–विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (Council of Scientific and Industrial Research-CSIR), योजना आयोग, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, इण्डियन सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑप एप्लाइड मैनपॉवर रिसर्च, केन्द्रीय विद्यालय संगठन, प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय आदि से सहयोग एवं सम्बन्ध रखती है। यह संस्थान अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। इनमें यूनस्को, रीजनल ऑफिस बैंकॉक, इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग, पेरिस, कॉमनवेल्थ सचिवालय, लन्दन आदि प्रमुख हैं।
7. **सर्वशिक्षा अभियान**–इस क्षेत्र में यह संस्थान प्राथमिक शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में बहुमूल्य जिलावार रिपोर्ट कार्ड (District Report Cards) तथा राज्यवार रिपोर्ट कार्ड (State Report Cards) प्रकाशित करता है।

नोट

*क्या आप जानते हैं* न्यूपा (NUEPA) विदेशी कर्मचारियों के लिए भी प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है।

## 28.2 (NUEPA) के प्रमुख उद्देश्य (Main Objectives of NUEPA)

NUEPA के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(*i*) राष्ट्रीय योजना तथा प्रशासन तथा उससे संबंधित अन्य विषयों में प्री सर्विस तथा सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।

(*ii*) भारत के विभिन्न राज्यों तथा विश्व के अन्य देशों में शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन तथा संबंधित विषयों के विभिन्न क्षेत्रों में शोध को प्रोन्नत करना तथा उसमें हर संभव सहयोग करना।

(*iii*) राष्ट्रीय नियोजन तथा प्रशासन में संलग्न विभिन्न एजेन्सियों, संस्थानों को शैक्षणिक तथा व्यावसायिक परामर्श देना।

(*iv*) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों के शैक्षिक क्षेत्र के प्रमुख लोगों के लिए प्रशिक्षण, वर्कशॉप, सेमिनार तथा सम्मेलन आयोजित करना।

(*v*) भारत तथा भारत से बाहर विभिन्न शिक्षण संस्था को परामर्श सेवा प्रदान करना।

*नोट्स* न्यूपा (NUEPA) विश्वविद्यालय पूर्ण रूप से नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में भारत सहित दक्षिण एशिया के कई देशों में शोध कार्यों को कार्यान्वित कर रहा है, तथा शिक्षा के क्षेत्र में इसका महत्वपूर्ण योगदान है।

## 28.3 उच्च शिक्षा तथा विकास (Higher Education and Development)

विश्वविद्यालय नवीन विचारों को सृजित करने तथा ज्ञान का विस्तार करने में विशेष भूमिका निभाता है। न केवल ज्ञान के विस्तार में बल्कि निपुणता लाने, विकास प्रबंधन, तथा सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक बदलाव के लिए भी महत्वपूर्ण है। शिक्षा, राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय वृद्धि में योगदान करती है।

### न्यूपा परिषद– (NUEPA Council)

NUEPA परिषद का गठन निम्नलिखित हैं–

1. केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री, भारत सरकार NUEPA (न्यूपा) अध्यक्ष
2. उपकुलपति, न्यूपा (NUEPA)–उपाध्यक्ष

### अन्य सदस्य

3. भारत सरकार सचिव, उच्च शिक्षा विभाग–सदस्य
4. भारत सरकार, सचिव, उच्च शिक्षा तथा साक्षरता विभाग–सदस्य
5. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, चेयरमैन–सदस्य
6. निदेशक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद्–सदस्य
7. वित्तीय सलाहकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार–सदस्य

नोट

8. सचिव (उच्च शिक्षा) कर्नाटक सरकार, बैंगलौर–सदस्य
9. सचिव (तकनीकी शिक्षा) महाराष्ट्र सरकार, मुम्बई–सदस्य
10. सचिव (उच्च शिक्षा) मध्यप्रदेश सरकार, भोपाल–सदस्य
11. सचिव (विद्यालय शिक्षा) मेघालय सरकर, शिलांग–सदस्य
12. सचिव (विद्यालय शिक्षा) जम्मू तथा कश्मीर, सरकार, श्रीनगर–सदस्य

*टास्क* न्यूपा (NUEPA) परिषद् के क्या कार्य हैं?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. भारत सरकार ने शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबंधन के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर न्यूपा (NUEPA) की स्थापना सन् ..... में यूनेस्को के साथ दस वर्षीय संविदा के तहत किया।
2. न्यूपा (NUEPA) को वर्ष ..... में विश्वविद्यालय बना दिया गया।
3. न्यूपा (NUEPA) जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए ..... भी संचालित कर रहा है।
4. यह संस्थान ..... के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

## 28.4 सारांश (Summary)

- इस संस्थान को भारत सरकार ने शैक्षिक एवं प्रशासन के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर की संस्था के रूप में सन् 1962 में यूनेस्को (UNESCO) के साथ दस वर्षीय संविदा के तहत स्थापित किया। उस समय इसका नाम था–'एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' (Asian Institute of Education Planning and Administration)। इस संविदा की समाप्ति के बाद भारत सरकार ने शिक्षा आयोग (1964-66) की सिफारिश पर इस संस्थान को अपने हाथों में ले लिया तथा उसका नाम रखा–'नेशनल स्टाफ कॉलेज फॉर एजुकेशनल प्लानर्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेटर्स (National Staff College for Educational Planners and Administrators)। मई–1979 में भारत सरकार ने इस संस्थान को वर्तमान नाम-राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (National Institute of Educational Planning and Administration-NIEPA) दिया। वर्ष 2006 में इसे विश्वविद्यालय बना दिया गया। यह संस्थान नई दिल्ली में स्थित है।
- यह संस्थान भारत के शैक्षिक कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। यह शैक्षिक नीतियों पर विचार-विमर्श करने के लिए विभिन्न सेमीनारों तथा वर्कशॉपों का भी आयोजन करता है। इसने अब तक भारत के विभिन्न राज्यों तथा संघ प्रदेशों के हजारों अधिकारियों को प्रशिक्षित किया है। संस्थान जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए डिप्लोमा कोर्स भी संचालित कर रहा है। इनमें से प्रमुख 'DEPA' (Diploma in Educational Planning and Administration) है। जिसकी अवधि छः माह की है। इस अवधि में उनको तीन माह में पाठ्यक्रम कार्य कराया जाता है और शेष तीन माह में व्यवसाय से सम्बन्धित प्रोजेक्ट कार्य कराया जाता है। यह संस्थान विदेशी कर्मचारियों के लिए भी प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। इस संस्थान द्वारा आयोजित सेमीनार तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अफगानिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, चीन, इथोपिया, हंगरी, इण्डोनेशिया, कोरिया, मलेशिया, नेपाल, मॉरीशस, पाकिस्तान, फिलीपीन्स, श्रीलंका, थाईलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूगोस्लाविया आदि देशों ने भाग लिया है।

नोट

- यह संस्थान प्रबन्धात्मक अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसकी अनुसन्धनात्मक क्रियाएँ विभिन्न प्रकार की हैं। इनमें सर्वेक्षण, विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा अनुसन्धान प्रयोजनाएँ प्रमुख है।
- यह संस्थान विभिन्न राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों के लिए परामर्शदात्री सेवाएँ प्रदान करता है। इसने जम्मू व कश्मीर, सिक्किम, दादरा व नगरी हवेली, हरियाणा आदि में सेवाएँ प्रदान की हैं। संस्थान ने हरियाणा की प्रार्थना पर विद्यालयों की स्थापना तथा विद्यालयों की प्रोन्नत करने के मानकों का निर्माण किया।
- यह संस्थान विभिन्न राष्ट्रीय संगठनों–विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (Council of Scientific and Industrial Research–CSIR), योजना आयोग, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑप एप्लाइड मैनपॉवर रिसर्च, केन्द्रीय विद्यालय संगठन, प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय आदि से सहयोग एवं सम्बन्ध रखती है। यह संस्थान अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। इनमें यूनेस्को, रीजनल ऑफिस बैंकॉक, इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग, पेरिस, कॉमनवेल्थ सचिवालय, लन्दन आदि प्रमुख हैं।
- विश्वविद्यालय नवीन विचारों को सृजित करने तथा ज्ञान का विस्तार करने में विशेष भूमिका निभाता है। न केवल ज्ञान के विस्तार में बल्कि उसमें निपुणता लाने, विकास प्रबंधन, तथा सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक बदलाव के लिए भी महत्वपूर्ण है।

## 28.5 शब्दकोश (Keywords)

- **सर्वसुलभ**–सब कुछ आसानी से उपलब्ध होना।
- **संविदा**–सशर्त समझौता, काट्रैक्ट।

## 28.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. न्यूपा (NUEPA) की स्थापना कब हुई? इसके प्रमुख कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. न्यूपा (NUEPA) के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
3. न्यूपा (NUEPA) परिषद के गठन को समझाते हुए उच्च शिक्षा एवं विकास में इसकी भूमिका की व्याख्या कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. 1962 2. 2006 3. डिप्लोमा कोर्स 4. प्रबंधात्मक अनुसंधान

## 28.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*–डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–29: शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन में सीमैट एक शीर्षस्थ निकाय (SIEMAT as an Apex Body in Educational Planning and Management)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 राज्य शिक्षण प्रबंधन तथा प्रशिक्षण संस्थान (State Institute of Educational Management and Training)

29.2 सीमैट की संरचना तथा कार्य (Structure and Functions of SIEMAT)

29.3 स्टाफ विकास पर बल (Focus on Staff Development)

29.4 सारांश (Summary)

29.5 शब्दकोश (Keywords)

29.6 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

29.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सीमैट की संरचना एवं कार्यों की विवेचना करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

शैक्षिक प्रबंधन एक विशेष प्रक्रिया है। मानव समूह तथा संचालन के लिए अर्थात् विद्यालय कर्मियों तथा विद्यालयी संस्था के संचालन के लिए शैक्षिक प्रबंधन का होना अत्यन्त आवश्यक है। राज्य शैक्षिक प्रबंधन तथा प्रशिक्षण संस्थान (SIEMAT) प्रबंधन तथा नियोजन के विषय में प्रशिक्षण का प्रमुख संस्थान है। यह संस्थान शैक्षिक प्रबंधन के विविध प्रकार, प्रभावी नियोजन, प्रबंधन वित्त आदि विषयों पर शोध करता है। इस अध्याय में विद्यार्थी सीमैट (SIEMAT) के विषय में अध्ययन करेंगे।

## 29.1 राज्य शिक्षण प्रबंधन तथा प्रशिक्षण संस्थान (State Institute of Educational Management and Training)

राज्य शिक्षण प्रबंधन तथा प्रशिक्षण संस्थान, राज्य, ज़िला तथा उपज़िला स्तर पर राज्य नियोजन तथा प्रबंधन गतिविधियों को व्यावसायिक रूप में उपयोग करने के लिये एक प्रमुख संस्थान है। इसे इस रूप में लाने के लिए विभिन्न प्रयास किये गये। सीमैट का निर्माण कई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गई जो निम्नलिखित हैं–

नोट

(*i*) शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन भारत में कुशलता के क्षेत्र में अल्प विकसित है। भारत में शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन की शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षण संस्थान तथा विश्वविद्यालय की संख्या बहुत कम है। अत: राज्य स्तर पर नियोजन तथा प्रबंधन में कुशलता के लिए सीमैट एक महत्त्वपूर्ण संस्थान है।

(*ii*) शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन के विकेन्द्रीकरण के लिए, प्रयास लगातार बढ़ रहे हैं। इसके लिए व्यावसायिक समर्थन तथा शैक्षणिक योग्यता की अत्यधिक आवश्यकता है, विशेषत: उन राज्यों में जो क्षेत्रफल की दृष्टि से काफ़ी बड़े हैं। इन राज्यों में ज़िला स्तर पर कार्य करने के लिए अत्यधिक पेशेवर तथा निपुण फ़ैकल्टी की आवश्यकता है।

*क्या आप जानते हैं* भारत में शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन की शिक्षा के प्रसार हेतु शिक्षण संस्थानों और विश्व विद्यालयों की संख्या बहुत कम है।

## 29.2 सीमैट की संरचना तथा कार्य (Structure and Functions of SIEMAT)

सीमैट का प्रारूप राज्य के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। प्रत्येक राज्य सरकार, अपनी आवश्यकतानुसार संस्थान के लिए प्रस्ताव रखती है, तथा केन्द्र सरकार राज्य में संस्थान निर्माण के लिए नीलपत्र बनाती है। सीमैट (SIEMAT) के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित हैं–

(*i*) राज्य स्तर पर नीति नियोजन का समर्थन करता है। यह राज्य स्तर पर नीति निर्धारण तथा कार्यान्वयन के क्षेत्र में शोध तथा वरिष्ठ स्तर के शैक्षिक प्रशासकों के लिए आरंभिक कार्यक्रमों के आयोजन द्वारा राज्य सरकार को परामर्श देता है।

उदाहरण के लिए शैक्षिक संस्थान को स्थापित करने के लिए, शैक्षिक संस्थानों में आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध कराने, अध्यापकों की नियुक्तियों तथा पदोन्नतियों, शिक्षण संस्थान के प्रदर्शन से संबंधित मानदण्डों तथा मानकों का निर्धारण करता है।

(*ii*) संस्थान राज्य सरकार द्वारा आयोजित विभिन्न योजनाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने के लिए, विभिन्न कार्यक्रमों पर शोध अध्ययन को संचालित करता है।

(*iii*) शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को ज़िला तथा उपज़िला स्तर पर आयोजित करना भी सीमैट का प्रमुख कार्य है।

(*iv*) शैक्षिक संस्थानों की प्रभाविता में सुधार करने के लिए पर्यवेक्षक स्टाफ़ की कुशलता बढ़ाने का कार्यभार भी सीमैट पर है।

(*v*) शैक्षिक विकास के विभिन्न सूचक, जिन पर ज़िला विद्यालयों का कार्य आधारित होता है, उनके लिए आँकड़े उपलब्ध कराना भी संस्थान का कार्य है।

इस प्रकार राज्य स्तर पर नीति समर्थन के लिए एक परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है जोकि शैक्षिक कार्यकारिणियों के लिए प्रत्यक्ष प्रशिक्षण कार्यक्रम, अप्रत्यक्ष प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन से जुड़े विभिन्न विषयों पर शोध कार्यक्रमों का आयोजन करता है।

*नोट्स* यह शिक्षण योजना मूल्य निर्धारण तथा बजट पर नियंत्रण रखती है तथा विविध शैक्षिक प्रोजेक्ट्स के लिए मूल्यांकन करती है।

नोट

## 29.3 स्टाफ विकास पर बल (Focus on Staff Development)

### सीमैट की भूमिका

**राज्य-शिक्षण प्रबंधन तथा प्रशिक्षण संस्थान**–सीमैट सर्वप्रथम 1995 में इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में स्थापित किया गया। उत्तर प्रदेश में विकेन्द्रीकृत रूप से शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में कुशलता व निपुणता लाने के लिए इसका गठन किया गया। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं।

(*i*) शोध तथा मूल्यांकन

(*ii*) प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन

(*iii*) विस्तार तथा डिसेमिनेशन।

संस्थान निदेशक द्वारा संचालित होता है, जो राज्य सरकार के शिक्षा मंत्री इसके प्रमुख होते हैं, तथा एक कार्यकारी समिति होती है, जिसका प्रमुख शिक्षा सचिव होता है। संस्थान के पाँच विभाग होते हैं–

(*i*) नीति तथा नियोजन

(*ii*) प्रबंधन

(*iii*) शिक्षा वित्त

(*iv*) शोध, मूल्यांकन तथा शैक्षिक इनोवेशन

(*v*) प्रबंधन सूचना प्रणाली।

स्टाफ़ में दो पेशेवर तथा 3 समर्थित स्टाफ़ हैं। सीमैट एक स्वायत्त संस्थान है, जो कि एक सोसाइटी के रूप में पंजीकृत है।

**प्रमुख गतिविधियाँ**– विभिन्न शोध क्रियाकलाप तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। शोध तथा प्रशिक्षण में गहरा सम्बंध है, जोकि संस्थान के लिए बहुत आवश्यक है। प्रशिक्षु शैक्षणिक प्रैक्टिशनर्स होते हैं तथा फ़ैकल्टी सदस्य शैक्षिक प्रशासन से पूर्ण रूप से परिचित नहीं होते, अत: यह देखना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि फ़ैकल्टी सदस्य शैक्षिक प्रशासन को अच्छी तरह से समझें जिससे कि वे गुणवत्ता प्रशिक्षण कार्यक्रम को ठीक प्रकार से संचालित कर सकें, तथा शैक्षिक नियोजकों तथा प्रशासकों की कार्यकुशलता में सुधार ला सकें। अत: इस प्रयोजन हेतु शोध संस्थान का बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य बन गया है। प्रणाली के कार्यान्वयन, तथा संस्थान के नियमित क्रियाकलापों को समझने के लिए कार्यशोध, क्षेत्र-आधारित अध्ययन, एकल अध्ययन, मूल्यांकन अध्ययन तथा निदानात्मक अध्ययन आदि का उपयोग किया जाता है। शोध अध्ययनों के लिए अल्पावधि प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित नहीं किये जाते, यद्यपि एक विशिष्ट शोध प्रविधि द्वारा फ़ैकल्टी सदस्यों को प्रशिक्षित करना संभव है। अत: शोध के लिए चयनित विषय पर विश्वविद्यालय तथा अन्य शोध संस्थानों के विशेषज्ञों के बीच गहरा विचार-विमर्श किया जाता है। इस प्रकार सीमैट में शोध कार्यों के लिए प्रारंभिक वातावरण तैयार किया जाता है। शोध तथा प्रशिक्षण में संबंध प्रशिक्षण सामग्री द्वारा उत्पन्न किया जाता है। प्रशिक्षण सामग्री को विकसित करना भी सीमैट की एक प्रमुख गतिविधि है। प्रशिक्षण सामग्री शोध आधारित होती है। इसलिए प्रशिक्षण सामग्री बनाते समय इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि प्रशिक्षुओं की व्यावसायिक कार्यकुशलता को सुधारने में सहायता कर सके। अधिकतर प्रशिक्षण कार्यक्रम फ़ैकल्टी सदस्यों द्वारा शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में आयोजित किये जाते हैं। अत: प्रारम्भिक अवस्था में ही सदस्यों को नियोजन तथा प्रबंधन से जुड़ी समस्याओं को सुलझाने की आवश्यकता है। NUEPA जैसे राष्ट्रीय स्तर के संस्थान भी फ़ैकल्टी के विकास में योगदान देते हैं। फ़ैकल्टी सदस्यों की सक्षमता विकास के लिए संस्थान में एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय तथा डॉक्यूमेंटेशन केन्द्र का होना बहुत आवश्यक है। चूँकि शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन का क्षेत्र अभी पूर्ण विकसित नहीं है, इससे संबंधित साहित्य भी उपलब्ध होना मुश्किल है।, अत: यह आवश्यक है कि प्रबंधन से संबंधित साहित्य की पहचान की जाये, उन्हें ख़रीदा जाये तथा फ़ैकल्टी

नोट

सदस्यों के लिए उपलब्ध कराया जाये।

इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर के शोध संस्थान तथा विश्वविद्यालय में संबंधित व चयनित क्षेत्रों में कार्यकुशलता अध्यापकों व शोधकों के साथ कार्य करने का अनुभव प्राप्त होता है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

1. राज्य सरकार की शैक्षिक योजनाओं की ..... का मूल्यांकन करने के लिए सीमैट शोध अध्ययन संचालित करता है।
2. सीमैट शैक्षिक नियोजन एवं प्रबंधन से सम्बंधित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को जिला और उपजिला स्तर पर ..... करता है।
3. शैक्षिक संस्थानों की प्रभाविता में सुधार के लिए ..... की कुशलता बढ़ाना भी सीमैट का कार्य है।
4. यह शिक्षण योजना ..... तथा बजट पर नियंत्रण रखता है।

## 29.4 सारांश (Summary)

- राज्य शैक्षिक प्रबंधन तथा प्रशिक्षण संस्थान (SIEMAT) प्रबंधन तथा नियोजन के विषय में प्रशिक्षण का प्रमुख संस्थान है। यह संस्थान शैक्षिक प्रबंधन के विविध प्रकार, प्रभावी नियोजन, प्रबंधन वित्त आदि विषयों पर शोध करता है।
- भारत में शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन की शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षण संस्थान तथा विश्वविद्यालय की संख्या बहुत कम है। अत: राज्य स्तर पर नियोजन तथा प्रबंधन में कुशलता के लिए सीमैट एक महत्त्वपूर्ण संस्थान है।
- शिक्षण नियोजन तथा प्रबंधन के विकेन्द्रीकरण के लिए, प्रयास लगातार बढ़ रहे हैं। इसके लिए व्यावसायिक समर्थन तथा शैक्षणिक योग्यता की अत्यधिक आवश्यकता है, विशेषत: उन राज्यों में जो क्षेत्रफल की दृष्टि से काफ़ी बड़े हैं। इन राज्यों में ज़िला स्तर पर कार्य करने के लिए अत्यधिक पेशेवर तथा निपुण फ़ैकल्टी की आवश्यकता है।
- राज्य स्तर पर नीति नियोजन का समर्थन करता है। यह राज्य स्तर पर नीति निर्धारण तथा कार्यान्वयन के क्षेत्र में शोध तथा वरिष्ठ स्तर के शैक्षिक प्रशासकों के लिए आरंभिक कार्यक्रमों के आयोजन द्वारा राज्य सरकार को परामर्श देता है।
- उदाहरण के लिए शैक्षिक संस्थान को स्थापित करने के लिए, शैक्षिक संस्थानों में आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध कराने, अध्यापकों की नियुक्तियों तथा पदोन्नतियों, शिक्षण संस्थान के प्रदर्शन से संबंधित मानदण्डों तथा मानकों का निर्धारण करता है।
- सीमैट सर्वप्रथम 1995 में इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में स्थापित किया गया। उत्तर प्रदेश में विकेन्द्रीकृत रूप से शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में कुशलता व निपुणता लाने के लिए इसका गठन किया गया।
- संस्थान निदेशक द्वारा संचालित होता है, जो राज्य सरकार के शिक्षा मंत्री इसके प्रमुख होते हैं, तथा एक कार्यकारी समिति होती है, जिसका प्रमुख शिक्षा सचिव होता है।
- विभिन्न शोध क्रियाकलाप तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। शोध तथा प्रशिक्षण में गहरा सम्बंध है, जोकि संस्थान के लिए बहुत आवश्यक है। प्रशिक्षु शैक्षणिक प्रैक्टिशनर्स होते हैं तथा फ़ैकल्टी सदस्य शैक्षिक प्रशासन से पूर्ण रूप से परिचित नहीं होते, अत: यह देखना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि फ़ैकल्टी सदस्य शैक्षिक प्रशासन को अच्छी तरह से समझें जिससे कि वे गुणवत्ता प्रशिक्षण कार्यक्रम को ठीक प्रकार से संचालित कर सकें, तथा शैक्षिक नियोजकों तथा प्रशासकों की कार्यकुशलता में सुधार ला सकें। अत: इस प्रयोजन हेतु शोध संस्थान का बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य बन गया है। प्रणाली के कार्यान्वयन, तथा संस्थान के नियमित

नोट

क्रियाकलापों को समझने के लिए कार्यशोध, क्षेत्र-आधारित अध्ययन, एकल अध्ययन, मूल्यांकन अध्ययन तथा निदानात्मक अध्ययन आदि का उपयोग किया जाता है।

- प्रशिक्षण सामग्री को विकसित करना भी सीमैट की एक प्रमुख गतिविधि है। प्रशिक्षण सामग्री शोध आधारित होती है। इसलिए प्रशिक्षण सामग्री बनाते समय इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि प्रशिक्षुओं की व्यावसायिक कार्यकुशलता को सुधारने में सहायता कर सके। अधिकतर प्रशिक्षण कार्यक्रम फ़ैकल्टी सदस्यों द्वारा शैक्षिक नियोजन तथा प्रबंधन के क्षेत्र में आयोजित किये जाते हैं।

## 29.5 शब्दकोश (Keyword)

1. **प्रयोजन**–कोई विशेष कार्य।
2. **दक्ष**–प्रवीण, कुशल, पारंगत।

## 29.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षण नियोजन एवं प्रबंधन में सीमैट (SIEMAT) के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
2. सीमैट (SIEMAT) की संरचना एवं कार्यों की व्याख्या कीजिए।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

1. प्रभावशीलता 2. आयोजित 3. पर्यवेक्षक स्टाफ 4. मूल्य निर्धारण।

## 29.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।
2. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
5. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।

नोट

# इकाई–30: शैक्षिक नियोजन और प्रबंधन में यूजीसी-नॉक एक शीर्षस्थ निकाय (UGC-NAAC as an Apex Body in Educational Planning and Management)

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)

30.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्य (Functions of UGC)

30.3 राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (National Assessment and Accredition Committee-NAAC)

30.4 एन.ए.ए.सी. के कार्य (Functions of NAAC)

30.5 सारांश (Summary)

30.6 शब्दकोश (Keywords)

30.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

30.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

## उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- यू.जी.सी तथा एन.ए.ए.सी के कार्यों की विवेचना करने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पार्लियामेन्ट एक्ट के तहत बनने वाली एक स्वायत्त संस्था है जो विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर को बनाने तथा बनाये रखने का कार्य करती है। राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) 1944 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित की गई स्वायत्त संस्था है जो उच्च शिक्षण संस्थानों में उच्च शिक्षा का मूल्यांकन करती है। इस इकाई में हम उपरोक्त दोनों निकायों का अध्ययन करेंगे।

## 30.1 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission-UGC)

प्राचीन काल से भारत शिक्षा तथा शिक्षण का केन्द्र रहा है। नालन्दा, तक्षशिला तथा विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों में न सिर्फ भारत के विभिन्न क्षेत्रों से बल्कि पूरे विश्व से छात्र शिक्षा ग्रहण करने आते थे। भारत में उच्च शिक्षा के विकास के लिए प्रथम प्रयास 1944 में आरंभ किया गया। केन्द्रीय परामर्श बोर्ड ऑफ एजुकेशन ने 1944 में

नोट

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के गठन के लिए सुझाव दिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग 1945 में स्थापित हुआ तथा सबसे पहले बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, दिल्ली तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय का उत्तरदायित्व संभाला, तथा 1947 तक आते-आते देश के सभी विश्वविद्यालयों का कार्यभार संभाला।

नोट्स विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भारत सरकार का एक स्वायत्त अंग है, जो कि भारत में उच्च शिक्षा के उचित प्रबंधन एवं नियोजन की देख-रेख करता है।

### विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, 1952 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यूनाईटेड किंगडम के विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तर्ज पर बनाया जाये जिसमें एक चेयरमैन तथा कमीशन के अन्य सदस्य हों जो कि वरिष्ठ शिक्षाविदों में से चुने जाएँ।

आयोग ने निर्णय लिया कि विश्वविद्यालयों से संबंधित तथा उच्च शिक्षण संस्थानों के फंड्स तथा सभी मामलों की देख-रेख और शैक्षिक प्रबंधन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग करेगा, और इसके द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम होगा। 28 दिसम्बर 1953 में उस समय के शिक्षा मंत्री, मौलाना अबुल कलाम आजाद ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का पुन:पदार्पण किया।

यू. जी. सी. नवंबर 1956 में संसद के एक्ट द्वारा भारत सरकार का एक स्वायत्त अंग बन गया। आयोग को भारत में विश्वविद्यालय शैक्षिक प्रबंधन तथा शिक्षा के स्तर को बनाये रखने का उत्तरदायित्व सौंपा। आयोग को प्रभावी ढंग से काम करने के लिए इसके कार्य को छ: क्षेत्रीय केन्द्रों में बाँटा गया है जो कि पुणे, हैदराबाद, कोलकाता, भोपाल, गुवाहाटी तथा बैंगलुरू में हैं। यू. जी. सी. का कार्यालय बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली में स्थापित है।

**यू. जी. सी. द्वारा उठाये गए कदम–** यू. जी. सी. के क्षेत्रीय कार्यालय हैदराबाद पुणे, भोपाल, कोलकाता तथा बैंगलुरू में हैं। इसका उत्तरी क्षेत्रीय कार्यालय जो कि पहले गाजियाबाद में था, अब वह उत्तरी क्षेत्रीय महाविद्यालय ब्यूरो (NRCB) के रूप में यू. जी. सी. मुख्यालय से ही संचालित किया जा रहा है। यूजीसी ने शैक्षिक प्रबंधन के क्षेत्र में कई अहम फैसले लिए जिससे शिक्षा व्यवस्था में व्यापक सुधार हुआ। यूजीसी द्वारा चलाये गये नए कार्यक्रम निम्नलिखित हैं–

(*i*) विदेशों में भारतीय उच्च शिक्षा की प्रोन्नति
(*ii*) बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार की सुरक्षा
(*iii*) शिक्षण प्रशासकों को प्रशिक्षण तथा विकास
(*iv*) कम्प्यूटरीकृत शैक्षिक कार्यक्रम

## 30.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्य (Functions of UGC)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

(*i*) यह विभिन्न उच्च शैक्षिक संस्थानों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
(*ii*) यह उच्च शिक्षण संस्थानों में सामंजस्य तथा शिक्षा के स्तर को बनाये रखने का कार्य करता है।
(*iii*) यह विश्वविद्यालयी शिक्षा को प्रोन्नत तथा कार्यान्वित करता है।
(*iv*) यह विश्वविद्यालयों में, शिक्षण, परीक्षा तथा अनुसंधान के स्तर को बनाये रखने का कार्य करता है।
(*v*) यह केन्द्र, राज्य सरकारों तथा उच्च शिक्षण संस्थानों के बीच की कड़ी का काम करता है।

नोट

(*vi*) यह विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए आवश्यक मानकों को लागू करने के लिए राज्य तथा केन्द्र सरकार को परामर्श देता है।

## 30.3 राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (National Assessment and Accredition Committee-NAAC)

राष्ट्रीय असेसमेन्ट तथा एक्रीडिशन समिति एक स्वचालित स्वायत्त संस्था है जो कि नेशनल शिक्षा की राष्ट्रीय नीति 1986 तथा POA 1992 की सिफारिशों के आधार पर 1994 में यू. जी. सी. द्वारा गठित की गई। इसका प्रमुख कार्य उच्च शिक्षा संस्थानों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों तथा उनकी इकाईयों (स्कूल, संस्थान, कार्यक्रम आदि) का मूल्यांकन तथा मापन करना है। राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) अपनी जनरल समिति और कार्यकारी समिति के द्वारा कार्यों को संचालित करती है।

राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) के नई विधि के अनुसार 1 अप्रैल, 2007 से उच्च शिक्षा संस्थानों को द्विचरल विधि द्वारा मूल्यांकित तथा एक्रीडिट किया जा रहा है। पहले चरण में संस्थानों को इन्स्टीट्यूशनल एलिजिबिलिटी फॉर क्वालिटी एश्योरेन्स (IEQA) द्वारा मूल्यांकित किया जाएगा तथा दूसरे चरण में इन्हें A, B, C ग्रेडों के द्वारा मूल्यांकित किया जाएगा जिन्हें एक्रीडिट नहीं किया गया है, उन्हें 'D' ग्रेड दिया जाएगा।

राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) ने सात मापक माने हैं–

(*i*) पाठ्यक्रम आस्पेक्ट

(*ii*) शिक्षण–अधिगम तथा मूल्यांकन

(*iii*) अनुसंधान, कन्सल्टेन्सी तथा विस्तार

(*iv*) इन्फ्रास्ट्रक्चर तथा अधिगम स्रोत

(*v*) छात्र सहयोग तथा प्रगति

(*vi*) गवर्नेन्स तथा लीडरशिप

(*vii*) मूल्यांकन के तरीकों के लिए इन्नोबेटिव कार्य

### राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) का स्ट्रक्चर तथा कार्य प्रणाली

राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) अपने समस्त कार्य अपनी जनरल समिति (GC) तथा कार्यकारी समिति के द्वारा करती है। GC तथा EC दोनों में शैक्षिक प्रशासक, नीति निर्माता तथा वरिष्ठ शिक्षाविद् होते हैं। GC का अध्यक्ष यूजीसी का चेयरपर्सन होता है तथा EC का चेयरपर्सन एक प्रख्यात शिक्षाविद् होता है।

राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) का निदेशक इसका शैक्षिक तथा प्रशासनिक प्रमुख होता है तथा यह GC और EC दोनों का सदस्य सचिव होता है। समिति में बहुत सी परामर्शदात्री तथा कन्सल्टेटिव समितियाँ होती हैं जो इसके कार्यों की देखरेख का कार्य करती हैं। राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) का एक मुख्य स्टाफ तथा कन्सल्टेंट्स होता है जो कि इसकी गतिविधियों में सहायता करता है।

### राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) के उद्देश्य

राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(*i*) स्व तथा बाहरी गुणवत्ता मूल्यांकन द्वारा भारत में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को एक प्रमुख तत्व बनाना।

(*ii*) उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए आवर्ति मूल्यांकन की व्याख्या करना।

(*iii*) विशेष शैक्षिक कार्यक्रम तथा प्रोजेक्ट बनाना।

- शिक्षण अधिगम तथा अनुसंधान की प्रोन्नति के लिए उच्च शिक्षण संस्थानों में शैक्षिक वातावरण तैयार करना।

नोट

- स्वमूल्यांकन, अकाउंटेबिलिटी, स्वचालन को उच्च शिक्षा में प्रोत्साहित करना।
- गुणवत्ता से संबंधित अनुसंधान का विकास करना।
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।

### योग्यता

जो संस्थान राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) द्वारा मूल्यांकित होना चाहते हैं उन्हें पहले अपने संस्थान के विषय में सूचना राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) को देनी होती है। जब राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) संस्थान की ओर से लेटर ऑफ इन्टेनशन प्राप्त करता है तो यह संस्थान की योग्यता तथा पात्रता की जाँच करती है। इसकी पात्रता निम्नलिखित है–

- संस्थान स्नातक स्तर या इससे अधिक स्तर का होना चाहिए।
- भारतीय विधि के अनुसार संस्थान किसी विश्वविद्यालय से अनुग्रहीक तथा मान्यता प्राप्त होना चाहिए।

### विधि प्रणाली

किसी संस्थान के मूल्यांकन का तरीका तीन चरणों में होता है। ये चरण निम्नलिखित हैं–

- मूल्यांकन इकाई द्वारा एक स्वअध्ययन रिपोर्ट तैयार करके राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) कार्यालय में जमा करनी होती है।
- राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) की ओर से एक विशेष टीम संस्थान द्वारा जमा की गई रिपोर्ट की सत्यता जाँचने के लिए संस्थान आती है तथा मूल्यांकन करती है।
- इस मूल्यांकन के बाद राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) संस्थान के विषय में अपना निर्णय देता है।

*क्या आप जानते हैं* राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति अपने कार्यों को जनरल समिति और कार्यकारी समिति द्वारा सम्पन्न करती है।

## 30.4 एन.ए.ए.सी. के कार्य (Functions of NAAC)

राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा एक्रीडिशन समिति के कार्य निम्नलिखित हैं–

- उच्च शिक्षा के संस्थानों में आवृर्ति मूल्यांकन का आयोजन करता है।
- उच्च शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता जाँचने का कार्य करता है।
- स्व तथा बाहरी गुणवत्ता मूल्यांकन द्वारा भारत में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को एक प्रमुख तत्व बनाना।
- उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए पीरियोडिक मूल्यांकन की व्याख्या करना।
- विशेष शैक्षिक कार्यक्रम तथा प्रोजेक्ट बनाना।
- शिक्षण अधिगम तथा अनुसंधान की प्रोन्नति के लिए उच्च शिक्षण संस्थानों में शैक्षिक वातावरण तैयार करना।
- स्वमूल्यांकन, अकाउंटेबिलिटी, स्वचालन को उच्च शिक्षा में प्रोत्साहित करना।
- गुणवत्ता से संबंधित अनुसंधान का विकास करना।
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।
- स्कूल प्रोफाइल प्राप्त करता है।
- प्रशासनिक प्रोफाइल प्राप्त करता है।

नोट

- लेटर ऑफ इन्टेन्शन जमा होता है।

*टास्क* राष्ट्रीय मूल्यांकन तथा प्रत्यायन समिति (NAAC) का गठन यूजीसी द्वारा कब किया गया?

## स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–**

(*i*) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ..... में गठित की गई।

(*ii*) यू. जी. सी. का मुख्यालय ..... में स्थित है।

(*iii*) यू. जी. सी. केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को विश्वविद्यालय संबंधी मामलों में ..... देता है।

(*iv*) एन. ए. ए. सी. ..... द्वारा गठित की गई एक स्वायत्त संस्था है।

## 30.5 सारांश (Summary)

- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पार्लियामेन्ट एक्ट के तहत बनने वाली एक स्वायत्त संस्था है जो विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर को बनाने तथा बनाये रखने का कार्य करती है।
- भारत में उच्च शिक्षा के विकास के लिए प्रथम प्रयास 1944 में आरंभ किया गया। केन्द्रीय परामर्श बोर्ड ऑफ एजुकेशन ने 1944 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के गठन के लिए सुझाव दिए।
- आयोग ने निर्णय लिया कि विश्वविद्यालयों से संबंधित तथा उच्च शिक्षण संस्थानों के फंड्स तथा सभी मामलों की देख-रेख विश्वविद्यालय अनुदान आयोग करेगा, और इसके द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम होगा।
- राष्ट्रीय असेसमेन्ट तथा एक्रीडिशन समिति एक स्वचालित स्वायत्त संस्था है जो कि राष्ट्रीय शिक्षा की राष्ट्रीय नीति 1986 तथा POA 1992 की सिफारिशों के आधार पर 1994 में यू. जी. सी. द्वारा गठित की गई। इसका प्रमुख कार्य उच्च शिक्षा संस्थानों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों तथा उनकी इकाईयों (स्कूल, संस्थान, कार्यक्रम आदि) का मूल्यांकन तथा मापन करना है।
- समाज की समस्याओं और राष्ट्र के आदर्शों को दृष्टि में रखकर पाठ्यक्रम का प्रारूप तैयार किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम की शिक्षण विधियाँ भारतीय परिस्थिति के अनुरूप होनी चाहिये। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सामाजिक वातावरण के साथ पर्यावरण, कार्य-अनुभव, शारीरिक तथा मनोरंजन की पाठ्यवस्तु को सम्मिलित किया जाना चाहिये।
- बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना, शिक्षा में सभी स्तरों के अध्यापकों का लक्ष्य होता है जिससे वह राष्ट्र और समाज के विकास में सहयोग दे सके। अत: अध्यापक-शिक्षा के विभिन्न स्तरों के उद्देश्य तथा पाठ्यक्रम पृथक् होने के बावजूद उनमें एकीकरण होना आवश्यक है।
- विभिन्न स्तरों के लिये अलग-अलग मूल तथा विशिष्ट पाठ्यक्रम विकसित किये जाने चाहिये। ग्रामीण, शहरी तथा स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर छात्रों को विकसित करना चाहिए। इसमें राष्ट्रीय लक्ष्य, सामाजिक स्वरूप, मानसिक स्तर तथा सामाजिक विकास को भी महत्त्व दिया जाना चाहिए।

## 30.6 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रवक्ता**–वक्तव्य देने वाला।
- **सम्प्रेषण**–कथन का संचरित होना।

नोट

## 30.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. यू.जी.सी. के प्रमुख कार्य क्या हैं?
3. एन.ए.ए.सी. के बारे में विस्तारपूर्वक समझाइये।
4. शैक्षिक नियोजन एवं प्रबंधन में यूजीसी की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. एन.ए.ए.सी का शैक्षिक प्रबंधन नियोजन में क्या योगदान है? वर्णन कीजिए।

**उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)**

(*i*) 1956 (*ii*) नई दिल्ली (*iii*) परामर्श (*iv*) अनुदान आयोग

## 30.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें


1. *शिक्षा प्रबंधन*– आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
2. *विद्यालय प्रबंधन*– जे.पी. वर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
3. *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन* – आर.ए. शर्मा, आर लाल बुक डिपो, यू.पी।
4. *शैक्षिक तकनीकी*– जे.सी. अग्रवाल, ए.एस. गुप्ता, शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. *शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन*– डॉ. एस.के. मंगल, शुभ्रा मंगल, लायल बुक डिपो, यू.पी।

**LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY**
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in